लोक प्रशासन के तत्व

बी.ए. II

Directorate of Distance Education
Maharshi Dayanand University, Rohtak

लोक प्रशासन के तत्व

बी. ए.—I

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय
रोहतक—124 001

Copyright © 2002, Maharshi Dayanand University, ROHTAK
All Rights Reserved. No part of this publication may be reproduced or stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means; electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the written permission of the copyright holder.

Maharshi Dayanand University
ROHTAK – 124 001

विषय सूची

अध्याय 1	लोक प्रशासन का अर्थ, प्रकृति, क्षेत्र एवं महत्व	1
अध्याय 2	लोक तथा निजी प्रशासन एवं नवीन लोक प्रशासन	11
अध्याय 3	लोक प्रशासन का अन्य सामाजिक विज्ञानों से सम्बन्ध	23
अध्याय 4	मुख्य कार्यपालिका	30
अध्याय 5	संगठन—अर्थ एवं आधार	35
अध्याय 6	संगठन—सिद्धान्त	41
अध्याय 7	समन्वय एवं पर्यवेक्षण	51
अध्याय 8	संचार	63
अध्याय 9	विभागीय संगठन	69
अध्याय 10	लोक निगम	75
अध्याय 11	स्वतंत्र नियामिकी आयोगः रचना और कार्य	79
अध्याय 12	स्टाफ तथा सूत्र अभिकरण	85
अध्याय 13	लोक सम्पर्क	9
अध्याय 14	लोक कार्मिक प्रशासन की अवधारणा, प्रकृति एवं क्षेत्र	101
अध्याय 15	भर्ती और प्रशिक्षण	110
अध्याय 16	पदोन्नति	121
अध्याय 17	संघ लोक सेवा आयोगः संगठन, शक्तियाँ एवं कार्य	131
अध्याय 18	मनोबल	141
अध्याय 19	हिटले परिषदें	150
अध्याय 20	वित्तिय प्रशासन—अर्थ, महत्व, तथा अभिकरण	156
अध्याय 21	बजट के सिद्धान्त एवं बजट निर्माण प्रक्रिया	161
अध्याय 22	लेखा—परीक्षा व्यवस्था	171
अध्याय 23	वित्त पर विधायी नियंत्रण	178
अध्याय 24	प्रदत्त विधिनिर्माण—अर्थ एवं महत्त्व	183
अध्याय 25	प्रशासकीय—न्यायाधिकरण	191
अध्याय 26	प्रशासन पर नियन्त्रणः संसदीय एवं न्यायिक	198
वस्तुनिष्ठ प्रश्न		207

अध्याय 1

लोक प्रशासन का अर्थ, प्रकृति, क्षेत्र एवं महत्व

Meaning, Nature, Scope and Importance of Public Administration

आधुनिक समाज में जनता की बढती हुई आकांक्षाओं को देखते हुए राज्य की गतिविधियों में वृद्धि हो रही है। बढ़ती हुई आर्थिक तथा राजनैतिक जागृति के फलस्वरूप पुलिस राज्य का स्थान कल्याणकारी राज्य ने ले लिया है। अब राज्य का कार्य नागरिक केवल मूलभूत सुविधाओं तक सीमित नहीं है बल्कि राज्य मानव जीवन के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक नैतिक सांस्कृतिक विकास के लिए उत्तरदायी है। इसलिए आधुनिक राज्य की गतिविधियों का विस्तार हो जाने से, आधुनिक समाज में लोक प्रशासन का महत्व बहुत बढ़ गया है। डिमॉक (Dimock) ने ठीक ही लिखा है कि "वर्तमान समय में लोक- प्रशासन व्यापक रूप से हमारे समस्त जीवन और कार्यों पर छा चुका है तथा वह हमारी सभ्यता का मूलाधार बन गया है। लोक प्रशासन आधुनिक सभ्य समाज का अंग है जिसमें राज्य के उस स्वरूप ने जन्म लिया है जिसे हम 'प्रशासी राज्य' (Administrative State) कहते हैं।"

लोक प्रशासन एक क्रिया के रूप में उतना ही पुराना है जितना की मानव समाज तथा सभ्यता परन्तु एक विषय के रूप में यह बिल्कुल नया विषय है। इसका जन्म अमेरिका में 1887 ई० में वुडरो विल्सन (Woodrow Wilson) द्वारा रचित 'प्रशासन का अध्ययन' (The Study of Administration) नामक लेख के उपरान्त हुआ। वुडरो विल्सन को लोक प्रशासन का जनक माना जाता है। इस लेख में विल्सन ने तर्क दिया कि प्रशासन तथा राजनीति के कार्य क्षेत्र भिन्न हैं। प्रशासन का कार्य राजनीतिक निर्णयों को लागु करना है। तथा राजनीति का कार्य लोकनीति या निर्णयों को बनाना है। उन्होंने कहा कि प्रशासन ही एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा सरकार के उद्देश्यों एवं आदर्शों को व्यवहार में लाया जाता है। लोक प्रशासन एक व्यवस्था के रूप में जनहित एवं जन–कल्याण सेवाओं का प्रबन्ध एवं संचालन करता है। साधारण शब्दों में, सरकारी मशीनरी, जिसमें अधिकारी एवं कर्मचारी दिन–रात सेवाओं में लगे रहते हैं, को लोक प्रशासन कहा जाता है।

प्रशासन का अर्थ

Meaning of Administration

लोक प्रशासन के अर्थ जानने से पहले प्रशासन के अर्थ को जानना आवश्यक है। 'प्रशासन' शब्द अंग्रेजी शब्द 'Administer' का हिन्दी रूपान्तर है और यह शब्द लेटिन भाषा के दो शब्द 'Ad'+'Ministiare' से मिलकर बना है। जिसका अर्थ है कार्य का प्रबन्ध करना, व्यक्तियों की देखभाल करना तथा सेवा करना। प्रशासन से सम्बन्धित भिन्न–भिन्न लेखकों ने विभिन्न परिभाषाएँ दी हैं जिनमें से कुछ प्रमुख परिभाषाएँ इस प्रकार हैं:–

एल. डी. व्हाईट (L.D. White) के अनुसार, "किसी प्रयोजन या उद्देश्य की प्राप्ति के लिए बहुत से मनुष्यों का निर्देशन, समन्वय तथा नियन्त्रण ही प्रशासन है।"

फिफनर (Pfiffner) के अनुसार, "वांछित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए मानवीय तथा भौतिक साधनों के संगठन और संचालन को प्रशासन की संज्ञा दी गई है।"

नीगरो (Nigro) के अनुसार, "मनुष्य तथा स्रोतों के प्रयोग से किसी निर्धारित उद्देश्य की प्राप्ति का संचालन ही प्रशासन है।

हर्बट ए० साइमन (Herbert A. Simon) के मतानुसार, "व्यापक अर्थ में जो समूह सामान्य उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु सहयोग करते हैं, उनके कार्यों को प्रशासन की संज्ञा दी गई है।"

उपरोक्त परिभाषाओं के अध्ययन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए मानवीय प्रयत्नों का सही

मार्ग दर्शन तथा स्रोतों का सही प्रयोग ही प्रशासन है।

लोक प्रशासन का अर्थ

Meaning of Public Administration

लोक प्रशासन एक संयुक्त शब्द है जो 'लोक' और 'प्रशासन' से मिलकर बना है। 'लोक' शब्द 'सार्वजनिकता' का सूचक है तथा यह आम आदमी के लिए प्रशासन का द्वार खोलता है अर्थात् जो प्रशासन आम लोगों के लिए हो, वह लोक प्रशासन है। साधारण शब्दों में लोक प्रशासन से अभिप्राय सरकार द्वारा वांछित उद्देश्यों को प्राप्ति के लिए प्रयोग की जाने वाली क्रियाओं से है। प्रशासन की भांति लोक प्रशासन की भी भिन्न–भिन्न विचारकों ने भिन्न–भिन्न परिभाषाएँ दी हैं।

एल॰ डी॰ व्हाईट का कहना है कि लोक प्रशासन में वे संक्रियाएँ आ जाती हैं जिसका प्रयोजन लोक नीति को पूरा करना अथवा क्रियान्वित करना होता है जो योग्य अधिकारियों द्वारा बनायी जाती हैं।

वुडरो विलसन के अनुसार, "लोक प्रशासन कानून को विस्तृत एवं क्रमबद्ध रूप में लागू करने का नाम है। कानून को लागू करने की प्रत्येक प्रक्रिया एक प्रशासनीय क्रिया है।"

एस॰ ई॰ फाइनर के अनुसार, "लोक प्रशासन लोक–इच्छा का क्रियान्वयन है।"

फिफनर के अनुसार, "लोक प्रशासन से हमारा तात्पर्य उस सार्वजनिक नीति के निर्धारण करने व पूरा करने से है जिसे अन्तिम रूप से राजनीतिक संस्थाओं के प्रतिनिधि प्रदान करते हैं।"

लूथर गुलिक (Luther Gulick) का कहना है कि लोक प्रशासन सामाजिक विज्ञान का वह भाग है जो सरकार से सम्बन्धित है और इसलिए उसका सम्बन्ध कार्यपालिका से है, जहाँ कि सरकार का काम मुख्य रूप से होता है, यद्यपि उसको स्पष्ट रूप से उन प्रशासकीय समस्याओं पर ही ध्यान देना होता है जो व्यवस्थापिका तथा न्यायपालिका के क्षेत्र में आती हैं।

हर्बट ए॰ साइमन (Herbert A. Simon) के अनुसार, "सामान्य प्रयोग में लोक प्रशासन का अर्थ केन्द्रीय, प्रान्तीय तथा स्थानीय सरकार की कार्यपालिका शाखाओं की गतिविधियों का अध्ययन है।"

वाल्डो (Waldo) के अनुसार, "राज्य के कार्यों में प्रयुक्त की जाने वाली प्रबन्ध–कला तथा उसके विज्ञान को लोक प्रशासन कहते हैं।"

उपरोक्त परिभाषाओं के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष निकाला जा सकता है:–

(1) लोक प्रशासन का सम्बन्ध मुख्यतः सार्वजनिक समस्याओं से है।

(2) सार्वजनिक हित के लिए लोक प्रशासन मनुष्य तथा अन्य भौतिक साधनों का संगठित प्रयास है।

(3) लोक प्रशासन का सम्बन्ध सरकारी कार्यों से है।

(4) लोक प्रशासन जन–इच्छा को सुव्यवस्थित ढंग से पूर्ण करने की क्रिया है।

(5) लोक प्रशासन का सम्बन्ध उन कार्यों से है जो सरकार द्वारा मनुष्य के विकास तथा कल्याण के लिए क्रियान्वित किये जाते हैं।

अतः निष्कर्ष यह निकाला जा सकता है कि लोक प्रशासन सरकार की वह गैर–राजनीतिक व्यवस्था है जो उसके काम को राज्य द्वारा निर्दिष्ट विधियों के अनुसार जनता के कल्याण के लिए करती है। यह राजनीतिक कार्यपालिका से भिन्न स्थायी कार्यपालिका होती है और सार्वजनिक महत्व की सभी गतिविधियाँ इसके अन्तर्गत आ जाती हैं।

विभिन्न लेखकों द्वारा दी गई परिभाषाओं के आधार पर यह स्पष्ट है कि लोक प्रशासन के अर्थ के सम्बन्ध में दो विचारधाराएँ हैं व्यापक तथा संकुचित। व्यापक विचारधारा के अन्तर्गत लोक प्रशासन में सरकार की तीनों शाखाओं विधानपालिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका की गतिविधियाँ सम्मिलित हैं। जिसके समर्थक एल॰ डी॰ व्हाईट, वुडरो विलसन, वाल्डो, फिफनर आदि हैं। दूसरी तरफ लूथर गुलिक, हर्बट साईमन, विलोबी आदि विचारक जो संकुचित अथवा प्रबन्ध विचारधारा के समर्थक हैं, उनके अनुसार, लोक प्रशासन केवल सरकार की कार्यपालिका शाखा के कार्यों से ही सम्बन्धित हैं।

वास्तव में लोक प्रशासन का कार्य केवल लोकनीति को लागू करने तक ही सीमित नहीं है बल्कि लोकनीति के निर्माण में भी लोक प्रशासन का महत्वपूर्ण योगदान है।

लोक प्रशासन की प्रकृति

Nature of Public Administration

लोक प्रशासन की प्रकृति लोक प्रशासन के सम्बन्ध में दी हुई भिन्न–भिन्न विचारकों की परिभाषाओं के अध्ययन के आधार पर उसकी प्रकृति से सम्बन्धित तीन प्रकार के दृष्टिकोण हैं।

1. एकीकृत दृष्टिकोण (Integral view)
2. प्रबन्धात्मक दृष्टिकोण (Managerial view)
3. आधुनिक दृष्टिकोण (Modern view)

1. **एकीकृत दृष्टिकोण**–यह एक व्यापक दृष्टिकोण है इसके अनुसार लोक प्रशासन निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सम्पादित की जाने वाली क्रियाओं का समग्र योग है। इन क्रियाओं में प्रबन्धकीय, तकनीकी, शारीरिक, लिपिक व हाथ से किए जाने वाले सभी कार्य सम्मिलित हैं। इससे अभिप्राय है कि संगठन का प्रत्येक कर्मचारी, मुख्य कार्यपालिका से लेकर चपरासी तक, प्रत्येक का प्रशासन की कार्यवाही में योगदान है। इस दृष्टिकोण के समर्थक फिफनर, एफ॰ एम॰ मार्क्स, एल॰ डी॰ व्हाईट, वुडरो विलसन, डिमॉक आदि हैं। एल॰ डी॰ व्हाईट ने स्पष्ट रूप से कहा है, "लोक प्रशासन उन सभी कृत्यों से मिलकर जिनका प्रयोजन लोक–नीति को पूरा करना या उसे लागू करना होता है।" इस विचारधारा की कुछ विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–
   (a) लोक प्रशासन का सम्बन्ध सरकार की तीनों शाखाओं–विधानपालिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका की क्रियाओं से है।
   (b) लोक प्रशासन में सभी प्रकार के प्रबन्धकीय, तकनीकी तथा सार्वजनिक कार्य शामिल हैं।
   (c) लोक प्रशासन में संगठनीय ढांचे का प्रत्येक कर्मचारी सम्मिलित है। इससे अभिप्राय संगठन के मुख्य कार्यपालिक से लेकर चपरासी तक लोक प्रशासन का अंग है।
   (d) लोक प्रशासन 'कार्य को करने' से सम्बन्धित हैं।

इस प्रकार इस दृष्टिकोण के अनुसार लोक प्रशासन एक विस्तृत शब्द है जिसका सम्बन्ध शासन सम्बन्धी सभी क्रियाओं से है यह दृष्टिकोण अपने दामन में समग्रीकरण की भावना समेटे हुए है। इसमें विशेषीकरण के लिए कोई स्थान नहीं है। अधिकारियों व कर्मचारियों द्वारा किए गए कार्यों के बीच कोई विभाजक रेखा नहीं है। इसे स्वीकार करने से अस्पष्टता व अनिश्चितता दृष्टिगोचर होती है।

2. **प्रबन्धात्मक दृष्टिकोण**–लोक प्रशासन का प्रबन्धकीय दृष्टिकोण एक संकुचित दृष्टिकोण है। इस विचारधारा के समर्थक में साइमन, थामसन, स्मिथवर्ग तथा लूथर गुलिक शामिल हैं। इनके अनुसार लोक प्रशासन में केवल उन्हीं लोगों के कार्य शामिल हैं जो एकीकरण, नियन्त्रण तथा समन्वय जैसे यन्त्रों का प्रयोग करते हुए प्रबन्धकीय कार्यों को पूरा करते हैं। इसके अन्तर्गत सरकार की केवल कार्यपालिका शाखा की गतिविधियां शामिल हैं। लूथर गुलिक का कहना है कि प्रशासन का काम कार्य करवाना है; निर्धारित उद्देश्यों को पूरा करवाना अर्थात् इसके अनुसार जो व्यक्ति नियम–निर्माण प्रक्रिया तथा प्रबन्धकीय विभाग से जुड़े हों, उन्हें ही प्रबन्धकीय दृष्टिकोण के अन्तर्गत रखा गया है।

   इसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि लोक प्रशासन में केवल प्रबन्धकीय तथा तकनीकी कार्य ही शामिल हैं इसमें केवल संगठन के सर्वोच्च अधिकारी जिनका सम्बन्ध लोकनीति को लागू करना अथवा उसकी पूर्ति के लिए प्रयोग की जाने वाली क्रियाओं से है।

इस दृष्टिकोण की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

(i) लोक प्रशासन का सम्बन्ध सरकार की केवल कार्यपालिका शाखा की क्रियाओं से है।

(ii) लोक प्रशासन का सम्बन्ध केवल प्रबन्धकीय तथा तकनीकी कार्यों से है जो लोकनीति को लागू तथा इसकी पूर्ति के लिए अनिवार्य है।

(iii) लोक प्रशासन के संगठन के केवल उच्च अधिकारियों की गतिविधियाँ ही शामिल हैं।

(iv) लोक प्रशासन कार्यों को करवाने से सम्बन्धित है।

उपरोक्त दोनों विचारों के अध्ययन के पश्चात् लोक प्रशासन की प्रकृति के सम्बन्ध में स्पष्ट रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता है। इसलिए दोनों प्रकार के दृष्टिकोणों का अपना–अपना स्थान है। इसी आधार पर एक तीसरा दृष्टिकोण उभरा है और वह है आधुनिक दृष्टिकोण।

3. **आधुनिक दृष्टिकोण**–इस दृष्टिकोण के अनुसार, लोक प्रशासन की प्रकृति को बदलती हुई परिस्थितियों के संदर्भ में समझने पर बल दिया जाता है। इसका मतलब है कि लोक प्रशासन की प्रकृति में 'देश और काल के अनुसार परिवर्तन होते रहते हैं'; जैसे स्वतन्त्रता से पूर्व भारतीय प्रशासन तथा स्वतन्त्रता के बाद भारतीय प्रशासन की कार्य प्रणाली में काफी अन्तर है। इसी तरह विभिन्न देशों की प्रशासनिक व्यवस्था, नौकरशाही, कानून, कार्य करने के तरीके तथा सेवा शर्तों के अनुसार प्रशासन की प्रकृति में भिन्नता पाई जाती है इस दृष्टिकोण के प्रमुख समर्थक जॉन ए॰ पीटर, डिमॉक, ग्लैडन, कोइनिंग इत्यादि हैं। पीटर के शब्दों में, "अलग–अलग संदर्भों में प्रशासन को समाज के विकासशील होने की प्रक्रिया के सन्दर्भ में देखा जाना चाहिए।" ग्लैडन का भी मत है, "लोक प्रशासन को गत्यात्मक ढंग से शासन के बढते हुए कार्यों के सन्दर्भ में देखा जा सकता है।"

लोक प्रशासन का क्षेत्र

Scope of Public Administration

किसी भी विषय का व्यवस्थित एवं सुगम अध्ययन तभी सम्भव है जब उसका अध्ययन क्षेत्र निश्चित एवं परिभाषित कर दिया जाये। 'क्षेत्र' का अर्थ है विषय के अन्तर्गत किस विषय–वस्तु का कितना अध्ययन किया जाएगा। प्रशासन शास्त्र के अध्ययन का केन्द्र बिन्दु क्या है तथा उसके फैलाव की परिधि कहां तक जाती है, यह निर्धारित करना बहुत कठिन है। क्षेत्र का निर्धारण जितना स्पष्ट एवं ठोस होगा, अध्ययन उतना ही स्पष्ट एवं ठोस हो सकेगा।

पोस्डकोर्ब विचार (POSDCORB)–लोक प्रशासन के कार्यक्षेत्र के सम्बन्ध में लूथर गुलिक (Luther Gulick) ने जो मत प्रतिपादित किया है, उसे 'पोस्डकार्ब' कहा जाता है। इस शब्द की व्याख्या इस प्रकार है–

नियोजन (Planning)–नियोजन का अर्थ कार्य करने से पूर्व उसकी रूपरेखा तैयार करना है। नियोजन के द्वारा लक्ष्य की प्राप्ति के साधनों पर भी प्रकाश डाला जाता है साथ ही उन तरीकों को भी निश्चित किया जाता है जिसके द्वारा उन कार्यों को पूरा किया जाता है और इसलिए प्रत्येक कार्य को सम्पन्न करने से पहले उसकी रूपरेखा का निर्माण किया जाता है और यही सारा काम लोक प्रशासन का है।

संगठन (Organisation)–संगठन से अभिप्राय एक ऐसी व्यवस्था से है जिसके अन्तर्गत निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अधिकारी वर्ग के स्थायी ढांचे की स्थापना की जाती है। सरकार का अधिकतर कार्य विभाग प्रणाली के अनुसार किया जाता है। संगठन के द्वारा इन विभागों में समन्वय तथा क्रमबद्धता पर बल दिया जाता है।

कार्मिक वर्ग (Staffing)–स्टाफ अर्थात् सम्पूर्ण कर्मचारी वर्ग की नियुक्ति, प्रशिक्षण और उनके लिए कार्य करने की अनुकूल दिशाओं का निर्माण करना ही लोक प्रशासन का कार्य क्षेत्र है।

निर्देशन (Directing)–प्रभावशाली निर्देशन द्वारा ही कार्मिक अपने दायित्वों का निर्वाह करके लोक प्रशासन के लक्ष्यों को प्राप्त करते हैं। निर्देशन लिखित अथवा मौखिक हो सकते हैं। निर्देशन के द्वारा कर्मचारियों को आदेश तथा सूचनाएँ दी जाती हैं तथा नेतृत्व प्रदान किया जाता है।

समन्वय करना (Co-ordination)–कार्य के विभिन्न भागों का आपस में सम्बन्ध स्थापित करना ही लोक प्रशासन का मुख्य दायित्व है। लोक प्रशासन को तब तक सफलता नहीं मिल सकती जब तक वह विभिन्न कार्यों का आपस में समन्वय स्थापित नहीं करता।

रिपोर्ट करना (Reporting)–इससे अभिप्राय यह है कि प्रशासकीय कार्यों की प्रगति के सम्बन्ध में उन लोगों को सूचनाएँ प्रदान करना जिनके प्रति कार्यपालिका उत्तरदायी है। इस प्रकार कर्मचारियों तथा संस्थाओं को अभिलेखों, अनुसंधान, निरीक्षण, तथा परीक्षण आदि से परिचित करना है। लोक प्रशासन की प्रगति एवं कमियों की जानकारी इन सूचनाओं के माध्यम से ही प्राप्त की जाती है।

बजट तैयार करना (Budgeting)–किसी भी संस्था की आमदनी व खर्च का लेखा–जोखा तैयार करना। बजट तैयार करना होता है जो कि हर वर्ष उस कम्पनी के मुनाफे व घाटे को दर्शाता है और ज्यादा धन आबंटन का प्रावधान करता है और यह सारा कार्य लोक प्रशासन का क्षेत्र है।

पोस्डकोर्ब विचार की आलोचना
(Criticism of POSDCORB View)

पोस्डकोर्ब सिद्धान्त लोक प्रशासन से सम्बन्धित केवल विधियों का ज्ञान प्रदान करता है तथा विषय वस्तु के ज्ञान की अवहेलना करता है। लूथर गुलिक ने लोक प्रशासन के क्षेत्र में केवल उन साधारण बातों को सम्मिलित किया है जो सभी संगठनों में विद्यमान होती हैं। परन्तु उसने यह भुला दिया है कि उपरोक्त सभी कार्यों में सफलता केवल उसी समय प्राप्त हो सकती है जब उस विषय का ज्ञान प्राप्त हो जिसमें सम्बन्धित अभिकरण कार्य कर रहे हों। प्रशासन अभिकरण के उद्देश्य, स्वरूप तथा प्रकृति पर निर्भर करता है। अतः पोस्डकोर्ब विचार केवल उन क्रियाओं का उल्लेख करता है जो व्यवहारतः सभी प्रशासकीय संस्थाओं तथा स्थितियों में पाई जाती हैं जबकि इसके द्वारा लोक प्रशासन से सम्बन्धित एक आवश्यक तत्व विषय – वस्तु ज्ञान (Knowledge of Subject Matter) की अपेक्षा की है।

मानव – सम्बन्ध दृष्टिकोण के लेखकों का कहना है कि पोस्डकोर्ब दृष्टिकोण मानवीय तत्व की अपेक्षा करता है। हाथोर्न प्रयोग (Hawthorne Experiments) के बाद लोक–प्रशासन के क्षेत्र में यह सिद्धान्त स्वीकृत होता जा रहा है कि प्रशासन एक मानवीय कला है, एक सामाजिक विज्ञान है, जिसे केवल 'नट' (Nut) और 'बोल्ट' (Bolt) का रूप नहीं दिया जा सकता। वस्तुतः पोस्डकोर्ब की क्रियाएँ प्रशासन नहीं बल्कि औजार मात्र हैं।

हार्वे वाकर ने लोक प्रशासन के क्षेत्र को दो भागों में बाँटा है–

(a) प्रशासकीय सिद्धान्त (Administrative Theory)

(b) व्यवहारिक प्रशासन (Applied Administration)

(a) प्रशासकीय सिद्धान्त–इस सिद्धान्त के अन्तर्गत केन्द्रीय, प्रान्तीय, स्थानीय सत्ताओं का आकार, संगठन, कार्य तथा प्रक्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। इसमें प्रशासन पर संसदीय तथा न्यायिक नियन्त्रण, प्रशासकीय ट्रीब्यूनल, नियोजन, खोज, प्रोग्राम, लोक गतिविधियाँ, कर्मचारियों की भर्ती, सूचना, लोक सम्पर्क तथा लोगों के आपसी सम्बन्ध शामिल हैं।

(b) व्यवहारिक प्रशासन–जनता की प्रत्येक दिन की समस्याओं और लोक प्रशासन के बढ़ते हुए क्षेत्र के कारण यह कहना अति कठिन है कि लोक प्रशासन के व्यवहार में क्या–क्या शामिल है और होना चाहिए। इसी संदर्भ में वाकर ने निम्नलिखित दस मुख्य कार्यों को अपने विचार का आधार बनाया है।

1. **राजनीतिक (Political)**–इसमें कार्यपालिका–विधानपालिका के सम्बन्ध, मन्त्रीमण्डल के सचिवालय से सम्बन्ध, मन्त्री एवं प्रशासकीय अधिकारी के सम्बन्धों तथा मन्त्रीमण्डल के राजकीय प्रशासनिक कार्य के सम्बन्धों का अध्ययन शामिल है।
2. **वैधानिक (Legislative)**–इसमें कानून तथा विधानमण्डल में पेश करने के लिए अधिकारियों द्वारा पहले से किए गए कार्य सम्मिलित हैं।
3. **वित्तीय (Financial)**–इसमें बजट बनाने से लेकर इसे पास करने तथा लागू करने तक के सभी वित्तीय प्रबन्ध, आमदनी व खर्च का हिसाब, कर लगाना व हटाना, लेखा पड़ताल तथा खजाने का प्रबन्ध शामिल है।
4. **रक्षात्मक (Defensive)**–इसमें आम जनता की सुरक्षा से लेकर, देश के आन्तरिक व बाह्य रक्षा से सम्बन्धित कार्यों के लिए सैनिक प्रशासनिक कार्यों का अध्ययन शामिल है।
5. **शिक्षात्मक (Educational)**–इसमें शैक्षणिक प्रशासन के सभी पहलूओं का अध्ययन किया जाता है।
6. **आर्थिक (Economic)**–इसमें आर्थिक क्षेत्र की सभी गतिविधियाँ शामिल हैं जैसे उद्योग, कृषि, विदेशी व्यापार, वाणिज्य तथा सार्वजनिक उद्यम।

7. **विदेशी प्रबन्ध (Foreign Administration)**–विदेश मन्त्रालय में प्रशासनिक स्टाफ तथा विदेश प्रशासन में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग, सुरक्षा तथा समृद्धि आदि हैं।

8. **सामाजिक प्रशासन (Social Administration)**–इसमें सामाजिक सुरक्षा, रोजगार, भोजन, मकान, नौकरी और सामाजिक बुराईयों तथा सामाजिक क्षेत्र का अध्ययन शामिल है।

9. **साम्राज्य प्रशासन (Imperial Administration)**–इसमें साम्राज्य को सुव्यवस्थित ढंग से चलाने, जनता की सेवा करने, एक राष्ट्र के दूसरे राष्ट्र पर साम्राज्य अधिकार के ढंग तथा समस्याएँ आदि शामिल हैं।

10. **स्थानीय शासन (Local Administration)**–इसमें स्थानीय स्वशासन से सम्बन्धित सभी संस्थाओं के कार्यों का अध्ययन शामिल है जैसे पंचायती राज संस्थाओं तथा शहरी नगर निगम, नगर परिषद तथा नगर पालिका का अध्ययन आदि।

लोक प्रशासन के क्षेत्र के सम्बन्ध में भिन्न–भिन्न लेखकों ने अपने विचार प्रस्तुत किए हैं। फिर भी मुख्य रूप में लोक प्रशासन के क्षेत्र के अन्तर्गत निम्नलिखित बातें अवश्य सम्मिलित की जाती हैं–

(1) **कार्यरत कार्यपालिका का अध्ययन**–लोक प्रशासन के द्वारा कार्यपालिका का अध्ययन किया जाता है। इसका अर्थ असैनिक कार्यपालिका से है। लोक प्रशासन का सम्बन्ध कार्यपालिका की उन सभी असैनिक क्रियाओं से रहता है जो निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए की जाती हैं।

(2) **सामान्य प्रशासन**–लोक प्रशासन के अर्न्तगत सामान्य प्रशासन के सभी कार्य सम्मिलित हैं, जैसे प्रशासनिक नीतियाँ, निर्देशन, लक्ष्य निर्धारण, नियन्त्रण तथा निरीक्षण करने का कार्य किसे सम्पन्न करना है।

(3) **सेवीवर्ग सम्बन्धी समस्याएँ**–लोक प्रशासन के अन्तर्गत लोक कर्मचारियों की भर्ती, उनके शिक्षण–प्रशिक्षण, उनकी पदोन्नति और सेवा शर्तों, अनुशासन एवं मनोबल, सेवा निवृति, कर्मचारी संघ आदि समस्याओं का अध्ययन किया जाता है।

(4) **संगठन**–लोक प्रशासन का सम्बन्ध संगठन सम्बन्धी विभिन्न समस्याओं के अध्ययन करने से है। विभिन्न प्रशासनिक क्रियाओं को समुचित रूप से सम्पन्न करने के लिए सेवाएँ किस प्रकार से संगठित की जायें, यही लोक प्रशासन के लिए हल करने योग्य प्रश्न है।

(5) **सामग्री**–प्रदाय की समस्याएँ–अपना कर्त्तव्य पालन करने के लिए कर्मिकों को प्रदान की जाने वाली सामग्री, पूर्ति, यन्त्र तथा साज–सामान देना ही लोक प्रशासन का कार्य है। इसके क्षेत्र में विविध सामग्री की खरीद, उसके संग्रह, उनके रखरखाव, उसकी सप्लाई आदि विभिन्न समस्याएँ सम्मिलित हैं।

(6) **प्रशासकीय उत्तरदायित्व**– लोक प्रशासन का सम्बन्ध प्रशासकीय उत्तरदायितव से जुड़ा हुआ है, जिसके अभाव में लोक प्रशासन की क्रियाओं का कोई महत्व नहीं रह जाता है। इसके अन्तर्गत प्रशासकों के विभिन्न प्रकार के उत्तरदायित्वों का अध्ययन किया जाता है। यह देखा जाता है कि लोक प्रशासन जनता के प्रति, व्यवस्थापिका के प्रति और न्यायपालिका के प्रति किस प्रकार उत्तरदायी रहता है।

(7) **वित्त सम्बन्धी समस्याएँ**–लोक नीतियों को लागु करने तथा प्रशासन चलाने के लिए आवश्यक वित्त का प्रबन्ध करना ही लोक प्रशासन का कार्य है। इसके अन्तर्गत बजट, करारोपण और वित्त से सम्बन्धित अन्य प्रश्नो का अध्ययन किया जाता है।

निष्कर्ष (Conclusion)–विभिन्न लेखकों तथा विचारकों के लोक प्रशासन के क्षेत्र के बारे में विचार जानने के बाद यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि लोक प्रशासन का सम्बन्ध सरकार की उन सभी गतिविधियों से है जिनके द्वारा आम जनता की इच्छाओं को पूरा करना, उनकी समस्याओं का समाधान करना, उनके लिए रोटी, कपड़ा और मकान का प्रबन्ध करना और उनकी इच्छाओं की पूर्ति आदि। एक कल्याणकारी राज्य में आम आदमी की मूलभूत जरूरतों को पूरा करने के लिए हर सम्भव सहायता करना ही लोक प्रशासन का कार्य है। लोक प्रशासन का क्षेत्र लोगों के 'एक अच्छी तथा सुविधाजनक जिन्दगी' से सम्बन्धित दृष्टिकोण पर निर्भर करता है। यह लोगों की आवश्यकताओं, कठिनाइयों, व्यवहार तथा दृष्टिकोणों में बदलाव के साथ बदलता रहता है।

आधुनिक राज्य में लोक प्रशासन का महत्व

Importance of Public Administration in Modern State

लोक प्रशासन आधुनिक शासन व्यवस्था का केन्द्र बिन्दु है। जैसे–जैसे हम 'राजतन्त्र' से 'लोकतन्त्र' और 'पुलिस राज्य' से 'कल्याणकारी राज्य' की दिशा में बढ़ रहे हैं प्रशासन का महत्व भी बढ़ रहा है। धीरे–धीरे न केवल प्रशासन का दायित्व बढ़ रहा है बल्कि उनकी जटिलताएँ भी बढ़ रही हैं। समाज का अधिक से अधिक कल्याण लोक प्रशासन की कुशलता पर निर्भर करता है। यदि लोक प्रशासन असफल हो जाए तो समाज रूपी ढाँचा मिट्टी के ढेर की भाँति ध्वस्त हो जाएगा। डेनहम (Danham) के अनुसार, "यदि हमारी सभ्यता असफल हुई तो उसके लिए प्रशासन की असफलता प्रमुख रूप से उत्तरदायी होगी।" लोक प्रशासन का महत्व निम्नलिखित है।

1. **कार्यों की दृष्टि से**–लोक प्रशासन का कार्यक्षेत्र बहुत व्यापक है। इसलिए लोक प्रशासन को लोक कल्याणकारी लोकतांत्रिक समाजवादी लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित कार्य करने होते हैं।

   (क) ***राजनैतिक कार्य (Political Functions)***–कानून बनाने, बजट बनाने, योजना बनाने, नीति का निर्धारण तथा इन सभी कार्यों के लिए आंकड़े इकट्ठा करने के काम में लोक प्रशासन राजनैतिक कार्यपालिका की सक्रिय सहायता करता है।

   (ख) ***स्थायित्व के कार्य***–लोक प्रशासन राज्य की स्थापना के समय से ही प्रतिरक्षा, कानून व व्यवस्था तथा न्याय के कार्य सम्पन्न करता रहा है। राज्य में स्थायित्व इसी की कुशलता पर निर्भर करता है, जैसे झारखण्ड, उत्तरांचल का छत्तीसगढ़ राज्यों के गठन में वहाँ की न्यायपालिका, कार्यपालिका तथा विधानपालिका के सुनियोजित ढंग से व्यवस्था करने में लोक प्रशासन की अहम भूमिका रही है।

   (ग) ***आर्थिक कार्य (Economical Functions)***–लोक प्रशासन की जिम्मेदारी आर्थिक विकास तथा व्यवस्था की है। विकासशील समाज में यह कार्य महत्वपूर्ण हो गया है। इस संदर्भ में प्रमुख क्रियाएँ हैं–(i) आर्थिक नियोजन, (ii) उद्योग चलाना, व्यापार करना, खनन, ईंधन तथा यातायात सम्बन्धी कार्य करना, (iii) आर्थिक नियमन जैसे कानून बनाना, मूल्य नियन्त्रण, (iv) वितरण के कार्य जैसे, राशन वितरण, सस्ते अनाज व घरेलू वस्तुओं का वितरण आदि।

   (घ) ***सामाजिक न्याय (Social Justice)***–प्रत्येक समाज में कुछ वर्ग या समुदाय सामाजिक-आर्थिक दृष्टि से पिछड़े जाते हैं। उनके उत्थान के कार्य करने की जिम्मेदारी लोक प्रशासन की है इसलिए इसी समस्या के समाधान के लिए पिछड़ा वर्ग आयोग, अनुसूचित जाति व जन जाति आयोग, महिला कल्याण व बाल–कल्याण आयोगों की स्थापना हुई और ये सभी आयोग लोक प्रशासन द्वारा चलाए जाते हैं।

(2) **लोक प्रशासन की व्यक्तिगत जीवन में भूमिका (Role of Public Administration in Individual Life)**– लोक प्रशासन व्यक्ति के जीवन में सुबह जागने से पहले और सोने के बाद भी सेवा करता रहता है, जैसे जब हम रात को सो जाते हैं तो बिजली प्रशासन हमें सोते हुए भी बिजली का प्रबन्ध कर रहा होता है और सुबह उठते ही हम पानी की जरूरत पड़ती है तो जल प्रशासन हमें पानी मुहया करवाता है। जिस प्रकार से बालक के जन्म से पहले माँ के गर्भ में इसकी देखभाल शुरू हो जाती है, राज्य द्वारा संचालित विद्यालय में शिक्षा ग्रहण करना, शिक्षा समाप्ति पर रोजगार कार्यालय में नाम दर्ज करवाना तथा स्थानीय स्तर पर शिक्षा, स्वास्थ्य, बिजली, पानी एवं सफाई का नगरपालिका या पंचायत द्वारा संचालन आदि ऐसी गतिविधियां हैं जिनमें लोक प्रशासन प्रत्यक्ष रूप से अपनी भूमिका निभाता है।

(3) **लोकनीति को व्यवहारिक जामा पहनाने वाले यन्त्र के रूप में (Public Administration as an Instrument of Public Policy)**–लोकनीति को लागू करने का कार्य लोक प्रशासन का है। लोक प्रशासन, हमारी बदलती हुई आवश्यकताओं व परिस्थितियों को ध्यान में रखकर नीतियों को लागू करता है। जिस प्रकार से पंचवर्षीय योजनाओं के द्वारा हमारी बढ़ती हुई समस्याओं के समाधान जैसे जनसंख्या समस्या, बेरोजगारी की समस्या, शिक्षा सम्बन्धी, स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्या के समाधान के लिए राज्य नीतियाँ बनाती है और उन नीतियों के निर्धारण तथा क्रियान्वन में लोक प्रशासन प्रमुख भूमिका निभाता है।

(4) **सामाजिक परिवर्तन की प्रेरक शक्ति के रूप में (Inspiring force of Social Change)**–लोक प्रशासन सामाजिक परिवर्तन का एक निश्चित माध्यम है और प्रशासक इसमें एक अभिकर्ता के रूप में कार्य करते हैं। सामाजिक–आर्थिक परिवर्तन की सभी योजनाओं को प्रशासनिक मशीनरी द्वारा सफलतापूर्वक क्रियान्वित किया जाता है।

(5) **सभ्यता एवं संस्कृति बनाए रखना (Preserve Civilization & Culture)**–किसी भी सभ्यता का विकास या विनाश लोक प्रशासन की सफलता व असफलता पर निर्भर करता है। वाल्डो (Waldo) के अनुसार, "प्रशासन को एक ऐसे महत्वपूर्ण अविष्कार अथवा उपाय के रूप में निर्धारित किया जा सकता है जिसके माध्यम से विषम समाजों में सभ्य मानव अपनी संस्कृति को नियन्त्रित करने का प्रयास करता है। इसलिए समाज के विकास के साथ–साथ सभ्यता व संस्कृति में आए परिवर्तन को बनाए रखने का कार्य लोक प्रशासन द्वारा ही सम्पन्न करवाया जाता है।

(6) **प्रजातान्त्रिक मूल्यों को स्थायित्व प्रदान करना (Stabilizing Democratic Values)**–प्रजातान्त्रिक मूल्यों, जैसे, कानून के समक्ष समानता, निष्पक्ष प्रेस, निष्पक्ष चुनाव, सम्पत्ति का बराबर बँटवारा आदि को विभिन्न परिस्थितियों के दौरान केवल लोक प्रशासन के द्वारा ही जीवित रखा जा सकता है। सरकारें आती हैं और चली जाती हैं, परन्तु लोक प्रशासन सदैव एक सजग प्रहरी की तरह प्रजातन्त्र की रक्षा करता है।

(7) **जन-कल्याण (Public Welfare)**–लोक प्रशासन का मुख्य कार्य आज के दिन जन–कल्याण है और यही इसका उद्देश्य है। एल॰ डी॰ व्हाइट (L.D. White) के अनुसार, "लोक प्रशासन से राज्य के सभी लोगों के कल्याण की माँग की जाती है। लोकहित, जोकि राज्य का उद्देश्य है, की प्राप्ति एक अच्छे संगठित लोक प्रशासन पर ही निर्भर करती है।" विकासशील देशों में सभी लोक–कल्याण सेवाएँ एवं सुविधाएँ प्रशासकों द्वारा लागू की जाती है।

(8) **लोक प्रशासन की अध्ययन की दृष्टि से उपयोगिता**–जैसा की ऊपर बताया गया है, लोक प्रशासन का वर्तमान समाज में बहुत अधिक महत्व है। इसलिए स्वतः स्पष्ट है कि प्रशासन शास्त्र का महत्व भी उसी दर से बढ़ रहा है। इस विषय के अध्ययन की उपयोगिता निम्नलिखित पहलुओं से देखी जा सकती है:

1. **ज्ञान के संचय की दृष्टि से**–अध्ययन के माध्यम से प्रत्येक विषय में ज्ञान की खोज की जाती है। मानव संगठन में लोक प्रशासन जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्र के ज्ञान का महत्व वर्तमान तथा भविष्य के लिए आसानी से समझा जा सकता है। प्रशासकीय कुशलता को हम इसी के माध्यम से बढ़ा सकते हैं।

2. **जन सहयोग**–लोकतांत्रिक शासन की सफलता का एक महत्वपूर्ण तत्व जन सहयोग होता है। जब तक जनता की प्रशासन के बारे में एक स्पष्ट समझ नहीं होगी वह प्रशासन में सहयोग नहीं कर सकती। प्रशासन शास्त्र का विद्यार्थी एक सक्षम नागरिक के रूप में विकसित हो सकेगा जो अपनी जिम्मेदारी को समझते हुए प्रशासन पर नियन्त्रण एवं सहयोग के लिए आगे बढ़ेगा।

3. **वैयक्तिक गुणों का विकास**–प्रशासन शास्त्र के अध्ययन के माध्यम से व्यक्ति में विभिन्न गुणों को विकसित किया जा सकता है। यह आवश्यक नहीं कि इस विषय का विद्यार्थी लोक प्रशासन में कार्य करे। किन्तु यदि वह प्रशासन में जायेगा तो अधिक सफल होगा। साथ ही अन्य क्षेत्रों में भी वह जहाँ प्रशासन के सम्पर्क में आयेगा अधिक सफल होगा जैसे राजनेता, निगम का सदस्य, निजी उद्योग व्यवस्था आदि।

4. **समस्याओं का समाधान**–लोक प्रशासन के समक्ष जो समस्या आती हैं प्रशासन शास्त्र के अध्ययन से उनके समाधान की संभावना बढ़ जाती है। यदि इस विषय का अध्ययन नहीं किया जाता है तो प्रत्येक समस्या के लिए अलग से समिति या आयोग बनाया जाएगा है। इससे उसका अध्ययन बहुत ही संकुचित परिप्रेक्ष में होगा तथा ऐसी समिति के सदस्य अनुभवी प्रशासक तो हो सकते हैं किन्तु प्रशासन का ज्ञान व अध्ययन तकनीक उनमें नहीं होगी। अतः समस्याओं का अध्ययन प्रशासन शास्त्री अधिक उपयोगी ढंग से कर सकते हैं।

5. **प्रशासकों के लिए उपयोगी**–लोक प्रशासक प्रशासन शास्त्र का ज्ञान प्रशिक्षण के माध्यम से प्राप्त कर सकते हैं। यह विषय न केवल अपने देश के सामान्य प्रशासन बल्कि अन्य देशों की प्रशासकीय उपलब्धियों का ज्ञान भी करा सकता है। यह विषय प्रशासन की समस्याएँ, नई तकनीक, जन आकांक्षाएँ आदि का ज्ञान भी प्रशासक को करा देता है।

6. **नीति विज्ञान**—नये लोक प्रशासन के नाम से स॰ रा॰ अमरीका में जो आंदोलन चला है उसके यह मान्यता है कि प्रशासन शास्त्र को एक नीति विज्ञान होना चाहिए। इसके माध्यम से यह देखा जा सकता है कि राजनीतिज्ञ प्रशासकों तथा नागरिकों का ऐसे ज्ञान से एक दूसरे की समस्याएं, क्षमताएँ, अधिकार व कर्त्तव्य जानने और उनकी सीमा में व्यवहार करने के योग्य हो सकते हैं। इसी से प्रशासन को लोकतांत्रिक बनाने में सहायता मिल सकती है।

महत्वपूर्ण प्रश्न

1. लोक प्रशासन की परिभाषा दीजिए तथा इसकी प्रकृति की चर्चा कीजिए।
2. लोक प्रशासन की परिभाषा दीजिए तथा इसके क्षेत्र को स्पष्ट कीजिए।
3. लोक प्रशासन के महत्व का वर्णन कीजिए।

अध्याय 2

लोक तथा निजी प्रशासन एवं नवीन लोक प्रशासन

Public and Private Administration and New Public Administration

कल्याणकारी राज्य के अन्तर्गत मानव जीवन की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृति तथा नैतिक पहलुओं से सम्बन्धित सभी कठिनाइयों का समाधान करने का उत्तरदायित्व प्रशासन पर है। आज के युग में मनुष्य जिन परिस्थितियों में रहता है वह अत्याधिक तजी के साथ बदलती रहती है। अपने व्यक्तित्व के विकास के लिए उसे एक ऐसे वातावरण की आवश्यकता है जिसमें वह शान्तिपूर्वक रहकर अपनी इच्छाओं की पूर्ति कर सके। मनुष्य की इन इच्छाओं की पूर्ति के लिए विभिन्न संगठनों की स्थापना की गई है जिसमें दोनों प्रकार के राजकीय तथा व्यक्तिगत संस्थाएं शामिल हैं।

प्रशासन को इसी आधार पर दो भागों में बांटा गया है–लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन। जब कार्यों का प्रबन्ध सरकार की किसी भी शाखा केन्द्रीय, प्रान्तीय अथवा स्थानीय स्तर पर किया जाए तो उसे लोक प्रशासन कहते हैं। इसके आधार पर डाक एवं तार, रेलवे, बिजली, सेना आदि लोक प्रशासन के उदाहरण हैं। इसके विपरीत यदि कोई कम्पनी अथवा क्लब किसी कार्य का प्रबन्ध करती है तो उसे निजी प्रशासन कहा जाता है, जैसे–टाटा, बिरला, मोदी आदि। लोक प्रशासन के अन्तर्गत वित्तीय तथा प्रबन्धकीय नियन्त्रण सरकार के हाथों में रहता है, परन्तु निजी प्रशासन में यह नियन्त्रण निजी हाथों में होता है।

उरविक, हेनरी फेयॉल तथा मेरी पारकर फालेट आदि लेखकों का विचार है कि लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन में कोई अन्तर नहीं है तथा दोनों एक समान है। हेनरी फेयॉल के अनुसार, "अब हमारे सामने कोई प्रशासकीय विज्ञान नहीं है बल्कि एक ही है जिसे लोक तथा निजी दोनों ही प्रशासनों के लिए समान रूप से प्रयोग किया जा सकता है"। उरविक तथा मेरी पारकर ने भी फेयॉल के विचारों की पुष्टि की है। इन विचारकों के विचार इस बात पर निर्भर करते हैं कि लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन में कई प्रकार की समानताएँ हैं। इनमें से कुछ समानताओं का उल्लेख निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है।

1. सहकारी प्रयास (Element of Co-operation)

प्रशासन एक सहकारी सामूहिक प्रयास है चाहे लोक प्रशासन हो अथवा निजी प्रशासन। प्रत्येक संगठन में मानवीय तथा भौतिक तत्वों का प्रभाविक प्रयोग ही कार्यों की सफलता को निश्चित करता है। दोनों प्रकार के संगठनों के उद्देश्यों में भिन्नता हो सकती है, परन्तु सहकारिता के तत्व के आधार पर दोनों में समानता है।

2. वित्त प्रशासन (Financial Administration)

प्रशासन का स्वरूप जैसा भी हो उसे अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए वित्त की आवश्यकता होती है। दोनों प्रकार के प्रशासन धन के अभाव के कारण अपने कार्यों को प्रभावकारी ढंग से करने में असमर्थ तथा असहाय होते हैं। यह संभव है कि धन के प्रयोग तथा नियन्त्रण के सम्बन्ध में दोनों में भिन्नता हो, परन्तु जहाँ तक धन की आवश्यकता का प्रश्न है, यह दोनों प्रकार के प्रशासन के लिए अत्याधिक आवश्यक है।

3. प्रबन्धकीय तकनीक (Managerial Techniques)

लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन दोनों में ही समान–प्रबन्धकीय तकनीकों का प्रयोग करके निश्चित लक्ष्यों को प्राप्त किया जाता है। उदाहरणतः हिसाब–किताब रखना, दफ्तर प्रणाली, नियन्त्रण, समन्वय पर्यवेक्षण, संचार, नेतृत्व आदि। इनके अतिरिक्त संगठन में कार्यकुशलता प्राप्त करने के लिए नवीन वैज्ञानिक तकनीकों का प्रयोग करके नये–नये प्रयोग किए जाते हैं।

4. मानव सम्बन्ध (Human Relations Approach)

किसी भी संगठन की स्थापना का उद्देश्य मनुष्य के उद्देश्यों की पूर्ति करने के लिए किया जाता है। इस प्रकार लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन दोनों में ही मनुष्य को आधार मानकर कार्यों का प्रयोजन किया जाता है।

5. विकासशीलता (Developmental Approach)

लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन दोनों ही विकास सम्बन्धी कार्यों से सम्बन्ध रखते हैं। इनकी प्रत्येक क्रिया का लक्ष्य निश्चित दिशा में होता है जिससे मनुष्य जीवन का सर्वव्यापी विकास सुनिश्चित किया जाता है। प्रत्येक संगठन जैसे-जैसे पुराना होता जाता है, वैसे ही उसकी कार्यकुशलता, कार्यप्रणाली तथा आन्तरिक प्रशासन में सुधार होता जाता है। इस प्रकार लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन दोनों की क्रियाएं विकास सम्बन्धी कार्यों के साथ जुड़ी हुई हैं जिनसे सदा ही मनुष्यों के जीवन का सुख शान्ति जुड़े रहते हैं।

6. वैज्ञानिक अनुसंधान (Scientific Inventions)

आज का युग वैज्ञानिक सिद्धान्तों तथा मान्यताओं का युग है। प्रत्येक कार्य को सरल तथा प्रभाविक ढंग से करने के लिये वैज्ञानिक आविष्कारों तथा खोजों में व्यस्त हैं। नई-नई खोजें, नये सिद्धान्त तथा नई पद्धतियों की तरफ अत्यधिक प्रचलन किये जा रहे हैं। इस सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं कि दोनों प्रकार के प्रशासन समान रूप से इस दिशा में कार्य करते हुए और विकास कर रहे हैं।

7. क्रमिक प्रक्रिया (Personnel Practices)

प्रत्येक संगठन की सफलता का आधार उसमें काम करने वाले कर्मचारियों की कार्यकुशलता होती है। कर्मचारी प्रशासन से सम्बन्धित प्रथाएं जैसे कि भर्ती, पदोन्नति, प्रशिक्षण, आचार संहिता तथा अनुशासन दोनों प्रकार के प्रशासनों में समान रूप से विद्यमान हैं। इसके अतिरिक्त वर्तमान समय में कर्मचारी संघ (Employees Unions) अत्याधिक सर्वप्रिय हो रहे हैं। यह संघ लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन दोनों में समान रूप से गति पकड़ रहा है जिसने संगठन के संचालकों के [illegible] प्रभाव डाला है।

लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन में ऊपर लिखित समानताओं का अध्ययन करने के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि दोनों वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुए अपने आपको बदलने की कोशिश कर रहे हैं। मिस फालेट के अनुसार, "व्यापार तथा उद्योग के प्रबंध ने हमारे जीवन की बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार अपने आप को ढालने के प्रयत्नों में शानदार उन्नति की है तथा लोक प्रशासन प्रबन्ध की नई तकनीकों के साथ अपने अनुभव के परिणामों की अवहेलना नहीं कर सकता।"

लोक प्रशासन ने निजी प्रशासन के ज्ञान एवं अनुभव से बहुत कुछ प्राप्त किया है। लोक प्रशासन ने भी व्यापार ने प्रवेश लिया है। कर्मचारियों के प्रशिक्षण से सम्बन्धित कई संस्थाएं कार्य कर रही हैं जो सार्वजनिक एवं निजी संस्थाओं से सम्बन्धित कर्मचारियों को प्रशिक्षण देती है। यह भी प्रायः देखा गया है कि सरकारी क्षेत्र से सेवामुक्त हुए कर्मचारियों को निजी क्षेत्र में रोजगार प्रदान किया जाता है।

लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन में अन्तर

Difference between Public and Private Administration

लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन में ऊपर लिखित समानताएं होते हुए भी इनमें कई क्षेत्रों में अन्तर पाया जाता है। साइमन के मतानुसार "लोक प्रशासन का संगठन नौकरशाही आधार पर होता है परन्तु निजी प्रशासन की रचना का आधार व्यापारिक होता है। लोक प्रशासन का सम्बन्ध राजनीति से होता है जबकि निजी प्रशासन इससे बिल्कुल अलग। लोक प्रशासन की मुख्य विशेषता लालफीताशाही होती है, किन्तु निजी प्रशासन में ऐसी बात नहीं पाई जाती।"

लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन के मध्य अन्तर का अध्ययन निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है

1. राजनीतिक निर्देशन (Political Direction)

लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन में प्रथम महत्वपूर्ण अन्तर इस रूप में मिलता है। लोक प्रशासन को राजनीति निर्देशन के अधीन

रहकर कार्य करना पड़ता है परन्तु निजी प्रशासन पर इसका प्रभाव नहीं होता। लोक प्रशासन में प्रशासन को राजनीतिक कार्यपालिका के आदेशानुसार कार्य करना होता है। संसद में लिए गए निर्णय लोक प्रशासन के कार्यों को दिशा प्रदान करते हैं। इसके विपरीत निजी प्रशासन में अपने उद्देश्यों को स्वयं निर्धारित किया जाता है जिसमें राजनीतिक हस्तक्षेप सम्भव नहीं है। निजी प्रशासन में उसके अपने व्यापारिक हित शामिल हैं तथा परिस्थितियों के अनुसार अपनी व्यापारिक नीतियों का निर्धारण किया जाता है। उन पर बदलती हुई राजनीतिक परिस्थितियों का अधिक प्रभाव नहीं होता।

2. लाभ की मनोवृत्ति (Profit Motive)

लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन में दूसरा मुख्य अन्तर यह है कि लोक प्रशासन का मुख्य उद्देश्य सार्वजनिक हित का ध्यान रखते हुए, लोगों की सेवा करना है तथा निजी प्रशासन का उद्देश्य अधिक से अधिक लाभ कमाना है। लोक प्रशासन के सभी प्रयास लोगों के जीवन को सुखी तथा समृद्धिशाली बनाने से सम्बन्धित होते हैं जबकि निजी प्रशासन अपने लाभ में वृद्धि करने के लिए प्रयास करता है। लोक प्रशासन कई प्रकार के ऐसे कार्य अथवा सेवाओं का प्रबंध करता है जिससे उसे हानि होने की सम्भावना हो, जैसे सरकारी स्कूल तथा अस्पतालों की स्थापना और प्रबन्ध। इसके विपरीत निजी प्रशासन में अगर संचालक को यह आभास हो जाए कि किसी विशेष कार्य को करने में लाभ नहीं होगा तो वह उसे छोड़कर कोई अन्य कार्य में प्रवेश कर जायेगा। उसे इस बात की चिन्ता नहीं होती कि लोगों को किस सेवा अथवा वस्तु की आवश्यकता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि निजी प्रशासन की मनोवृत्ति अत्याधिक लाभ कमाना है जिसमें लोगों की आवश्यकताओं तथा इच्छाओं का कोई स्थान नहीं तथा लोक प्रशासन का उद्देश्य लोगों की आकांक्षाओं को ध्यान में रखते हुए उनकी सेवा करना है।

3. व्यवहार (Treatment)

व्यवहार के आधार पर भी लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन में भिन्नता पाई जाती है। लोक प्रशासन के अन्तर्गत एक जैसे व्यवहार की आशा की जाती है। लोक प्रशासन द्वारा बिना किसी प्रकार का पक्षपात किये समाज के सभी सदस्यों को सेवाएं प्रदान करने का प्रयत्न किया जाता है। जिससे प्रत्येक सरकारी अधिकारी निर्धारित सरकारी नीति के अनुसार सभी के साथ समान व्यवहार करता है। निजी प्रशासन में प्रशासक अपनी इच्छानुसार परिस्थितियों को देखते हुए व्यवहार करता है। निजी प्रशासन में भिन्न–भिन्न व्यक्तियों को भिन्न–भिन्न दामों पर वस्तुएं प्रदान की जा सकती है परन्तु लोक प्रशासन में ऐसा नहीं है। इस प्रकार लोक प्रशासन सभी व्यक्तियों को एक ही नजर से देखता है तथा सबके लिए समान नियम है; जबकि निजी प्रशासन में ग्राहक के अनुसार नियम बदलते रहते हैं।

4. कार्य का स्वरूप (Functions)

लोक प्रशासन निजी प्रशासन की अपेक्षा लोगों की व्यापक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। इसलिए लोक प्रशासन की क्रियाओं का क्षेत्र निजी प्रशासन से बड़ा होता है। लोक प्रशासन के अन्तर्गत अधिक महत्त्वपूर्ण सेवाओं का प्रबन्ध किया जाता है, उदाहरणतया रेल व्यवस्था, डाक व तार, अस्पताल, कानून एवं व्यवस्था आदि। निजी प्रशासन लोगों की आर्थिक आवश्यकताओं के साथ सम्बन्धित होता है, जैसे वस्त्र, चीनी तथा खाने–पीने की वस्तुओं का वितरण। इसके अतिरिक्त लोक प्रशासन कई क्षेत्रों में अपना एकाधिकार (Monopoly) भी रखता है जो सेवाएं किसी निजी संस्था द्वारा प्रदान नहीं की जातीं, जैसे रेल, डाक व तार सेवा आदि। इस प्रकार लोक प्रशासन लोगों के अधिक नजदीक रहकर लोगों को सेवाएं प्रदान करता है।

5. उत्तरदायित्व (Responsibility)

लोक प्रशासन सेवाएं प्रदान करने के सम्बन्ध में लोगों के प्रति उत्तरदायी होता है। उसे अपनी सभी क्रियाएँ जनता के सम्मुख सही सिद्ध करनी होती हैं। इसके अन्तर्गत, सरकारी अधिकारियों के कार्यों की जनता द्वारा आलोचना, तथा जांच पड़ताल की जाती है। लोक प्रशासन अपने प्रत्येक कार्य के लिए जनता के प्रति उत्तरदायी होता है। निजी प्रशासन में जनता के प्रतिरोध; आलोचना तथा वाद–विवाद का कोई महत्त्व नहीं होता। वह अपनी इच्छानुसार अपनी कार्यप्रणाली का चयन करता है। यह जरूरी नहीं कि निजी प्रशासन की क्रियाएं लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति करें तथा उसे अपनी क्रियाएं जनता के समक्ष सही सिद्ध करनी पड़ें। इस प्रकार लोक प्रशासन निजी प्रशासन के विपरीत जनता के नियन्त्रण में कार्य करता है।

6. कार्यकुशलता (Efficiency)

लोक प्रशासन में लाल फीताशाही, भ्रष्टाचार, अक्षमता तथा अपव्यय जैसे कई प्रकार के दोष पाए जाते हैं जो इसे निजी प्रशासन की अपेक्षा कम कुशल बनाते हैं। लोक प्रशासन में कानून, तथा औपचारिकताओं को अधिक महत्त्व दिया जाता है जो कई प्रकार की त्रुटियां पैदा करते हैं। निजी प्रशासन में लोक प्रशासन से अधिक दक्षता होती है क्योंकि इसमें कर्मचारियों को प्रेरित करने से सम्बन्धित कई प्रकार की तकनीकों का प्रयोग करके अधिक लाभ कमाने का प्रयत्न किया जाता है।

इसमें कोई शक नहीं है कि निजी प्रशासन लोक प्रशासन की अपेक्षा अधिक कुशल तथा दक्ष होता है परन्तु यदि लोक प्रशासन में भी कर्मचारियों को प्रोत्साहन , कुशल नेतृत्व तथा ईमानदारी की तरफ ध्यान दिया जाए तो इसमें भी निजी प्रशासन की तरह दक्षता प्राप्त की जा सकती है।

7. सेवाओं की कीमत (Cost of Services)

लोक प्रशासन द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवा तथा उसकी कीमत जो लोगों से कर (Tax) के रूप में प्राप्त की जाती है के अनुपात में समानता होती है। सेवा तथा सेवा लागत में समानता के कारण ही सरकार के बजट घाटे के बजट होते हैं। निजी प्रशासन में सदा ही किसी सेवा को प्रदान करने के लिए अधिक से अधिक कीमत प्राप्त करने की कोशिश की जाती है तथा लाभ को सुनिश्चित किया जाता है। इसलिए निजी प्रशासन के बजट में आय अधिक तथा व्यय कम का प्रावधान होता है।

8. सेवाओं की सुरक्षा (Security of Services)

लोक प्रशासन में कर्मचारी की नौकरी सुरक्षित रहती है जिससे उसे प्रोत्साहन मिलता है। उसे किसी भी विशेष कारण की अनुपस्थिति में नौकरी से निकाला नहीं जा सकता। निजी प्रशासन में समयानुसार वातावरण तथा कार्यप्रणाली में बदलाव के आधार पर किसी भी क्षण किसी कर्मचारी को नौकरी से अलग किया जा सकता है। इस प्रकार लोक प्रशासन में वर्तमान बेरोजगारी की समस्या को देखते हुए अधिक सेवा सुरक्षा तथा सम्मान प्राप्त होता है।

9. जन-सम्पर्क (Public Relation)

लोक सम्पर्क के सम्बन्ध में भी लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन में अन्तर है। लोक प्रशासन को अपनी सेवाएं प्रदान करने के लिए लोक सम्पर्क पर निर्भर नहीं करना पड़ता। निजी प्रशासन अपनी वस्तुओं की अधिक से अधिक बिक्री करने के लिए प्रचार करता है ताकि ग्राहकों को अपनी ओर आकर्षित कर सके। एक सरकारी डिपो का संचालक कभी भी इस बात का प्रयत्न नहीं करता कि उसकी वस्तुओं की अधिक बिक्री हो तथा न ही वह इस सम्बन्ध में लोक सम्पर्क द्वारा अपनी वस्तुओं का प्रचार करता है।

10. लोचशीलता (Flexibility)

लोक प्रशासन तथा निजी प्रशसान में अन्य अन्तर यह है कि लोक प्रशासन निजी प्रशासन से अधिक कठोर होता है। लोक प्रशासन को कठोर नियमों तथा अधिनियमों का पालन करना पड़ता है। इसलिए यह एक निश्चित दायरे में रहकर कार्य करता है। इसलिए लोक प्रशासन में लचीलापन कम होता है दूसरी तरफ निजी प्रशासन बिना किसी कठोर नियम–अधिनियम के बन्धन के कार्य करता है, इसलिए अधिक लचीलेपन की सम्भावना होती है।

11. अधिकारियों का अनुभव (Exposure of Officials)

लोक प्रशासन में अधिकारी गुप्त रहकर कार्य करते हैं तथा उनके कार्य करने का सम्बन्ध संगठन की प्रतिष्ठा के साथ जुड़ा होता है। वे कभी भी अपने नाम पर कार्य नहीं करते बल्कि सरकार अथवा अपने पद के लिए कार्य करते हैं। निजी प्रशासन में कर्मचारी नाम कमाने के लिए कार्य करते हैं तथा इनके अन्तर्गत प्रशासन व्यक्तिगत आधार पर चलाया जाता है। लोक प्रशासन में प्रत्येक कर्मचारी सगठन के एक साधारण अंग के रूप में कार्य करता है तथा प्रशासन किसी विशेष व्यक्ति के नाम के साथ नहीं जोड़ा जाता। निजी प्रशासन में कर्मचारी अपनी प्रतिष्ठा, सम्मान तथा आत्म–संतुष्टि पर अधिक बल देते हैं।

12. वित्त (Finances)

वित्तीय सहायता तथा वित्तीय नियन्त्रण लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन में भिन्नता की पुष्टि करता है। लोक प्रशासन में वित्तीय साधनों की व्यवस्था का उत्तरदायित्व संसद पर होता है तथा लोक प्रशासन धन का खर्च व्यवस्थापिका के नियन्त्रण में रहकर करता है, दूसरी ओर निजी प्रशासन में धन की व्यवस्था संस्थान के संचालक द्वारा की जाती है तथा जनता अथवा व्यवस्थापिका के नियन्त्रण से मुक्त रहती है।

13. संगठन (Organisation)

संगठन के सिद्धान्त का महत्त्व लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन में एक समान होता है। परन्तु फिर भी दोनों में संगठनात्मक कार्यप्रणाली के आधार पर भिन्नता पाई जाती है। लोक प्रशासन के अन्तर्गत यदि संगठन में किसी भी प्रकार का कोई दोष उत्पन्न होता है तो वह निजी प्रशासन की अपेक्षा अधिक हानि पहुंचा सकता है तथा जनता पर इसका अधिक प्रभाव होता है। निजी प्रशासन के संगठन में खराबी होने के फलस्वरूप व्यक्तिगत संगठन को ही नुकसान पहुंचता है न कि जनता को। हकसले के अनुसार, "राज्य का निवास एक शीशे के मकान के अन्दर है। इसके सारे कार्य हमारी ऑखों के सामने रहते हैं, और इसकी असफलताओं की चर्चा होती है। इसके विपरीत निजी संस्थाएँ पत्थर की चार दीवारी के अन्दर रहकर अपना कार्य करती हैं, जिसके अन्दर कोई झांक भी नहीं सकता।"

लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन में समानताओं तथा अन्तर के अध्ययन के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि दोनों एक–दूसरे की विशेषताओं को अपनाते हुए एक–दूसरे के करीब आ रहे हैं। वाल्डो के शब्दों में "वह सामान्यकरण जो लोक प्रशासन को निजी प्रशासन से अलग करता है, उसकी प्रयोजनीयता बड़ी सीमित है। वास्तव में निजी एवं लोक प्रशासन एक ही सिक्के के दो पहलू हैं परन्तु उनके अपने–अपने मूल्य तथा तकनीकें हैं जो उन्हें विशिष्टता प्रदान करते हैं।"

नवीन लोक प्रशासन

New Public Administration

लोक प्रशासन एक शैक्षणिक विषय के रूप में अवश्य ही नया है परन्तु एक क्रिया के रूप में यह उतना ही पुराना है जितना की स्वयं मानव। लोक प्रशासन के साहित्य की झलक कई पुरातन रचनाओं में देखने को मिलती है जिनमें प्रमुख है – प्लेटो की 'लाज' (The Laws), अरस्तु की 'पोलिटिक्स' (The Politics), कौटिल्य का 'अर्थशास्त्र' (Arthashastra) तथा मैक्यावली का 'प्रिंस' (Prince)। इन ग्रन्थों के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि उस समय लोक प्रशासन की क्रियाएं केवल व्यवस्था बनाए रखने तक ही सीमित थी। परन्तु समय के साथ–साथ तथा एक कल्याणकारी राज्य की स्थापना के पश्चात् लोक प्रशासन के कार्यों तथा उत्तरदायित्व में अत्याधिक वृद्धि हुई है।

समय तथा वातावरण के अनुसार प्रत्येक विषय में नए–नए विचार उदय होते रहे हैं। समाज शास्त्र, मनोविज्ञान तथा राजनीति शास्त्र की भॉति लोक प्रशासन में भी नवीन विचारों की उत्पत्ति हुई है। 1960 तथा 1970 का दशक इस सम्बन्ध में अत्याधिक महत्त्वपूर्ण है। इसके दौरान लोक प्रशासन को बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार ढालने के लिए प्रयत्न किए गए। इस सम्बन्ध में विभिन्न विचार उत्पन्न हुए जिनके अनुसार पुरातन सिद्धान्तों पर आधारित लोक प्रशासन के मुख्य उद्देश्य 'कुशलता' तथा 'मितव्ययता' को अपर्याप्त मानते हुए इसे मानवीय मूल्यों के अनुकूल बनाने की आवश्यकता पर बल दिया गया। यह भी कहा गया कि चूंकि लोक प्रशासन की सभी क्रियाओं तथा गतिविधियों का सम्बन्ध मनुष्य से है इसलिए इसे मनुष्य की आकांक्षाओं को देखते हुए मूल्योन्मुख होना चाहिए। इन विचारों को नवीन लोक प्रशासन का नाम दिया गया।

यह समझा जाता है कि लोक प्रशासन की उत्पत्ति 1968 में आयोजित मिन्नोबरूक सम्मेलन के द्वारा हुई परन्तु वास्तव में इस दिशा में पहले ही प्रयत्न आरम्भ हो चुके थे। इन प्रयत्नों में सार्वजनिक सेवाओं सम्बन्धी हनी रिपोर्ट तथा लोक प्रशासन के सिद्धान्त एवं व्यवहार से सम्बन्धित आयोजित फिलडेलफिया सम्मेलन अत्याधिक महत्त्वपूर्ण है। इस प्रकार नवीन लोक प्रशासन के विस्तृत अध्ययन के लिए इसको तीन भागों में बाँटा जा सकता है–

I. सार्वजनिक सेवाओं के लिए उच्च शिक्षा सम्बन्धी हनी रिपोर्ट (The Honey Report on Higher Education for Public Services – 1967).

II. लोक प्रशासन के सिद्धान्त एवं व्यवहार सम्बन्धी सम्मेलन–1967 (Conference on Theory and Practice of Public Administration).

III. मिन्नोबरूक सम्मेलन–1968 (The Minnobrook Conference)

I. सार्वजनिक सेवाओं के लिए उच्च शिक्षा सम्बन्धी हनी रिपोर्ट

सन् 1966 में लोक प्रशासन की अमेरिकन संस्था ने श्री जे॰ सी॰ हनी को अमरीकी विश्वविद्यालयों में लोक प्रशासन के विषय का मूल्यांकन करने का कार्य सौंपा। हनी ने इसके सम्बन्ध में अपनी रिपोर्ट 1967 में प्रस्तुत की, जिसमें उन्होंने लोक प्रशासन के क्षेत्र का विस्तार करने पर बल दिया। यह कहा गया कि इसके क्षेत्र का विस्तार करके इसे प्रशासकीय प्रक्रिया के अनुकूल बनाया जाना चाहिए तथा इसमें सरकार की तीनों शाखाओं अर्थात् कार्यपालिका, विधानपालिका तथा न्यायपालिका को शामिल करना चाहिए।

हनी ने अपनी रिपोर्ट में लोक प्रशासन के क्षेत्र में विस्तार करने के मार्ग में बाधा डालने वाली चार समस्याओं का उल्लेख भी किया।

1. लोक प्रशासन के सम्बन्ध में विद्यार्थियों, अध्यापकों तथा अनुसंधान राशि की कमी।
2. क्या लोक प्रशासन विज्ञान है अथवा कला, इसके सम्बन्ध में मतभेद।
3. कमजोर बनावट (Weak Structure) जिसमें लोक प्रशासन विभागों की गिनती का बहुत कम होना।
4. लोक प्रशासन के विद्वानों तथा व्यावहारिक प्रशासकों के विचारों में मतभेद।

इन समस्याओं का समाधान करने के लिए हनी ने निम्नलिखित मुख्य सुझाव दिए–

1. एक राष्ट्रीय आयोग की स्थापना की जाए जो लोक सेवा शिक्षा से सम्बन्धित अध्यापकों को उपलब्ध करवाने का कार्य करे।
2. लोक सेवाओं में प्रवेश करने के लिए प्रशिक्षण का प्रबन्ध किया जाना चाहिए।
3. प्रशिक्षण एवं अनुसंधान कार्यों के लिए विभिन्न विश्वविद्यालयों को अनुदान राशि दी जाए।
4. सार्वजनिक मामलों से सम्बन्धित शोध कार्यों के लिए विद्वानों को आर्थिक सहायता प्रदान की जानी चाहिए।
5. नवीन लोक प्रशासन की उपलब्धियों तथा विस्तार के सम्बन्ध में जानकारी प्रदान करने के लिए एक संस्थान की स्थापना की जाए जो विद्वानों तथा छात्रों को हर प्रकार की सूचना प्रदान करे।
6. नवीन लोक प्रशासन को प्रोत्साहन देने के लिए विश्वविद्यालयों की समय--समय पर समीक्षा की जाए ताकि लोक सेवा में सम्बन्धित क्षेत्रों में प्रशिक्षण प्रदान करने के लिए आने वाली रूकावटों को दूर किया जा सके।
7. एक विशेष कार्यक्रम के अन्तर्गत छात्रवृत्तियां आरम्भ की जानी चाहिएं जो उन व्यक्तियों को प्रदान की जाए जो स्कूल के अध्यापक, लोक प्रशासन तथा लोक क्षेत्रों में प्रवेश करना चाहते हैं।

हनी रिपोर्ट ने अमेरिका में एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया तथा विचारकों को अपनी तरफ आकर्षित किया। जहाँ इस रिपोर्ट की प्रशंसा की गई, वहाँ इसमें कई प्रकार की त्रुटियों को देखते हुए इसकी आलोचना भी की गई। इस प्रतिवेदन में उस समय की स्थिति, वातावरण तथा उथल–पुथल, समाज के प्रति लोक प्रशासन के दायित्व तथा भूमिका के विषय में कोई हवाला नहीं दिया गया। इन कमियों के होते हुए भी हनी रिपोर्ट को काफी महत्त्व दिया गया, जिसने लोक प्रशासन की भूमिका पर विचार करने के लिए विद्वानों का ध्यान आकर्षित करवाया। इसलिए रिपोर्ट को नवीन लोक प्रशासन की दिशा में एक आरम्भिक प्रयास माना जाता है।

II. लोक प्रशासन के सिद्धान्त एवं व्यवहार सम्बन्धी सम्मेलन

लोक प्रशासन के क्षेत्र में होने वाली गतिविधियों को ध्यान में रखते हुए दिसम्बर 1967 में अमेरिकन एकाडमी आफ पोलिटिकल एंड सोशल साईंस ने फिलडेलफिया में एक सम्मेलन आयोजित किया। इस सम्मेलन का मुख्य उद्देश्य लोक प्रशासन सिद्धान्त एवं व्यवहार, इसके क्षेत्र, उद्देश्य तथा पद्धतियों पर विचार करना था। इस सम्मेलन के अध्यक्ष जेम्स सी॰ चार्ल्स के अनुसार

इस सम्मेलन में भाग लेने वाले विद्वानों की मूल भावना यह थी कि लोक प्रशासन के सम्बन्ध में दृढ़ और संक्षिप्त दृष्टिकोण अपनाते हुए इसके महत्व को व्यापक दार्शनिक सन्दर्भ में मूल्यांकन किया जाना चाहिए कि लोक प्रशासन एक मानसिक आभूषण है या शासन का व्यावहारिक यन्त्र।"

इस सम्मेलन में भाग लेने वाले विद्वानों ने लोक प्रशासन को एक विषय अध्ययन, व्यवसाय तथा क्रिया की दृष्टि से देखते हुए इसके सम्बन्ध में भिन्न–भिन्न विचार प्रकट किए। परन्तु लोक प्रशासन की परिभाषा प्रकृति तथा उत्तरदायित्वों के सम्बन्ध में वे एकमत नहीं थे। इस मतभेद के बावजूद भी वे निम्नलिखित विषयों पर एकमत थे:

1. लोक प्रशासन के क्षेत्र का स्पष्टीकरण उतना ही कठिन है जितना कि इसकी परिभाषा करना।
2. क्योंकि लोक प्रशासन के विभिन्न अभिकरणों का मुख्य कार्य नीति–निर्माण है इसलिए नीति एवं प्रशासन का विभाजन करना अनुचित है।
3. एक विषय के रूप में अमेरिकी लोक प्रशासन का सम्बन्ध केवल अमेरिका के ही लोक प्रशासन से होना चाहिए।
4. नौकरशाही का अध्ययन क्रियात्मक एवं संरचनात्मक दोनों रूपों में किया जाना चाहिए।
5. लोक प्रशासन तथा वाणिज्य प्रशासन में बहुत अन्तर है, इसलिए दोनों का प्रशिक्षण एक–सा नहीं होना चाहिए।
6. लोक प्रशासन को व्यवसाय के रूप में राजनीति शास्त्र के अनुशासन तथा व्यवसाय से अलग रखना चाहिए।
7. आदर्श प्रशासकीय सिद्धान्त तथा लोक प्रशासन के वर्णित–विश्लेषणात्मक सिद्धान्त (Descriptive analytic theory) होने पर गडबड़ (Disarray) की स्थिति में है।
8. संगठनात्मक सत्ता के पदक्रम की विचारधारा अब उचित नहीं। प्रशासकों द्वारा अपने कार्यकर्त्ताओं को, अधीनस्थ (Subordinates) के स्थान पर सहकार्यकर्त्ता (Co-ordinates) समझा जाना चाहिए।
9. लोक प्रशासन में प्रबन्ध कौशल (Managementability) का स्थान नीति और राजनीति विचार ले रहे हैं।
10. भावी प्रशासकों को व्यावसायिक शिक्षा केन्द्रों में प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए तथा इसके पाठ्यक्रम का विस्तार करना चाहिए। लोक प्रशासन के कार्यक्रम में केवल प्रशासकीय संगठन और पद्धति पर ही बल दिया जाना चाहिए बल्कि मनोवैज्ञानिक, वित्तीय, समाज–शास्त्रीय तथा मानवशास्त्रीय अध्ययनों को भी सम्मिलित करना चाहिए।
11. लोक प्रशासन एक विषय है परन्तु इसके अध्ययन के लिए समकालीन समाज शास्त्रों द्वारा प्रतिपादित सभी अध्ययन–पद्धतियों का प्रयोग सम्भव नहीं है। लोक प्रशासन के कुछ भाग ऐसे हैं जहाँ वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग सम्भव है परन्तु इसके कुछ दूसरे अधिक बहुमूल्य भाग ऐसे भी है जिनके सन्दर्भ में इस पद्धति का प्रयोग सम्भव नहीं।
12. लोक प्रशासन वर्तमान समाज की समस्याओं का समाधान नहीं कर सका। यह बड़े–बड़े सैनिक, औद्योगिक प्रतिष्ठानों, दंगे–फसाद, श्रमिक संघों एवं हड़तालों, सार्वजनिक विद्यालयों सम्बन्धी विवादों, गन्दी गलियों; विज्ञान तथा विकासशील देशों आदि की समस्याओं के बारे में मौन है।

III. मिन्नोबरूक सम्मेलन, 1968

इस सम्मेलन में मुख्यतः यह निष्कर्ष निकाला गया कि समाज के प्रति लोक प्रशासक की क्या भूमिका होनी चाहिए। इसे मूल्यहीन (Value free) तथा मूल्य निपेक्षण के स्थान पर पूर्णतयाः मूल्योन्मुख (Value oriented) होना चाहिए। एक प्रशासक की नीति, विचार तथा मूल्यों के प्रति क्या भूमिका होनी चाहिए।

यह भी निष्कर्ष निकाला गया कि लोक प्रशासन को बदलते हुए वातावरण के अनुकूल होना चाहिए। इसका सामाजिक मूल्यों, सामाजिक समानता तथा सामाजिक न्याय में विश्वास होना चाहिए। सामाजिक न्याय के अन्तर्गत लोक प्रशासन समाज के पिछड़े तथा दलित वर्ग के प्रति जागरूक रहे तथा उस वर्ग के लोगों के लिए प्रयत्नशील हो। अगर लोक प्रशासन सामाजिक चुनौतियों का सामना नहीं करता तथा उसके प्रति उदासीन रहता है तो यह कभी भी अपनी वास्तविक भूमिका को नहीं निभा सकता।

इस प्रकार मिन्नोबरूक सम्मेलन में परम्परागत प्रशासन की कमजोरियों की तरफ ध्यान दिया गया तथा इसे बदलते हुए वातावरण के अनुसार एक नई दिशा प्रदान की गई।

नवीन लोक प्रशासन के उद्देश्य
(Objectives of New Public Administration)

गोलमब्यूस्की (Golembiewski) ने नवीन लोक प्रशासन के पाँच मुख्य उद्देश्यों का उल्लेख किया है:

1. नवीन लोक प्रशासन का विश्वास है कि मनुष्य में परिपूर्ण बनने की क्षमता है। यह बिल्कुल उस दृष्टिकोण के विपरीत है जिसमें मनुष्य को गतिहीन, स्थिर अथवा उत्पादन का स्रोत समझा जाता है।
2. नवीन लोक प्रशासन मूल्योन्मुख तथा उद्देश्योन्मुख (Value oriented and goal oriented) है। यह मानवीय तथा संगठन के मूल्यों में विश्वास रखता है।
3. सामाजिक समता: नवीन लोक प्रशासन के नेता सामाजिक समानता को मानवीय विकास के लिए सबसे योग्य नारा मानते हैं। इसलिए सामाजिक समानता को प्राप्त करना ही लोक प्रशासन का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए। समाज के पिछड़े वर्गों के लोगों को आर्थिक तथा सामाजिक विकास के लिए आगे बढ़कर कार्य करना चाहिए।
4. ग्राहकोन्मुख: नवीन लोक प्रशासन पूर्णतयः तर्कसंगत (Rationale) है तथा ग्राहकोन्मुख (Client Oriented) में है। इसमें विकेन्द्रीयकरण तथा प्रशासन में लोगों की भागीदारी की तरफ भी ध्यान दिया जाना चाहिए। प्रशासन को इस बात के लिए प्रयत्न करना चाहिए कि मनुष्य को कब, कैसे और क्या चाहिए। नीग्रो एवं नीग्रो के अनुसार, "अधिक प्रभावशाली तथा मानवीय लोक सेवाएं प्रदान करने के लिए प्रशासन द्वारा ग्राहक को केन्द्र बिन्दू मानने का सुझाव नौकरशाही की सत्ता को कम करने, लोकतन्त्रात्मक निर्णय, निर्माण प्रशासकीय प्रक्रिया के विकेन्द्रीयकरण के साथ दिया जाता है।
5. नवीन लोक प्रशासन ने नव–निर्माण तथा बदलाव (Innovations and change) पर बल दिया।

नवीन लोक प्रशासन की विशेषताएँ
(Features of New Public Administration)

नवीन लोक प्रशासन की मुख्य विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं:

1. **प्रासंगिकता (Relevance):** परम्परागत लोक प्रशासन कार्यकुशलता एवं मितव्ययिता के सिद्धान्त पर आधारित था जबकि नवीन लोक प्रशासन प्रासंगिकता के सिद्धान्त पर आधारित है। दूसरे शब्दों में परम्परागत लोक प्रशासन सामाजिक समस्याओं के प्रति उदासीन था। परन्तु नवीन लोक प्रशासन सम्बन्धित सामाजिक समस्याओं के प्रति गहरी चिन्ता रखता है। नवीन लोक प्रशासन का यह लक्ष्य है कि इसे समाज की आवश्यकताओं के प्रति जागरूक होना चाहिए तथा इसका ज्ञान सामाजिक समस्याओ के प्रासंगिक होना चाहिए। वर्तमान लोक प्रशासन केवल पोस्डकोर्ब की क्रियाओं तक ही सीमित नहीं रहा बल्कि इसका सम्बन्ध समाज की सभी समस्याओं से है तथा लोक प्रशासन के अध्ययनकर्त्ताओं को समाज की मूलभूत चिन्ताओं में प्रत्यक्ष भागीदार होना चाहिए। इसीलिए ड्वाइट वाल्डो (Dwight Waldo) ने निरन्तर इस बात पर बल दिया है कि लोक प्रशासन उन मामलों के प्रति उदासीन नहीं रह सकता जिनका सम्बन्ध समाज से है अथवा जिन समस्याओं का सामना समाज को करना है।
2. **मूल्योन्मुख (Value Oriented):** नवीन लोक प्रशासन आदर्शक (Normative) है। यह परम्परावादी लोक प्रशासन के मूल्यों के प्रति उदासीन तथा प्रक्रियात्मक परस्थता को स्वीकार नहीं करता। मिन्नोब्रुक सम्मेलन में इस बात पर विशेष रूप से बल दिया गया कि लोक प्रशासन को मूल्योन्मुख होना चाहिए और मूल्यों के प्रति उदासीन लोक प्रशासन असम्भव है। इस उद्देश्य से लोक प्रशासन के कई आधुनिक विशेषज्ञ, लोक प्रशासन में नैतिकता के महत्त्व पर बल देते है। उनके अनुसार प्रशासन में नैतिकता का विशेष स्थान है तथा सार्वजनिक पदाधिकारियों के क्रियाकलापों में नैतिकता के प्रति चेतना उत्पन्न की जानी चाहिए। नैतिक मूल्यों पर बल देने के कारण कई समारातमक परिणाम निकले हैं जिनका लोक प्रशासन के अध्ययन पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है। उदाहरणतः लोक प्रशासन में उत्तरदायित्व तथा नियन्त्रण को विशेष महत्त्व दिया जाने लगा है।
3. **सामाजिक समदृष्टि अथवा न्याय (Social Equity):** नवीन लोक प्रशासन का मुख्य उद्देश्य सामाजिक न्याय की प्राप्ति अवहेलना करके कुशलता एवं मितव्ययिता पर प्रायः बल देता था तभी कुछ लोग परमपरागत लोक प्रशासन को अमानवीय तथा मूल्य विहीन कहते हैं। परन्तु नवीन लोक प्रशासन मानवीय तथ्यों को स्वीकार करते हुए समाज के दलित वर्गों

महिलाओं तथा बच्चों का उत्थान करके उन्हें सामाजिक न्याय प्रदान करने के लिए यत्नशील रहता है। इस का उद्देश्य विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग के विशेषाधिकारों को समाप्त करके सभी को समाज अधिकार प्रदान करते हुए सामाजिक समता की स्थापना करना है। अतः नवीन लोक प्रशासन सामाजिक न्याय की स्थापना करके मानवीय विकास के पक्ष में है।

४. **परिवर्तन (Change):** परम्परावादी लोक प्रशासन विशेषाधिकार का अन्त करने तथा सामाजिक समता के प्रति जागरूक नहीं था। नवीन लोक प्रशासन सामाजिक समता की स्थापना के लिए परिवर्तन पर बल देता है। यह समाज में यथास्थितिवाद, सामाजिक एवं आर्थिक विषमता, सामाजिक शोषण, दलित वर्गों से अमानवीय व्यवहार आदि का अन्त करके सामाजिक न्याय पर आधारित समाज की स्थापना करने के पक्ष में है। इस उद्देश्य से यह प्रशासनिक यन्त्र में परिवर्तन करने के पक्ष में भी है।

५. **सेवित लोग-अभिमुख प्रशासन (Client Oriented Administration):** परम्परागत लोक प्रशासन के बारे में यह कहा जाता है कि यह अमानवीय है तथा यह मानवीय आवश्यकताओं के प्रति उदासीन है। इस के विपरीत नवीन लोक प्रशासन के समर्थक सेवित लोग अभिमुख लोक प्रशासन का समर्थन करते हैं। इसी उद्देश्य से वे विकेन्द्रीकरण अथवा लोगों के शासन में भागीदार होने, आश्रित लोगों से परामर्श करके नीति निर्माण करने तथा उन द्वारा नीति–निर्माण तथा शासन संचालन का मूल्यांकन करने की बात करते हैं। वे उत्तरदायी प्रशासन तथा स्पष्टीकरण का समर्थन करते हैं और नौकरशाही की कार्य पद्धति में सुधार करने पर बल देते हैं। दूसरे शब्दों में वे विकेन्द्रीकरण तथा नीति निर्माण के साथ--साथ सार्वजनिक सेवाओं को मानवीय बनाने के पक्ष में है। इसी उद्देश्य से वे अधिकारी तन्त्र के विरुद्ध हैं।

Evaluation

नवीन लोक प्रशासन वर्तमान समय में हो रहे महत्त्वपूर्ण विकासशील प्रयत्नों में से एक है। यद्यपि आत्मचेतना की इसकी प्राप्ति के कुछ ही वर्षों के पश्चात् यह अपनी महत्त्वता खो चुका है। गोलेम्बसकी (Golembieski) ने इसे अस्थायी तथा परिवर्तनशील घटना कहा है।

नवीन लोक प्रशासन द्वारा उत्पन्न किए गए कई मुद्दों के सम्बन्ध में कई प्रकार के जटिल प्रश्न उभर कर सामने आए। उदाहरणतया. नीग्रो तथा नीग्रो के अनुसार, "यदि सामाजिक समदृष्टि का अर्थ विधानपालिका द्वारा पारित निश्चय तथा आदेश, अधिकतर जनता की इच्छाओं के विरुद्ध प्रशासक की स्वतन्त्र भूमिका से है, क्या यह अलोकतन्त्रीय नहीं होगा।"

कैम्पबैल (Campbell) यह तर्क देते हैं कि नवीन लोक प्रशासन पुरातन लोक प्रशासन से केवल इस आधार पर भिन्न है कि नवीन प्रशासन समाज से सम्बन्धित दूसरे समय की कुछ भिन्न समस्याओं के प्रति उत्तरदायी था।

इस आलोचना के बावजूद भी नवीन लोक प्रशासन के महत्त्व से इन्कार नहीं किया जा सकता। तथापि इसे एक अस्थायी घटना कहा जाता है परन्तु जो साहित्य इसने प्रदान किया है उसे काफी उदारता से पढ़ा जाता है जैसेः फ्रैंक मैरिनी (Frank Marini) द्वारा 1971 में सम्पादित, "Towards a New Public Administration", डवाईट वाल्डो (Dwight Waldo) द्वारा 1971 में ही प्रकाशित "Public Administration in a time of Turbulance," एच॰ जार्ज फ्रैडरिक्सन (H. George Fredrickson) द्वारा लिखा गया लेख "Vincent strom" आदि। नवीन लोक प्रशासन से सम्बन्धित चर्चा का निष्कर्ष नीगरो तथा नीगरो के शब्दों में किया जा सकता है, जिसके अनुसार "नवीन लोक प्रशासन के समर्थकों ने स्पष्ट रूप में रचनात्मक विचार को प्रोत्साहित किया जब से नवीन लोक प्रशासन की उत्पत्ति हुई है, तभी से मूल्य तथा नीतिशास्त्र लोक प्रशासन के मुख्य विषय बने रहे हैं।" वाल्डो (Waldo) के विचारानुसार नवीन लोक प्रशासन के समर्थक लोक प्रशासन के लिए अमरीकी समाज में आए परिवर्तन निश्चित रूप में शामिल थे। जो इसके संगठन तथा प्रक्रिया को लोकतन्त्रीय बनाने के लिए किए गए थे।

महत्त्वपूर्ण प्रश्न

1. लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन में समानताओं का वर्णन कीजिए।
2. लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन आपस में किस प्रकार भिन्न है वर्णन कीजिए।
3. नवीन लोक प्रशासन की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
4. हनी रिपोर्ट क्या थी? नवीन लोक प्रशासन पर इसके क्या प्रभाव पड़े?

अध्याय 3

लोक प्रशासन का अन्य सामाजिक विज्ञानों से सम्बन्ध

Relation of Public Administration with other Social Sciences

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज में रहते हुए कई प्रकार के व्यवहार करता है। उसके इस व्यवहार को वैज्ञानिक विषयों के रूप में पढ़ा जाता है; जैसे मनुष्य के आर्थिक व्यवहार का अध्ययन अर्थशास्त्र में किया जाता है और राजनीतिक व्यवहार राजनीति विज्ञान से दृष्टिगोचर होता है। मनुष्य के सामूहित व्यवहार का अध्ययन सामाजिक विज्ञानों में किया जाता है जिसमें अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, राजनीति–शास्त्र, इतिहास, मनोविज्ञान तथा कानून शामिल हैं। लोक प्रशासन भी इन्हीं सामाजिक विषयों में से एक विषय है। अतः यह स्पष्ट है कि लोक प्रशासन का इन सामाजिक विज्ञानों के साथ कुछ न–कुछ सम्बन्ध है।

कोई भी सामाजिक विज्ञान अपने आप में सीमित रहकर व्यक्ति की क्रियाओं का अध्ययन नहीं कर सकता। मानव के जीवन का समग्र रूप से ही अध्ययन किया जा सकता है। पहले अध्ययन के क्षेत्र में किसी प्रकार का विशिष्टीकरण नहीं था। जब विशिष्टीकरण का दौर प्रारम्भ हुआ तो सभी अनुशासन अपना–अपना अस्तित्व कायम करने लगे। सभी सामाजिक विज्ञान अपने आप में स्वायत्त प्रतीत होते हैं, परन्तु इनका आपस में घनिष्ट सम्बन्ध है। प्रशासन शास्त्र एक ऐसी क्रिया का अध्ययन करता है जिसका सम्बन्ध समाज के प्रत्येक पहलू से है। यह सरकारी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए व्यक्तियों का दिशा–निर्देश की क्रिया है। कार्य करने वाले व्यक्ति समाज के शेष व्यक्तियों से अन्तक्रिया में अपना कार्य पूरा करते हैं। अतः प्रशासनिक क्रिया करने वाले व्यक्ति, कार्य करने वाले व्यक्ति तथा जिन व्यक्तियों के बीच ये कार्य किये जाते हैं इन तीन समूहों का आपसी व्यवहार अध्ययन को प्रभावित करता है। इनमें प्रत्येक समूह के लिए बने कानून, इनकी ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा मनोवैज्ञानिक स्थिति प्रशासन शास्त्र के अध्ययन को प्रभावित करती है। अतः प्रशासन शास्त्र इन सब प्रकार के विषयों से पूर्णतः सम्बन्धित हो जाता है।

लोक प्रशासन और राजनीति शास्त्र में सम्बन्ध

Relationship between Public Administration and Political Science

राजनीति विज्ञान और लोक प्रशासन में अति घनिष्ठ सम्बन्ध है। जितना गहरा सम्बन्ध लोक प्रशासन का राजनीति विज्ञान से है, उतना किसी अन्य सामाजिक विज्ञान से नहीं। राजनीति विज्ञान लोक प्रशासन का पैतृक अनुशासन (Parental Discipline) है, क्योंकि लोक प्रशासन का जन्म राजनीति–शास्त्र की कोख से हुआ है। डोनाल्ड किंगस्ले (Donald Kingslay) प्रशासन को राजनीति की शाखा मानते हैं। सभी विद्वान् इस बात पर सहमत हैं कि राजनीति और प्रशासन का चोली दामन का साथ है। दोनों एक–दूसरे से पृथक् नहीं रह सकते। एक–दूसरे से अलग रहने पर दोनों ही अपूर्ण और निष्क्रिय हो जाएंगे।

इन दोनों के बीच सम्बन्धों का अवलोकन करते समय निम्न दो प्रकार के विचार आते हैं–

(क) **प्रथम दृष्टिकोण (First view point)**–लोक प्रशासन व राजनीति विज्ञान में मौलिक अन्तर है और इन्हें अलग–अलग विषय हैं।

(ख) **द्वितीय दृष्टिकोण (Second view point)**–लोक प्रशासन और राजनीति विज्ञान अलग–अलग विषय होते हुए भी एक–दूसरे को प्रभावित करते हैं और दोनों में परस्पर गहरा सम्बन्ध है।

(क) **प्रथम दृष्टिकोण (First view point)**—यह परम्परागत दृष्टिकोण है। इस दृष्टिकोण के समर्थकों में वुडरो विल्सन, ब्लंशली तथा गुडनाऊ के नाम आते हैं। वुडरो विल्सन (Woodrow Wilson) के अनुसार, "प्रशासन राजनीति से बाहर है। प्रशासनिक प्रश्न राजनीतिक प्रश्न नहीं है। यद्यपि राजनीति प्रशासन के लिए कार्य निर्धारित करती है तथापि इसको यह अधिकार नहीं दिया जाना चाहिए कि वह प्रशासकीय तत्त्वों में हेर–फेर या हस्तक्षेप कर सके।" ब्लंशली (Bluntschli) ने भी यह माना है, "प्रशासन एक तकनीकी अधिकारी का क्षेत्र है, एक राजनीतिज्ञ का नहीं।" गुडनाऊ के अनुसार, "प्रशासन का एक बहुत बड़ा भाग ऐसा है जो राजनीति से सम्बन्धित नहीं है।"

इस विचार के अनुसार राजनीति का कार्य लोक–नीति का निर्माण करना तथा प्रशासन का काम लोक–नीति को लागू करना है। राजनीति विधानपालिका, राजनीतिक दल तथा दबाव–समूहों तक सीमित है, जबकि लोक प्रशासन सरकार की कार्यपालिका से सम्बन्धित है। दोनों व्यवसाय के रूप में भी अलग–अलग हैं। राजनीति राजनेताओं का कार्य–क्षेत्र है, जबकि प्रशासन में प्रशासक कार्यलीन रहते हैं। फिफनर (Pfiffner) ने राजनीतिक और प्रशासनिक अधिकारियों के बीच दस भेद गिनवाए हैं, जिन्हें हिन्दी अनुवाद में डॉ॰ एम॰ पी॰ शर्मा ने इस प्रकार व्यक्त किया है–

राजनीतिक अधिकारी (Political Officers)	प्रशासकीय अधिकारी (Administrative Officers)
1. अव्यवसायी (Amateur)	1. व्यवसायी (Professional)
2. गैर–तकनीकी (Non-technical)	2. तकनीकी (Technical)
3. दलीय (Partisan)	3. निर्दलीय (Non-Partisan)
4. अस्थायी (Temporary)	4. स्थायी (Permanent)
5. घनिष्ठ सार्वजनिक सम्पर्क (More Public Contacts)	5. नाम मात्र सार्वजनिक सम्पर्क (Few Public Contacts)
6. घनिष्ठ विधायी सम्पर्क (More Legislative Contacts)	6. नाम मात्र विधायी सम्पर्क (Few Legislative Contacts)
7. मुख्यतः नीति–निर्माता (More Policy Formulating)	7. गौण नीति–निर्माता (Less Policy Formulating)
8. निर्णय बहुल (More Decisions)	8. परामर्श बहुल (More Advisory)
9. अधिक समन्वयकारी (More Co-ordination)	9. अधिक क्रियान्वयन (More Implementation)
10. लोकमत से प्रभावित (Influenced by Popular Opinions)	10. अध्ययन और अनुसन्धान के आधार पर एकत्रित तथ्यों से प्रभावित (Influenced by facts based on Study & Research)

(ख) **द्वितीय दृष्टिकोण (Second view point)**—यह आधुनिक दृष्टिकोण है। इस दृष्टिकोण के अनुसार यह मान लिया जाता है कि राजनीति और प्रशासन, प्रकाश और छाया की भाँति एक–दूसरे के साथ–साथ चलते हैं। दोनों में भेद होते हुए भी दोनों को एक–दूसरे से पृथक् नहीं किया जा सकता। प्रशासन के सहयोग के बिना राजनीति द्वारा निर्मित नीतियों को लागू करना दुष्कर है और इसी प्रकार यदि राजनीति द्वारा नीतियों का निर्धारण न हो तो प्रशासन के पथभ्रष्ट होने का भय है। लोक प्रशासन और राजनीति में गहरा सम्बन्ध हम निम्न प्रकार से स्पष्ट कर सकते हैं–

1. **सामान्य उद्देश्य (Common Objectives)**—लोक प्रशासन और राजनीति के उद्देश्य लगभग समान हैं। दोनों के रास्ते अलग–अलग हैं, परन्तु मंजिल एक है। दोनों का उद्देश्य जनता की भलाई करना है। इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए वे एक–दूसरे पर निर्भर रहते हैं।

2. **राजनीति की सफलता प्रशासन के सहयोग पर (Success of Politics depends upon Administration)**—राजनीति की सफलता प्रशासन के सहयोग पर निर्भर करती है। प्रशासन की सफलता

राजनीति की सफलता है। प्रशासनिक सहयोग के बिना राजनीति पंगु–सी बन जाती है। भारत जैसी लोकतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था में मन्त्रिमण्डल के सहयोग के बिना प्रशासन का चलना असम्भव हो जाता है। इसी प्रकार प्रशासकों पर से राजनीतिक नियन्त्रण हटाने से उनके निरंकुश बनने की सम्भावना बनी रहती है।

3. **मन्त्रियों को प्रशासक प्रभावित करते हैं (Administrators influence Ministers)**– मन्त्रिमण्डल सामान्य नीति का निर्धारण करते हैं जिसमें प्रशासकों का योगदान होता है। नीति–निर्धारण से सम्बन्धित तथ्य तथा आंकड़े प्रशासकों द्वारा जुटाए जाते हैं। मन्त्रियों के पद अस्थायी होते हैं, जबकि प्रशासक स्थायी होते हैं। स्वभावतः मन्त्रियों को प्रशासकों पर निर्भर रहना पड़ता है।

4. **मन्त्रियों को सलाह देना (To give Advise to Ministers)**–मन्त्रियों को परामर्श देने तथा त्रुटिपूर्ण नीति को चुनने पर चेतावनी देने का कार्य प्रशासकों द्वारा किया जाता है हालाँकि मन्त्री प्रशासकों द्वारा दी गई सलाह या चेतावनी को मानने के लिए बाध्य नहीं है। अन्तिम निर्णय उनके हाथों में होता है, फिर भी मन्त्री उनकी सलाह को अनदेखा नहीं कर सकते।

5. **स्थानीय प्रशासन तथा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति दोनों के मध्य घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करते हैं (Local Administration and International Politics brings Politics and Administration close)**– स्थानीय प्रशासन, जिसमें मुख्यतः पंचायती राज संस्थाएं और नगरपालिकाएं शामिल हैं, लोक प्रशासन और राजनीति के मध्य स्पष्ट विभाजन रेखा को धुँधली करते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के क्षेत्र में होने वाली घटनाओं के फलस्वरूप भी दोनों एक–दूसरे के नजदीक आते हुए प्रतीत होते हैं।

लोक प्रशासन और राजनीति के मध्य सम्बन्धों के विवेचन में हमें अतिवादी दृष्टिकोण के स्थान पर सन्तुलित दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। वास्तव में राजनीति लोक प्रशासन को नियन्त्रित करती है और लोक प्रशासन राजनीति को दिशा–निर्देश देता है। राजनेताओं को प्रशासन के सामान्य उद्देश्यों को प्रभावित करने और सत्ता–प्राप्ति तक ही सीमित रहना चाहिए और प्रशासकों को नीतियों के निर्माण के लिए तथ्य व सूचनाएं जुटाने, सुझाव देने, आलोचनाएं करने तथा उनके निर्माण के पश्चात् निष्पक्ष व निष्ठापूर्वक क्रियान्वित करने तक ही सीमित होना चाहिए। प्रशासकों की निर्णय लेने की स्व–विवेक शक्ति व राजनेताओं की अन्तिम निर्णय लेने की शक्ति के मध्य टकराव नहीं होना चाहिए। राजनीतिक अधिकारियों एवं प्रशासनिक अधिकारियों के द्वारा पद सोपान के स्वर्ण नियम (Golden rule of Hierarchy) का सख्ती से पालन किया जाना चाहिए। कोई भी उच्च अधिकारी अधीनस्थ कर्मचारियों के साथ प्रथम उच्च अधिकारी (Immediate Superior) के द्वारा ही सम्पर्क स्थापित करे। साराश रूप में हम कह सकते हैं कि इनके कार्य चाहे भिन्न–भिन्न हों, परन्तु इनकी निकटता तथा अन्तर्निर्भरता से इन्कार नहीं किया जा सकता। डॉ॰ प्रभुदत्त शर्मा के अनुसार, दोनों की घनिष्ठता अग्रलिखित तीन तथ्यों से स्पष्ट है–

(1) राजनीति व्यवस्था प्रशासन के लिए कोई बाह्य अथवा असंगत चीज नहीं है। राजनीति समाज का मूल ढाँचा प्रस्तुत करती है और प्रशासन इसी घेरे में उसके द्वारा निर्धारित संगत भूमिका निभाने के लिए उसका एक एजेन्ट मात्र है।

(2) जो प्रशासन अपने आपको अराजनीतिक होने का दावा करता है वह कुल मिलाकर एक राजनीति–विरोधी प्रशासन है जो या तो राजनीतिक उद्देश्यों की प्राप्ति का विरोध करता है या उसे नौकरशाही के पिंजरे में बंद कर प्रभावहीन बनाने की चेष्टा करता है।

(3) सभी प्रशासनिक व्यवस्थाएं राजनीतिक व्यवस्थाओं के अनुरूप होती हैं। उदाहरणार्थ, अमरीकी जनतन्त्रात्मक व्यवस्था में जिस प्रशासन को केन्द्रीय भूमिका मिली है, उसे रूस की व्यवस्था अपने प्रशासन में प्रविष्ट नहीं होने देगी।

लोक प्रशासन और कानून में सम्बन्ध

Relationship between Public Administration and Law

कानून का अर्थ मनुष्य के बाहरी व्यवहार के ऐसे नियमों से है जो राजनीतिक प्रभुसत्ता से स्वीकृत होते हैं। कानून व लोक प्रशासन में घनिष्ठ सम्बन्ध को स्पष्ट करते हुए विल्सन (Wilson) ने लिखा है, "लोक प्रशासन सार्वजनिक कानून का व्यापक अधिशासी स्वरूप बन जाता है।" अर्थात् कानून को विस्तृत एवं क्रमबद्ध रूप में लागू करने का नाम ही लोक प्रशासन है और कानून को लागू करने की प्रत्येक क्रिया एक प्रशासकीय क्रिया होती है। लोक प्रशासन व कानून के मध्य परस्पर सम्बन्ध

निम्नलिखित प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है–

1. **कानून द्वारा प्रशासन की सीमा निर्धारित करना (Law determines the limit of Administration)**–कानून लोक प्रशासन की सीमा निर्धारित करता है। लोक प्रशासन देश के कानून के अन्तर्गत ही कार्य करता है। लोक प्रशासन के द्वारा किसी भी कार्य को कानून को कानून के विरुद्ध नहीं किया जा सकता। प्रशासक कानून द्वारा स्वीकृत कार्य ही करते हैं तथा प्रशासकों की शक्तियाँ व अधिकार कानून द्वारा निश्चित किए जाते हैं।

2. **लोक प्रशासन कानून की एक शाखा या उप-भाग के रूप में (Public Administration as a branch of Law)**–यूरोप के अनेक राष्ट्रों में लोक प्रशासन कानून के अधीन माना गया है। कानून को लोक प्रशासन का उद्देश्य और लोक प्रशासन को उसका माध्यम माना जाता है। लोक प्रशासन की संस्थाओं द्वारा यह सुनिश्चित किया जाता है कि राष्ट्रीय कानून का पालन अधिकाधिक सीमा तक हो, इसलिए यह कानून की एक शाखा के रूप में मान्य है।

3. **कानून-निर्माण में लोक प्रशासन की भूमिका (Role of Public Administration in law making)**–कानून–निर्माण के साथ भी लोक प्रशासन का घनिष्ठ सम्बन्ध है। कानून–निर्माण से पूर्व अधिकांश विधेयक प्रशासकीय विभागों में तैयार किए जाते हैं। इन विभागों में कानून का प्रारूप (Draft) तैयार किया जाता है। इसके अतिरिक्त विधानमण्डलों के पास समय का अभाव होता है, अतः वे प्रशासन को कानून बनाने की शक्ति हस्तान्तरित कर देते हैं और प्रशासन विधानमण्डल की सीमा, मापदण्ड व शर्तों के अनुसार कानून का निर्माण करता है। प्रशासन द्वारा इस प्रकार बनाए गए कानूनों को अधीनस्थ विधान (Subordinate Legislation) या प्रत्याधिकृत विधान (Delegated Legislation) कहते हैं।

4. **कानून के द्वारा प्रशासन को उत्तरदायी बनाना (Law makes Administration Responsible)**–कानून के द्वारा प्रशासन को उत्तरदायी बनाया जाता है। यदि कोई प्रशासन कोई अनाधिकृत या अवैध कार्य करता है तो न्यायालय उसे दण्डित करता है।

5. **प्रशासकों की स्व-विवेक शक्ति का दुरुपयोग कानून द्वारा कम करना (Law prevents misuse of officials', discretionary powers)**–कभी–कभी कानून में अधिकारियों द्वारा की जाने वाली कार्रवाई की सीमा प्रत्यक्ष एवं स्पष्ट नहीं लिखी जाती और इस अस्पष्ट खाली स्थान को भरने का अधिकार प्रशासक को दे दिया जाता है। प्रशासक इस अवस्था में अपने विवेक से निर्णय लेता है, इससे शक्ति के दुरुपयोग की सम्भावना बनी रहती है। न्यायालयों द्वारा निर्णय सुनाते समय कानून की व्याख्या की जाती है और कानूनी दृष्टिकोण का सहारा लेकर अधिकारी पर प्रतिबन्ध लगा दिए जाते हैं।

6. **सामाजिक एवं आर्थिक कानून-निर्माण में प्रशासन की प्रमुख भूमिका (Main Role of Administration in Social and Economic law making)**–सामाजिक तथा आर्थिक कानूनों के निर्माण में प्रशासन की प्रमुख भूमिका होती है। कानून के मौलिक विचारों में परिवर्तन लाने में भी लोक प्रशासन की प्रमुख भूमिका होती हैं

7. **संवैधानिक कानून व लोक प्रशासन में घनिष्ठ सम्बन्ध (Closeness between Constitutional Law and Public Administration)**–लोक प्रशासन और संवैधानिक कानून में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। जैसा कि विल्सन (Wilson) ने लिखा है, "प्रशासन का अध्ययन संवैधानिक सत्ता के समुचित वितरण के साथ घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है।"

8. **कानून द्वारा प्रशासनिक शक्तियों व नागरिकों के अधिकारों के बीच सन्तुलन बनाए रखना (Administration maintains Balance between Official Powers and Citizens Rights)**–कानून द्वारा नागरिकों की स्वतन्त्रताओं एवं अधिकारों की प्रशासकीय अत्याचारों से रक्षा की जाती है। कानून यह बताता है कि प्रशासन के अधिकार कहाँ समाप्त होते हैं और जनता का अधिकार कहाँ से आरम्भ होता है। यदि कानून न हो तो जनता के अधिकारों का अस्तित्व प्रशासन की दया पर निर्भर करेगा।

अतः प्रत्येक प्रशासनिक कार्य का आधार कानून है इसके बिना लोक प्रशासन एक अपाहिज व्यक्ति की तरह है जो स्वयं कुछ नहीं कर सकता।

लोक प्रशासन और इतिहास में सम्बन्ध

Relationship between Public Administration and History

इतिहास के अध्ययन से हमें मानव–जाति की सभ्यता के उत्थान और पतन के कारणों का ज्ञान होता है। वास्तव में इतिहास मानव–जाति के अनुभवों की प्रयोगशाला है। लोक प्रशासन इन अनुभवों को मार्ग–दर्शन के रूप में स्वीकार करता है। क्योंकि

इतिहास से प्रशासकों को यह पता चलता है कि अतीत में किस प्रकार की समस्याएं थीं और उनका समाधान कैसे किया गया। साथ ही उन्हें यह भी जानकारी मिलती है कि ऐसी कौन–सी गलतियाँ अतीत के प्रशासकों ने की थीं जिससे मानव जाति का पतन हुआ, ताकि भविष्य में ऐसी गलतियों से बचा जा सके। अर्थात् लोक प्रशासन और इतिहास में गहरा सम्बन्ध पाया जाता है, जिसका वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है–

1. **समकालीन उपयोगी सूचनाएं प्रदान करना (Provide Useful Contemporary Informations)**– इतिहास के अध्ययन से समकालीन प्रशासनिक व्यवस्था की सूचना प्राप्त की जाती है। जिस प्रकार 'कौटिल्य का अर्थशास्त्र' मात्र शासन व्यवस्था पर प्रकाश डालता है। उसी प्रकार अकबर के शासन के दौरान प्रचलित व्यवस्था का ज्ञान 'अबुल फजल' की 'आइन–ए–अकबरी' से होता है। बी॰ एन॰ पुरी की रचना 'भारत का प्रशासनिक इतिहास' तत्कालीन भारत की प्रशासनिक पद्धति की जानकारी देती है।

2. **इतिहास लोक प्रशासन के लिए पृष्ठभूमि तैयार करता है (History prepares Background for Public Administration)**– लोक प्रशासन का वर्तमान ढाँचा अतीत की देन है। जब हम अतीतकालीन युग के लोक प्रशासन का अध्ययन करते हैं, तब हमें सामान्य रूप से कुछ ऐसी व्यवस्थाओं का पता चलता है जो अतीत के प्रशासन की सफलता या असफलता का कारण रही हैं।

3. **इतिहास लोक प्रशासन को चेतावनी देता है (History Warns Public Administration)**– पूर्वकाल में घटित प्रशासन की असफलता वर्तमानकाल में कार्यरत प्रशासकों के लिए चेतावनी का कार्य करती है जैसे औरंगजेब की कट्टर धार्मिकता मुगल साम्राज्य की असफलता का कारण बनी तथा मुहम्मद तुगलक ने राजधानी बदल कर बहुत बड़ी ऐतिहासिक भूल की।

4. **इतिहास लोक प्रशासन को निर्देश देता है (History Directs Public Administration)**–लोक प्रशासन को इतिहास से निर्देश मिलता है। इतिहास घटनाओं को अन्वेषक एवं आलोचक के रूप में देखता है तथा भविष्य के लिए वही घटनाएं निर्देश बन जाती हैं।

5. **इतिहास लोक प्रशासन को प्रेरणा देता है (History motivates Public Administration)**–इतिहास लोक प्रशासन को प्रेरणा देता है। भारत के राष्ट्रीय नेताओं; जैसे नेताजी सुभाष चन्द्र बोस, पण्डित जवाहरलाल नेहरू और महात्मा गांधी आदि का योगदान भारत के लिए हमेशा प्रेरणा का स्रोत बना रहेगा। इनके योगदान का विवरण केवल इतिहास के पढ़ने से ही मिलता है।

अतः इतिहास लोक प्रशासन के लिए पथ–प्रदर्शक की भूमिका निभाता है जिससे लोक प्रशासक बहुत कुछ सीखते हैं और उसे व्यवहार में लाते हैं।

लोक-प्रशासन एवं भूगोल

Public Administration and Geography

व्यक्तियों के जीवन–स्तर पर स्थानीय वातावरण का बहुत प्रभाव पड़ता है। पठारी, दियारा एवं समतल स्थानों पर रहने वाले मनुष्यों के जीवन–स्तर में भिन्नता स्वाभाविक है। प्रशासन भी इन क्षेत्रों में कार्य करने के लिए अलग–अलग पद्धति अपनाती है। लोक–प्रशासन के सिद्धान्तों को अपनाने के लिए राज्य की भौगोलिक विशेषताओं को ध्यान में रखना अनिवार्य है। किसी राज्य की भौगोलिक स्थिति उस राज्य के सामाजिक जीवन का निर्माण करती है। आज क्षेत्रीय समस्याओं का अध्ययन किया जाता है तथा उसी के आधार वहाँ प्रशासनिक व्यवस्था की जाती है। अविकसित क्षेत्रों में विकास प्राधिकार या क्षेत्रीय समिति गठित की जाती है।

जलवायु एवं प्रकृति के अनुसार ही खनिज, पहाड़ी एवं कृषि योग्य भूमि उपलब्ध होती है। कोयले के क्षेत्र में "कोल परिषद" पहाड़ी क्षेत्रों में "पर्वतीय परिषद्" एवं कृषि प्रधान क्षेत्रों में "कृषि विकास परिषद्" गठित की जाती है। जंगली क्षेत्रों के लिए अलग से "वन सेवा" कार्यरत है। अलग–अलग क्षेत्रों में जलवायु एवं भाषाएं भिन्न–भिन्न होती हैं पदाधिकारियों का चयन एवं नियुक्ति करते समय यह ध्यान दिया जाता है कि जिस जलवायु एवं जिस भाषा को समझने वाले पदाधिकारी हैं उन्हें वैसे ही क्षेत्रों में पदस्थापित किया जाय।

क्षेत्रीय प्रशासनिक पदाधिकारियों को भूगोल का ज्ञान आवश्यक है, यदि वे क्षेत्रीय बनावट से अनभिज्ञ रहेंगे तो खतरे की सम्भावना सदा बनी रहेगी। उन्हें यह ज्ञान रखना होगा कि नदी या जंगल किस दिशा में है तभी प्रशासनिक व्यवस्था उचित

ढंग से कर सकते हैं। पहाड़ी इलाकों में कम दूरी पर ही प्रशासनिक अभिकरण (Administrative Agency) स्थापित किये जाते हैं। उसी तरह नदी से घिरे हुए छोटे स्थानों पर भी प्रखण्ड, थाना एवं डाकघर निर्मित किये जाते हैं। विकासशील देशों में क्षेत्रीय ज्ञान के अभाव में उचित प्रशासनिक व्यवस्था सम्भव नहीं है। अतः लोक–प्रशासन एवं भूगोल का घनिष्ट सम्बन्ध है।

लोक-प्रशासन एवं समाजशास्त्र

Public Administration and Sociology

लोक--प्रशासन का सम्बन्ध सामाजिक व्यक्तियों से है। समाज मनुष्य से बनता है और मनुष्य सामाजिक वातावरण से प्रभावित होता है। वातावरण को प्रभावित करने वाले जो मुद्दे हैं, उनमें प्रशासन भी एक है। किसी भी समाज में प्रयुक्त लोक–प्रशासन तभी सफल हो सकता है जबकि वह उस समाज की व्यवस्था से भिज्ञ हो। सामाजिक पृष्ठभूमि को ध्यान में रखकर ही प्रशासनिक कार्य सफल हो सकता है। लोक–प्रशासन का कार्य सेवा करना है। उसे यह ज्ञान रखना होगा कि किन–किन व्यक्तियों की सेवा करनी है। प्रशासन की समस्याओं को समझने के लिऐ व्यक्ति एवं उसके वातावरण को समझना नितान्त आवश्यक है। समाजशास्त्र का एक विस्तृत क्षेत्र है जिसमें से लोक–प्रशासन अपना क्षेत्र खोजता है। समाजशास्त्र से लोक प्रशासन को दृष्टि मिलती है। प्रत्येक समाज की अलग–अलग विशिष्टताएं होती हैं जिसके सम्बन्ध में ज्ञान रखना प्रशासन का कर्त्तव्य है।

लोक प्रशासन को सामाजिक व्यक्तियों की मनोवृत्ति, इच्छाएं एवं आकांक्षाओं का ज्ञान अनिवार्य है। सामाजिक रीति–रिवाजों एवं मानवीय प्रवृत्ति का प्रभाव अपराध या सद्भाव पर पड़ता है। यदि किसी समाज के व्यक्तियों की प्रवृत्ति अपराधी है तो प्रशासन को उस पर नियंत्रण रखना होगा। नियंत्रण रखने के लिए योजनाएं बनानी होंगी जो प्रशासन का उत्तरदायित्व है। सामाजिक पृष्ठभूमि से हम उस स्थान तथा वहाँ के व्यक्तियों के विषय में समुचित ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं जिनका सम्बन्ध प्रशासन से है। लोक–प्रशासन के विद्यार्थियों की यह जवाबदेही है कि सामाजिक स्थिति का अध्ययन कर उसमें प्रशासनिक पद्धतियों को लागू करें।

आज सामाजिक संघर्ष एवं जातीय तनाव की स्थिति है। इस परिस्थिति में समाजशास्त्र सामाजिक स्थिति को समझने में सहायक होता है तथा सामाजिक व्यवस्था को समझने के बाद समुचित प्रशासनिक व्यवस्था की जाती है।

लोक-प्रशासन एवं मनोविज्ञान

Public Administration and Psychology

प्रत्येक कार्य की प्रेरणा मन से मिलती है इसलिए कहा गया है कि मनोविज्ञान मनुष्य की उन आन्तरिक शक्तियों का अध्ययन करता है जो मनुष्य को अपने जीवन में अनुभव करने, विचार करने तथा इच्छा करने की सामर्थ्य प्रदान करती हैं। एक निश्चित परिस्थिति में व्यक्ति का मस्तिष्क किस ढंग से काम करता है इसकी जानकारी हमें मनोविज्ञान से मिलती है। लोक–प्रशासन समाज में मानवीय प्रक्रियाओं का अध्ययन करता है। आधुनिक लोक–प्रशासन के विद्वानों ने मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन करना प्रारम्भ किया है। लोक–नीति को कार्यान्वित करने के लिए मानवीय मानसिकता जानना अनिवार्य है। औपचारिक संगठन के पीछे एक अनौपचारिक संगठन होता है जो प्रशासन को संचालित करने वालों के व्यक्तिगत दृष्टिकोणों और सम्बन्धों का परिणाम है।

वर्तमान में लोक–प्रशासन के क्षेत्र में मनोविज्ञान प्रवेश कर गया है। असैनिक सेवाओं में भर्ती के समय मनोवैज्ञानिक परीक्षण होता है। प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में मनोविज्ञान एक विषय है। यह माना जा रहा है कि एक कुशल प्रशासक के लिए यह आवश्यक है कि उसको मनोविज्ञान का ज्ञान हो, क्योंकि उसका सम्बन्ध गतिशील प्राणियों से है जो परिस्थितियों के अनुकूल अपने व्यवहार को बदलते रहते हैं। मनोविज्ञान का ज्ञान रहने पर प्रशासक यह निर्णय ले सकता है कि मनुष्य का कौन सा निर्णय कितने समय तक टिकाऊ होगा।

वर्तमान में मनोविज्ञान का ज्ञान प्रशासक के लिए आवश्यक है जिसमें समूह मनोविज्ञान की प्रधानता है। समूह के क्रिया–कलापों से प्रशासन का प्रतिदिन का सम्बन्ध है। लोकहित के मुद्दों पर जनमत जानने में मनोविज्ञान अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्ध होता है। अपराधियों का मनोविज्ञान जानकर प्रशासक योजना बनाता है। बहुत से अपराधों का विश्लेषण मनोवैज्ञानिक आधार पर किया जाता है। लोक–प्रशासन के अन्तर्गत भ्रष्टाचार एवं मनोबल का अध्ययन किया जाता है जिनका सम्बन्ध मनोविज्ञान से है। विभाग

के उच्च पदाधिकारियों में मनोविज्ञान का ज्ञान अनिवार्य है क्योंकि उन्हें विभागीय सहयोगियों की प्रवृत्ति जाननी पड़ती है। उन की प्रवृत्ति के अनुकूल विभागीय निर्णय होता है। आज जिन पदाधिकारियों को मनोविज्ञान का ज्ञान नहीं है वे सफल प्रशासक नहीं हो सकते इसलिए यह कहा जाता है कि लोक–प्रशासन एवं मनोविज्ञान में घनिष्ट सम्बन्ध है।

महत्त्वपूर्ण प्रश्न

1. लोक प्रशासन का राजनीति–शास्त्र से क्या सम्बन्ध है?
2. लोक प्रशासन का इतिहास एवं विधि शास्त्र से क्या सम्बन्ध है? विवेचना कीजिए।
3. लोक प्रशासन का मनोविज्ञान एवं विधिशास्त्र से क्या सम्बन्ध है? विवेचना कीजिए।
4. लोक प्रशासन का भूगोल के साथ सम्बन्धों का वर्णन कीजिए।
5. लोक प्रशासन का समाज शास्त्र के साथ क्या सम्बन्ध है?

अध्याय 4

मुख्य कार्यपालिका

Chief Executive

किसी भी संगठन का सफल संचालन मुख्य कार्यपालिका पर निर्भर करता है। वह अपने नेतृत्व, निर्देशन तथा नियन्त्रण के आधार पर संगठन को गति तथा जीवन्त स्वरूप प्रदान कर सकता है। मुख्य कार्यपालिका के महत्व को इंगित करते हुए प्रो॰ बीड ने लिखा है कि "उच्च स्तरीय नीति के विकास में नेतृत्व प्रशासकीय प्रबन्धक के साथ इतना घुल–मिल गया है कि अधिकांश सरकारों में तथा प्रायः सभी व्यक्तिगत संगठनों में दोनों कार्यों को जान–बूझकर एक ही व्यक्ति को सौंप दिया जाता है।" यही वह केन्द्रीय तथ्य है जिसके आधार पर मुख्य कार्यपालिका की स्थिति सभी छोटे अधिकारियों जैसे कार्यपालिकाओं, प्रशासनिकों तथा प्रबन्धकों की अपेक्षा उल्लेखनीय बन गई है। वास्तव में प्रशासन में जब विभिन्न कारणों से एकता कम होने लगी तो मुख्य कार्यपालिका का विचार और पद अधिकाधिक महत्व ग्रहण करता गया।

मुख्य कार्यपालिका का अर्थ

Meaning of Chief Executive

प्रशासन एक पिरामिड की भाँति है जो आधार पर सबसे अधिक विस्तृत होता है किन्तु ऊपर की ओर छोटा होता जाता है और जिसके शीर्ष पर कार्यपालिका होती है। देश के प्रशासन का वास्तविक उत्तरदायित्व कार्यपालिका पर ही है। लोक प्रशासन में मुख्य कार्यपालिका अथवा मुख्य निष्पादक की स्थिति केन्द्रीय होती है। वह देश के प्रशासन का प्रधान होता है, देश के प्रशासन से सम्बन्धित विभिन्न कार्यों को सम्पन्न करता है। उसका सम्बन्ध सामान्य नीति के निर्माण से होता है। वह सरकार की विभिन्न प्रशासनिक इकाइयों के बीच समन्वय बनाए रखता है। प्रशासन के प्रधान के रूप में उसे राज्य की सम्पूर्ण प्रशासकीय मशीनरी का निर्देशन, पर्यवेक्षण और नियन्त्रण करना होता है। अपना कार्य चलाने हेतु तथा राजकीय अधिनियमों और नीतियों को लागू करने हेतु उसके पास सर्वोच्च प्रशासकीय शक्ति होती है। वही प्रशासकीय प्रबन्ध–व्यवस्था का नेतृत्व करता है। इन्हीं सब कारणों से मुख्य कार्यपालिका अथवा मुख्य निष्पादक की तुलना निगम प्रकृति के एक सुसंगठित निजी उद्यम के महाप्रबन्धक (General Manager) से की गई है। भारत में प्रधानमन्त्री के नेतृत्व में मन्त्रिमण्डल मुख्य कार्यपालिका है जिसके पास सर्वोच्च शक्ति है, तथापि इसकी स्वेच्छाचारिता पर अंकुश रखने के लिए इस पर संसदीय नियन्त्रण रहता है।

मुख्य कार्यपालिका (The Chief Executive) वह व्यक्ति कहलाता है जो कि कार्यपालिका का नेता व मुखिया होता है। संसदीय शासन–प्रणाली में यह प्रधानमन्त्री होता है, अध्यक्षात्मक शासन–प्रणाली में अध्यक्ष या राष्ट्रपति मुख्य कार्यपालक होता है। संसदीय शासन–व्यवस्था में भी राष्ट्रपति को मुख्य कार्यपालक माना जाता है, परन्तु मुख्य कार्यपालक की वास्तविक शक्ति मन्त्रिमण्डल के मुखिया अर्थात् प्रधानमंत्री के पास होता है। वैसे काम चलाने के लिए प्रत्येक विभाग तथा कार्यालय का भी एक–एक कार्यपालक होता है जिसे विभागीय अध्यक्ष (Departmental Head) कहते हैं, होता है। राज्य सरकार तथा केन्द्र सरकार के भी अलग–अलग मुख्य कार्यपालक होते हैं। इसी प्रकार स्थानीय सरकारों में भी मुख्य कार्यपालक होते हैं।

मुख्य कार्यपालिका या मुख्य निष्पादक के प्रकार

Forms of Chief Executive

मुख्य कार्यपालिका अथवा मुख्य निष्पादक के कार्यों पर विचार करने से पूर्व यह आवश्यक होगा कि इसके मुख्य प्रकारों को समझ लिया जाए।

(1) **औपचारिक एवं वास्तविक मुख्य कार्यपालिका**–संसदीय शासन–प्रणाली वाले देशों में औपचारिक एवं वास्तविक मुख्य कार्यपालिकाओं के बीच भेद किया जाता है। उदाहरणार्थ, भारत में राष्ट्रपति औपचारिक या नाम मात्र की कार्यपालिका

है तो प्रधानमन्त्री (अथवा मन्त्रिमण्डल) वास्तविक कार्यपालिका है। इंग्लैण्ड में राजा या रानी औपचारिक कार्यपालिका के उदाहरण हैं, क्योंकि वास्तविक शक्तियों का प्रयोग प्रधानमन्त्री द्वारा ही होता है जो कि वास्तविक कार्यपालिका है। औपचारिक अथवा नाममात्र की मुख्य कार्यपालिका को वास्तविक प्रशासकीय शक्तियाँ प्राप्त नहीं होतीं यद्यपि शासन उसके नाम से चलाया जाता है।

अध्यक्षात्मक पद्धति में औपचारिक कार्यपालिका के लिए कोई स्थान नहीं होता। वहाँ कार्यपालिका का अध्यक्ष राष्ट्रपति होता है जो संविधान द्वारा प्रदत्त समस्त शक्तियों का प्रयोग करता है, जैसे कि अमरिका का राष्ट्रपति। अपने मन्त्रिमण्डल में वह जिन मन्त्रियों को लेता है वे केवल राष्ट्रपति के व्यक्तिगत सलाहकार होते हैं. उनका सम्पूर्ण उत्तरदायित्व राष्ट्रपति के प्रति ही माना जाता है।

(2) **संसदीय एवं अध्यक्षात्मक कार्यपालिका**–जो कार्यपालिका अपने कार्यों के लिए संसद् के प्रति उत्तरदायी होती है और जिसका जीवन–मरण संसद् के हाथ में होता है उसे संसदीय कार्यपालिका कहते हैं। इस कार्यपालिका के सदस्य अर्थात् मन्त्रिगण व्यवस्थापिका के भी सदस्य होते हैं। भारत और ब्रिटेन में इसी प्रकार की कार्यपालिका है। अध्यक्षात्मक कार्यपालिका वह है जो व्यवस्थापिका से बिल्कुल अलग रहती है। कार्यपालिका में शासन की सम्पूर्ण शक्तियां निहित रहती हैं, जो अपने मन्त्रियों की सहायता से शासन–कार्य चलाती हैं। राष्ट्रपति और उसके मन्त्री व्यवस्थापिका के सदस्य नहीं होते और न ही उसके प्रति उत्तरदायी होते हैं, अतः जहाँ संसदीय कार्यपालिका की अवधि निश्चित नहीं होती वहाँ अध्यक्षात्मक कार्यपालिका अपने कार्यकाल तक के लिए वास्तव में स्थायी कार्यपालिका होती है। उसे केवल महाभियोग द्वारा ही हटाया जा सकता है जो बड़ा दुष्कर कार्य है।

(3) **एकल एवं बहुल कार्यपालिका**–जहां पर कार्यपालिका की शक्तियां एक ही व्यक्ति में निहित हों वहां की मुख्य कार्यपालिका को एकल मुख्य कार्यपालिका कहा जाता है। जैसे संयुक्त राज्य अमेरिका का राष्ट्रपति। परन्तु जहां पर कार्यपालिका की शक्तियां शीर्ष के कुछ व्यक्तियों की एक संस्था के हाथों में निहित हों तो उसे बहुल प्रकार की मुख्य कार्यपालिका कहा जाता है। जैसे स्वीटजरलैंड की संघीय परिषद् बहुल कार्यपालिका का उदाहरण है। इसमें सात सदस्य भी होते हैं जो कि स्थिति तथा पद में पूर्णतः बराबर होते हैं। उनमें कोई भी एक–दूसरे से श्रेष्ठ नहीं होता। ये विधानमण्डल के सदस्य भी होते हैं। वे उसकी कार्यवाही में भाग लेते हैं, उसका नेतृत्व करते है। तथापि उन्हें मतदान में भाग का अधिकार प्राप्त नहीं होता। वे विधानमण्डल के प्रति उत्तरदायी भी होते हैं। उनका कार्यकाल निश्चित होता है

राजनैतिक कार्य

मुख्य कार्यपालक अग्रलिखित राजनैतिक कार्य करता है–

1. मुख्य कार्यपालक को अपने दल का एवं व्यवस्थापिका का पूर्ण समर्थन प्राप्त करना आवश्यक है। जनता एवं विधानमण्डल का विश्वास प्राप्त करना उसके लिए अनिवार्य है। इसकी आवश्यकता इस कारण पडती है कि वह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जनता का प्रतिनिधि है। उसके वित्तीय मामले की स्वीकृति विधानमण्डल देता है उसे अपने राजनैतिक कार्यों को बड़ी सावधानी से करना पड़ता है।
2. मुख्य कार्यपालक समय–समय पर जनता एवं विधानमण्डल का नेतृत्व एवं मार्ग–दर्शन भी करता है। जनता एवं विधानमण्डल मुख्य कार्यपालक के मार्ग–दर्शन में विश्वास करते हैं। इनके बताये मार्गों पर चल कर अपने को गौरवान्वित महसूस करते हैं। देश का नेता होने से उसकी महत्ता बढ़ जाती है।
3. मुख्य कार्यपालक जनता की इच्छाओं का अध्ययन करने के लिए उनसे सम्पर्क स्थापित किये रहता है। प्रशासन में वह जनता का प्रतिनिधि है। जब उसे ऐसा प्रतीत होता है कि प्रशासन के कार्यों से कोई विरोधी प्रवृत्ति जागृत हो रही है तो उससे निपटने के लिए वह शीघ्र ठोस कदम उठाता है।
4. मुख्य कार्यपालक का यह उत्तरदायित्व है वह देश में निवास करने वाले प्रत्येक समुदाय का विश्वास प्राप्त करे। कानून का प्रेमी बनने के लिए जनता से अपील करे। जन–भावनायों का आदर करे एवं राष्ट्र की मुख्यधारा में सबको जोड़ने का प्रयत्न करे।
5. मुख्य कार्यपालक देश का प्रथम व्यक्ति है इस कारण उसका चरित्र अनुकरणीय हो वह सदाचारी एव लगनशील व्यक्ति हो जिसका प्रभाव जनता पर पड़े [illegible] आपसी सद्भावना बनाये रखने के लिए जनता से आग्रह

करना चाहिए उग्रवाद एवं अलगाववादी शक्तियों को प्रोत्साहित न करने के लिए भी उसका निवेदन आवश्यक है।

प्रजातांत्रिक युग में मुख्य कार्यपालक का जो उत्तरदायित्व है उसका निर्वाह वह प्रभावशाली ढंग से स्वयं नहीं कर सकता उसके लिए उसे दूसरों की सहायता लेनी पड़ती है। उसके कार्यों को निष्पादित करने के लिए उसके अधीनस्थ पदाधिकारी या अन्य अभिकरण होते हैं। अधिकांश कार्य वह उनके जिम्मे सौंप देता है जिससे उसकी शक्ति एवं समय बचता है। साधारण मामलों का निपटारा ये लोग स्वयं कर लेते हैं जो महत्त्वपूर्ण होता है वही उसके पास भेजा जाता है। मुख्य प्रशासक होने के नाते उसके लिए न्यायपालिका, विधानपालिका, राजनीतिक दलों, विभिन्न दबाव समूहों एवं जन–समुदाय से भी सम्पर्क रखना अनिवार्य है। इन सबसे सम्पर्क रखने का कार्य बहुमुखी प्रकृति का होता है वह शासन का प्रधान, राजनीतिक नेता, देश का प्रथम नागरिक एवं अन्तर्राष्ट्रीय चरित्र का व्यक्ति होता है।

मुख्य कार्यपालिका के प्रशासकीय कर्त्तव्य अथवा कार्य

Administrative Duties or Functions of Chief Executive

प्रशासन के प्रमुख के रूप में, मुख्य कार्यपालिका का सबसे प्रमुख लक्ष्य प्रशासन में यथासम्भव एकता स्थापित करना है। मुख्य कार्यपालिका के सभी कृत्य इस लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु होते हैं। मुख्य कार्यपालिका के प्रमुख कार्यों को निम्नलिखित शीर्षकों में विभाजित किया जा सकता है–

(1) **प्रशासकीय नीति का निर्धारण**–मुख्य कार्यपालिका का पहला कार्य प्रशासकीय नीति की मुख्य रूपरेखा निर्धारित करना है। पदाधिकारी अनेक महत्त्वपूर्ण मामलों में मुख्य कार्यपालिका से विचार–विमर्श करते हैं तथा उसका परामर्श लेते हैं। मुख्य कार्यपालक किसी भी सम्बन्धित पदाधिकारी के किसी विशिष्ट कार्य को अनुमोदित अथवा अस्वीकृत कर सकता है। यह महत्त्वपूर्ण प्रशासकीय मामलों पर विभागीय अधिकारियों को परामर्श देकर प्रशासन की नीति का मार्गदर्शन तथा नियन्त्रण करता है।

(2) **संगठन के विस्तृत रूप का निश्चय करना**–विभिन्न कानूनों को लागू करने के लिए कार्यपालिका को प्रायः विभागों, आयोगों, निगमों, ब्यूरो, कार्यालयों आदि की स्थापना करनी पड़ती है। इन इकाइयों के अतिरिक्त संगठन से सम्बन्धित विस्तृत बातों की पूर्ति का भार भी मुख्य कार्यपालक पर ही निर्भर होता है। वही संगठनों की विशद् रूपरेखाएँ बनाता है जिनके द्वारा नीति के लक्ष्य पूरे किये जाते हैं। कई बार मुख्य कार्यपालक को विभागों अथवा निगमों आदि के आन्तरिक संगठन में सुधार, परिवर्तन एवं हेर–फेर करने पड़ते हैं और नए अभिकरणों की स्थापना अथवा पहले से ही स्थापित अभिकरणों का पुनर्गठन करना पड़ता है।

(3) **आवश्यक आदेश, निर्देश तथा आज्ञाएँ निकालना**–कार्यपालिका की यह स्पष्ट जिम्मेदारी है कि वह संविधान तथा उसके अन्तर्गत बनाए गए कानूनों का पालन कराए। वह प्रशासकीय पदाधिकारियों को आवश्यक आदेश, निर्देश देती रहती है। ये आदेश कार्यपालिका की सामर्थ्य, क्षमता और उत्तरदायित्व के द्योतक हैं।

(4) **प्रशासकीय कार्यों को एक-दूसरे से सम्बद्ध करना**–मुख्य कार्यपालिका का एक महाप्रबन्धक होने के नाते यह भी उत्तरदायित्व है कि लोक प्रशासन के अनेक विभागों द्वारा किए जाने वाले कार्यों को एक–दूसरे से सम्बद्ध करता चले और विभागों के विभिन्न और यदाकदा परस्पर टकराने वाले कार्यों में सन्तुलन स्थापित करता रहे।

(5) **आर्थिक प्रशासन की व्यवस्था करना**–धन की समुचित और आवश्यक व्यवस्था किए बिना कोई भी प्रशासन नहीं चल सकता है। लोक प्रशासन को चलाने के लिए जो आर्थिक व्यवस्था की जाती है उस पर लोकतन्त्र में सर्वत्र व्यवस्थापिका का ही नियन्त्रण होता है, परन्तु सभी संसदीय जनतन्त्रों में आय–व्यय के लेखे या बजट तैयार करना, नए कर लगाना या पुराने करों को घटाना–बढ़ाना, खत्म करना, खर्च की मदें तय करना, क्रय इत्यादि के सम्बन्ध में निर्णय लेना कार्यपालिका का ही मुख्य कार्य समझा जाता है।

(6) **सेवीवर्ग का चयन और पद-विमुक्ति**–उच्च वर्ग के सेवी–वर्ग का चुनाव मुख्य कार्यपालिका द्वारा किया जाता है। यह एक कठिन किन्तु व्यक्तिगत उत्तरदायित्व है, परन्तु इस शक्ति का उपयोग करने में मुख्य कार्यपालिका पूर्ण रूप से स्वतन्त्र नही रहती है। उसे राजनीतिक, वर्ग–गत, संगठन–हित आदि विभिन्न पहलुओं की ओर ध्यान देना पड़ता है। मुख्य कार्यपालिका को यह अधिकार भी होता है कि जिन अधिकारियों की वह नियुक्ति करे, उन्हें हटा भी सके किन्तु इस

अधिकार का प्रयोग अकारण नहीं किया जाता है। वास्तव में इस बारे में अधिनियमों आदि में स्पष्ट व्यवस्था की गयी होती है। कार्यपालिका पद–विमुक्ति के अपने अधिकार द्वारा प्रशासकीय संगठन पर प्रभुत्व और नियन्त्रण स्थापित करती है।

(7) **निरीक्षण और नियन्त्रण**–मुख्य कार्यपालिका व्यवहार में स्वयं तो प्रशासकीय काम नहीं के बराबर करता है, वह सरकारी अभिकरणों का निरीक्षण और नियन्त्रण रखती है। वह देखती है कि उसके द्वारा प्रसारित आदेश का पालन हो रहा है अथवा नहीं? निरीक्षण और नियन्त्रण के अधिकार को भोगने के साथ–साथ वह प्रशासकीय विभागों को आवश्यक सुविधाएँ भी प्रदान करती है। कार्यपालिका को कहीं–कहीं सांविधानिक रूप में नियमित जाँच- पड़ताल के अधिकार भी होता है जिसका प्रयोग करते हुए वह जाँच–आयोग आदि की स्थापना भी करती है।

(8) **जन-सम्पर्क**–मुख्य कार्यपालिका का जन–सम्पर्क को बढ़ाने तथा उसे नियन्त्रित करने का काम भी है। इस प्रकार वह प्रशासन व्यवस्था को बाहर से प्रभावित करने की शक्ति रखती है। जन–सम्पर्क स्थापना के कार्यों द्वारा वह प्रशासन का जनता में प्रतिनिधित्व करती है तथा उसके समर्थन में लोकमत का निर्माण करती है।

लोक प्रशासन के प्रसिद्ध विद्वान लूथर गुलिक ने मुख्य कार्यपालिका के कार्यों को एक ही शब्द 'पोस्डकार्ब (POSDCORB)' में संग्रहित कर दिया है, तदनुसार उसके कार्य ये हैं–(1) योजना बनाना (S-Staffing), (2) संगठन करना (O-Organising), (3) कर्मचारियों की व्यवस्था करना (P-Planning), (4) निर्देशन (D-Directing), (5) समन्वय करना (Co-Co-ordination), 6 प्रतिवेदन देना (R-Reporting) एवं (7) बजट बनाना (B-Budgeting)।

मुख्य कार्यपालिका के इन विस्तृत कार्यों और दायित्वों से स्पष्ट है कि वह सम्पूर्ण कार्य–भार अकेला वहन नहीं कर सकता है। व्यवहार में उसे अपने साथ संलग्न दूसरे लोगों की सहायता लेनी होती है।

मुख्य कार्यपालिका के गुण

(Qualities of a Chief Executive)

1. उसका स्वास्थ अच्छा होना चाहिए। उसमें निजि शक्ति तथा शारीरिक सहनशक्ति होनी चाहिए।
2. उसका चरित्र उच्च तथा दोष रहित हो।
3. उसे समय का पाबन्द होना चाहिए।
4. उसमें आत्मविश्वास, उत्साह, सेवा भाव, मित्रता की भावना ईमानदारी, निष्ठा तथा न्यायिक भावना जैसे गुणों का होना अनिवार्य है।
5. वह संगठन के उद्देश्य के प्रति पूर्ण निष्ठा का प्रदर्शन करके अन्य कर्मचारियों का विश्वास प्राप्त करने की क्षमता रखता हो।
6. उसमें राजनीतिक विवेक का होना आवश्यक है। उसमे देश के राजनीतिक वातावरण को परखने की क्षमता होना चाहिए।
7. संगठन के लक्ष्यों तथा उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए सही तथा समय पर निर्णय लेने की क्षमता उसमे होना चाहिए।
8. वह कर्त्तव्य परायण हो।
9. उसमें दूरदर्शिता होनी चाहिए।
10. आवश्यकता पड़ने पर प्राधिकार को उचित मात्रा में दूसरों को हस्तान्तरित कर सकने की क्षमता उसमे होनी चाहिए।
11. दूसरों को प्रेरणा देने तथा उनका मन जीतने और उनका सहयोग प्राप्त करने की क्षमता होनी चाहिए।
12. उसमें चहल–कदमी का गुण होना चाहिए।
13. दूसरों के गुणों तथा उन गुणों को परखने की क्षमता होनी चाहिए।
14. उसे अपने उद्देश्य के प्रति श्रद्धा रखनी चाहिए तथा अपने समूह को बाहरी आलोचना से बचाना चाहिए।

महत्त्वपूर्ण प्रश्न

1. मुख्य कार्यपालिका की स्थिति एवं प्रशासनिक कार्यों का वर्णन कीजिए।
2. मुख्य कार्यपालिका का अर्थ तथा राजनैतिक कार्यों का उल्लेख कीजिए।
3. मुख्य कार्यपालिका का अर्थ तथा कार्यों का व्याख्यान कीजिए।

अध्याय 5

संगठन—अर्थ एवं आधार

Organisation—Meaning and Bases

एक सभ्य समाज में सामाजिक एवं मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति केवल संगठन के द्वारा ही पूरी हो सकती है। अतः हम यह कह सकते हैं कि संगठन उतना ही पुराना है, जितना कि मानव समाज। विद्वानों की मान्यता है कि जिस रूप में मानव समाज रहा होगा संगठन का स्वरूप वैसा ही रहा होगा। जब मानव संगठन का महत्व नहीं समझता था उस समय भी संगठन था, भले ही उसका रूप कोई और रहा हो। लेकिन एल॰ डी॰ व्हाइट (L.D. White) के इस कथन में कोई अतिश्योक्ति नहीं है कि आज हम संगठन–मानव के युग में रह रहे हैं। स्कूल, कॉलेज, यूनिवर्सिटी जहाँ से हम शिक्षा ग्रहण करते हैं, अस्पताल जहाँ से इलाज करवाते हैं, सरकारी विभाग जहाँ पर नौकरी करते हैं तथा सामाजिक एवं राजनैतिक संगठन, सभी किसी–न–किसी रूप में संगठनों के उदाहरण हैं। आज हमने संगठन के लक्ष्यों को अपने निर्णय–मूल्य के रूप में स्वीकार कर लिया है। व्यक्तियों को पहचानने के लिए हम सबसे पहले प्रायः यही देखते हैं कि वे किस प्रधान संगठन के सदस्य हैं। लोक प्रशासन के अन्तर्गत 'संगठन' शब्द का बोध प्रशासकीय संरचना से होता है। इसमें संगठन का अर्थ विभागों, निगमों तथा प्रशासकीय अभिकरणों की संरचना से है। प्रशासकीय संगठन एक साथ कार्य करने वाले व्यक्तियों के बीच के सम्बन्धों की एक निश्चित व्यवस्था को कहते हैं। औद्योगिक क्रान्ति के बाद से मशीनों का विकास हुआ और कार्य बड़े आकार पर होने लगा। जहां कार्यों का आकार बड़ा होगा, वहां संगठन भी अधिक बड़ा एवं व्यवस्थित होगा। प्रशासन कार्यों की व्यवस्था है और संगठन कार्य करने वाले लोगों के सम्बन्धों की व्यवस्था है। अतः प्रशासन एक विस्तृत क्रिया है 'संगठन' जिसका एक अंश है।

संगठन का अर्थ

Meaning of Organisation

साधारण भाषा में हम कह सकते हैं कि किसी कार्य को योजनाबद्ध ढंग से करना ही संगठन है। वस्तुतः संगठन में संरचना एवं मानव सम्बन्ध दोनों निहित हैं। संगठन प्रशासन का मूल भाग है अतः लोक प्रशासन के क्षेत्र में संगठन को विभिन्न रूपों में परिभाषित किया गया है। प्रमुख परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं–

1. एल॰ डी॰ व्हाइट (L.D. White) के अनुसार, "संगठन का सम्बन्ध कर्मचारियों की व्यवस्था से है जो किसी निश्चित उद्देश्य की प्राप्ति के लिए की जाती है। यह व्यवस्था कार्यों और उत्तरदायित्वों को आपस में बाँटकर की जाती है।"
2. जे॰ डी॰ मूने (J. D. Mooney) के अनुसार, "एक सामान्य ध्येय की प्राप्ति के लिए बनाए गए प्रत्येक मानवीय समुदाय का स्वरूप संगठन है।"
3. जान॰ एम॰ गॉस (John M. Gauss) के अनुसार "संगठन का अर्थ है कर्मचारियों की व्यवस्था करना ताकि कार्यों और उत्तरदायित्वों के उचित विभाजन द्वारा निर्धारित उद्देश्यों को सफलतापूर्वक पूरा किया जा सके।"
4. साइमन (Simon) के विचारानुसार, "संगठन परस्पर व्यवहार करने वाले लोगों के वर्ग का ही नाम है।"
5. लूथर गुलिक (Luther Gulick) के अनुसार, "संगठन सत्ता का औपचारिक ढाँचा है। इसके द्वारा किसी निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कार्यों को विभाजित और निर्धारित किया जाता है तथा उनका समन्वय किया जाता है।
6. आर॰ सी॰ डेविस (R.C. Davis) के अनुसार, "संगठन मूलतः व्यक्तियों का एक समूह है जो सामान्य उद्देश्यों की पूर्ति हेतु एक नेता के निर्देशन में सहयोग करते हैं।"

उपरोक्त परिभाषाओं का विश्लेषण करने पर हमें इसके दो तत्त्वों का स्पष्ट संकेत मिलता है–प्रथम, प्रशासकीय ढाँचा अथवा संरचना एवं द्वितीय मानव सम्बन्ध। इसी मत को स्पष्ट करते हुए डिमॉक ने लिखा है– "संगठन ढाँचा और मनुष्य दोनों ही है।

संगठन को केवल मात्र एक ढाँचा मानना और जिन लोगों से वह बनता है उनकी उपेक्षा करना पूर्णत: अवास्तविक होगा।"

संगठन के प्रकार

Kinds of Organisation

संगठन दो प्रकार का होता है: (i) औपचारिक संगठन तथा (ii) अनौपचारिक संगठन।

1. **औपचारिक संगठन (Formal Organisation):** औपचारिक संगठन उसे कहते हैं जिस में संगठन का स्वरूप व्यवस्थित ढंग से नियोजित तथा रूपांकित किया गया हो तथा जिस को प्राधिकारी सत्ता (Competent Authority) द्वारा मान्यता दे दी गई हो। इस में सम्बन्धों का आकार औपचारिक रूप से चार्ट अथवा रेखाचित्र में निर्धारित कर दिया जाता है। ऐसे संगठन का विवरण संगठन--चार्ट तथा नियमावली (Manuals) में कर दिया जाता है। संगठन के ढांचे की योजना औपचारिक रूप से बना ली जाती है। उच्च तथा अधीनस्थ कर्मचारियों के सम्भावित सम्बन्धों का उल्लेख लिखित आचार संहिताओं (Codes of Conduct) में कर दिया जाता है। यह संगठन का वह स्वरूप है जो पर्यवेक्षक (Observer) को बाहर से दिखाई देता है। अमीताई एतजीउनी (Amitai Etzioni) के शब्दानुसार, "औपचारिक संगठन वह है जो साधारण तौर पर उस संगठनात्मक ढांचे को प्रकट करता है, जो प्रबन्ध द्वारा तैयार किया जाता है तथा जिसमें श्रम के विभाजन तथा नियन्त्रण की शक्ति का खाका, श्रम, दंड, आचरण, नियन्त्रण आदि से सम्बन्धित नियम तथा विनियम शामिल होते हैं।"

2. **अनौपचारिक संगठन (Informal Organisation):** जो संगठन, उसमें कार्य करने वाले कर्मचारी वर्ग के वास्तविक व्यवहार के नमूने पर आधारित होता है, वह अनौपचारिक संगठन कहलाता है। जब कर्मचारी एक साथ कार्य करते हैं तो उन में परस्पर एक भावात्मक तथा व्यक्तिगत सम्बन्ध का विकास होता है। यह औपचारिक सम्बन्ध से विपरीत हो सकता है। इसे संगठन में अनौपचारिक सम्बन्ध के नाम से पुकारा जाता है। यह हो सकता है कि उच्च तथा अधीनस्थ कर्मचारियों का वास्तविक सम्बन्ध व्यवहार मे वैसा न घटित हो, जैसा कि लिखित आचार–संहिताओं के द्वारा आशा की जाती है। कार्य में लगे हुए कर्मचारी वर्ग का यह वास्तविक सम्बन्ध (Actual Relationship) ही अनौपचारिक संगठन है। व्यक्तिगत समीकरण (Personal Equation), मानवीय प्रकृति के अविवेक–प्रधान तत्व (Irrational Element of Human Nature), समूह तथा निहित हितों वाली शक्तियां आदि अनेक तत्व मिल कर संगठन को उसकी निर्धारित कार्यविधि से अलग कर देते हैं। चूंकि किसी संगठन में कार्य करने वाले विभिन्न कर्मचारियों के व्यक्तित्व भी भिन्न–भिन्न होते हैं, इसलिए इसी कारण से ही अनौपचारिक संगठन की उत्पत्ति होती है, परन्तु मानवीय स्वभाव के कुछ स्थायी लक्षण भी होते हैं, जिनको वास्तविक संचालन के समय आंख से औझल नहीं किया जा सकता, जब कि मनुष्य के कार्यो के विस्तार का पूर्ण अनुमान नहीं लगाया जा सकता, परन्तु कुछ विशाल उत्तेजनाएं होती हैं, जो इसके व्यवहार पर विशेष प्रभाव डालती हैं। ऐसे प्रभाव के महत्त्वपूर्ण तथा सम्बन्धित तत्त्व इस प्रकार होते हैं–मानवीय सम्मान की भावना, मानवीय प्राप्ति, सुरक्षा तथा एक अच्छा जीवन स्तर व्यतीत करने की भावना आदि। इस प्रकार यह तत्त्व कर्मचारियों को संगठन में एक टीम की भान्ति कार्य करने के लिए प्रेरित करते हैं। इसलिए अनौपाचारिक संगठन को उन वास्तविक सगठनात्मक सम्बन्धो का नाम दिया जा सकता है, जो संगठनात्मक ढांचे तथा इस में कार्य करने वालों के मध्य पारस्परिक सम्बन्धों के दबाव में अन्तर्क्रिया के परिणामस्वरूप विकसित होते हैं। साइमन (Simon) के अनुसार अनौपचारिक संगठन से यह आशय है कि, "संगठन में अन्तर्व्यक्तीय सम्बन्ध (Inter-personal Relations) होने चाहिएं तथा यह संगठन के आन्तरिक निर्णयों को प्रभावित करते हैं, किन्तु ये बातें औपचारिक योजना में नहीं होती हैं अथवा इस योजना से मेल नहीं खाती हैं।" संगठन का कर्मचारी–वर्ग यथार्थ में जैसा व्यवहार करता है, उस वास्तविक आचरण का अनौपचारिक संगठन एक पूर्ण नमूना होता है, परन्तु यह तभी तक है जब तक कि वास्तविक व्यवहार औपारिक योजना से एक मेल नहीं हो जाता।

निष्कर्ष (Conclusion)– औपचारिक तथा अनौपचारिक संगठन के अध्ययन के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि केवल सिद्धांतों के आधार पर संगठनों को पूर्ण तथा नियोजित नहीं किया जा सकता। औपचारिक संगठन के सूत्र तथा सिद्धान्त मार्गदर्शक सिद्ध हो सकते हैं, यद्यपि उनका प्रयोग परिस्थिति के व्यवहारिक संदर्भ में ही किया जा सकता है। केवल इस प्रकार से ही एक व्यवहारिक संगठन का निर्माण किया जा सकता है। किसी संगठन को पूरी तरह समझने के लिए उस के औपचारिक स्वरूप का अध्ययन ही पर्याप्त नहीं होगा। उसके वास्तविक कार्य–संचालन के विषय में तथ्यात्मक ज्ञान प्राप्त करने के लिए

यह अनिवार्य है कि उस संगठन के अधिकारियों तथा कर्मचारियों के व्यक्तित्व तथा उनके पारस्परिक सम्बन्धों का भी अध्ययन करना होगा। हमें औपचारिक संगठन के मूल्यों (Values) को कायम रखना चाहिए तथा उनके स्थान पर अनौपचारिक संगठन को ही स्थापित करने पर जोर नहीं देना चाहिए। आवश्यकता तो इस बात की है कि हम इन दोनों के अच्छे गुणों का मिश्रण कर लें और उनके अनुसार प्रशासन का निर्माण तथा संचालन करें। इसलिए औपचारिक संगठन के सिद्धान्तों को आधार मान कर, मानवीय सम्बन्धों का भी योग्य स्थान तथा महत्त्व देना चाहिए। इस प्रकार का मिश्रित संगठन बहुत प्रभावशाली होगा। फिफनर (Pfiffner) के अनुसार, "कोई भी प्रबन्धकीय संस्था, जिसमें औपचारिक तथा अनौपचारिक संगठन संगठन की प्रमुख रूप रेखाएं समान एवं अनुरूप होती हैं, स्वस्थ तथा सुखद संस्था होती है।"

संगठन के आधार

Bases of Organisation

साधारण शब्दों में व्यक्तियों के मध्य कार्य को बांटने को ही संगठन कहते हैं। इसलिए कार्य का बांटने की भिन्न-भिन्न रीतियों को ही संगठन का आधार माना जाता है। लूथर गुलिक (Luther Gulick) के मतानुसार संगठन के निम्नलिखित चार आधार होते हैं–

(1) कार्य अथवा लक्ष्य (Purpose)

(2) प्रक्रिया (Process)

(3) सेवित या लाभान्वित व्यक्ति (Persons or Clientele Served)

(4) स्थान, क्षेत्र या प्रदेश (Place, Area or Territory)

1. **कार्य अथवा उद्देश्य (Purposes)** – उद्देश्य को कभी–कभी कार्य भी कह दिया जाता है। कार्य या उद्देश्य या प्रयोजन का तात्पर्य उस अन्तिम लक्ष्य से है जिसे प्राप्त करने के लिए संगठन की रचना की जाती है। प्रशासन के अनेक महत्त्वपूर्ण विभागों का संगठन किसी बड़े लक्ष्य की प्राप्ति के लिए किया जाता है। भारत सरकार के प्रतिरक्षा, रेल, शिक्षा, समाज–कल्याण, संचार, यातायात आदि विभाग कार्य अथवा उद्देश्य को ही आधार मानकर गठित किए गए हैं। कार्य को भी दो भागों में बाँटा जा सकता है–प्रमुख कार्य (Major Functions) और गौण कार्य (Minor Functions)। प्रमुख कार्यों के अन्तर्गत अनेक गौण कार्य भी सन्निहित होते हैं। उदाहरणार्थ, शिक्षा एक प्रमुख कार्य है तो उसके अन्य गौण कार्यों में प्राथमिक शिक्षा, माध्यमिक शिक्षा और उच्च शिक्षा शामिल है। प्रमुख एवं गौण कार्यों के सम्बन्ध में निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि कौन–सा कार्य किस श्रेणी में रखा जाए। एक देश में जिसे गौण कार्य समझा जाता है, दूसरे देश में उसे प्रमुख कार्य मानकर विभाग की स्थापना की जा सकती है। वित्त विशेषज्ञ कार्यों के उपभागों (गौण कार्य) को क्रिया (Activity) कहते हैं।

लाभ (Merits) हल्डेन समिति और वालास के अनुसार–संगठन के इस आधार के लाभ निम्नलिखित हैं–

(1) कर्मचारी लगातार एक ही प्रकार की सेवा से सम्बन्धित प्रश्नों का अध्ययन करते हैं जिससे उनके ज्ञान में वृद्धि होती है और विशेषज्ञता विकसित होती है।

(2) वितरित कार्य पर्याप्त स्पष्ट और सुनिश्चित होता है इसलिए कर्मचारियों में किसी प्रकार का भ्रम पैदा नहीं होता।

(3) इस प्रकार संगठित विभाग द्वारा समस्याओं को सरलतापूर्वक सुलझाया जा सकता है।

(4) जब लक्ष्य के आधार पर विभाग को संगठित किया जाता है तो सामान्य जनता को उसकी जानकारी सहज रूप में प्राप्त हो जाती है। लोग सरलतापूर्वक यह जान जाते हैं कि उन्हें किस सेवा के लिए किस विभाग की सहायता लेनी चाहिए।

(5) इस प्रकार के संगठित विभागों के कार्यों का मूल्यांकन आसानी से किया जा सकता है।

(6) कर्मचारियों और अधिकारियों के बीच उत्तरदायित्व सुनिश्चित करने में सुगमता रहती है।

हानियाँ (Demerits)–संगठन के इस आधार की हानियाँ निम्नलिखित हैं–

(1) इस आधार की निश्चित व्याख्या नहीं की जा सकती। इसे हम चाहें तो संकीर्ण रूप में ले सकते हैं और चाहें तो व्यापक रूप में। इन दोनों की स्थितियों के बीच सन्तुलन स्थापित करना अत्यन्त कठिन है।

(2) जब व्यापक लक्ष्यों के आधार पर एक विभाग का संगठन किया जाता है तो उस कार्य के अनेक पहलू भुला दिए जाते हैं।

(3) इस पद्धति में कार्यों तथा सेवाओं के दोहराव (Duplication) की सम्भावनाएँ बढ़ जाती हैं।

(4) विभागों में कई बार परस्पर सहयोग नहीं होता।

2. **प्रक्रिया (Process)**—प्रक्रिया का अर्थ उस योग्यता, ज्ञान और कुशलता से है जो किसी विशेष कार्य को सम्पन्न करने के लिए आवश्यक है। यदि किसी संगठन की रचना विशेष योग्यता और कुशलता को ध्यान में रखकर की गई हो तो उसे प्रक्रिया पर आधारित संगठन कहेंगे। भारत में कुछ विभाग इस आधार पर गठित किए गए हैं; उदाहरण के लिए, महालेखाधिकारी का विभाग (Department of Accountant General), कानून विभाग (Department of Law) तथा इन्जीनियरिंग विभाग (Department of Engineering)। ये कार्य सामान्य प्रकृति के होते हैं और प्रायः सभी विभागों को इनकी आवश्यकता होती है।

लाभ (Merits)—संगठन के इस आधार के लाभ निम्नलिखित हैं—

(1) इस तरह के विभागों में विशेष ज्ञान रखने वाले लोग एक स्थान पर इकट्ठे होते हैं जिसमें उनके ज्ञान का उपयोग किया जा सकता है। वे आपस में एक-दूसरे से प्रशिक्षण व प्रेरणा लेते हैं।

(2) इस प्रकार के संगठित विभागों में मितव्ययता (Economy) प्राप्त होती है।

(3) संगठन का यह आधार एकता और समन्वय की दृष्टि से उपयोगी माना जा सकता है।

(4) इस तरह गठित विभाग के बारे में बजट तथा लेखा कार्य के लिए आवश्यक आँकड़े आसानी से प्राप्त किए जा सकते हैं।

(5) प्रक्रिया के आधार पर जब विभागों को संगठित किया जाता है, तो व्यावसायिक सेवाओं का भविष्य उज्ज्वल बन जाता है।

हानियाँ (Demerits)— संगठन के इस आधार की मुख्य हानियाँ निम्नलिखित हैं—

(1) एक कार्य को पूरा करने के लिए विभिन्न विभागों की सेवाएं प्राप्त करनी पड़ेंगी जिससे समन्वय करने का कार्य काफी जटिल हो जाएगा।

(2) यदि कोई एक प्रक्रिया भी असफल हो जाए तो सारे विभाग के कार्य निरर्थक हो जाएंगे।

(3) तकनीकी प्रक्रियाओं की कुशलता से ही प्रशासन में कुशलता नहीं आ सकती। इसके लिए अनुभव की आवश्यकता है।

(4) विभागों के अध्यक्ष अपना महत्व दिखाने के लिए और अनावश्यक कार्य करते हुए अनेक विभागों में घूमते हैं जिससे कार्यों में विलम्ब और धन खर्च होता है।

(5) प्रक्रिया पर आधारित विभाग के अध्यक्षों में यदि योग्यता और विशेषता का गर्व पैदा हो जाए तो वे लोकप्रिय नियन्त्रण को मानने से इन्कार करने लगते हैं।

(6) इस प्रकार संगठित विभागों में नेतृत्व की समस्या गम्भीर बन जाती है। विशेषज्ञों में प्रशासकीय क्षमता नहीं होती और जो लोग प्रशासन में कुशल होते हैं वे प्रायः विशेषज्ञ नहीं होते।

वालास (Wallace) का कहना है कि प्रक्रिया के आधार पर विभागों का संगठन करने से जो हानियाँ होती हैं, वे लाभों से खतरनाक हैं।

3. **सेवित या लाभान्वित व्यक्ति (Persons or Clientele Served)**—जब संगठन की रचना एक विशेष प्रकार के वर्ग की सेवा के लिए की जाती है तो उसे इस श्रेणी में रखा जाता है। सामान्यतः यह वर्ग प्राकृतिक, सामाजिक, आर्थिक या मानवीय विपत्ति का शिकार होता है। राज्य के कल्याणकारी स्वरूप के कारण इस प्रकार के संगठनों में वृद्धि हुई है। हरियाणा हरिजन कल्याण निगम, जिला सैनिक बोर्ड, महिला एवं बाल-कल्याण विकास विभाग, समाज-कल्याण निदेशालय, अनुसूचित जाति और जनजाति के लिए गठित कल्याण विभाग, केन्द्रीय समाज-कल्याण बोर्ड एवं भारत सरकार का कल्याण मन्त्रालय इसके उदाहरण हैं।

इन संगठनों के विशेष वर्ग हरिजन, सैनिक, महिला, बच्चे, अपंग, असहाय, वृद्ध व अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जन–जाति के लोग हैं।

लाभ (Merits)– संगठन के इस आधार के लाभ निम्नलिखित हैं–

(1) वर्ग विशेष के लिए सम्पादित की गई सेवाओं के मध्य समन्वय आसानी से हो जाता है।

(2) एक वर्ग की सभी समस्याएं प्रायः एक ही विभाग में सुलझ जाती हैं।

(3) सेवित व्यक्तियों और प्रशासन के बीच सीधा सम्बन्ध स्थापित हो जाता है।

(4) इन विभागों द्वारा लाभान्वित व्यक्ति आपस में मिलकर एक राजनीतिक दबाव–समूह का निर्माण कर लेते हैं जिससे उनके मध्य एकता की भावना का विकास होता है।

(5) इस प्रकार का विभाग अनेक सेवाएं सम्पादित करता है जिससे कर्मचारियों की विविध योग्यताओं का विकास होता है।

हानियाँ (Demerits) संगठन के इस आधार की हानियाँ निम्नलिखित हैं–

(1) इस प्रकार का विभाग सार्वजनिक रूप से लागू नहीं किया जा सकता और छोटे–छोटे विभागों की स्थापना का डर रहता है, जैसे भिक्षावृत्ति मन्त्रालय और वेश्यावृत्ति मन्त्रालय। इसका परिणाम यह होता है कि बौने प्रशासन (Liliputian Administration) की प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है, अर्थात् अनेक छोटे–छोटे विभाग स्थापित कर दिए जाते हैं।

(2) इन विभागों का कार्य–क्षेत्र आसानी से परिभाषित नहीं किया जा सकता।

(3) इस प्रकार गठित किए गए विभागों के कर्मचारियों में वाँछित कुशलता और योग्यता नहीं पाई जाती, क्योंकि विभाग एक सीमित समुदाय की अनेक समस्याओं से सम्बन्धित रहता है जिसके कारण इसके कार्यकर्त्ता बहुत से विषयों के जानकार तो बन जाते हैं किन्तु किसी एक विषय के विशेषज्ञ नहीं बन पाते।

(4) ये विभाग प्रशासन में एक दबाव–समूह का कार्य करते हैं और किसी प्रशासनिक सुधार, जो इनके विरुद्ध होता है, का विरोध करते हैं।

4. **स्थान, क्षेत्र या प्रदेश (Place, Area or Territory)**– यह सम्भव है कि प्रशासन के सभी क्षेत्रों या स्थानों की कुशलतापूर्वक सेवा न की जा सके क्योंकि भौगोलिक दृष्टि से ये क्षेत्र मुख्य कार्यालय (Head Office) से काफी दूर स्थित होते हैं। कई बार पृथक क्षेत्रों की अपनी अलग–अलग समस्याएं होती हैं, जिनका निवारण करने के लिए एक विशेष प्रकार के प्रशासकीय विभाग की आवश्यकता होती है। इस आधार को संगठन का 'भौगोलिक आधार' भी कहा जाता है।

भारत में विदेश मन्त्रालय के विभिन्न सम्भाग (Divisions) तथा रेलवे मन्त्रालय के विभिन्न क्षेत्र (Zones) इसके उदाहरण हैं।

लाभ (Merits)– संगठन के इस आधार के लाभ निम्नलिखित हैं–

(1) इस प्रकार के संगठन ऐसे दूरवर्ती क्षेत्रों के लिए उपयुक्त माने जाते हैं, जहाँ यातायात और संचार के साधनों का पूर्ण विकास नहीं हो पाया है।

(2) इस प्रकार के संगठन में समन्वय की समस्या नहीं रहती।

(3) इस प्रकार के संगठन में कार्य में देरी का भय नहीं रहता।

(4) इस प्रकार के संगठन में सम्बन्धित क्षेत्र की आवश्यकताओं के अनुरूप नीतियों का निर्माण किया जाता है।

(5) भिन्न–भिन्न क्षेत्रों के लोग अपनी भावनाओं तथा आवश्कताओं की अभिव्यक्ति सुगमतापूर्वक कर सकते हैं।

(6) विभागों के क्षेत्रीय आधार पर संगठित होने से पत्र–व्यवहार एवं आवागमन के अनावश्यक व्यय को कम किया जा सकता है।

हानियाँ (Demerits) संगठन के इस आधार की हानियाँ निम्नलिखित हैं–

(1) इस आधार पर संगठित विभागों के कारण राष्ट्रीय नीतियों के प्रशासन में एकरूपता नहीं रह पाती। उदाहरण के लिए केन्द्रीय स्तर पर एक शिक्षा विभाग न बनाकर भौगोलिक आधार पर अनेक शिक्षा विभाग बना दिए जाएं तो समूचे देश के लिए एक जैसी शिक्षा नीति नहीं अपनाई जा सकती।

(2) देश में क्षेत्रीयता एवं फूट की भावनाओं को प्रोत्साहन मिलता है।

(3) इस प्रकार के संगठन में एक क्षेत्र विशेष के लिए अनेक प्रकार की सेवाएँ प्रदान की जाती हैं जिससे श्रम विभाजन और विशिष्टीकरण को खतरा रहता है।

(4) क्षेत्रों पर आधारित विभाग क्षेत्रीय हित और दबाव–समूहों से प्रभावित होकर कार्य करते हैं और राष्ट्रीय हितों को भुला देते हैं।

किस आधार को सही माना जाए?

Which Base Should be Considered Right?

संगठन के विभिन्न आधारों का अध्ययन करने के बाद यह स्पष्ट हो जाता है कि कोई भी एक आधार पर्याप्त नही है। प्रत्येक आधार की अपनी कुछ हानियाँ और लाभ हैं। किसी भी आधार को सर्वश्रेष्ठ नहीं कहा जा सकता। चारों ही आधारों का परस्पर गहरा सम्बन्ध है। यदि हम कृषि विभाग का उदाहरण सामने रखें तो यह स्पष्ट हो जाता है।

विभाग का नाम	आधार
कृषि	1. लक्ष्य या कार्य–कृषि सम्बन्धी समस्याओं को हल करना।
	2. प्रक्रिया–कृषि सम्बन्धी विशेष ज्ञान का प्रसार।
	3. सेवित व्यक्ति–किसान।
	4. क्षेत्र–भिन्न–भिन्न क्षेत्रों में गठित कृषि ज्ञान केन्द्र।

अतः यह एक गम्भीर समस्या है कि किस विभाग को किस आधार पर गठित हुआ माने। हमें ध्यान में रखना चाहिए कि हमारा मुख्य लक्ष्य क्या है और हम क्या प्राप्त करना चाहते हैं? यदि हमारा प्रमुख लक्ष्य कार्यकुशलता और आर्थिक बचत है तो विभाग को प्रक्रिया के आधार पर संगठित करना चाहिए। यदि हमारा लक्ष्य कुछ विशेष वर्गों की समस्याए हैं, तो सेवित व्यक्तियों के आधार पर विभाग का संगठन किया जा सकता है। इसी प्रकार यदि एक क्षेत्र अथवा प्रदेश की विशेष समस्याएं हों या दूरी के कारण संचार के साधनों की कमी है तो क्षेत्र के आधार पर विभाग का संगठन किया जा सकता है। संगठन का गठन करते समय आधारों के सन्दर्भ में निम्नलिखित तथ्यों और शर्तों को ध्यान में रखना चाहिए–

(1) परिस्थितियाँ और मुख्य उद्देश्य निर्णायक तत्त्व होते हैं।

(2) किसी भी आधार को कठोरता के साथ लागू नहीं किया जा सकता। प्रत्येक की अपनी सीमाएं हैं।

(3) प्रत्येक आधार एक–दूसरे के पूरक (Supplementary) हैं।

(4) कार्य का आधार (Basis of Functions) एक सर्वमान्य आधार है।

(5) प्रशासकीय सुधार आयोग के अनुसार बौद्धिकता और प्रबन्धकीकरण (Rationality and Manageability) को संगठनों के आधारों की सिफारिश करते समय ध्यान में रखना चाहिए।

(6) विभागो के संगठनों में नीचे से लेकर ऊपर तक संगठन के आधारों की मात्रा में फर्क पड़ता रहता है।

महत्त्वपूर्ण प्रश्न

1. संगठन क्या है? इसके आधारों का वर्णन कीजिए।

अध्याय-6

संगठन-सिद्धान्त
(Organisation-Principles)

संगठन उद्देश्य की प्राप्ति एवं कार्यकुशलता के लिए यह अपेक्षित है कि संगठन की संरचना के लिए आधारभूत सिद्धान्त विद्यमान हों। निश्चित या सार्वभौमिक सिद्धान्तों से ही कोई विषय विज्ञान कहा जा सकता है। लोक-प्रशासन के विद्वानों ने संगठन से सम्बन्धित सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है, जो टेलर, लुथर गुलिक, हेनरी फेयोल, मून एवं रिले इत्यादि की कृतियों में देखे जा सकते हैं। यद्यपि ये सिद्धान्त भौतिक विज्ञानों के समकक्ष नहीं है। एल० डी० व्हाइट के अनुसार, ये सिद्धान्त [illegible] में व्यवहार के कुछ कार्य नियमों का सुझाव देते हैं, जो कि विस्तृत अनुभव प्राप्ति के फलस्वरूप बहुत कुछ मान्य बन गये हैं। हर्बट साइमन जैसे विद्वानों ने संगठन के इन सिद्धान्तों को केवल 'कहावतें' अथवा 'कल्पित कथाएं' कहा है। उनके शब्दों में "अधिकतम प्रशासकीय सिद्धान्तों में दुर्भाग्यवश कहावतों का दोष पाया जाता है। प्रायः प्रत्येक सिद्धान्त के लिए हम [illegible] सत्य प्रतीत होने वाला तथा स्वीकार्य विरोधी सिद्धान्त मिल सकता है।" संगठन से सम्बन्धित सिद्धान्तों के बारे [illegible] रहने के कारण ये अनुभवजन्य सत्य सिद्धान्त हो गये हैं। हेनरी फेयोल के शब्दों में, "ये सिद्धान्त ऐसे सत्य [illegible] लिये गये हैं और जिन पर विश्वास किया जा सकता है।"

अलग-अलग विद्वानों ने संगठन के लिए अलग-अलग सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। हेनरी फेयाल ने संगठन सम्बन्धी [illegible] सिद्धान्त माने हैं। ये हैं—कार्य विभाजन, प्राधिकार, अनुशासन, आदेश की एकता, निर्देश की एकता, सामान्य हित को प्राथमिकता, पारिश्रमिक, केन्द्रीयकरण एवं विकेन्द्रीकरण, पदसोपान, सुनीति, स्थिर कार्यालय, पहल एवं मनोबल। लुथर गुलिक ने [illegible] सिद्धान्त बताएं हैं जो इस प्रकार हैं - कार्य विभाजन अथवा विशेषज्ञता, विभागीय संगठनों के आधार, श्रेणी क्रम के [illegible] से संयोजन, सचेष्ट संयोजन, समितियों के जरिये समायोजन, विकेन्द्रीकरण, आदेश की एकता, कर्मचारियों का श्रेणी [illegible] प्रतिनिधित्व और नियंत्रण सीमा। मूने एवं रिले ने चार सिद्धान्त—कार्य विभाजन, पद—सोपान, समन्वय तथा स्टाफ सूत्र सिद्धान्त बतलाये हैं। सामान्यता संगठन के लिए निम्नलिखित सिद्धान्तों को महत्त्वपूर्ण माना जाता है-

(1) पदसोपान

(2) आदेश की एकता

(3) नियन्त्रण का क्षेत्र

(4) केन्द्रीयकरण व विकेन्द्रीकरण

(5) एकीकृत बनाम स्वतन्त्र व्यवस्था

पदसोपान
(Hierarchy)

औपचारिक संगठन से सम्बन्धित सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त पदसोपान है। प्रो० मूने ने इसे, "संगठन का सार्वभौमिक सिद्धान्त" कहा है। पदसोपान की अनुपस्थिति में संगठन की कल्पना नहीं की जा सकती। संगठन की औपचारिक संरचना का विश्लेषण उसके पदसोपान की स्थिति का अध्ययन कर लेने से ही संभव है। यह संगठन के लम्बवतीय सत्ता एवं उत्तरदायित्वों से सम्बन्ध रखता है। औपचारिक या यान्त्रिक विचारधाराओं के समर्थक इसे औपचारिक संगठन का आधार मानते हैं। आम बन्न एवं [illegible] एम० क्टालकर के शब्दों में, "औपचारिक संगठन पदसोपानीय संरचना होती है (संगठन पिरामिड की तरह लगता है) [illegible]

संगठनीय ज्ञान पदसोपान के सर्वोच्च शिखर पर विद्यमान रहता है।" संगठन पदसोपान के सिद्धान्तों पर संगठित होने पर ही कुशलतापूर्वक कार्य कर सकता है। लोक प्रशासन के अधिकांश विद्वान् पद–सोपान के महत्त्व को स्वीकार करते हैं। एम॰ रुथनारचामी के शब्दों में, "पदसोपान के कारण संगठन में निश्चितता तथा सुरक्षा को बढ़ावा मिला है परन्तु इसके कारण प्रभावशाली नीति और शीघ्र कार्यकरण को एक गहरा धक्का भी लगा है।"

पदसोपान का अर्थ

अंग्रेजी भाषा में "हेरारकी" शब्द का अर्थ "पद श्रेणी के आधार पर धर्म पुरोहितों का संगठन" है। पदसोपान को विभिन्न नामों जैसे– "क्रमिक प्रक्रिया सिद्धान्त", "पिरामिडिकल वे" तथा "क्रमों की श्रृंखला" या "सीढ़ी प्रणाली" से पुकारा जाता है। एल॰ डी॰ व्हाइट के अनुसार "संगठन की संरचना में ऊपर से लेकर नीचे तक उत्तरदायित्वों के स्तरों द्वारा जब अधीनस्थ जैसे सम्बन्धों का व्यापक प्रयोग किया जाता है, तब वहाँ "पदसोपान" बन जाता है।" इस प्रकार पदसोपान का सम्बन्ध सर्वोच्च अधीनस्थ सम्बन्धों से है। सी॰ पी॰ भाम्भरी के शब्दों में "पदसोपान संगठन में ऊपर से लेकर नीचे तक सर्वोच्च अधीनस्थ सम्बन्धों की जुड़ाव व्यवस्था है। यह संगठन में सार्वभौमिक रूप से प्रयोग में लायी जाने वाली पद्धति है, जिसके द्वारा कर्त्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों का संगठन के अनेक स्तरों में विभाजन रहते हुए संगठन एकता सूत्र में बंधा रहता है। पाल एच॰ एप्पलबी के शब्दों में, "पद सोपान वह साधन है जिससे स्रोतों का उचित भागों में विभाजन, कर्मचारियों का चयन तथा उन्हें कार्य सौंपे जाते हैं। इससे क्रियाओं या कार्यों को गति मिलती है, उनकी समीक्षा की जाती है तथा उनमें आवश्कतानुरुप संशोधन किये जाते हैं।"

जेम्स मूने ने पदसोपान को "क्रमिक प्रक्रिया" का सिद्धान्त कहा है। मूने के शब्दों में "संगठन में इसका अर्थ कर्त्तव्यों का कार्यों के अनुरुप निर्धारण न किया जाकर सत्ता एवं उत्तरदायित्व के अनुसार निर्धारण है। मूने ने इस सिद्धान्त को सार्वभौमिक मानते हुए यह बताया है कि जब कभी भी संगठन (चाहे वह दो व्यक्तियों का ही हो) में सर्वोच्च–अधीनस्थ विद्यमान रहते हैं, वहाँ क्रम का सिद्धान्त होगा। क्रमिक प्रक्रिया का तात्पर्य क्रमिक रूप में संगठन के अधिकारियों एवं कर्मचारियों के पदों के अनुरूप उत्तरदायित्वों का निर्धारण है।

पदसोपान को "क्रमों की श्रृंखला" भी कहा जाता है क्योंकि इसके अन्तर्गत संगठन में कर्त्तव्यों को श्रेणीबद्ध करना होता है।

संगठन में आन्तरिक सम्बन्धों के संदर्भ में पदसोपान के सिद्धान्त को "सीढ़ी प्रणाली" भी कहा जाता है। लेथम के शब्दों में "पदसोपान एक व्यवस्थित संरचना है जिसमें सर्वोच्च अधीनस्थ सीढ़ी के कदमों के रूप में जुड़े हैं। जिस प्रकार सीढ़ी पर चढ़ते हुए हम ऊपर शिखर तक पहुँच सकते है अगर सीढ़ी के क्रमों का उल्लंघन करते है तो गिरने का खतरा रहता है। इसी प्रकार संगठन के शिखर पर संगठन के प्रत्येक स्तर को पार करके ही पहुँचा जा सकता है। इसे "उचित मार्ग प्रक्रिया" का सिद्धान्त कहा जाता है।

पदसोपान को "पिरमिडीकल वे" भी कहा जाता है क्योंकि संगठन का प्रशासकीय ढांचा "पिरामिड" या कोण की तरह रहता है। संगठन में एक शिखर एवं उसके नीचे सीढ़ी दर सीढ़ी निम्न स्तर बनते जाते हैं। संगठन के कार्य अनेक भागों में विभाजित, उपविभाजित हो जाते हैं, परन्तु शिखर पर एक व्यक्ति होता है।

पदसोपान की व्याख्या

पद सोपान में क्रम के शिखर पर एक बिन्दु (मुख्य निष्पादक) होता है जहाँ सत्ता के सूत्र तथा उत्तरदायित्व केन्द्रित होते हैं। इसमें सत्ता के सूत्र ऊपर एवं नीचे दोनो ओर जाते हैं जिससे हर कर्मचारी अन्तिम रूप से संगठन के प्रधान के प्रति जवाबदेह हो जाता है। इस पद्धति मे सत्ता और उत्तरदायित्व की एक डोर का छोर शिखर पर रहता है, मध्यभाग के विभिन्न पदाधिकारियों व कर्मचारियों से गुजर कर दूसरा छोर निम्न स्तर पर आसीन कर्मचारियों के पास पहुँच जाता है। प्रशासकीय त्रिकोण या पिरामिड की चोटी पर मुख्य निष्पादक होता है जिसके अधीन प्रशासकीय विभागों के अध्यक्ष, प्रशासकीय निदेशक, उपविभागों के अध्यक्ष तथा कर्मचारी आते हैं। एक पद सोपान वाले संगठन के ढांचे एवं उसकी कार्य प्रणाली को निम्न प्रकार से समझाया जा सकता है।

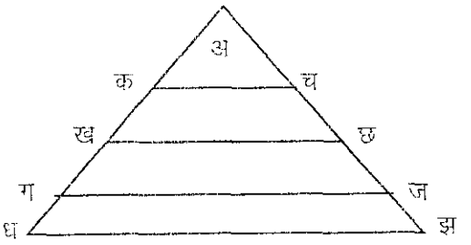

"अ" पूरे संगठन का अध्यक्ष है। "क" एवं "च" उसका अधीनस्थ अधिकारी हैं। "क" एव "च" के अधीन "ख" एवं "छ" अधिकारी आते हैं। इस प्रकार संगठन के निचले स्तर पर "घ" एवं "झ" हैं। अ को कोई आदेश या निर्देश देना हो तो वह "क" एवं "च" को देगा एवं क एवं च अपने अधीनस्थों को। इस प्रकर संगठन में उचित मार्ग सिद्धान्त की अनुपालना होगी।

पदसोपान की विशेषताएँ

1. नेतृत्वः

पदसोपान में नेतृत्व की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है। यह संगठन में समन्वय स्थापित करता है। नेतृत्व केवल शिखर पर ही केन्द्रित नहीं रहता अपितु वह तरल होकर ऊपर से नीचे तक धारा में प्रवाहित होता है तथा संगठन में एकता स्थापित करता है।

2. सत्ता का प्रत्यायोजनः

पदसोपानीय संगठन में शिखर का सर्वोच्च नेता अकेला सम्पूर्ण सत्ता का उपयोग नहीं कर सकता। उसे अनेक अधीनस्थ अधिकारियों को क्रम अथवा सोपान के अनेक चरणों पर सत्ता का प्रत्यायोजन करना होता है। वह जिस कार्य के लिए जिसे सत्ता प्रत्यायोजित करता है वह उस कार्य के लिए प्रवर या उच्च अधिकारी के प्रति उत्तरदायी होता है।

3. कार्य विशेषीकरणः

पदसोपान की कार्यात्मक परिभाषा से तात्पर्य है कि नेता या उच्च अधिकारी प्रत्येक अधीनस्थ कर्मचारी का [illegible] विशिष्ट कार्य सौंप देता है। कार्य सौंपने के साथ ही सत्ता एवं उत्तरदायित्व का स्पष्टतया निर्धारण कर दिया जाता है।

पदसोपान के विभिन्न रूप

लोक प्रशासन के विद्वानों ने पदसोपान के अलग--अलग रूपों की विवेचना की है। पिफनर एवं शेरवुड ने औपचारिक संगठन के लिए पदसोपान का निम्न प्रकार से चित्रण किया है--

(पिफनर एवं शेरवुड द्वारा प्रस्तुत पर सोपान का चित्रण)

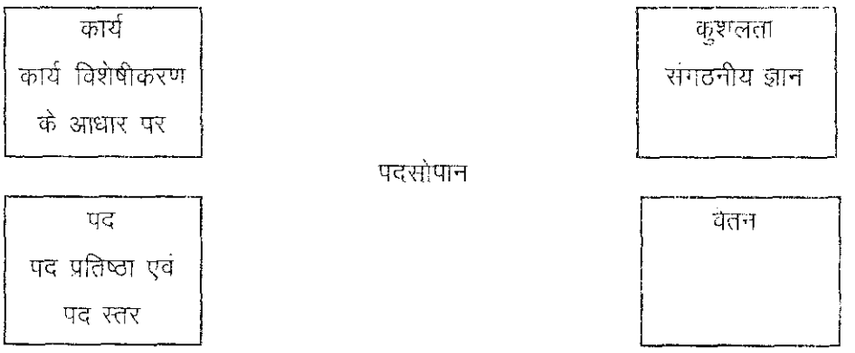

मूने एवं रैले के अनुसार

कम क्रमिक श्रृंखला

त्रिस्तरीय

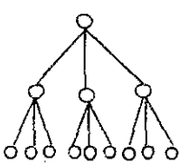

लम्बी क्रमिका श्रृंखला

बहुस्तरीय

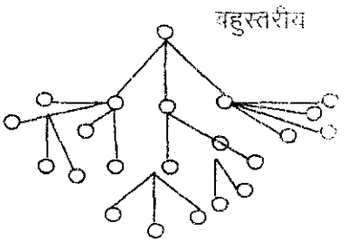

पंखानुकृत पदसोपानः

पदसोपानीय संगठन में शीघ्र निर्णय, जल्दी कार्यवाही तथा वित्तीय जवाबदेहता के लिए पंखानुकृति पदसोपान की प्रस्तुति की जाती है–

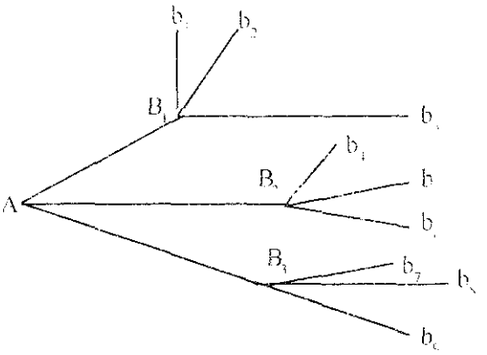

इस प्रकार का पदसोपान केवल तकनीकी प्रकार के कार्य वाले संगठन जैसे पुल निर्माण, परमाणु प्लांट इत्यादि में उपयोगी है, सरकारी संगठनों के लिए नहीं।

पदसोपान के गुण-दोष

पदसोपान औपचारिक संगठन के लिए एक सार्वभौमिक सिद्धान्त है। एल॰ डी॰ व्हाइट के शब्दों में, "पदसोपान संगठन के विभिन्न सम्बन्धित केन्द्रों में एक कड़ी के समान है जो सत्ता के निम्न स्तरों तक प्रत्यायोजन द्वारा कार्य संचालन को सरल एवं कुशल बनाता है।" पदसोपान के निम्नलिखित गुण हैं–

1. संगठनीय एकीकरणः

मुख्य निष्पादक के बाद एक जंजीर की कड़ियों के सदृश संगठन अपने सभी स्तरों के साथ जुड़ा रहता है। एम॰ पी॰ शर्मा के शब्दों में "पदसोपान एक ऐसा धागा है, जो संगठन के सभी सूत्रों को जोड़ता है।"

2. उत्तरदायित्व का निर्धारणः

इस प्रक्रिया में ऊपर से नीचे तक सूचनाएं, पत्र–व्यवहार व संदेश भेजना सुविधाजनक हो जाता है, संगठन में सभी को पता रहता है कि उनसे व्यक्तिगत तौर पर किस प्रकार कार्य की आशा की जा रही है एवं उसे कब करना है।

3. प्रत्यायोजनः

पदसोपान सत्ता तथा उत्तरदायित्व के प्रत्यायोजन के सिद्धान्त पर आधारित रहता है। इसमें सत्ता के उपकेन्द्र स्थापित हो जाते हैं एवं कार्यों को एक स्थान पर जमाव नहीं होता है। निम्न अधिकारियों को छोटे–मोटे निर्णय लेने का अधिकार प्राप्त हो जाता है जो उनके ज्ञान व प्रगति में सहायक होता है।

4. उचित मार्ग का सिद्धान्तः

उचित मार्ग के सिद्धान्त की स्थापना का परिणाम यह होता है कि कोई भी प्रक्रिया लुप्त नहीं होती और न ही माध्यमिक कड़ियों की उपेक्षा हो सकती है। इससे संगठन की गतिविधियों की समस्त अधिकारियों को जानकारी हो जाती है।

5. आदेश की एकता का सिद्धान्तः

इस सिद्धान्त के अन्तर्गत यह स्पष्ट रहता है कि संगठन में किस अधिकारी एवं कर्मचारी को किससे आदेश प्राप्त करना है, वह केवल एक ही व्यक्ति का अधीनस्थ होता है; इस प्रकार पदसोपान द्वारा संगठन के उद्देश्यों का कार्यविभाजन द्वारा प्राप्त किया जाता है तथा मतभेदों को दूर करके संगठन में सामंजस्य स्थापित किया जाता है।

पदसोपान संगठन में प्रक्रिया, एकता, निश्चयता तथा सुरक्षा प्रदान करता है, परन्तु इससे शीघ्र निर्णय [illegible] के परिणामों को प्रभावित करते हैं। पद सोपान के निम्नलिखित दोष बताये जाते हैं–

(i) **निर्देशन ऊपर से नीचे:** पद सोपानीय व्यवस्था में निर्देशन ऊपर से नीचे की ओर चलते हैं। [illegible] की जाती है कि वे मशीन की तरह बिना अपनी इच्छाओं के प्रयोग के [illegible] लागू करें।

(ii) **कठोर:** इससे संगठन में कठोरता आ जाती है तथा यह गतिशील मानवीय सम्बन्धों के विकास [illegible] हैं।

(iii) **लाल फीताशाही:** "उचित मार्ग के सिद्धान्त" के कारण कार्यों में अत्याधिक विलम्ब हो जाता है। इससे [illegible] बढ़ती है।

पदसोपान को प्रभावशाली बनाने एवं इसकी कमियों को दूर करने के लिए उपाय बताये गये हैं। [illegible] संगठन में पदसोपान व्यवस्था ठीक उसी प्रकार अनावश्यक है जिस प्रकार घर में नाली, परन्तु इस माध्यम का [illegible] संवाद के एक माध्यम के रूप में प्रयोग लाना उसी प्रकार आवश्यक है जिस प्रकार नाली में समय [illegible]।

पदसोपान में अनावश्यक देरी को रोकने के लिए अल्प मार्गों का सुझाव दिया जाता है। व्यवहार में इस प्रकार सम्बन्ध स्थापित किया जाता है कि सत्ता का उल्लंघन भी न हो व कार्य भी शीघ्रता के साथ सम्पन्न हो सके। हेनरी फेयोल ने [illegible] सुझाव दिया है जिसके अनुसार मुख्य निष्पादक की अनुमति से क्षितिजीय सम्बन्ध स्थापित किये जा सकते हैं। सत्ता के [illegible] के बीच एक पुल बना कर ऐसे सम्बन्ध स्थापित किये जा सकते हैं इसे "फयोल ब्रिज" भी कहा जाता है। दूसरा उपाय [illegible] कूदने" का है जिसके अन्तर्गत अनावश्यक मध्यम स्तरों को छोड़कर सम्पर्क स्थापित किया जा सकता है।

संगठन में पदसोपान के व्यावहारिक रूप में जैसा कि अर्ललेथम जैसे आलोचक मानते हैं कि सर्वोच्च अधिकारियों का [illegible] अव्यावहारिक हो सकता है क्योंकि यह जरूरी नहीं कि सभी मुख्य निष्पादकों को संगठन का समस्त एवं विस्तृत ज्ञान [illegible] व्यवहार में संगठन पदसोपान के औपचारिक सम्बन्धों के अनुसार पूर्णतया कार्य नहीं करता है। नीग्रो के शब्दों में, "संगठन [illegible] सामाजिक व्यवस्था भी है जिसमें सदस्य अपना व्यवहार विकसित करते हैं जो सरकारी निर्देशों से भिन्न होता है।" अतः [illegible] केवल औपचारिक रूप में कार्य नहीं कर सकता। अनौपचारिक रूप में सर्वोच्च अधीनस्थ परस्पर सद्भावना एवं विश्वास के आधार पर भी कार्य करते हैं।

आदेश की एकता

(Unity of Command)

संगठन के सिद्धान्तों में पदसोपान से जुड़ा हुआ आदेश की एकता एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है। पदसोपानीय संगठन में [illegible] अधीनस्थ सम्बन्ध पूर्णतया निर्धारित एवं स्पष्ट होते हैं। ऐसे संगठनों में कार्यों की प्रकृति में लम्बवती अन्तर दिखाई [illegible] स्पष्ट रहता है कि संगठन में किस व्यक्ति को किस से आदेश प्राप्त करना है। अतः आदेश की एकता का सिद्धान्त पदसोपान के सिद्धान्त का पूरक कहा जा सकता है। वर्तमान समय में संगठनीय जटिलताओं एवं विशेषीकरण के संदर्भ में यह [illegible] हो जाता है कि एक निश्चित अधिकारी से सामान्य एवं तकनीकी दोनों प्रकार के आदेश कैसे प्राप्त किया जाय।

अर्थ:

संगठन की एक महत्त्वपूर्ण समस्या उसमें लगे व्यक्तियों से सहयोग प्राप्त करने एवं उनके कार्यों में समन्वय करने का [illegible] आदेश की एकता के सिद्धान्त द्वारा संभव हो सकता है। आदेश की एकता का अभिप्राय है कि संगठन में प्रत्येक कर्मचारी [illegible] यह पता रहना चाहिए कि उन्हें किन से आदेश प्राप्त करना है। संगठन के सभी स्तरों पर सर्वोच्च अधीनस्थ सम्बन्ध पाये [illegible] है। संगठन में एक व्यक्ति एक ही व्यक्ति के अधीनस्थ होगा। हेनरी फेयोल के अनुसार, "एक कर्मचारी एक ही [illegible] अधिकारी से आदेश प्राप्त करेगा।" इसी प्रकार पिफनर एवं पेथस्थ के अनुसार, "कोई भी संगठन का सदस्य एक ही को अपना प्रतिवेदन देगा और एक ही नेता होगा।" इससे कर्मचारी परस्पर विरोधी आदेशों से मुक्त रहेंगे, क्योंकि एक से अधिक [illegible] प्राप्त करने का अर्थ परस्पर विरोधी आदेशों को प्राप्त करना होगा जिससे कर्मचारियों के कार्यों में अस्पष्टता एवं अनिश्चितता हो जायेगी। संगठन में उद्देश्यों एवं भूमिकाओं का स्पष्ट होना आवश्यक होता है अन्यथा प्रशासन भ्रान्तियों, भूलों एवं [illegible] का घर हो जायेगा। परस्पर दो विरोधी आदेश संगठन को अकार्यकुशल बना देंगे तथा संगठन गतिहीन हो जायेगा। [illegible] की एकता का सिद्धान्त संगठन को इन समस्याओं से मुक्त रखने के लिए आवश्यक है।

Merits & Demerits of Unity of Command

इस सिद्धान्त के निम्नलिखित लाभ हैं:

1. इस सिद्धान्त के अन्तर्गत आदेश केवल एक अधिकारी द्वार किये जाते हैं इसलिए इन में विरोधात्मक आदेश नहीं होते। इसके फलस्वरूप आदेशों के सम्बन्ध में भ्रम उत्पन्न नहीं होता।
2. इसके अनुसार, कर्मचारियों को देखभाल करने वाला अधिकारी ही आदेश जारी करता है, इसलिए कर्मचारी के कार्यों का निरीक्षण एवं पर्यवेक्षण प्रभावपूर्ण रीति से किया जात सकता है।
3. इस सिद्धान्त की सहायता से भिन्न–भिन्न कार्यों के लिए स्पष्ट रूप से उत्तरदायित्वों को निश्चित किया जा सकता है। इसस संगठन की कार्य–कुशलता बढ़ती है।

इस सिद्धान्त के इन लाभों के होते हुए भी प्रशासन में उसक समय कठिनाई उत्पन्न हो जाती है, जब संगठन में कार्य करने वाले कर्मचारियों को अपने उच्च अधिकारियों के आदेशों की पालना करने के साथ–साथ तकनीकी अधिकारियों अथवा विशेषज्ञों के आदेशों की पालना करनी पड़ती है। जैसे एक डाक्टर प्रशासकीय रूप से उसी स्थानीय संस्था के प्रति उत्तरदायी है, जिसने उसे नियुक्त किया है नियुक्त किया है किन्तु अपने व्यवसाय (Profession) के कारण वह लोक स्वास्थ्य निर्देशक स्वास्थ्य निर्देशक (Director Public Health) के प्रति भी उत्तरदायी है। इसलिए ऐसे भी अवसर भी हो सकते हैं जब एक ही व्यक्ति के दो अधिकारी हों इसलिए टेलर (Taylor) ने द्विमुखी पर्यवेक्षण (Dual Supervision) का सुझाव दिया है। आधुनिक वैज्ञानिक युग में लोक प्रशासन के प्रत्येक क्षेत्र में तकनीकी अधिकारी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं, इसलिए उनके आदेशों की अवहेलना नहीं की जाती। ऐसी स्थिति में आदेश की एकता के सिद्धान्त में कुछ आवश्यक संशोधन हैं। इसी बात को ध्यान में रखते हुए जॉन डी० मिलेट (John D. Millett) ने कहा है कि, "आवश्यकता इस बात की है कि आदेश की एकता की धारणा में इस बात के साथ तालमेल बिठाया जाए कि किसी भी कार्य का द्विमुखी निरीक्षण किया जा सकता है अर्थात् तकनीकी तथा प्रशासकीय दोनों ही प्रकार का निरीक्षण भिन्न–भिन्न व्यक्तियों द्वारा किया जा सकता है। पहली प्रकार के निरीक्षण का सम्बन्ध कार्य को सम्पन्न करने की व्यवसायिक योग्यता से हो सकता है जब कि दूसरे निरीक्षण का मुख्य सम्बन्ध कार्य के लिए उपलब्ध साधनों–मानव तथा सामग्री–का कुशलता उपयोग करने से होता है।" इस प्रकार दोहरे आदेश कभी–कभी आवश्यक हो सकते हैं, किन्तु किसी भी परिस्थिति में किसी कर्मचारी को परस्पर विरोधी आदेश न दिये जायें।

आदेश की एकता के उपरोक्त अर्थ के अतिरिक्त मिलेट ने इसके दो और अर्थ भी बताये हैं। पहले से उसका तात्पर्य यह है कि ऐसी व्यवस्था के अन्तर्गत सभी प्रशासकीय प्राधिकार किसी एक उत्तरदायी अध्यक्ष–राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल में निहित हों और वहीं से निकलें। दूसरे, किसी बोर्ड अथवा आयोग के नियन्त्रण की अपेक्षा किसी एक व्यक्ति का नियन्त्रण अधिक अच्छा होता है, परन्तु आदेश की एकता का सबसे अधिक व्यापक अर्थ यह है कि किसी भी कर्मचारी को एक से अधिक उच्चतर अधिकारी से आदेश प्राप्त न हो।

व्यवहार में आदेश की एकता:

आदेश की एकता के सिद्धान्त की व्यावहारिकता कैसी है? इसके उत्तर में कहा जा सकता है कि उस समय कठिनाई उत्पन्न हो जाती है जब संगठन में काम करने वाले तकनीकी कर्मचारियों पर इसे लागू किया जाता है। तकनीकी ज्ञान प्राप्त व्यक्ति या विशेषज्ञ के आदेश भी विशेषज्ञ से ही प्राप्त होने चाहिए, परन्तु इस सिद्धान्त के अन्तर्गत तकनीकी एवं सामान्य प्रशासन में कोई अन्तर नहीं किया जाता। इस मामले में जब तक संघर्ष या टकराव नहीं होता तब तक तो कोई समस्या नहीं होती है। परन्तु आदेश में अस्पष्टता या टकराव की स्थिति में कर्मचारियों को चाहिए कि वे इसे उच्च अधिकारियों के ध्यान में लाएं एवं समस्याओं का समाधान करें।

एफ० डब्ल्यू० टेलर ने इसके लिए द्विमुखी पर्यवेक्षण का सुझाव दिया है। हर्बर्ट साइमन ने इसमें संशोधन करते हुए कहा है कि, "दो प्राधिकारी आदेश के परस्पर टकराव की स्थिति में केवल एक ही निर्धारित व्यक्ति होना चाहिए जिसकी अधीनस्थ कर्मचारी आज्ञा माने।"

लूथर गुलिर ने आदेश की एकता के सिद्धान्त के अनुसरण पर अपने विचार रखते हुए यह स्वीकार किया है कि इस सिद्धान्त का कठोरता से पालन करने में अवांछनीय स्थिति उत्पन्न हो सकती है, दूसरी ओर न पालन संगठन में अकार्यकुशलता एवं अनुत्तरदायित्व की भावना के अवगुण आ सकते हैं।

टेलर के विचारों के अनुरूप जॉन डी॰ बिलेट ने बताया है कि आवश्यकता इस बात की है कि आज एकतंत्र के विचार में इस बात के लिए समन्वय बैठाया जाना चाहिए कि किसी भी कार्य के लिए द्विमुखी निरीक्षण किये जा सके अर्थात तकनीकी एवं प्रशासकीय दोनों प्रकार के निरीक्षण भिन्न–भिन्न व्यक्तियों द्वारा किये जा सकते हैं। परन्तु इस बात का ध्यान रखना होगा कि किसी भी परिस्थिति में कोई कर्मचारी परस्पर विरोधी आदेश के अधीन न रहे, क्योंकि उससे कार्य–संचालन में भारी भ्रम उत्पन्न हो जायेगा।

नियन्त्रण का क्षेत्र

(Span of Control)

औपचारिक संगठन की पदसोपानीय व्यवस्था में संगठन अनेक लम्बवती–स्तरों में विभाजित रहता है। संगठन के प्रत्येक उच्च अधिकारी का अपने अधीनस्थों के कार्यों का पर्यवेक्षण करना होता है। प्रत्येक अधीनस्थ कर्मचारी अपने से सर्वोच्च अधिकारी की आज्ञाओं का पालना करता है। यहां प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि एक अधिकारी सफलतापूर्वक कितने अधीनस्थों के कार्यों का पर्यवेक्षण, निरीक्षण एवं नियन्त्रण कर सकता है? इसी प्रश्न से उत्पन्न हुआ संगठन का सिद्धान्त 'नियन्त्रण का क्षेत्र' है। इसका सम्बन्ध संगठन में पदसोपान के विभिन्न चरणों के अधिकारियों के अधीनस्थों की संख्या से है। इस सिद्धान्त को प्रशासकीय संगठन के लिए आदर्श मार्ग–दर्शक सिद्धान्त माना जाता है, यद्यपि विज्ञान एवं तकनीकी विकास एवं प्रबन्ध में मशीनीकरण के कारण नियन्त्रण के क्षेत्र की मान्यताओं में परिवर्तन आया है। संगठन के मानवीय तत्वों के संदर्भ में इस सिद्धान्त की उपादेयता बनी हुई है।

अर्थ:

साहित्यिक रूप में "नियन्त्रण" शब्द का अर्थ हाथ के अंगूठे एवं तर्जनी के ऊपरी भाग का जब मिलाया जाता है तो उसके बीच की दूरी को कहा जाता है, नियन्त्रण शब्द का तात्पर्य शक्ति या सत्ता से है जो निर्देश देती है। लोक प्रशासन में नियन्त्रण के क्षेत्र का संदर्भ उन अधीनस्थों की संख्या से होता है जिसे एक अधिकारी प्रभावशाली तरीके से नियन्त्रित करता है। इसे विभिन्न नामों से भी पुकारा जाता है जैसे "ध्यान क्षेत्र", "पर्यवेक्षण क्षेत्र" तथा "उत्तरदायित्व क्षेत्र" इत्यादि। अवस्थी एवं माहेश्वरी ने इसकी परिभाषा देते हुए लिखा है, "नियन्त्रण का क्षेत्र साधारण रूप में अधीनस्थ एवं कार्यों की इकाइयों की उस संख्या को कहा जाता है जिन्हें एक प्रशासक व्यक्तिगत रूप में निर्देशित करता है।" डिमाक एवं डिमाक के अनुसार, "नियन्त्रण का क्षेत्र किसी उद्यम की मुख्य कार्यपालिका तथा उसके प्रमुख साथी कार्यालय के बीच सीधे तथा सामान्य संचार की संख्या एवं क्षेत्र है।" निकोलस हेनरी के शब्दों में, "नियन्त्रण का क्षेत्र का अर्थ एक मैनेजर द्वारा सीमित संख्या में अधीनस्थों के सही तरीके से नियन्त्रण से है।"

इस सिद्धान्त का औचित्य इस तथ्य में निहित है कि मानवीय ज्ञान की कुछ सीमाएं होती हैं। यदि इन सीमाओं के आगे जाकर कार्य करने के लिए बाध्य किया जाता है तो संगठन पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। यह "ध्यान के क्षेत्र" पर निर्भर करता है। मनोवैज्ञानिकों ने "ध्यान" के क्षेत्र में अनेक प्रयोग किए हैं तथा यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया है कि सामान्यतया एक आदमी केवल निश्चित संख्या तक ही एक समय में ध्यान रख सकता है। संगठन में यह सिद्धान्त मनोविज्ञान पर आधारित है। यह एक सार्वभौमिक तथ्य है कि कोई भी पर्यवेक्षक चाहे वह कितना ही योग्य क्यों न हो असीमित व्यक्तियों के कार्यों का पर्यवेक्षण नहीं कर सकता।

नियन्त्रण के क्षेत्र का गणित:

नियन्त्रण के क्षेत्र की संख्या के बारे में विद्वानों में मतभेद है। सेकलर हडसन एवं ग्राहम वालास ने यह संख्या 10 से 12 बताई है। आई॰ हेमिल्टन ने इसे 4 बताया है। उरविक ने संगठन के ऊपरी स्तर पर यह संख्या 5–6 तथा निम्नस्तर पर 10–12 बताई है जबकि हेनरी फयोल ने 5–6 बताई है।

बी॰ ए॰ ग्रेकुनाज ने नियन्त्रण के क्षेत्र की संख्या के बारे में गणितीय सूत्र प्रदान किया है। प्रत्येक निष्पादक को स्वयं एवं अपने अधीनस्थों के बीच के सम्बन्धों का उत्तरदायित्व भी वहन करना होता है। एक निष्पादक एवं उसके अधीनस्थ के सम्बन्ध को एकल सम्बन्ध के आधार पर नहीं देखा जा सकता क्योंकि सम्बन्ध गणितीय मात्रा में बढ़ते जाते हैं। अपने अध्ययन के आधार

[illegible] एक गणितीय सूत्र का विकास किया है जो नियन्त्रण के क्षेत्र की जटिलता के परीक्षण एवं सम्बन्धों की संख्या बताने मे सहायक है।

N n (n²è2+n-1)

(N सम्बन्धों की कल संख्या)

(n अधीनस्थों की संख्या)

यदि एक अधिकारी के अधीन 4 अधीनस्थ हैं तो उसे कुल निम्नलिखित संख्या में सम्बन्ध देखने होंगे:

N = 4 (4x4è2 + 4-1)

= N = 4 (8+4-1)

= N = 4 (11)

-N = 44

अर्थात् उसे 44 सम्बन्धों को देखना होगा।

ग्रेकुनाज ने अपने इस सूत्र के द्वारा यह प्रमाणित कर दिया कि निष्पादक को अपने अधीनस्थों के व्यापक सम्बन्धों को देखना पड़ता है, अतः नियन्त्रण का क्षेत्र बिल्कुल सीमित होना चाहिए। उदाहरण के रूप में यदि एक अधिकारी के चार अधीनस्थ हैं तो उसे 44 सम्बन्धों को देखना पड़ता है।

नियन्त्रण के क्षेत्र का गणित निम्नलिखित तत्त्वों से प्रभावित होता है–

(i) कार्य, (ii) समय, (iii) स्थान, (iv) पर्यवेक्षण एवं अधीनस्थों का व्यक्तित्व, (v) प्रत्यायोजन, (vi) पर्यवेक्षण की तकनीकी।

कार्य की प्रकृति अगर नियमित, दोहरावबाली, नापने योग्य है तो नियन्त्रण का क्षेत्र व्यापक हो सकता है। इसी प्रकार संगठन एक ही स्थान पर केन्द्रित है एवं बिखरा हुआ नहीं है, पुराना एवं व्यवस्थित है तो भी नियन्त्रण का क्षेत्र व्यापक हो सकता है। संगठन में पर्यवेक्षक कुशल है तथा अधीनस्थ प्रशिक्षण प्राप्त निष्ठावान कार्यकर्ता है, पर्यवेक्षण के लिए आधुनिक तकनीकें उपलब्ध हैं। पर्याप्त मात्रा में प्रत्यायोजन है तो भी संगठन में नियन्त्रण का क्षेत्र व्यापक हो सकता है।

हर्बर्ट साइमन ने इस सम्बन्ध में दो प्रकार के संगठन बताये हैं–

सीमित नियन्त्रण का क्षेत्र

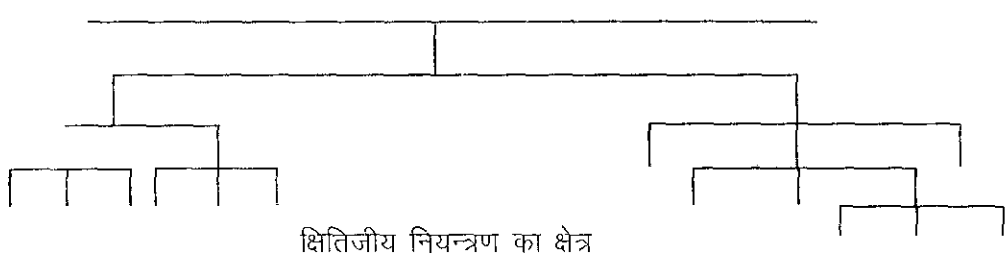

क्षितिजीय नियन्त्रण का क्षेत्र

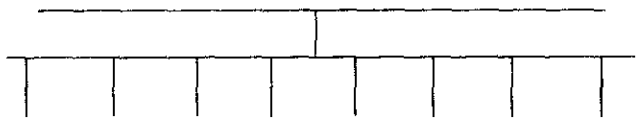

प्रथम में नियन्त्रण का क्षेत्र सीमित है क्योंकि संगठनीय पदसोपान के कई स्तर हैं। अतः एक निष्पादक सीमित संख्या मे ही अधीनस्थों को देख सकता है। द्वितीय में पदसोपान के कम चरण होने के कारण नियन्त्रण का क्षेत्र व्यापक हो सकता है। नियन्त्रण के क्षेत्र में एक सीमा तक संख्या बढ़ जाने से आदेश का संचार गलत दिशा में चला जाता है तथा नियन्त्रण अप्रभावशाली एवं कमजोर हो जाता है।

अतः नियन्त्रण के क्षेत्र की संख्या के बारे में निम्न निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं–

(i) संगठन के ऊपरी सतह पर नियन्त्रण का क्षेत्र सीमित एवं निम्न स्तर पर व्यापक होता है।

(ii) पदसोपान के अनेक स्तर होने पर नियन्त्रण का क्षेत्र सीमित एवं कम स्तर होने पर ...

(iii) नियन्त्रण का क्षेत्र संगठन के कार्य, आयु, स्थिति, कार्मिकों का व्यक्तित्व इत्यादि तत्त्वों ...

(iv) नियन्त्रण के क्षेत्र में केवल सर्वोच्च द्वारा अधीनस्थों के नियन्त्रण का ही ध्यान नहीं अपितु संगठ... भी ध्यान रखना पड़ता है।

नियन्त्रण के क्षेत्र के बारे में पुनर्विचार

वर्तमान समय में नियन्त्रण के क्षेत्र के सिद्धान्त के बारे में पुनर्विचार किया जा रहा है। प्रशासन में स्वचलन, सूचना के क्षेत्र में क्रान्ति तथा विशेषज्ञों की बढ़ती भूमिका इस परिवर्तन के लिए उत्तरदायी है। स्वचलन एवं मशीनी प्रक्रिया ने ... गति एवं सरल प्रक्रियाएं प्रदान की हैं। आँकड़ों की गणना, लेखांकन, खरीद इत्यादि के क्षेत्र में मशीनीकरण का प्रयोग किया जा रहा है। स्वचलन से स्टोर, रिकार्ड, बिल बनाने, वेतन बिल इत्यादि का कार्य सरल हो गया है। हम कम्प्यूटर एवं इलक्ट्रॉनिक्स के युग में रह रहे हैं जहाँ प्रशासन को सही एवं शीघ्र ही आंकडे एवं सूचनाएं उपलब्ध हो जाती हैं। अतः नियन्त्रण का क्षेत्र काफी व्यापक हो गया है।

केन्द्रीयकरण तथा विकेन्द्रीकरण

केन्द्रीयकरण एवं विकेन्द्रीयकरण संगठन के महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है। यह संगठन के निर्णय की शक्ति के वितरण से सम्बन्धित है। केन्द्रीयकरण के अन्तर्गत सत्ता संगठन के शिखर पर केन्द्रित रहती है। सत्ता के निम्न स्तर निर्देशना, परामर्श ... के लिए सर्वोच्च सत्ता पर निर्भर रहते हैं। दूसरी ओर विकेन्द्रीयकरण के अन्तर्गत प्रशासकीय सत्ता का विभिन्न स्तरों ... में विभाजन रहता है। सत्ता के निम्न स्तर बहुत से मामलों पर स्वयं निर्णय लेते रहते हैं। दोनों प्रकार के सिद्धान्तों के अपने गुण–दोष हैं।

अर्थः

औपचारिक रूप में सत्ता का संगठन के शिखर पर केन्द्रित होना केन्द्रीयकरण कहलाता है। ऐलेन के शब्दों में, "संगठन में केन्द्रीय बिन्दुओं पर सत्ता का व्यवस्थित एवं निरन्तर आरक्षण केन्द्रीयकरण है।" हेनरी फेयोल के अनुसार, "प्रत्येक कार्य जहां अधीनस्थ की भूमिका महत्त्वपूर्ण रहती है वहां विकेन्द्रीयकरण होता है, जहाँ कम रहती है वह केन्द्रीयकरण होता है। ... के शब्दों में– "अत्याधिक केन्द्रीयकृत व्यवस्था में स्थानीय इकाईयाँ केवल कार्यवाहक अभिकरणों के रूप में कार्य करती हैं। प्रत्येक कार्य केन्द्रीय कार्यालय की ओर से किया जाता है।"

विकेन्द्रीयकरण की कुछ परिभाषाएँ निम्न हैं–

ऐलेन–"विकेन्द्रीयकरण कार्यस्थल पर सत्ता का व्यवस्थित एवं निरन्तर प्रत्यायोजन है।"

एल॰ डी॰ व्हाइट –"विकेन्द्रीयकरण की प्रक्रिया में उच्च स्तर से निम्न स्तर को सत्ता का स्थानान्तरण है।

हाल एवं जॉनसन –"संगठन की वह स्थिति विकेन्द्रीयकरण है जहाँ पर्याप्त मात्रा में सत्ता एवं उत्तरदायित्व का प्रत्यायोजन रहता है

केन्द्रीयकरण के लाभ
(Merits of Centralization)

केन्द्रीयकरण के निम्नलिखित लाभ हैं:

1. प्रशासन की केन्द्रीकृत व्यवस्था में मुख्य कार्यपालिका का अधिक नियन्त्रण होता है। उसके द्वारा प्रशासन के सभी अंगों पर सक्रिय तथा प्रभावशाली नियन्त्रण रखा जाता है।
2. इस व्यवस्था के अन्तर्गत प्रशासन में एकरूपता को पक्का करती है। इस प्रकार केन्द्रीकृत व्यवस्था में कार्य का सम्पादन देश भर में एक ही ढंग से तथा एक सी ही सामान्य नीतियों तथा सिद्धान्तों के अनुसार किया जाता है।
3. प्रशासन की केन्द्रीकृत व्यवस्था में नियमों की एकरूपता के कारण सामान की खरीद तथा वितरण और कर्मचारी वर्ग से संबधित मामलों में दुरुपयोग तथा अनियमितताएं (Irregularities) नहीं होने पाती।

केन्द्रीयकरण की हानियां
(Demerits of Centralization)

केन्द्रीयकरण की हानियां निम्नलिखित हैं:

1. केन्द्रीयकरण प्रशासन में निर्णय लेने में दूर हो जाती है। इसमें तुरन्त निर्णय लेना तथा उन्हें तुरन्त लागू करना सम्भव नहीं हो पाता। इससे प्रशासन में लाल–फीतशाही तथा अन्य कई कठिनाइयां और परेशानियां उत्पन्न हो जाती हैं।
2. केन्द्रीकृत प्रशासकीय व्यवस्था को स्थानीय परिस्थितियों के विषय में कम जानकारी होती हैं वह एकरूपता पर काफी जोर देती है जो कि हानिकारक है। इससे अकुशलता के प्रोत्साहन होता है।
3. केन्द्रीयकरण से प्रशासन में लचीलेपन (Flexibility) की कमी तथा कठोरता उत्पन्न हो जाती है। तीव्र गति से परिवर्तनशील आधुनिक युग में कठोर सिद्धान्तों तथा प्रक्रियाओं के अनुसार चलाई जा रही सरकार प्रगति तथा सुधार के मार्ग में एक बहुत बड़ी बाधा होती है।
4. केन्द्रीयकरण के परिणामस्वरूप प्रशासन में लोक–अभिक्रम (Popular Initiative) तथा जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से प्रशासन में भाग लेने के अवसर बहुत कम हो जाते हैं। इससे लोकतन्त्र कमजोर हो जाता है। जनता का सहयोग किसी भी योजना की सफलता के लिए अनिवार्य होता है, परन्तु केन्द्रीकृत व्यवस्था लोगों को प्रशासन के साथ सहयोग करने के लिए प्रोत्साहन प्रदान नहीं करती।
5. केन्द्रीकृत व्यवस्था में मुख्य कार्यालय अनेक बार स्थानीय दशाओं की जानकारी के बिना ही कार्य करता है। उसे स्थानीय लोगों की आवश्यकताओं तथ समस्याओं का सही ज्ञान नहीं होता। इसलिए वह स्थानीय समस्याओं के सम्बन्ध में गलत निश्चय तथा गलत अनुमानों पर आधारित निर्णय ले लेता है, जिन से बहुत हानि होती है।
6. यह अधिनायकवाद (Dictatorship) को प्रोत्साहन प्रदान करती है।
7. यह कर्मचारियों की सोचने की शक्ति तथा पहलकदमी करने की भावना को समाप्त कर देती है।
8. केन्द्रीयकृत व्यवस्था में निरीक्षण एवं नियन्त्रण तथा लेखा–पड़ताल आदि के लिए अधिक कर्मचारी रखने पड़ते हैं। इससे प्रशासकीय खर्च बढ़ जाता है। इसलिए मितव्ययिता तथा कार्यकुशलता की दृष्टि से भी केन्द्रीकृत व्यवस्था ठीक नहीं है।

विकेन्द्रीयकरण की लाभ
(Merits of Decentralization)

विकेन्द्रीयकरण के निम्नलिखित लाभ हैं:

1. आम जनता द्वारा प्रशासन में भाग लेना तथा प्रशासन पर लोकप्रिय नियन्त्रण (Popular Control) प्रशासन की विकेन्द्रीकृत व्यवस्था में ही सम्भव है। ऐसी व्यवस्था लोकतन्त्र को वास्तविक, व्यापक तथा शक्तिशाली आधार प्रदान करती है।
2. विकेन्द्रीयक त व्यवस्था में अधिकार, कार्य तथा उत्तरदायित्व का विभाजन हो जाने के कारण उच्चाधिकारियों को राहत मिलती है। ये दिन–प्रतिदिन के छोटे–मोटे कार्यों से मुक्त हो जाते हैं। इस प्रकार वह अपने समय तथा शक्ति का प्रयोग नीति तथा नियोजन की बड़ी–बड़ी समस्याओं के समाधान के लिए कर सकते हैं।
3. विकेन्द्रीयकरण नियमों तथा विनियमों को लागू करने में प्रोत्साहन देती है।
4. विकेन्द्रीयकरण से कार्य को तेजी से करने तथा लाल–फीताशाही को घटाने में सहायता करती है। इसमें मुख्य कार्यालय को बार–बार हवाले देने की आवश्यकता नहीं होती, इसलिए कार्य में देरी नहीं होती। इससे प्रशासकीय सुयोग्यता भी बढ़ जाती है।
5. इस व्यवस्था में प्रशासन स्वयं को विशिष्ट स्थानीय दशाओं के अनुकूल बना सकता है। प्रशासन के नियमों, कानूनों तथा नीतियों का शिकार होने वाले लोगों को अपनी आवश्यकताओं तथा समस्याओं को स्थानीय प्रशासन के सामने प्रस्तुत करने का अवसर मिलता है। इससे प्रशासन जनता के निकट आ जाता है तथा किसी विशिष्ट समस्याओं को अच्छी प्रकार समझा जा सकता है तथा उनका कुशलतापूर्वक तथा शीघ्र समाधान किया जा सकता है।
6. इस व्यवस्था के अन्तर्गत स्थानीय उलझनों को निम्न स्तरों पर ही सुलझा लिया जाता है। ऐसा करने से भिन्न–भिन्न इकाइयों में नए प्रयोग तथा मकाबले की भावना उत्पन्न होती है।

7. विकेन्द्रीयकरण क्षेत्रीय अधिकारियों को अपनी योग्यता तथा कार्यक्षमता दिखाने का अवसर [illegible] कर्मचारियों को स्वयं निर्णय करने तथा उत्तरदायित्व निभाने का प्रशिक्षण मिलता है। उनमें स्वाभिमान की भावना विकसित होती है। उनमें मनोबल (Morale) ऊँचा होता है और वह अनुभव करने लग जाते हैं कि उच्चाधिकारियों [illegible] तथा योग्यता में भारी विश्वास है। यह भावना क्षेत्रीय अधिकारियों को और अधिक उत्तरदायी तथा कर्तव्यपरायण बना [illegible] है और वह अपने कार्य अधिक उत्साह, विवेक तथा सच्ची लगन से करते हैं।

८. विकेन्द्रीकृत व्यवस्था किसी भी संकट के दबावों तथा खिचावों को अधिक अच्छी प्रकार सहन कर सकती [illegible] के अन्तर्गत अधिकारियों को यह सत्ता प्राप्त होती है कि वे परिस्थितियों की माग के अनुसार [illegible] इसलिए वे किसी भी आकस्मिक अथवा संकटकालीन स्थिति का अधिक अच्छी तरह से सामना [illegible]

विकेन्द्रीयकरण क्षेत्रीय संस्थाओं एवं अभिकरणों को मज़बूत बनाती है।

विकेन्द्रीयकरण की हानियां (Demerits of Decentralization)

विकेन्द्रीयकरण की हानियां निम्नलिखित हैं–

1. प्रशासन की विकेन्द्रीकृत व्यवस्था के अन्तर्गत एक समान राष्ट्रीय नीति (A Uniform National Policy) [illegible] कठिन हो जाता है। क्योंकि यह हो सकता है कि विभिन्न क्षेत्रीय इकाइयां भिन्न–भिन्न प्रकार की [illegible] of Action) अपना लें।

२. विकेन्द्रीकृत व्यवस्था से विभिन्न क्षेत्र स्थलों ,थ्मसक`जंजपवदेद्व के बीच समुचित समन्वय (Proper Coordination) का अभाव हो सकता है। क्योंकि इसमें यह हो सकता है कि एक क्षेत्रीय कार्यालय राष्ट्रीय नीति से पृथक अपनी [illegible] नीति को लागू कर दे।

3. विकेन्द्रीकृत व्यवस्था के कारण स्थानीय अधिकारियों में राष्ट्रीय हित (National Interest) [illegible] हो सकती है। क्योंकि स्थानीय अधिकारी स्थानीय समस्याओं में बहुत अधिक उलझ हुए होते हैं, इसलिए [illegible] (Short-sighted) तथा संकुचित विचारों वाले (Narrow-minded) बन सकते हैं। उनका मानसिक [illegible] सीमित [illegible] जाता है कि वह राष्ट्रीय समस्याओं के संदर्भ में विचार करना ही छोड़ देते हैं।

4. विकेन्द्रीकृत व्यवस्था में स्थानीय राजनीति (Local Politics) स्थानीय कार्यालय पर हावी हो सकती [illegible] स्थानीय राजनीतिक एवं नेता प्रशासन के दिन–प्रतिदिन के कार्यों में हस्तक्षेप करने लग जाते हैं। इसके फलस्वरूप [illegible] में भ्रष्टाचार तथा अकुशलता आ जाती है।

निष्कर्ष
(Conclusion)

केन्द्रीयकरण तथा विकेन्द्रीयकरण दोनों प्रकार की व्यवस्थाओं के लाभों तथा हानियों का विश्लेषण करने के पश्चात हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि दोनों में से किसी को भी अच्छे संगठन का पूर्ण सिद्धान्त नहीं माना जा सकता। ऐसी दशा में लेखकों ने या तो यह सुझाव दिया है कि दोनों सिद्धान्त के बीच समझौता कर लिया जाये अथवा उनका विचार है कि प्रत्येक परिस्थिति की मांग के अनुसार यह तय किया जाये कि किस संगठन को केन्द्रीयकरण के तथा किस संगठन को विकेन्द्रीयकरण के आधार पर खड़ा किया जायेगा। वास्तव में इन दोनों की प्रवृत्तियों को साध्य (Ends) नहीं समझ लेना चाहिए।

केन्द्रीयकरण एवं विकेन्द्रीयकरण को प्रभावित करने वाले तत्त्व

यद्यपि केन्द्रीयकरण एवं विकेन्द्रीयकरण दो विरोधी दृष्टिकोण हैं परन्तु हम यह कल्पना नहीं कर सकते कि कोई भी संगठन न तो पूर्ण रूप से विकेन्द्रीकृत हो सकता है और न ही केन्द्रीयकृत। दोनों एक दूसरे के पूरक सहयोगी कहे जा सकते हैं जो संगठन के स्थायित्व उत्तरदायित्व, कार्यकुशलता एवं प्रभावशीलता के लिए आवश्यक है। निश्चय ही संगठन के [illegible] हैं जो केन्द्रीयकरण का सकेत देते हैं जैसे–प्रबन्धकीय निर्माण एवं पहल, परन्तु जैसा कि [illegible] इन परिस्थितियों में विकेन्द्रीयकरण की मात्रा अधिक रहती है। जहाँ निर्णय अधिक मात्रा में संगठन के [illegible] पर किये जाते हैं।"

जे. डब्ल्यू. फेसलर ने निम्न चार तत्वों को बताया है जो केन्द्रीयकरण एवं विकेन्द्रीयकरण को प्रभावित करते हैं–

(i) उत्तरदायित्व

(ii) प्रशासकीय

(iii) कार्यात्मक

(iv) संगठन के [illegible] प्रभाव जेसे–जनता

i. **उत्तरदायित्व का तत्त्व (Factor of Responsibility):** विकेन्द्रीयकरण पर रोक लगाता है तथा यह केन्द्रीयकरण के पक्ष में है। विभाग का अध्यक्ष विभाग के प्रत्येक कार्य के लिए अन्तिम रूप से उत्तरदायी होता है। यदि किसी विभाग के कार्यकरण (Functioning) में कोई गलती हो जाती है तो उसके लिए विभाग के अध्यक्ष को ही उत्तरदायी ठहराया जाता है। इसलिए यह स्वाभाविक है कि वह अपनी शक्ति को विकेन्द्रित नहीं करना चाहता। वह यही चाहता है कि अधिक महत्त्वपूर्ण मामलों पर निर्णय करने की शक्ति उसके अपने हाथों में रहे।

ii. **प्रशासकीय तत्त्व (Administrative Factor):** केन्द्रीयकरण तथा विकेन्द्रीयकरण को प्रभावित करने वाले कई प्रशासकीय तत्त्व हैं। इनमें से कुछ इस प्रकार हैं – अभिकरण की आयु (Age of the agency), उसकी नीतियों तथा कार्यविधियों की स्थिरता, उसके क्षेत्रीय कर्मचारियों की योग्यता एवं क्षमता, कार्य की गति तथा उसमें मितव्ययिता (Economy) के लिए दबाव आदि। यहां तक अभिकरण की आयु का सम्बन्ध है, पुराने अभिकरणों में विकेन्द्रीयकरण सरल होता है क्योंकि उनके अन्दर प्रक्रियाएं तथा परम्पराएं भली प्रकार स्थापित हो चुकी होती हैं, जबकि नए अभिकरणों में छोटी–छोटी बातों पर उच्चतर अधिकारियों का निर्णय प्राप्त करना आवश्यक होता है। यदि किसी संगठन की नीतियों में स्थिरता पाई जाती है तो वहां विकेन्द्रीयकरण किया जाता है, जिस संगठन की नीतियों में बहुधा परिवर्तन किया जाता हो वहां केन्द्रीयकरण ही किया जाता है। यदि संगठन का क्षेत्र–कार्मिक (Field Personnel) अनुभवी, कार्यकुशल तथा क्षमतामयी हो तो वहां विकन्द्रीयकरण कर दिया जाता है, अन्यथा केन्द्रीयकरण ही ठीक रहता है। गति तथा मितव्ययिता की दृष्टि से केन्द्रीयकरण ही अनुकूल पड़ता है।

iii. **कार्यात्मक तत्त्व (Functional Factor):** किसी अभिकरण द्वारा सम्पन्न किए जाने वाले कार्य भी केन्द्रीयकरण अथवा विकेन्द्रीयकरण के निर्धारण में सहायता करते हैं। एक ही कार्य करने वाले अभिकरण में केन्द्रीयकरण किया जाता है। बहुत प्रकार के कार्यो ;डनसजप.निदबजपवदेद्ध को सम्पन्न करने वाले अभिकरण में विकेन्द्रीकरण किया जाता है। यदि अभिकरण द्वारा सम्पन्न किए जाने वाले कार्यों में राष्ट्रीय एकरूपता ;न्दपवितउपजलद्ध लाने की आवश्यकता है तो इससे केन्द्रीयकरण को प्रोत्साहन मिलेगा और यदि अभिकरण द्वारा किये जाने वाले कार्यों में भिन्न–भिन्न प्रदेशों के अन्दर बहुरूपता ;क्पअमतेपजलद्ध लानी आवश्यक हो, तो इससे विकेन्द्रीयकरण को प्रेरणा मिलेगी।

iv. **बाह्य तत्त्व (External Factor):** कुछ ब्रह्म तत्त्व भी केन्द्रीयकरण तथा विकेन्द्रीयकरण को प्रभावित करते हैं। यदि किसी अभिकरण को संगठन से बाहर के व्यक्तियों का सहयोग प्राप्त करने की आवश्यकता हो तो वहां विकेन्द्रीयकरण ही किया जाता हैं। यदि किसी अभिकरण को विकास योजना जैसे किसी कार्यक्रम को लागू करने के लिए लोक समर्थन अथवा स्थानीय जनता के समर्थन की आवश्यकता हो तो उसकी प्राप्ति के लिए विकेन्द्रीयकरण अनिवार्य हो जाता है। देश के विशिष्ट भागों में प्रभावशाली राजनीतिक दलों के दबाव के कारण भी विकेन्द्रीयकरण का सहारा लेना पड़ता है। यदि किसी अभिकरण को अन्य अभिकरणों के साथ मिलकर कार्य करना पड़ता है तो भी विकेन्द्रीयकरण को प्रोत्साहन मिलता है।

प्रशासकीय संगठन में केन्द्रीयकरण एवं विकेन्द्रीयकरण दोनों ही प्रकार की प्रवृत्तियां विद्यमान रहती हैं। इन्हें सावधानी से अपनाये जाने की आवश्यकता रहती है। अन्त में एम. पी. शर्मा के शब्दों में, "न तो केन्द्रीयकरण और न ही विकेन्द्रीयकरण को अच्छे संगठन का एकमात्र निरपेक्ष सिद्धान्त माना जा सकता है।"

एकीकृत बनाम स्वतन्त्र व्यवस्था

संगठन के सिद्धान्तों में एक सिद्धान्त संगठन के स्वरूप से सम्बन्धित एकीकृत बनाम स्वतंत्र संगठन का है, एकीकृत संगठन को विभागीय संगठन भी कहा जाता है। इसमें समान सेवाएं सम्पन्न करने वाले अभिकरण विभाग में सम्बद्ध कर दिये जाते हैं।

ये सभी मुख्य निष्पादक की सत्ता के अन्तर्गत रखे जाते हैं। एम॰ पी॰ शर्मा के अनुसार "एकीकृत प्रशासनिक व्यवस्था के अन्तर्गत प्रशासन की विविध इकाइयाँ मुख्य कार्यपालिका के अधीन समान सूत्र पर जुड़ी हुई होती हैं।" विलोबी के शब्दों में, "एकीकृत व्यवस्था में यह प्रयास किया जाता है कि जिन सेवाओं की कार्यवाही एक सी समान परिधि में आती है उनके बीच परस्पर घनिष्ठ रूप से कार्यकारी सम्बन्ध कायम रखे जाते हैं। इन सभी सेवाओं का विभाग में वर्गीकरण कर दिया जाता है जिनका अध्यक्ष ऐसा व्यक्ति होता है जो उन सब पर सामान्य नजर रखे और यह देखे कि सामान्य उद्देश्य की प्राप्ति में एक स्वर से कार्य करे।"

इस प्रकार एकीकृत व्यवस्था में सत्ता सूत्र मुख्य निष्पादक से होता हुआ व्यवस्था के सभी अंगों तक पहुंचता है और संगठन में एक आंगिक एकता बन जाती है।

एकीकृत व्यवस्था के लाभः

एकीकृत व्यवस्था के कई लाभ हैं जैसे–

(i) इस व्यवस्था में उत्तरदायित्व क्षेत्राधिकार पूर्णतया स्पष्ट रहता है।

(ii) प्रशासन की समस्त इकाईयाँ एक सूत्र में बंधी रहती हैं जिससे आदेश की एकता बनी रहती है।

(iii) मुख्य निष्पादक के प्रति उत्तरदायी रहते हुए विभिन्न इकाइयों में सहयोग एवं समन्वय बना रहता है

(iv) विभिन्न विभागों के आंकड़े एवं सूचनाओं का एक स्थान पर संग्रह सरलतापूर्वक हो सकता है जो भावी योजनाओं के निर्माण में सहायक होती है।

एकीकृत व्यवस्था के दोषः

परन्तु यह प्रणाली पूर्णतया दोषमुक्त नहीं है। इस प्रणाली में प्रत्येक कार्य "उचित मार्ग द्वारा" होता है, अतः संगठन के कार्य संचालन में अनावश्यक देरी होती है। इस व्यवस्था में मुख्य निष्पादक बहुत अधिक शक्ति सम्पन्न बन जाता है। एकीकृत व्यवस्था कहीं भी पूर्णरूपेण स्थापित नहीं की जा सकती।

अतः संगठन का दूसरा स्वरूप जिसे *"स्वतन्त्र व्यवस्था"* कहा जाता है का भी अपना महत्त्व है। यह व्यवस्था एकीकृत व्यवस्था से पूर्णतया भिन्न नहीं हैं, बल्कि उसके साथ मात्रात्मक अन्तर रखती है। कोई भी प्रशासकीय संगठन न तो पूर्णतया एकीकृत हो सकता है और न ही स्वतंत्र। स्वतंत्र व्यवस्था में प्रत्येक स्तर वाली संस्थाएं या इकाईयां सत्ता–सम्पन्न होती हैं। विलोबी के अनुसार, "स्वतन्त्र व्यवस्था में प्रत्येक एजेन्सी एक स्वतन्त्र ईकाई है। उसका अन्य इकाइयों से या तो सीधा सम्बन्ध होता ही नहीं है या बहुत कम होता है। इस प्रणाली के अन्तर्गत सत्ता का सूत्र क्रियाशील एजेन्सी से सीधा मुख्य कार्यपालिका या विधानमण्डल को जाता है जिसके द्वारा वह निर्मित किया गया था और जिसके द्वारा वह नियन्त्रित होता है। इस प्रणाली में विभिन्न विभाग एक दूसरे से सम्बन्धित नहीं रहते तथा उनका अलग–अलग उत्तरदायित्व होता है। स्वतन्त्र व्यवस्था के अन्तर्गत परस्पर तनाव या टकराहट, समन्वय का अभाव, नियंत्रणहीनता इत्यादि की कमियां रहती हैं।

एकीकृत व्यवस्था को स्वतन्त्र व्यवस्था की तुलना में श्रेष्ठ माना गया है। विलोबी के शब्दों में, "इन दो प्रणालियों के सापेक्ष लाभ के बारे में लेशमात्र भी सन्देह नहीं हो सकता। प्रायः प्रत्येक दृष्टि से एकीकृत व्यवस्था बहुत अधिक उपयोगी है।" एकीकृत व्यवस्था एकीकृत स्वरूप, प्रभावशाली नियन्त्रण, उत्तरदायित्व एवं प्रशासकीय सत्ता की स्पष्टता एवं भावी योजनाओं के निर्माण में सुगमता की दृष्टि से स्वतन्त्र व्यवस्था से अधिक उपयोगी कही जा सकती है।

महत्वपूर्ण प्रश्न

1. संगठन से क्या तात्पर्य है? इसके सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए।
2. पदसोपान के सिद्धान्त का अर्थ क्या है? इसके गुण व दोषों का वर्णन कीजिए।
3. आदेश की एकता के सिद्धान्त का अर्थ एवं इसकी व्यवहारिकता पर प्रकाश डालिए।
4. केन्द्रीयकरण तथा विकेन्द्रीयकरण से आप क्या समझते है? इनके पक्ष एवं विपक्ष में तर्क दीजिए।

अध्याय 7

समन्वय एवं पर्यवेक्षण

Co-ordination and Supervision

समन्वय संगठन की सफलता की पहली आवश्यकता है। वर्तमान समय में संगठनों की व्यापकता एवं जटिलताओं के संदर्भ में समन्वय का महत्त्व और भी अधिक बढ़ गया है। मूने के शब्दों में, "समन्वय संगठन का पहला सिद्धान्त है जो अन्य अधीनस्थ सिद्धान्तों को अपने में समावेश कर लेता है।" प्रत्येक संगठन अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए विभिन्न व्यक्तियों से संगठन के भिन्न-भिन्न कार्य करवाता है। संगठन में कार्यों की विविधता कार्य विभाजन के सिद्धान्त को जन्म देती है। विशेषकर सरकारी संगठन विभिन्न विभागों, सेवाओं एवं ऐजन्सियों में विभाजित रहते हैं। इन विभागों, सेवाओं एवं एजेन्सियों के कार्यों में तारतम्य, सद्भावना एवं प्रभावशीलता बनाये रखने के लिए समन्वय आवश्यक हो जाता है। समन्वय को प्रबन्ध का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य भी कहा जाता है। यह उद्देश्य के साथ एकता तथा उनके ठीक प्रकार से क्रियान्वित करने से सम्बन्ध रखता है। समन्वय के कार्य के अन्तर्गत यह देखा जाता है कि संगठन की गतिविधियाँ सही समय पर ठीक प्रकार से संचालित हो। हैरी के शब्दों में "समन्वय उद्देश्यों की सफलतापूर्वक प्राप्ति के लिए जोड़ने वाला प्रयत्न है।" समन्वयकर्ता की तुलना आर्केस्ट्रा निदेशक से की जा सकती है, जो आर्केस्ट्रा पार्टी में सुन्दर संगीत के लिए सभी को ठीक प्रकार से निर्देशित करता है।

समन्वय का अर्थ

साधारण शब्दों में समन्वय का अर्थ संस्थाओं के कार्यों की समुचित व्यवस्था एवं अधिकारों एवं कार्यों में अतिराव रोकना है। यह उद्देश्यों के संदर्भ में मतभेदों या टकरावों को रोकता है। संगठन का उद्देश्य कार्यों के विभाजन का ठीक प्रकार से संचालन एवं उनमें एकता रखना होता है, इसी क्रिया को समन्वय कहा जाता है।

परिभाषाएं:

विभिन्न विद्वानों द्वारा समन्वय को निम्न प्रकार से प्रभाषित किया गया है:

जे॰ डी॰ मूने के अनुसार समन्वय "सामान्य उद्देश्य की प्राप्ति हेतु एकता प्रदान करने के लिए समूहों के कार्यों की समुचित व्यवस्था है।"

हैरी के शब्दों में "कम से कम सम्बन्धित रहते हुए तथा अधिकाधिक सामूहिक प्रभावशीलता के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए संगठन के विभिन्न अंगों के कार्यों एवं शक्तियों के परस्पर सम्बन्धों को संचालित करने का प्रयास समन्वय है।"

हेनरी फेयोल के अनुसार "समन्वय का अर्थ सभी गतिविधियों को एक करने एवं परस्पर जोड़ने की क्रिया है।"

चार्ल्सवर्थ के अनुसार "यह विभिन्न अंगों को एक बनाते हुए उद्यम के उद्देश्यों को प्राप्त करना है।"

सेकलर हड्सन के अनुसार "समन्वय कार्य के विभिन्न भागों में परस्पर तालमेल का महत्त्वपूर्ण कार्य है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर समन्वय की निम्नलिखित विशेषताएँ बतायी जा सकती हैं–

(1) समन्वय एक निरन्तर प्रक्रिया है।

(2) समन्वय का कार्य निष्पादकों का है।

(3) समन्वय समूहों के कार्यों की समुचित व्यवस्था है।

(4) समन्वय संगठन में एकता को बनाता है।

(5) समन्वय का उद्देश्य संगठन के लक्ष्यों को प्राप्त करना है।

(6) समन्वय सहयोग नहीं है।

समन्वय के सिद्धान्त

समन्वय कुछ निश्चित सिद्धान्तों पर आधारित रहता है। अगर इन सिद्धान्तों को ध्यान में नहीं रखा जाता है तो निश्चय ही समन्वय अपने लक्ष्यों को प्राप्त नहीं कर सकता। मेरी पारकर फॉले ने इसके लिए निम्नलिखित चार सिद्धान्त बतलाये हैं–

(1) **प्रत्यक्ष सम्पर्क का सिद्धान्त**–समन्वय का पहला सिद्धान्त है कि सम्बन्धित उत्तरदायी व्यक्तियों द्वारा सीधे सम्पर्क के माध्यम से प्रयोग में लाया जाता है। संगठन के लक्ष्य, आदर्श एवं उद्देश्यों का स्पष्टतया निर्धारण रहता है और सीधे व्यक्तिगत सम्पर्क एवं संचार के माध्यम से इन्हें प्राप्त किया जाता है।

(2) **प्रारम्भ से ही समन्वय**–समन्वय का दूसरा सिद्धान्त है कि समन्वय का कार्य योजना एवं नीति–निर्धारण के समय से ही प्रारम्भ हो जाना चाहिए। प्रारम्भ से ही सभी पक्षों को योजना एवं नीति निर्माण के साथ जोड़ देना चाहिए जिससे उनमें व्यवस्थित होने एवं संगठन के साथ एकीकरण की धारणा विकसित होगी।

(3) **समान रूप से प्रभाव एवं प्रबन्ध**–संगठन में सभी इकाइयाँ या व्यक्ति एक दूसरे को समान रूप से प्रभावित करते हैं। उदाहरण के रूप में जब A, B के साथ कार्य करता है तो A और B दोनों एक दूसरे को समान रूप से प्रभावित करते हैं।

(4) **समन्वय एक निरन्तर प्रक्रिया**–समन्वय का चौथा सिद्धान्त यह बताता है कि समन्वय एक निरन्तर प्रक्रिया है। यह संगठन में हर समय चलने वाली प्रक्रिया है। यह संगठन को गतिशील बनाता है।

समन्वय के प्रकार

सामान्यतया समन्वय तीन प्रकार का हो सकता है–

(1) **लम्बवतीय एवं ऊर्ध्वाकार समन्वय**–लम्बवतीय समन्वय का तात्पर्य है जब संगठन के विभिन्न स्तरों के बीच समन्वय स्थापित किया जाता है। यह मुख्य निष्पादक का उत्तरदायित्व है कि वह ऊपर से नीचे के सभी स्तरों पर समन्वय स्थापित करे। इस प्रकार के समन्वय की आवश्यकता संगठन के सभी स्तरों की गतिविधियों में उद्देश्य के अनुरूप एकता एवं सद्भावनापूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने के लिए होती है। लम्बवतीय समन्वय सत्ता के प्रत्यायोजन द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

ऊर्ध्वाकार समन्वय से तात्पर्य विभिन्न विभागों या समानान्तर इकाइयों के बीच समन्वय से है। यह भी कहा जाता है कि संगठन में ऊर्ध्वाकार समन्वय ही व्यावहारिक होता है। समन्वय को ऊपर से नहीं थोपा जा सकता।

(2) **आन्तरिक एवं बाह्य समन्वय**–आन्तरिक समन्वय उसे कहा जाता है जहाँ संगठन में विभिन्न विभागों, अनुभागों तथा इकाइयों के बीच स्थापित किया जाता है। यह लम्बवतीय एवं ऊर्ध्वाकार दोनों प्रकार का हो सकता है। बाह्य समन्वय का तात्पर्य संगठन के बाह्य तत्वों से सम्पर्क है। वर्तमान समय में कोई भी संगठन अकेला अपने आप में पूर्ण नहीं हो सकता। इसे जनता, मालिक, कार्मिक एवं शासन व्यवस्था के साथ सम्पर्क रखना होगा।

(3) **प्रक्रियात्मक एवं सारभूत समन्वय**–साइमन ने प्रक्रियात्मक समन्वय उसे कहा है जहाँ संगठनीय व्यवहार एवं सम्बन्ध सम्बन्धी प्रक्रियाएं हैं। सारभूत समन्वय का तात्पर्य संगठन के द्वारा की जाने वाली सेवा या गतिविधियों से है।

समन्वय का महत्त्व एवं आवश्यकता

समन्वय को प्रबन्ध का एक महत्त्वपूर्ण कार्य माना जाता है। यह एक महत्त्वपूर्ण माध्यम है जिसके द्वारा निष्पादक संगठन के विभिन्न सदस्यों में टकराव या द्वन्द्व को सीमित करता है। मूने ने इसलिए इसे "संगठन का सार" बतलाया है। चेस्टर बर्नार्ड मानते हैं कि "अगर समन्वय का स्वरूप ठीक नहीं है तो संगठन का जीवन खतरे में पड़ सकता है।" उरविक ने तो इसे "संगठन का उद्देश्य" कहा है। संगठन में जटिलताओं एवं विशेषीकरण ने तो समन्वय का महत्त्व और भी बढ़ा दिया है। ब्रेच के शब्दों में, "समन्वय की आवश्यकता संगठन की जटिलताओं एवं विविधताओं के साथ उत्पन्न हो जाती है।" संगठन में समन्वय अग्रलिखित कारणों से आवश्यक है–

(1) **संगठनीय द्वन्द्व समाप्त करने हेतु**–प्रायः यह देखा जाता है कि संगठन में प्रत्येक व्यक्ति अपने–अपने तरीकों से लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं और यह भूल जाते हैं कि उनकी गतिविधियों का दूसरों पर भी प्रभाव पड़ेगा। सं न

के सदस्यों के अलग–अलग विचार होते हैं अतः इन विविधाओं को एक साथ जोड़ने के लिए समन्वय आवश्यक हो जाता है

(2) **खतरनाक प्रतियोगिता समाप्त करने हेतु**–संगठनीय सदस्यों के बीच प्रतियोगिता कभी–कभी विकृत रूप ले लेती है, जिसका संगठन पर प्रतिकूल असर पड़ता है। इससे काम में देरी, अधिक खर्च एवं अनावश्यक कार्य किए जाते हैं। समन्वय के द्वारा इन्हें रोका जा सकता है।

(3) **मितव्ययता एवं कार्यकुशलता के लिए**–संगठन में मितव्ययता एवं कार्यकुशलता के लिए समुचित समन्वय व्यवस्था अपेक्षित है। कुशल प्रबन्ध का यही महत्त्वपूर्ण पहलू है कि संगठन के लक्ष्यों को निर्धारित समय एवं लागत में पूरा किया जाये। इसमें जरा भी देरी होने पर लागत बढ़ जाती है। अगर जनशक्ति, सामग्री तथा धन सही वक्त पर उपलब्ध हो जाये जो समन्वय से सम्भव है तो कार्य समय पर पूरा हो सकता है जिससे प्रशासन में मितव्ययता एवं कार्यकुशलता संभव हो सकती है।

(4) **लक्ष्य प्राप्त करने के लिए**–किसी उद्यम का लक्ष्य पूरा करने में समन्वय की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है। समन्वय के द्वारा संगठन के संसाधनों एवं सदस्यों को गतिशील बनाये रखकर उन्हें लक्ष्य प्राप्ति की ओर अग्रसर किया जा सकता है।

प्रभावशाली समन्वय के साधन

समन्वय एक ऐसी संगठनीय प्रक्रिया है जिससे संगठन के सभी सदस्य किसी न किसी प्रकार जुड़े रहते हैं। संगठन लम्बवतीय ऊर्ध्वाकार हो सकता है। यह संगठन में विभिन्न स्तरों के साथ सम्पर्क बनाता है जो संगठन में कार्यात्मक सन्तुलन स्थापित करता है। ग्राब्स ने समन्वय के लिए पांच आवश्यक तत्व बतलाये हैं–प्रथम, अन्य, संस्थाओं के कार्यों में परिचय, द्वितीय, अनौपचारिक परिचय, तृतीय, भौतिक साधन, चतुर्थ, विशेष उद्देश्य तथा पंचम, सीमित संख्या के सदस्यों की इच्छा।

एलबोर्न ने इसके लिए छः आवश्यक तत्व बताये हैं–

(1) समन्वयकर्ता कार्मिक (2) समिति एवं सम्मेलन (3) निर्देशन (4) प्रतिवेदन एवं प्रपत्र (5) प्रशिक्षण (6) नीति।

मेकफारलैंड ने प्रभावशाली समन्वय के लिए चार उपाय बताये हैं–

(i) सत्ता एवं उत्तरदायित्व की स्पष्टता (ii) निरीक्षण एवं पर्यवेक्षण (iii) संचार की समुचित व्यवस्था (iv) नेतृत्व।

समन्वय की तकनीकें

(Techniques of co-ordination)

समन्वय स्वतः अथवा आयोजित रूप से प्रभावी हो सकता है। स्वतः समन्वय छोटे स्तर के संगठन में सम्भव है जहां संगठन का प्रधान उसमें कार्य करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को व्यक्तिगत रूप से जानता और नियंत्रित करता है।

किसी बड़े संगठन में नियंत्रण का क्षेत्र (Span of control) सीमित होता है वहां समन्वय नियोजित रूप से योजना बद्ध और व्यवस्थित किया जाता है। इसे अनपीड़क (Coercive) अथवा ऐच्छिक विधि से प्राप्त किया जा सकता है। अनपीड़क समन्वय की बजाय ऐच्छिक समन्वय को वरीयता दी जानी चाहिए। यदि ऐच्छिक समन्वय से काम न चले तो सामान्य वरिष्ठ प्राधिकारी के माध्यम से अनपीड़क समन्वय का प्रयोग किया जाना चाहिए। अनपीड़क समन्वय संगठनात्मक श्रेणीबद्धता के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है। कार्य वरिष्ठ से अधीनस्थों तक शीर्ष से नीचे तक आदेशों के द्वारा समन्वित किया जा सकता है।

परन्तु किसी भी संगठन में समन्वय सामान्यतः परस्पर समायोजनाओं और समझौतों के द्वारा ऐच्छिक रूप से प्राप्त किया जाता है। इसे औपचारिक और अनौपचारिक माध्यम से प्राप्त किया जाता है। औपचारिक विधियों में योजना, संगठनात्मक मशीनरी, श्रेणीबद्धता लिखित नियम, सम्प्रेषण, हाऊस–कीपिंग एजेंसियां, परिषदें, अन्तर–संगठनात्मक समितियों एवं परिषदें आती है। अनौपचारिक विधियों में व्यक्तिगत सम्बन्धों के प्रभाव नेतृत्व प्रभावी व्यक्तिगत सम्प्रेषण आदि की युक्तियां तथा अनौपचारिक संगठन आते हैं। समन्वय की निम्नलिखित मान्य तकनीकों पर हम व्यापक रूप से चर्चा कर सकते हैं:

1. **योजना (Planning):** योजना समन्वय का एक उपाय है। यह तथ्य लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए साधनों के आवंटन उपयोग से सम्बन्धित है। अतः योजना समन्वय प्राप्त करने की एक महत्वपूर्ण विधि है। इससे विरोधा, झगड़ों और प्रयासों एवं साधनों के अपव्यय से बचा जा सकता है।

2. **संगठनात्मक श्रेणीबद्धता की विचरना (Mechanism of Organizational Hierachy):** अनपीडन समन्वय संगठनात्मक श्रेणीबद्ध की विरचना के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है। यदि विभिन्न विभागों के बीच कोई विरोध अथवा मतभेद अथवा झगड़ा हो तो सामान्य शासकीय वरिष्ठ आदेश दे सकता है और उसके आदेश उन पर बाध्यकारी होते हैं।

3. **सन्दर्भों एवं परामर्शों के माध्यम से (Through Reference and Constitution):** सन्दर्भ और परामर्श की प्रक्रिया को समन्वय एक महत्वपूर्ण तकनीक है। संदर्भ और परामर्श से समन्वय सरकारी विभागों से लाया जा सकता है। पिछले अभिलेखों और तथ्यों की समीक्षा की जाती है। परामर्श लिये जाते हैं, स्पष्टीकरण मांगे जाते हैं, निकासिया सुरक्षित की जाती है और मामले निपटाये जाते हैं परन्तु सन्दर्भ और निकासियों एवं स्पष्टीकरणों की प्रक्रिया देरी के कारण बनी है तथा प्रशासन–चक्र को धीमा करती है तथापि इस विलम्ब या देरी को मूल फाइल अथवा टेलीफोन पर मौखिक परामर्शों की अपेक्षा कागजातों की अनेक प्रतियां परिचालित करके टाला जा सकता है।

4. **संस्थागत अथवा संगठनात्मक उपाय (Institutional or Organizational Devices):** समन्वय अन्त विभागीय समितियों, योजना आयोगों, समन्वय अधिकारियों आदि जैसे संस्थागत संगठनात्मक उपायों के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है। विभिन्न विभागों में समन्वय स्थापित करने के लिए प्रायः अन्तर्विभागीय समिति का प्रयोग किया जाता है।

5. **विकेन्द्रीयकरण (Decentralization):** यह एक व्यापक विचारधारा है कि समन्वय को विकेन्द्रीयकरण सरल बनाता है तथा द्वन्द्वों से बचाता है। विकेन्द्रीयकरण प्रशासनिक ढांचे में प्रत्येक कार्यात्मक गतिविधि स्वतंत्र रूप से कार्य करती है। इसका संगठन प्रायः कारोबारी उद्यमों तथा कुछ सरकारी निगमों में पाया जाता है।

6. **नेतृत्व के माध्यम से (Through Leadership):** अच्छा नेतृत्व समन्वय की सबसे अधिक महत्वपूर्ण तकनीकों में से एक है। उत्साहित नेतृत्व कर्मचारियों की कठिनाइयां दूर करने तथा टीम–भावना से कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करता है। प्रेरक और गुणात्मक नेतृत्व के अधीन कर्मचारी टीम के रूप में कार्य करते हैं तथा अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए प्रत्येक सम्भव श्रेष्ठ प्रयास करते हैं। प्रभावी और सतर्क नेतृत्व व्यक्तिगत सम्पर्कों और औपचारिकताओं व अनौपचारिकताओं को सफलतापूर्वक जोड़कर द्वन्द्वों का निवारण कर सकता है।

7. **केन्द्रीकृत हाउस-कीपिंग (Centralized House-keeping):** समन्वय को स्थापित करने की एक अन्य महत्वपूर्ण तकनीक केन्द्रीकृत हाउस–कीपिंग है। इस तकनीक की व्याख्या करते हुए फिफनर (Pfiffner) लिखता है – "The administration house keeping problem usually includes supply, warehousing, the cleaning and maintenance of building, printing and duplication equipment control, central mailing, transportation and food and telephone service.") भारत में लोक निर्माण विभाग (P.W.D.) महानिदेशक आपूर्ति (Director General of Supplies) और संघ लोक सेवा आयोग (UPSC) जैसी कई हाउस कीपिंग एजेंसियां हैं।

8. **वित्त-मंत्रालय अथवा विभाग (Finance Ministry and Department:** वित्त मन्त्रालय विभिन्न विभागों के बीच समन्वय के स्रोत के रूप में कार्य करता है। बजट तैयार करते समय वित्त विभाग विभिन्न विभागों के स्रोत, नीतियों और व्यय का समन्वय करता है तथा इस प्रकार वह एक समस्त कार्य–योजना विकसित करता है।

9. **मौखिक और लिखित सम्प्रेषण (Verbal and Written Communications):** समन्वय मौखिक एवं लिखित सम्प्रेषण की प्रभावशीलता पर निर्भर करता है, जो आदेशों की श्रृंखला के माध्यम से जानकारी पहुंचाता है। सभी सम्बन्धिता के स्पष्ट और सामयिक (Timely) सम्प्रेषणों में सभी कार्मिकों या इकाइयों के कार्य में संक्षिप्त होने पर समन्वय स्थापित होता है।

10. **क्षेत्रीय परिषदें (Regional Council):** विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत विभिन्न क्षेत्रीय संगठन का प्रतिनिधित्व करने वाले क्षेत्रीय परिषदें भी संगठनों की गतिविधियों में समन्वय स्थापित कर सकती हैं

11. **समन्वय का अनौपचारिक साधन (Informal Means of Co-ordination):** एक दूसरे से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध विकसित करना, सम्बन्धों को बनाये रखना, क्लबों की बैठकें, रेस्तरां और कई सामान्य अवसरों पर जाना आदि जैसे समन्वय के

अनौपचारिक साधन कार्मिकों को एक–दूसरे के निकट आने के योग्य बनाते हैं। जानकारी और चर्चा का अवसरिक अनौपचारिक विनिमय (Occasional Informal Exchange) समन्वय की प्रक्रिया में सहायता कर सकता है।

चूंकि समन्वय प्रत्येक संगठन की अनिवार्य शर्त है और चूंकि इसे सावधानी से सुरक्षित रखा जाना आवश्यक समन्वय के उच्च स्तर को सुरक्षित रखने के लिए प्रत्येक संगठन और विभिन्न विभागों के मध्य इन तकनीकों का प्रयोग किया जा सकता है तथा किया जाना चाहिए।

समन्वय के पथ में बाधाएं
(Hindrances in the way of co-ordination)

संगठनात्मक प्रभावशीलता और सक्षमता के लिए प्रत्येक संगठन के परिचालन के समन्वय को स्थापित करना अनिवार्य है। चूंकि समन्वय को विभिन्न तकनीकों द्वारा सावधानी से सुरक्षित रखा जा सकता है। इसलिए यह अनिवार्य हो जाता है कि समन्वय के पथ की सभी सम्भव बाधाओं की पहचान की जाए और उन्हें दूर किया जाए। समन्वय के पथ की सभी सम्भव बाधाओं की पहचान की जाए और उन्हें दूर किया जाए। समन्वय के प्रयास, कुशलता की कमी, तकनीकों का प्रयोग न करना, अनुभव की कमी और अपर्याप्त या दोषपूर्ण योजना जैसी अनेक कठिनाइयों के कारण बाधित होते हैं। जैसा कि लूथर गुलिक (Luther Gullick) का कहना है, ये कठिनाइयां निम्नलिखित बातों से पैदा होती है:

1. व्यक्तियों और लोगों के व्यवहार के सम्बन्ध में भविष्य की अनिश्चितता।
2. नेताओं में ज्ञान, अनुभव, बुद्धिमानी और चरित्र का अभाव और उनके भ्रमपूर्ण एवं द्वन्द्वपूर्ण विचार एवं लक्ष्य।
3. प्रशासनिक कुशलता और तकनीकीकरण का अभाव।
4. विभिन्न चरों (Variables) का सम्मिलित होना और मानवीय ज्ञान विशेषकर मानव और उसके जीवन के सम्बन्ध में ज्ञान की कमी।
5. नये विचारों और कार्यक्रमों को विकसित करने, विचार करने, पूर्ण–रूप देने और अपनाने की व्यवस्थित विधियों का अभाव।

इस सूची में सेक्लर हडसन (Seckler Hudson) चार और बाधक तत्वों को सम्मिलित करता है।

1. आकार और जटिलता (Size and complexity)
2. व्यक्तित्व और राजनीतिक कारक (Personalities and political factors)
3. लोक प्रशासन से सम्बन्धित बुद्धिमानी और जानकारी रखने वाले नेताओं का अभाव। (Lack of leaders with wisdom and knowledge pertaining to public administration)
4. लोक प्रशासन का अन्तर्राष्ट्रीय आयामों तक बढ़ता विस्तार (The accelerated expansion of public administration to international dimensions)

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि इन बाधाओं का निवारण किया जा सकता है और किया जाना चाहिए। यह उच्च प्रबन्धन अथवा नियोक्ताओं के सचेत प्रयासों से किया जा सकता है। यह उनका प्रथम कर्तव्य है कि कार्य के विभिन्न भागों में अन्त: सम्बन्ध स्थापित करते। कठिनाइयों और समस्याओं के समाधान में विलंब भी समन्वय के पथ में एक बाधा हो सकता है। संगठन का परिचालन न केवल उद्देश्यों, स्पष्ट निर्णयों और कार्रवाइयों के माध्यम से अपितु कार्मिकों और संगठन की इकाइयों के बीच औपचारिक और अनौपचारिक सम्पर्कों के माध्यम से भी स्वास्थ रखा जाना चाहिए।

रेनिस लिकर्ट ने समन्वय की कार्यात्मक समस्याओं के सन्तोषप्रद समाधान के लिए निम्न चार शर्तें बतायी हैं–

1. सर्वोच्च एवं अधीनस्थों के बीच उच्च स्तरीय सहयोगात्मक व्यवहार विकसित किया जाय।
2. रचनात्मक समाधान एवं मतभेदों तथा संघर्षों के निराकरण के लिए उपयुक्त संगठनीय संरचना एवं कौशल का होना।
3. बिना परम्परागत सत्ता के प्रयोग के प्रभाव डालने की क्षमता।
4. अगर संगठन में एक व्यक्ति दो या अधिक सत्ताओं के अधीनस्थ हो तो भी कार्य ठीक प्रकार से सम्पन्न करने के अवसर।

समन्वय पर सीमाएं

संगठन के प्रभावशाली होने के लिए समन्वय की समुचित व्यवस्था होना आवश्यक है, परन्तु कुछ ऐसी सीमाए हैं जिनके कारण समन्वय पर्याप्त मात्रा में नहीं हो पाता। लूथर गुलिक ने इन सीमाओं की विवेचना की है।

1. मनुष्यों के व्यवहार की अनिश्चितता।
2. निष्पादकों के ज्ञान, अनुभव, बुद्धि एवं चरित्र तथा परस्पर विरोधी एवं अस्पष्ट विचार तथा तरीके।
3. प्रशासकीय कौशल एवं तकनीक का अभाव।
4. मनुष्य एवं उसके जीवन के सम्बन्ध में पर्याप्त ज्ञान।
5. नये विचार एवं कार्यक्रमों को अपनाने के अव्यवस्थित तरीके।

सक्लर हड्सन ने चार अन्य तत्वों का भी उल्लेख किया है--आकार एवं जटिलताएं, व्यक्तित्व एवं राजनैतिक तत्व लोकप्रशासन के बारे में नेता का अपर्याप्त ज्ञान तथा लोकप्रशासन में अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण का विकास।

पर्यवेक्षण
(Supervision)

निर्णय लिए जाने के पश्चात् प्रमुख प्रशासकों का यह उत्तरदायित्व हो जाता है कि उन्हें ठीक प्रकार से कार्यान्वित किया जाय। यह उनका कर्तव्य है कि वे देखें कि संगठन ठीक प्रकार से कार्य करे तथा जिस उद्देश्य के लिए स्थापित किया गया है उसे प्राप्त करे। यह देखना कि संगठन अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कार्य करे पर्यवेक्षण कहलाता है। इसे प्रबन्ध का एक महत्त्वपूर्ण कार्य कहा जा सकता है। पर्यवेक्षण का उद्देश्य सेवाओं के स्तर को बनाये रखना भी होता है। बटन एवं बुकनर के शब्दों में, "पर्यवेक्षण एक विशेष तकनीकी सेवा है, जिसका उद्देश्य उन सब घटकों का परस्पर सहयोग एवं उन्हें उन्नत करने का प्रयास होता है जो संगठन के विकास को प्रभावित करते है। अतः पर्यवेक्षण द्वारा अधीनस्थ श्रमिकों या कर्मचारियों की कार्यक्षमता को बढ़ाने का प्रयास किया जाता है।" नीति–निर्माण, योजना, बजट, कार्मिक व्यवस्था तब तक सफल परिणाम नहीं दे सकते, जब तक यह उत्तरदायित्व किसी को सौंपा न जाय जिससे वह देखें कि जो निर्धारित किया गया है उसी के अनुसार कार्य हो रहा है। संगठन में कार्य करने वाले भी दिशा निर्देशन एवं परामर्श के लिए किसी दूसरों को देखते रहते हैं। अतः प्रत्येक संगठन में चाहे वह व्यक्तिगत हो या सार्वजनिक, पर्यवेक्षण एक महत्त्वपूर्ण कार्य माना जाता है। संगठन के पद सोपानीय स्वरूप में प्रत्येक स्तर, अपने से अधीनस्थ स्तर के कार्यों का पर्यवेक्षण करता है।

पर्यवेक्षण का तात्पर्य

पर्यवेक्षण (Supervision) अंग्रेजी भाषा के दो शब्दों–"सुपर" एवं "विजन" से बना है जिसका अर्थ सर्वोच्च दृष्टि है इसका अर्थ ऊपर से देखना या दूसरों के कार्यों का अधीक्षण करना है। साधारण रूप में पर्यवेक्षण की परिभाशा दूसरों के कार्यों का अधिकारपूर्ण निर्देशन या अधीक्षण है। मागरिन्ट विलियमसन के शब्दों में, "यह ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा कर्मचारियों को अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप अधिकारी द्वारा सहायता दी जाती है जिससे वह अपने ज्ञान एवं कौशल को बढ़ाकर अपने कार्य को अधिक प्रभावशाली तरीके से सम्पन्न कर सके तथा अपने को एवं अन्य अभिकरणों को सन्तुष्ट कर सके। "अतः संक्षेप में पर्यवेक्षण परिणामों को प्राप्त करना है। एकल्स एवं उसके साथी विद्वानों के अनुसार, "निश्चित नीतियों एवं सिद्धान्तों के आधार पर संगठन के उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु उचित नियन्त्रण, मार्गदर्शन तथा समुचित व्यवस्था ही पर्यवेक्षण है" डालबक के शब्दों में निश्चित उद्देश्य की प्राप्ति के लिए दूसरों के कार्यों का निर्देशन एवं उनमें समन्वय का कार्य करना पर्यवेक्षण है।' इस प्रकार पर्यवेक्षण एक जटिल कार्य है तथा इसमें भौतिक एवं मानवीय अनेक तत्व आ जाते हैं।

पर्यवेक्षकों के प्रकारः प्रर्यवेक्षक निम्नलिखित दो प्रकार के होते हैं–

1. **श्रेणीगत पर्यवेक्षक (Line Supervisor)**–श्रेणीगत पर्यवेक्षक का अभिप्राय सत्ता सम्बन्धी नियन्त्रण से है। ("Line Supervisor refer to control exercised by the persons in line of Command.") उदाहरणार्थ, पुलिस विभाग में उप–पुलिस अधीक्षक (D.S.P.) का कार्य पुलिस अधीक्षक (S.P.) के द्वारा नियन्त्रित किया जाता है। संगठन में यह क्रम निरीक्षक के पद तक चलता रहता है: जैसे D.I.G.→S.P.→Dy. S.P.→Inspector→S.I.→A.S.I.→Head Constable

2. **कार्यात्मक पर्यवेक्षक (Functional Supervisor)**—कार्यात्मक पर्यवेक्षक वे अधिकारी होते हैं जो तकनीकी मामलों का नियन्त्रण करते हैं। उदाहरण के लिए, लेखा परीक्षक (Auditors), तथा लेखाकार (Accountant) कार्यात्मक पर्यवेक्षक हैं।

पर्यवेक्षण के तरीके या ढंग

Methods of Supervision

मिलेट (Millet) ने पर्यवेक्षण के निम्नलिखित छह तरीके बताए हैं—

1. **परियोजनाओं की पूर्व स्वीकृति (Prior approval of Individual Projects)**—संगठन के किसी कार्य का पर्यवेक्षण करने से पहले पर्यवेक्षक की पूर्व स्वीकृति प्राप्त होनी चाहिए। पूर्व स्वीकृति लेने से योजनाओं में लचीलापन आ जाता है और त्रुटियों को ठीक करने की गुंजाइश भी रहती है। हालांकि अनावश्यक पूर्व स्वीकृति से प्रशासन में लाल फीताशाही की वृद्धि होती है। भारत में परियोजनाओं को क्रियान्वित करने से पूर्व विभागाध्यक्षों के अतिरिक्त वित्त मन्त्रालय की भी पूर्व स्वीकृति ली जाती है।

2. **सेवा स्तर पर मानदण्ड की घोषणा (Promulgation of Service Standards)**—सेवा स्तर का अर्थ है कि सेवा के बारे में कुछ मानदण्ड, मापक या उद्देश्य (Standards, Yardstick or Targets) पूर्व निर्धारित कर लिए जाते हैं। पर्यवेक्षण के दौरान यह देखा जाता है कि क्या संगठन इन मानदण्डों के अनुसार कार्य कर रहा है या नहीं। उदाहरण के लिए, एक स्कूल या कॉलेज में विद्यार्थियों का पास प्रतिशत, अनुशासन, अध्यापकों का मनोबल, पढ़ाने में निपुणता तथा खेल—कूद व सांस्कृतिक गतिविधियों में योगदान आदि उसकी सेवाओं का मानदण्ड हो सकता है। यह अत्यन्त कठिन कार्य है।

3. **कार्यों की व्यापकता पर बजट सम्बन्धी सीमाएं (Budgetary Limitations)**—बजट पर्यवेक्षण का एक प्रभावशाली साधन है, क्योंकि इससे पर्यवेक्षक यह निश्चित कर सकता है कि क्या सम्बन्धित इकाई ने बजट की सीमाओं में रहकर ही खर्च किया है या इससे अधिक खर्च किया है। बजट में कई बार समय की सीमा भी लाद दी जाती है। क्षेत्रीय एजेन्सियों को उपबन्धों की सीमाओं के अन्दर रहकर ही कार्य करना पड़ता है। इस प्रकार उच्चाधिकारियों का अधीनस्थ अधिकारियों तथा क्षेत्रीय एजेन्सियों पर नियन्त्रण प्रभावशाली हो जाता है, क्योंकि इन एजेन्सियों को अपनी इच्छानुसार धन व्यय करने की स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं होती है।

4. **आधारभूत अधीनस्थ कर्मचारी वर्ग का अनुमोदन (Approval of Key Subordinate Personnel)**—सरकार के भिन्न—भिन्न विभागों में भर्ती करने की स्वीकृति मुख्य कार्यपालिका (Chief Executive) द्वारा दी जाती है। संगठन के कुछ महत्वहीन पदों को छोड़कर अन्य सभी पदों की भर्ती की स्वीकृति प्राप्त करनी आवश्यक होती है। प्रायः सभी देशों में कर्मचारियों की भर्ती का कार्य लोक सेवा आयोगों द्वारा किया जाता है।

5. **कार्य की प्रगति सम्बन्धी प्रतिवेदन प्रणाली (Reporting System on Work Progress)**—पर्यवेक्षण करते समय विभिन्न इकाइयों द्वारा अपनी गतिविधियों एवं क्रियाकलापों द्वारा भेजी गई रिपोर्टों का अध्ययन किया जाता है। संगठन की भिन्न—भिन्न इकाइयाँ समय—समय पर मुख्य कार्यालय में रिपोर्ट भेजती रहती हैं। सप्ताह में भेजी जाने वाली रिपोर्ट को साप्ताहिक रिपोर्ट, एक मास में भेजी जाने वाली रिपोर्ट को मासिक रिपोर्ट, छह मास में भेजी गई रिपोर्ट को छमाही रिपोर्ट तथा एक वर्ष में भेजी जाने वाली रिपोर्ट को वार्षिक रिपोर्ट कहते हैं। पर्यवेक्षण करने वाला अधिकारी इन रिपोर्टों की जाँच—पड़ताल करके संगठन के परिणामों के विषय में ज्ञान प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार प्रतिवेदन संगठन के कर्मचारियों तथा इसकी अधीनस्थ इकाइयों पर पर्यवेक्षण तथा नियन्त्रण रखने का बहुत ही महत्वपूर्ण एवं प्रभावशाली ढंग है।

6. **परिणामों का निरीक्षण (Inspection of Results)**—किसी भी संगठन की गतिविधियों की देख—रेख करने के लिए निरीक्षण एक प्रभावशाली यन्त्र है। प्रशासन की कार्य कुशलता में सुधार करना तथा विद्यमान नियमों—विनियमों का अनुपालन सुनिश्चित करना निरीक्षण के मुख्य उद्देश्य हैं। सिर्फ दोष निकालना ही निरीक्षण नहीं होता। कर्मचारियों के रास्तों में आने वाली कठिनाइयों को दूर करने के तरीके सुझाना भी निरीक्षण के अन्तर्गत आता है। निरीक्षण प्रायः निम्नलिखित तीन एजेन्सियों द्वारा किया जाता है—

(i) उच्च अधिकारियों द्वारा (By Higher Officials)।

(ii) मुख्य कार्यालय के निरीक्षण अधिकारियों द्वारा (By Inspectors of Head Office)।

(iii) बाह्य निरीक्षण एजेन्सी द्वारा (By External Agency)।

पर्यवेक्षक के गुण

Attributes of Supervisor

एक अच्छे पर्यवेक्षक में निम्नलिखित गुण होने चाहिएं–

(1) जन–सम्पर्क व्यवहार में प्रशिक्षित।

(2) कार्य की विषय–वस्तु का विशेष ज्ञान।

(3) अच्छी शैक्षणिक योग्यताएं।

(4) कार्य से प्रेम।

(5) कर्मचारियों को काम समझाने की योग्यता।

(6) साहस और सहनशीलता।

(7) चरित्रवान्।

(8) प्रशासकीय योग्यताएं।

(9) भावनात्मक नियन्त्रण।

(10) निष्पक्षता व ईमानदारी।

महत्वपूर्ण प्रश्न

1. "समन्वय प्रशासकीय संगठन का प्रथम सिद्धान्त है" इस कथन की व्याख्या कीजिए।
2. समन्वय का महत्व क्या है? इसके प्रभावशाली साधनों का वर्णन कीजिए।
3. प्रर्यवेक्षण क्या है? इसके तरीके क्या हैं?

अध्याय 8

संचार

Communication

संचार प्रशासन का एक ऐसा महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है जिसके बिना प्रशासनिक संगठन का संचालन किया जाना असंभव है। संगठन सरकारी हो या गैर सरकारी, उसके उद्देश्यों की सफलता के लिए प्रभावशाली संचार व्यवस्था आवश्यक होती है। इन संगठनों में कार्य करने वाले लोग यदि संगठन के उद्देश्यों, नीतियों और पृष्ठभूमि परिस्थितियों को समझ लें तो वे उस संगठन में अधिक प्रभावशाली तरीके से कार्य कर सकते हैं। किन्तु यह संचार के बिना संभव नहीं है। संचार के अभाव में संगठन के कर्मचारियों और संगठन के उद्देश्यों में एकरूपता स्थापित नहीं हो पाती है। संगठन और उसके कार्यकर्ताओं के मध्य विश्वास प्राप्त करने के लिए उस अभियान का अध्यक्ष जो भी कार्य योजना तैयार करता है वह संचार के बिना न तो कार्यकर्ताओं को संसूचित होती है और न ही जनता तक उनके बारे में कोई सूचना पहुंच पाती है। संगठन के प्रभावशाली ऑकलन के लिये संचार का प्रभावी होना आवश्यक है। किसी भी संगठन की प्रशासकीय कार्यकुशलता संगठन के द्वारा आँकी गयी संचार की व्यवस्थाओं पर निर्भर करती है। प्रशासनिक अधिकारियो का सर्वाधिक समय इसी कार्य में लगा होता है। संचार का सम्बन्ध प्रशासन के अन्य पक्षों यथा नियोजन, पर्यवेक्षण, समन्वय, निर्णय लेने इत्यादि से निकट का है।

चेस्टर बर्नार्ड ने सही कहा " ऐसे संचार से सहायता प्राप्त नहीं होती, जिसे समझा न जा सके। इसी प्रकार टीड के अनुसार तरह–तरह के मस्तिष्कों का एक सामान्य उद्देश्य प्राप्ति के लिए एक दूसरे के पास लाना होता है और यह कार्य संचार की सहायता के बिना किसी भी प्रशासनिक संगठन में सम्भव नहीं। प्रभावी संचार के अभाव में प्रभावी पर्यवेक्षण, नेतृत्व और नियंत्रण नहीं हो सकता। यह सत्य है कि जो प्रशासक संचार कार्य में श्रेष्ठ होते हैं वे प्रभावी प्रशासक सिद्ध होते हैं और जिन प्रशासकों का संचार निम्न श्रेणी का होता है वे प्रशासन तंत्र में अपनी छाप नहीं छोड़ पाते। संचार के इसी महत्त्व के कारणों ने इसे प्रशासकीय संगठन की रक्तधारा कहा है। सिद्धांत पिफनर इसे प्रबन्धन का हृदय घोषित करते हैं।

संचार का अभिप्राय

Meaning of Communication

दो या दो से अधिक व्यक्तियों के मध्य विचारों के आदान–प्रदान को संचार कहा जा सकता है। यह एक ऐसी वैयक्तिक प्रक्रिया है जिसमें लोगो के मध्य व्यवहार का आदान–प्रदान होता है। संचार शब्द का प्रयोग प्रायः ज्ञान के प्रसार या सूचना भेजने के अर्थ में किया जाता है। किन्तु व्यापक अर्थ में यह केवल सूचना के आदान–प्रदान का सूचक ही नहीं है बल्कि उस सूचना को ग्रहणकर्ताओं ने समझ लिया है, इस बात का द्योतक है। वस्तुतः टीड का यह विचार सही है कि संचार का मूल लक्ष्य समान विषयों पर मस्तिष्क में स्थापित करना है।

शब्द कोष के अनुसार, "संचार" से अभिप्राय सूचना देना या समाचार देना है। लोक प्रशासन में इस शब्द का कुछ विस्तृत अर्थ लिया जाता है। संचार को परिभाषित करते हुए महत्त्वपूर्ण विद्वानों ने निम्नलिखित परिभाषाएं दी हैं जिनके आधार पर संचार को भली–भांति समझा जा सकता है।

मिलेट के अनुसार "किसी सांझे प्रयोजन की साझा समझ" (Communication means shared understanding of shared *purposes)* संचार है।

इस प्रकार संचार का अर्थ केवल सूचना देना नहीं बल्कि समझना है। संचार में विचारों का आदान–प्रदान सम्मिलित है और इसमें विचारों की सांझेदारी की अपेक्षा की गयी है। लारेन्स एप्पलवी ने संचार को परिभाषित करते हुए लिखा है कि "संचार वह प्रक्रिया है जिससे एक व्यक्ति अपने विचार से दूसरे को अवगत कराता है।"

(The Process where by one person makes his ideas and feelings known to another.)

इसी प्रकार मैक फारलेण्ड ने इसे मानव समुदाय के बीच अर्थ पूर्ण अन्तर्क्रिया की प्रक्रिया (As the process of meaningful interaction among human beings.) के रूप में देखा है।

हरमन और जेलदा रूडमन ने लिखा है कि "प्रबन्ध और मानव व्यवहार के मध्य सम्बन्ध का पुल बनाने का काम संचार करता है।" (Communication is the underlying medium of bridging the route between human behaviour and management.)

इनकी मान्यता है कि किसी भी संगठन में उपलब्धियों और उत्पादकता की सफलता श्रेष्ठ संचार के साधनों पर निर्भर करती है

प्रशासनिक संगठन में अच्छे कार्य–सम्बन्ध स्थापित करने के लिए सफल संचार की आवश्यकता है। सफल संचार आसान नहीं होता। इसके लिये एक व्यक्ति में अपने विचारों को दूसरे व्यक्ति के सम्मुख पूर्ण रूप से प्रकट करने की क्षमता होनी चाहिए और यह तभी संभव है जब उस व्यक्ति के विचार पूर्ण रूप से स्पष्ट और परिपक्व हो। संचार द्वारा निर्णय लेने के कार्य परस्पर एक दूसरे से जुड़े हुए हैं और निर्णय कितना ही श्रेष्ठ क्यों न हो जब तक उसका सही संचार नहीं किया जाय तब तक उसकी सफलता संदिग्ध रहती है।

संचार के तत्व

Elements of Communication

मिलेट और रेडफील्ड के अनुसार प्रशासनिक संचार व्यवस्था में निम्नांकित तत्व पाये जाते हैं

1. संचार करने वाला (A Communicator)

सामान्यतः लोक प्रशासन में संचार का कार्य प्रशासक एवं उसके सहयोगी अधिकारियों द्वारा किया जाता है। सैनिक प्रशासन में प्रत्येक आदेश कमाण्डर के नाम से संचालित होता है। इस तरह संचार में उसके प्रेषित भेजने वाला या बोलने वाला संचारक प्रमुख तत्व है।

2. एक से दूसरे को देना (Transmission Procedure)

संचार का दूसरा तत्व है एक व्यक्ति द्वारा निर्देश को दूसरे व्यक्ति को प्रेषित किया जाना या संदेश कहना, भेजना व निकालना। संचार के लिए संगठन में कोई माध्यम अपनाया जा सकता है। किन्तु सबसे उपयुक्त माध्यम वह होता है जिसे प्रयोग में लाया जाता है।

3. प्राप्तकर्ता (Recipient)

संचार के लिए उसके श्रोता या प्राप्तकर्ता का होना अनिवार्य है अर्थात् सन्देश जिसे भेजा गया उसका प्राप्तकर्ता संचार का महत्वपूर्ण तत्व है।

4. उत्तर (Response)

संचार में सन्देश प्राप्तकर्ता संदेश का प्रत्युत्तर या उसके द्वारा क्रिया या उसके जवाब का होना आवश्यक है। सामान्यतः उसकी प्रतिक्रिया या उसका उत्तर आमतौर पर औपचारिक रूप से दिया जाता है।

उपर्युक्त विद्वानों मिलेट और रेडफील्ड ने संचार के प्रकारों अर्थात् आदेश, नियम, मैनुअल, पत्र प्रतिवेदन इत्यादि को भी संचार का एक आवश्यक तत्व माना है।

इन समस्त तत्वों में संचार करने वाला और संदेश करने वाला, महत्त्वपूर्ण हैं। इस प्रकार संचार को एक सरल प्रणाली के रूप में मान्यता दी जा सकती है। जिसमें एक सिरे पर सन्देश प्रसारक और दूसरे सिरे पर संदेश प्राप्तकर्ता होता है। इसमें इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि जो संदेश दिया गया है उसे उसी रूप में प्राप्तकर्ता द्वारा ग्रहण किया जाय। सन्देश का सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू यह है कि जिस रूप में और जिस भाव तथा उद्देश्य को लेकर वह प्रसारित किया गया है उसे प्राप्त करने वाला भी उसी रूप में समझे और ग्रहण करे। अनेक बार ऐसा होता है कि जल्दबाजी में संदेश के सार को ठीक तरह से ग्रहण नहीं किया जाता तो ऐसी स्थिति में अनर्थ हो सकता है। ऐसी स्थिति में संदेश प्रसारक और प्राप्तकर्ता दोनों के द्वारा इस संदेश में सावधानी अपेक्षित होती है।

संचार के प्रकार

Types of Communication

जिस दिशा में संदेश का संचार किया जाता है उस दृष्टि से संचार को निम्नांकित तीन प्रकारों में बांटा जाता है--

(1) ऊर्ध्व से निम्नगामी संचार

(2) निम्न से उर्ध्वगामी संचार, और

(3) सम-स्तरीय संचार।

ऊर्ध्व से निम्नगामी संचार (Downward Communication)

संगठन के सर्वोच्च स्तर या पद सोपान के उच्च स्तरों पर जो निर्देश या संदेश निर्णय के रूप में उत्पन्न होते हैं उन्हें संगठन की निम्न पद सोपानात्मक श्रृंखलाओं तक पहुँचाने की गतिविधियों को उर्ध्व से निम्नगामी संचार कहा जाता है। उच्च अधिकारियों द्वारा अपने अधीनस्थ अधिकारियों को जो प्रत्यायोजन किया जाता है वह इस संचार का एक उदाहरण माना जा सकता है। इसे उच्च अधिकारी द्वारा अधीनस्थ अधिकारियों के मध्य संचार के रूप में भी मान्यता दी जा सकती है।

निम्न से उर्ध्वगामी संचार (Upward Communication)

इस प्रकार के संचार में संगठन की अधीनस्थ पद सोपान श्रृंखलाओं से संदेश उच्च अधिकारियों को सम्प्रेषित किया जाता है। प्रायः उच्च अधिकारियों को भेजे जाने वाले इस संचार में अधीनस्थ अधिकारियों द्वारा विभिन्न प्रकार के प्रस्ताव प्रतिवेदन, अनुशंसाए या सुझाव प्रस्तुत किये जाते हैं। यह संदेश प्रकृति से निर्देशात्मक नहीं होते इनमें कोई पहल किये जाने के प्रस्ताव भी नहीं होते मात्र सुझाव हो सकते हैं जिन पर वे उच्च अधिकारियों से स्वीकृति चाहते हैं।

सम-स्तरीय संचार (Lateral Communication)

किसी संगठन के समान स्तरीय कार्मिकों में संदेश का जो आदान–प्रदान होता है उसे समस्तरीय संचार कहा जा सकता है। यह संचार एक ही संगठन के सम–स्तरीय या भिन्न अभिकरणों के सम–स्तरीय कर्मचारियों के मध्य हो सकता है। इस प्रकार के संचार का संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति में विशेष महत्त्व होता है। यदि किसी संगठन के कर्मचारी एक एकीकृत इकाई के रूप में काम करते हैं तथा प्रायः उनके मध्य संगठन के उद्देश्यों, कार्य की प्रकृति और प्रक्रियागत जटिलताओं के बारे में संदेश का आदान–प्रदान होना स्वाभाविक होता है। ऐसा किये जाने से संगठन के उद्देश्य प्राप्त करने में आसानी होती है। विद्वान फ्रेडलुथांस ने इसे अर्न्तक्रियात्मक संचार भी कहा है। इस संचार के मूल कार्यों में समन्वय, समस्याओं के समाधान, सूचनाओं का आदान–प्रदान और तनावों को सुलझाने के उद्देश्य प्रमुख होते हैं।

कतिपय विद्वानों ने संचार को आंतरिक और बाह्य संचार के रूप में भी परिभाषित और विभाजित किया है।

आंतरिक एवं बाह्य संचार (Internal and External Communication)

आंतरिक संचार किसी एक संगठन और उसके कर्मचारियों के मध्य होता है। किसी संगठन के उद्देश्यों को शीघ्र पूरा करने के लिए इसका विशेष महत्त्व है। इसके माध्यम से संगठन की प्रक्रियाओं की जटिलता को कम किया जा सकता है। ऐसे संगठनों, जिनका ढांचा भौगोलिक दृष्टि से पूरे देश या अनेक राज्यों में फैला हुआ है उनके उद्देश्यों के प्रति तारतम्य, संगति और समन्वय प्राप्त करने के लिए आंतरिक संचार का प्रबल महत्त्व है। डाक, तार, रेलवे और विदेश मंत्रालयों की संरचना ऐसी है जिसका पर्याप्त विस्तार होता है, अतः इस प्रकार के संगठनों में जब तक नीतियों, कार्यक्रमों और परिवर्तित निर्णयों के प्रति संचार के माध्यम से शीघ्र संदेश का आदान–प्रदान न हो तब तक उन संगठनों की सफलता की आशा नहीं की जा सकती। संगठन की केन्द्रीय इकाई और राज्य या दूरस्थ इकाई के मध्य इस प्रकार के संचार के माध्यम से संदेशों का आदान–प्रदान होता है और यदि संचार पर ध्यान न दिया जाये तो न तो निर्णयों से इकाइयों को संसूचित किया जाना संभव हो सकेगा और न ही उनका कार्यान्वयन संभव होगा। इस दृष्टि से संगठन में आंतरिक संचार का, जो उर्ध्व से निम्न, निम्न से उर्ध्व और समान स्तरीय सभी प्रकार का हो सकता है, विशिष्ट महत्त्व है।

बाह्य संचार से अभिप्राय यह है कि कोई संगठन जब अपने उद्देश्यों, नीतियों और कार्यक्रमों के बारे जनता को परिचित [illegible] चाहता है तो बाह्य संचार के माध्यम से यह संभव हो पाता है। इसे लोक सम्पर्क भी कहा जा सकता है। लोक सम्पर्क की [illegible] में आने वाले इस संचार का भी आधुनिक युग में प्रशासनिक संगठनों में विशेष महत्त्व है।

संचार के साधन

Means of Communication

संचार को प्रसारित करने के कतिपय साधन इस प्रकार हैः

(क) व्यक्ति सम्पर्क (Personal Contacts):

किसी भी संगठन में अधिकारी और अधीनस्थों के मध्य संचार का यह पर्याप्त प्रभावी तरीका है। संचार करने वाले [illegible] आमने सामने, टेलीफोन, टेलीप्रिंटर, वायरलेस इत्यादि के माध्यम से संदेश का संचार या आदान–प्रदान कर सकते हैं। [illegible] के अत्याधुनिक साधनों के कारण संगठनों की दूरी अब कम हो गयी है और संदेश का संचार सुगम हो गया है। व्यक्तिगत [illegible] में साधनों के उपयोग की अपेक्षा आमने–सामने बातचीत के माध्यम से संदेश के संचार का प्रभावी तरीका माना जाता है। [illegible] इस विधि को विस्तृत संगठनों में अपनाया जाना कठिन होता है।

व्यक्तिगत सम्पर्क की दूसरी प्रभावी विधि सम्बद्ध लोगों की औपचारिक बैठक का आयोजन किया जाना है। ऐसी [illegible] विधिक रूप से एक निश्चित अंतराल के पश्चात हो सकती है या उन्हें आवश्यकता के अनुसार आहुत भी किया जा सकता है।

(ख) औपचारिक पत्राचार (Formal Correspondence)

आधुनिक लोक प्रशासन में पत्र व्यवहार संचार का एक ऐसा तरीका है जो सामान्यतः उपयोग में लाया जाता है। पत्राचार [illegible] यह तरीका ईसा पूर्व तीसरी और चौथी शताब्दी में भी प्रयोग में लाया जाता था। आधुनिक लोक प्रशासन में भी लिखित [illegible] व्यवहार के माध्यम से संचार एक अपरिहार्य प्रणाली बन गया है। प्रशासनिक प्रक्रिया अब इतनी जटिल हो गयी है [illegible] उत्तरदायित्व के निर्वाह और निर्धारण के लिए निर्णयों और संदेशों को लिखित रूप में रखा जाना आवश्यक हो जाता [illegible] आजकल तो कार्यालय की समस्त प्रणाली पत्रावलियों के माध्यम से संचालित की जाती है। यद्यपि इस प्रणाली [illegible] कारण आधुनिक सरकारों को फाईल या कागज की सरकार भी कहा जाने लगा है और इसी कारण इस पर [illegible] फीताशाही के दोष भी लगाये जाते हैं। किन्तु इन समस्त बातों के बावजूद औपचारिक पत्र व्यवहार संचार का एक महत्त्व [illegible] तरीका है।

(ग) फार्म (Forms)

विभिन्न प्रकार की सामान्य सूचनाओं के बारे में प्रपत्र छपा लिया जाता है और उनके माध्यम से संदेश एक स्थान से दूसरे [illegible] पर भेजने की यह प्रणाली लोक प्रशासन में अब अत्यन्त लोकप्रिय हो गयी है।

(घ) निर्देश (Instructions)

विभिन्न प्रकार के निर्देश अथवा आदेश कार्यालयों में निर्देश पत्रों के माध्यम से एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजे जाते [illegible] यह निर्देश प्रायः लिखित परिपत्र के जरिये भेजे जाते हैं। इन निर्देशों के माध्यम से किसी संगठन में कार्य करने [illegible] अधिकारियों/कर्मचारियों के कर्त्तव्यों का निर्धारण भी किया जाता है।

(ड़) आंतरिक प्रचार (Internal Publicity)

प्रायः सभी प्रशासनिक संगठनों के बारे में सूचनाओं के आदान–प्रदान के लिए कतिपय नोटिस, परिपत्र, स्टाफ जनरल [illegible] सामयिक प्रतिवेदन तैयार किये जाते हैं। इन सामग्रियों में संगठन के उद्देश्यों, कार्यवाहियों, कार्यक्रमों, योजनाओं, गतिविधि [illegible] और उपलब्धियों तथा संगठन कर्मचारी वर्ग द्वारा वित्त इत्यादि का विवरण प्रस्तुत किया जाता है।

संचार के माध्यम

Media of Communication

प्रशासन में संचार के लिए अनेक माध्यमों का प्रयोग किया जाता है, इनमें मुख्य हैं–

(1) श्रव्य माध्यम (Visual Media)

इसमें सम्मेलन, टेलीफोन, रडियो, सभाएं इत्यादि श्रव्य संचार के माध्यम हैं।

(2) दृश्य माध्यम (Audio Media)

इसमें लिखित संचार जैस परिपत्र, पुस्तकें, विवरणिका तथा हस्त पुस्तकें सम्मिलित हैं। इसी में चित्र, फोटो, पोस्टर, व्यग्य चित्र, झण्डे, स्लाइडस इत्यादि भी सम्मिलित माने जाते हैं।

(3) दृश्य एवं श्रव्य माध्यम (Audio-Visual Media)

इसमें बोलते–चलते चित्र, टेलीविजन वीडियो, टेप और व्यक्तिगत प्रदर्शन योग्य दृश्य एवं श्रव्य संचार मुख्य उपकरण सम्मिलित हैं।

प्रत्येक सचार माध्यम के अपने गुण और सीमाएँ हैं, कब कौन सा माध्यम उपयुक्त होगा इसकी सूची बनाना कठिन है। प्रत्येक संगठन और उसमें कार्यरत अधिकारी व कर्मचारी स्वयं की परिस्थितियों और कार्य की महत्ता को देखते हुए संचार के इन माध्यमों का उपयोग निर्धारित करते हैं।

संचार की बाधाएँ

Difficulties of Communication

संगठन के सफल कार्यकरण हेतु संचार की जितनी आवश्यकता है उसके प्रभावी होने के मार्ग में उतनी ही बाधाएँ हैं। इनमें प्रमुख इस प्रकार हैं

(1) भाषा सम्बन्धी समस्या (Language Difficulty)

हमारे विचारों के आदान–प्रदान और सम्प्रेषण में भाषा एक सशक्त माध्यम का काम करती है। किन्तु विभिन्न भाषा बोलने वाले देश में, विभिन्न भाषाओं को समझने वाले संगठन में यह भाषा ही संचार के माध्यम में एक कठिनाई बन जाती है। एक प्रदेश की भाषा दूसरे प्रदेश में समझ पाना, हमारे देश में एक व्यावहारिक कठिनाई है। इसी प्रकार, इस सन्दर्भ से एक कठिनाई यह भी है कि प्रशासन की भाषा को जनसाधारण नहीं समझ पाता है। प्रशासन के कामकाज में उपयोग की जाने वाली भाषा इतनी तकनीकी और जटिल होती है कि आम आदमी समझ नहीं पाता है। न्यायालय, राजस्व विभाग और इसी तरह के जन साधारण से जुड़े भागों में जो प्रपत्र तैयार किये जाते है उनकी जटिल और तकनीकी भाषा प्रायः संचार में बाधा बन जाती है।

(2) मस्तिष्क की दिशा और स्थिति (Frame of Mind)

प्राय प्रत्येक व्यक्ति की अपनी स्थिति और वैचारिक स्थिति संचार को समझने के लिए पृथक–पृथक होती है। यह भी हो सकता है कि एक संदेश का प्रभाव दो भिन्न–भिन्न व्यक्तियों पर उनकी वैचारिक और मनोदशा के अनुसार अलग–अलग पडे। इस स्थिति में यदि भाषागत कठिनाई है तो संदेश और संचार में टूट–फूट होने की और अधिक संभावना हो जाती है। इस प्रकार संदेश देने वाले और ग्रहण करने वाले लोगों की मनोदशा, स्वभाव और मानसिक स्थिति संचार को समझने और ग्रहण करने के मार्ग में एक विशेष बाधक तत्व का काम करती है, प्रभावी संचार के लिए इस स्थिति के बारे में पूर्व समझ आवश्यक है।

(3) संगठन के आकार तथा दूरी की बाधा (Geographical Distance)

यदि संगठन बड़ा हो, भौगोलिक दृष्टि से दूर तक फैला हो और उसमें कार्यरत कर्मचारियों की संख्या अत्याधिक हो तो उस संगठन में संचार संबंधी बाधाएं उत्पन्न हो सकती हैं। संगठन में जितने अधिक सदस्य होंगे और संचार की प्रक्रिया में संदेश जितने अधिक लोगों के पास होकर गुजरता है उतनी ही अधिक कठिनाई संचार में उत्पन्न हो सकती है।

प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक स्तर पर संचार की विषय–वस्तु में यदि यत्किंचित भी परिवर्तन होगा तो संदेश विफल हो सकता है।

(4) पद सोपान संबंधी बाधाएं (Status Distance)

यह सुविदित है कि प्रत्येक संगठन पद सोपान पर आधारित होता है। संगठन में संदेश पद सोपान की विभिन्न श्रृंखलाओं में नियमपूर्वक गुजरता है। यह संदेश की उर्ध्वगामी और निम्नगामी दोनों स्थितियों में एक आवश्यक प्रक्रिया है। अनेक बार उचित पद सोपान से संदेश प्राप्त न होने के कारण प्राप्तकर्ता उसे ग्रहण करने से औपचारिक या अनौपचारिक रूप से इकार कर सकता है। इससे संदेश के संचार में विलम्ब तो होता ही है संगठन में आवश्यक विवाद की भी स्थिति उत्पन्न हो सकती है। संदेश चाहे सत्य ही क्यों न हो किन्तु उसका संचार यदि उपयुक्त पद सोपानात्मक श्रृंखलाओं के माध्यम से नहीं हो रहा है तो उस पर विश्वास न किये जाने के कारण अनेक बार संगठनों को पर्याप्त हानि उठानी पड़ती है। इस प्रकार परिस्थिति-जन्य यह बाधा संचार के मार्ग में एक संगठनात्मक अवरोध मानी जाती है।

(5) सैद्धान्तिक बाधाएं (Theoretical Barriers)

प्रत्येक व्यक्ति की पृष्ठभूमि शिक्षा, सामाजिक और राजनैतिक विचारों में भिन्नता होती है, उनके अपने अलग–अलग अनुभव होते हैं। वे सभी अपने सैद्धान्तिक ज्ञान की पृष्ठभूमि और सिद्धान्तों के अनुसार सोच और व्यवहार करते हैं। वे अपनी ही दृष्टि से समस्या की व्याख्या करने लगते हैं और इस स्थिति में उन्हें जो संदेश प्राप्त होता है उसकी भी वे अपने सैद्धान्तिक अनुभव के आलोक में व्याख्या करते हैं जिससे यह हो सकता है कि संदेश की विषय–वस्तु में अकारण ही परिवर्तन हो जाए। प्रत्यक व्यक्ति की यह पृष्ठभूमि संगठन में संचार की प्रमुख बाधा मानी जाती है।

(6) संचार के निश्चित और मान्य सिद्धान्तों का अभाव
(Lack of Approved Means of Communication)

संगठन में कार्य औपचारिक व अनौपचारिक दोनों रूपों में होता है। अनेक बार ऐसे अवसर आते हैं जब कार्य का सम्पादन औपचारिक रूप से नहीं हो सकता। पहले से ही समन्वय और संचार अनौपचारिक तरीकों से करना पड़ता है। किन्तु अनौपचारिक तरीकों के अभाव में संचार की निश्चितता में संशय बना रहता है। यह कारण भी, संचार के प्रभावी होने में एक बाधा बनता है।

विद्वान हरमन एवं जेल्दारूदमन ने भी प्रभावी संचार की निम्न बाधाएँ बतायी हैं–

(1) सन्देश का कमजोर सम्प्रेषण (Poorly Expressed Messages)

(2) सन्देश की गलत व्याख्या (Misinterpretation of Messages)

(3) कमजोर ग्राह्यता (Poor Retention)

(4) अभिप्रेरणा का अभाव (Lack of Motivation)

(5) समय पूर्व मूल्याकन (Premature Evaluation)

(6) भय की भावना (A Sense of Fear)

(7) विचार–विमर्श में विफलता (Failure to Discuss)

इन बाधाओं के निराकरण के लिए उपर्युक्त विद्वानों ने अधिकारियों/कर्मचारियों के विचारों की एकता और सन्देश देने वाले दोनों पक्षों की भावनाओं को समझने तथा संगठन में कार्यकर्ताओं द्वारा किये जाने वाले कार्यों का पूर्व अनुमान और उसकी दिशा को समझने के नेतृत्व के गुणों पर जोर दिया है।

प्रभावी और अच्छे संचार के लिए आवश्यक बातें (Necessary Conditions for Effective Communication)

विद्वान टेरी ने प्रभावी और अच्छे संचार में निम्न तत्वों की अपेक्षा की है–

(1) पूर्ण जानकारी स्वयं उपलब्ध करानी चाहिए,

(2) परस्पर विश्वास उत्पन्न किया जाना चाहिए,

(3) अनुभव के समान आधार की खोज की जानी चाहिए,

(4) ऐसे शब्दों का प्रयोग संचार में किया जाना चाहिए जो आपस में सभी को ज्ञात हो।

(5) पूर्व प्रसंग ध्यान में रहना चाहिए,

(6) सन्देश प्राप्तकर्ता का ध्यान आकृष्ट करना और उसे बनाये रखना चाहिए,

(7) उदाहरणों तथा दृश्य साधनों को काम में लाया जाना चाहिए, और

(8) विलम्बकारी प्रक्रियाओं के प्रयोग से बचना चाहिए।

महत्वपूर्ण प्रश्न

1. संचार से आपका अभिप्राय क्या है? इसके तत्त्वों का वर्णन कीजिए।
2. संचार से आप क्या समझते हैं? इसके साधनों व माध्यमों का वर्णन कीजिए।

अध्याय 9

विभागीय संगठन

Departmental Organisation

"केवल विभागीय व्यवस्था के कारण ही अधिकार क्षेत्र के विवाद, कार्यों का प्रतिपादन, संगठन तथा कार्यों के दोहराव से बचा जा सकता है।"

-विलोबी

विभाग का शाब्दिक अर्थ किसी बड़े संगठन की इकाई से है। यदाकदा इस शब्द का प्रयोग प्रशासकीय संगठन के अलावा अन्य क्षेत्रों में किया जाता है। विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों में अध्यापन कार्य को विभागों में बाँट लिया जाता है यथा राजनीति विज्ञान विभाग, अर्थशास्त्र विभाग, समाज शास्त्र विभाग आदि। प्रशासन की शब्दावली में विभाग का एक विशेष अर्थ होता है। कार्यपालिका अध्यक्ष के पास रहने वाले समस्त शासकीय कार्यों को अनेक खण्डों में विभाजित कर लिया जाता है इसी प्रत्येक खण्ड को विभाग कहते हैं।

मुख्य कार्यपालिका के पास इतने अधिक उत्तरदायित्व होते हैं कि वह अकेले समस्त कार्यों को सम्पन्न नहीं कर सकती। विभाग राज्य के लक्ष्य और कार्यपालिका के दायित्वों को पूर्ण करने वाला महत्वपूर्ण निकाय है। डिमॉक के शब्दों में "प्रशासन में श्रम–विभाजन की आवश्यकता होना ही विभागीय पद्धति के जन्म का स्वाभाविक कारण है और जब किसी उद्यम के कार्यों की संख्या में अत्यधिक वृद्धि हो जाती है जैसे आधुनिक सरकार विशेषतः संघीय सरकार के मामले में हो रहा है, तब यह परिस्थिति उग्र रूप धारण कर लेती है।"

विभाग के दो लक्षण होते हैं–(1) विभाग का स्थान प्रशासकीय क्रम में प्रथम होता है। यह मुख्य कार्यपालिका के तत्काल आधीन रहकर कार्य करता है।

(2) विभाग मुख्य कार्यपालिका के अधीन तथा उसके प्रति उत्तरदायी होता है।

विभागों के विभिन्न प्रकार

Kinds of Departments

विभागीय संगठन के अनेक प्रकार है इनका आधार आकार, बनावट, कार्य की प्रकृति तथा आन्तरिक सम्बन्धों को बनाया जा सकता है–

(1) **आकार के आधार पर**–कुछ विभागों का आकार बहुत बड़ा होता है और कुछ अत्यधिक छोटे आकार के होते हैं। सेना, रेल और डाक तार विभाग बड़े आकार के विभाग हैं जबकि राज्यों का रजिस्ट्री विभाग छोटे विभाग का उदाहरण है।

(2) **स्वरूप के आधार पर**–स्वरूप की दृष्टि से विभाग को एकात्मक और संघात्मक दो भागों में बाँटा जा सकता है। एकात्मक विभाग में निर्णय करने का दायित्व केन्द्र के पास होता है। प्रतिरक्षा और वित्त–मंत्रालय इसी श्रेणी में आते हैं। संघात्मक विभाग में निर्णय करने का आंशिक अधिकार क्षेत्रीय कार्यालय को प्रदान किया जाता है। सामुदायिक विकास से सम्बद्ध कार्यालय को इस श्रेणी में रखा जा सकता है।

(3) **कार्य के आधार पर**–कुछ विभागों की रचना एक ही प्रधान प्रयोजन को पूरा करने के लिए की जाती है, इन्हें एक कार्यकारी विभाग कहा जाता है। उदाहरणार्थ प्रतिरक्षा, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि। इसके विपरीत कुछ विभाग ऐसे होते हैं जिनके कार्य विविध प्रकार के होते हैं। ऐसे विभागों को बहुकार्यकारी विभाग कहते हैं। सामान्य प्रशासन विभाग इसका उदाहरण है। इसका कार्य समस्त विभागों के बीच समन्वय स्थापित करना है।

(4) **भौगोलिक आधार पर**–कुछ विभागों का मुख्य कार्य कार्यालय तक ही सीमित रहता है यथा वित्त, प्रतिरक्षा, स्थानीय स्वशासन आदि इसके विपरीत अन्य विभागों का कार्य समूचे देश में बंटा रहता है तथा क्षेत्रीय स्तर के कार्यालयों द्वारा सम्पन्न किया जाता है। डाक एवं तार विभाग इसके उदाहरण हैं।

विभागीय संगठन के आधार

Bases of Departmental Organisation

वर्तमान में विभागीय संगठन के चार आधार स्वीकार किये जाते हैं। लूथर गुलिक के अनुसार विभाग के ये चार आधार अंग्रेजी के प्रथम अक्षर 'P' से प्रारम्भ होते हैं–Purpose. Process, Persons, तथा Place। इसे गुलिक के 4Ps के सिद्धांत से जाना जाता है।

विभागीय संगठन के आधार पर विस्तृत विवेचन अध्याय 5 में संगठन के आधार शीर्षक के अन्तर्गत किया गया है।

विभागीय अध्यक्ष (ब्यूरो तथा बोर्ड व्यवस्था) [The Head of the Department (Bureau and Board System)]

विभागीय संगठन में विभागाध्यक्ष को सर्वोच्च सत्ता और अधिकार प्राप्त होते हैं। विभागाध्यक्ष की स्थिति वही है जो कि शरीर में मस्तिष्क की है। जिस प्रकार समस्त शारीरिक क्रियाओं का निर्देशन और नियंत्रण मस्तिष्क करता है ठीक उसी प्रकार विभाग द्वारा सम्पन्न किये जाने वाले कार्यों का निर्देशन एवं नियंत्रण विभागाध्यक्ष द्वारा किया जाता है। विभागीय अध्यक्ष की योग्यता पर ही समस्त शासन व्यवस्था की कुशलता निर्भर है। प्रबन्ध की दृष्टि से विभागीय अध्यक्ष की व्यवस्था दो रूपों में की जाती हैं–

I. ब्यूरो पद्धति अथवा एक अध्यक्षीय व्यवस्था (Bureau Type or Single Man Department)

II. मण्डलीय पद्धति अथवा बहु–सदस्यीय व्यवस्था (Board Type or Plural Type Department)

I. **ब्यूरो पद्धति अथवा एक अध्यक्षीय व्यवस्था**-यदि कोई एक व्यक्ति विभाग का अध्यक्ष होता है तब वह ब्यूरो पद्धति अध्यक्ष कहलाती है। इसमें विभाग के निर्देशन तथा निरीक्षण का दायित्व एक व्यक्ति के हाथों में होता है। इंग्लैंड तथा भारत में ब्यूरो पद्धति का पालन किया जाता है। उदाहरणार्थ प्रतिरक्षा मन्त्री, प्रतिरक्षा विभाग तथा शिक्षा मन्त्री, शिक्षा विभाग का अध्यक्ष होता है। डा० एल डी व्हाइट के अनुसार ब्यूरो व्यवस्था विभाग की मुख्य आंतरिक इकाई है। इसका अध्यक्ष संगठन के आदेशानुसार उसके निर्देशन पर कार्य करने के लिये उत्तरदायी होता है।"

ब्यूरो पद्धति के गुण–ब्यूरो पद्धति के गुण निम्नलिखित हैं–

(1) **शीघ्र निर्णय**–एक सदस्यीय अध्यक्षीय प्रणाली के अन्तर्गत कार्य करने का उत्तरदायित्व एक ही व्यक्ति पर होता है। एक व्यक्ति, व्यक्ति समुदाय की अपेक्षा शीघ्र निर्णय ले सकता है।

(2) **उद्देश्य की एकरूपता**–इस प्रणाली में उद्देश्य की एकता बनी रहती है। इसका लाभ यह होता हे कि संगठन मे लगे सभी कर्मचारी में लक्ष्य की स्पष्टता और एकरूपता के कारण अपने विभाग के कार्य की प्रकृति को समझते हैं और तदनरूप आचरण करते हैं।

(3) **कुशल नियन्त्रण**–इस व्यवस्था में आदेश एक ही व्यक्ति द्वारा प्रसारित किये जाते हैं। फलस्वरूप अधीनस्थ कर्मचारियों को यह ज्ञात होता है कि उन्हें किस व्यक्ति के आदेशों का पालन करना है। प्रभावशाली नियंत्रण के परिणामस्वरूप कर्मचारियों में कर्तव्यों के प्रति उदासीनता नहीं आ पाती। अतः प्रशासकीय संगठन भ्रष्टाचार तथा अकर्मण्यता आदि का शिकार नहीं हो पाता।

(4) **दृढ़ अनुशासन**–एक ही व्यक्ति के हाथों में सत्ता निहीत होने के कारण वह अपने विभाग पर दृढ़ अनुशासन स्थापित कर सकता है।

(5) **उत्तरदायित्व का निर्धारण**–इस प्रणाली में विभाग की असफलता के लिये उत्तरदायित्व निश्चित करने में कठिनाई नहीं आती। समस्त सफलताओं का श्रेय यदि विभागाध्यक्ष को होता है तो असफलताओं के लिये भी वही उत्तरदायी होता है।

(6) **मितव्ययता**–यह व्यवस्था इस दृष्टि से मितव्ययी होती है कि एक ही व्यक्ति के अनुपालन (Maintenance) पर खर्च किया जाता है।

(7) **पूर्ण योग्यता से कार्य**–जब विभाग के कार्य संचालन के लिये एक ही व्यक्ति उत्तरदायी होता है तो वह अपना कार्य सम्पूर्ण उत्साह, योग्यता, लगन एवं ईमानदारी के साथ सम्पन्न करता है।

(8) **स्थायी नीति एवं कुशल निर्देशन**–यदि विभाग का संगठन पुराना है और उसके उद्देश्य निश्चित हैं तब विभाग का अध्यक्ष एक व्यक्ति श्रेष्ठ होता है। नीति के स्थायित्व के कारण योग्य एवं कर्तव्यनिष्ठ विभागाध्यक्ष कुशल निर्देशन दे सकता है। कुशल निर्देशन से संगठन की कार्यक्षमता में वृद्धि होती है।

हेमिल्टन के अनुसार–"संगठन के प्रत्येक विभाग में एक सदस्यीय अध्यक्ष की व्यवस्था को अधिक मान्यता प्रदान की गई है। इससे हमें अधिक ज्ञान, अधिक क्रियाएँ तथा अधिक उत्तरदायित्व की सम्भावनाएँ प्राप्त होंगी और साथ ही प्रशासन में अधिक लगन तथा सतर्कता स्थापित होगी।

ब्यूरो पद्धति के दोष–ब्यूरो पद्धति के दोष निम्नलिखित हैं–

(1) **तानाशाही प्रवृत्ति का विकास**–यह एक निरपेक्ष सत्य है कि यदि किसी व्यक्ति को सम्पूर्ण शक्तियाँ प्रदान कर दी जाएँ तो वह निरंकुश आचरण प्रारम्भ कर देता है। ब्यूरो पद्धति में आदेश देने, नियन्त्रण और निर्देश देने के समस्त अधिकार एक ही व्यक्ति के पास होते हैं। अतः उसमें तानाशाही प्रवृत्ति का विकास सहज ही हो जाता है।

(2) **पक्षपात पूर्ण निर्णय**–समस्त प्रशासकीय अधिकार और सत्ता जब एक व्यक्ति में निहित होते हैं तब चापलूस व्यक्ति उसे प्रभावित करने में सफल हो जाते हैं। इस व्यवस्था के कारण समस्त प्रशासन का संचालन पक्षपात पूर्ण तरीके से होने लगता है।

(3) **दोषपूर्ण निर्णय**–इस व्यवस्था में जहाँ शीघ्र निर्णय के गुण हैं वहीं इसके कारण एक दोष भी स्वाभाविक रूप से उत्पन्न हो जाता है। अज्ञानता और शक्ति के मद में जल्दबाजी में जो निर्णय लिए जाते हैं वे विवेकहीन होते हैं।

(4) **भ्रष्टाचार की सम्भावनाएँ**–लार्ड एक्टन का विचार है कि "शक्ति भ्रष्ट करती है और पूर्ण शक्ति पूर्ण रूप से भ्रष्ट करती है।" एक व्यक्ति के पक्षपातपूर्ण व्यवहार के कारण समस्त विभाग में भ्रष्टाचार व्याप्त हो जाता है।

(5) **जनसहयोग का अभाव**–ब्यूरो व्यवस्था में भ्रष्टाचार जिस सीमा तक व्याप्त हो जाता है उसके कारण जनता में उदासीनता की भावना उत्पन्न हो जाती है।

II. **मण्डलीय पद्धति अथवा बहुसदस्यीय व्यवस्था**–यदि विभाग के निर्देशन तथा नियन्त्रण का दायित्व कई व्यक्तियों में दे दिया जाता है तो उस मण्डलीय अथवा बहुसदस्यीय व्यवस्था का संगठन कहा जाता है। भारत का केन्द्रीय राजस्व बोर्ड तथा रेलवे बोर्ड इसके सर्वोत्तम उदाहरण है। रेलवे का प्रशासन और उसका प्रबंध एवं संचालन रेल मन्त्री के नीचे रेलवे बोर्ड द्वारा किया जाता है। यही स्थिति केन्द्रीय वित्त मंत्रालय में सीमा शुल्क, निर्यात कर, आयकर के विभागों को नियंत्रित करने वाले केन्द्रीय राजस्व मण्डल की है।

मण्डलीय अथवा आयोग प्रणाली के गुण–इस पद्धति में निम्नलिखित गुण हैं–

(1) **नीति निर्माण के लिये आवश्यक**–जिन विभागों के कार्य दैनिक प्रकृति के नहीं होते अपितु नीति का निर्माण करने के लिए विवेक की आवश्यकता होती है वहाँ मण्डलीय पद्धति अपनाई जाती है।

(2) **मिश्रित प्रकृति के कार्यों के लिए**–जब विभागों को अर्धव्यवस्थापिक कार्यों एवं अर्धन्यायिक कार्यों का सम्पन्न करना होता है तब मण्डलीय पद्धति अपनाई जाती है। जब एक विभाग को ऐसे नियम बनाने होते हैं जिसमें नागरिकों के अधिकार प्रभावित होते हैं तब ऐसे कार्यों के लिए सामूहिक और शान्त विचार की आवश्यकता होती है

(3) **विरोधी हितों में समन्वय की स्थापना**–यदि संगठन में विभिन्न विरोधी हितों में सामन्जस्य स्थापित करना हो तो आयोग पद्धति को अपनाया जाता है। उदाहरणार्थ पूँजीपतियों और श्रमिकों के हित परस्पर विरोधी होते हैं इनमें सामन्जस्य स्थापित करने के लिए श्रम न्यायाधिकरण तथा सुलह मण्डलों की स्थापना की जाती है।

(4) **निर्दलीय संगठन**–इस प्रणाली में समस्त राजनैतिक दलों को प्रतिनिधित्व दे दिया जाता है। अतः इस व्यवस्था में दलीय राजनीति के दोष स्वतः समाप्त हो जाते हैं।

(5) **बाहरी दवाब से सुरक्षा**–यदि प्रशासन को बाहरी दवाब और पक्षपात से बचाना हो तो मण्डलीय प्रणाली उपयुक्त रहती है क्योंकि सभी सदस्यों पर प्रभाव डाल पाना संभव नहीं होता।

(6) **विरोधी विचारों में समन्वय**–मण्डलीय व्यवस्था में विभिन्न विरोधी विचारधाराओं वाले व्यक्तिओं को नियुक्त कर उनमे समन्वय स्थापित किया जा सकता है।

मण्डलीय पद्धति के दोष–मण्डलीय पद्धति के दोष निम्नलिखित हैं–

(1) **उत्तरदायित्व निश्चित करना कठिन**–जब किसी मण्डल द्वारा कोई गलत निर्णय ले लिया जाता है तब उसके लिए किसी व्यक्ति को दोषी ठहराना कठिन होता है। सभी सदस्य एक दूसरे पर दोषारोपण कर अपने उत्तरदायित्व से बचना चाहते हैं। अंग्रेजी में कहावत है–Every body's responsibility is no body's responsibility) "सबकी जिम्मेदारी किसी की जिम्मेदारी नहीं होती।"

(2) **कार्य करने में देरी**–अनेक व्यक्तियों द्वारा निर्णय लिये जाने के कारण कार्य करने में देरी होती है। आकस्मिक घटनाओं में जहाँ शीघ्र निर्णय आवश्यक होता है यह व्यवस्था उपयोगी नहीं होती।

(3) **अनुशासन हीनता**–विभाग का प्रत्येक कर्मचारी प्रत्येक सदस्य को प्रसन्न नहीं रख सकता। प्रायः यह देखा जाता है कि कर्मचारी विभिन्न सदस्यों के कृपापात्र बन जाते हैं और विभाग में दलबन्दी व्याप्त हो जाती है।

(4) **व्ययसाध्य**–एक से अधिक व्यक्तियों को वेतन तथा अन्य सुविधायें प्रदान करने के कारण यह प्रणाली अत्यधिक व्ययसाध्य हो जाती है।

(5) **दलीय राजनीति**–इस व्यवस्था में प्रायः स्वतन्त्र और निष्पक्ष रीति से विचार विमर्श नहीं होता। इसका कारण यह है कि मण्डल के सदस्य विशेष योग्यता प्राप्त नहीं होते अपितु मन्त्रियों के पिछलग्गु होते हैं। प्रायः यह देखा गया है कि राजनीति मे पिटे मोहरों को आयोग का सदस्य बना दिया जाता है। इस कारण मण्डलों के कार्य निष्पक्ष रीति से सम्पन्न नहीं हो सकते।

(6) **शासकीय कार्य साझा प्रकृति के नहीं होते**–यदि विभाग का कार्य प्रशासन करना है, नीति निर्माण करना नहीं तो मण्डलीय व्यवस्था व्यर्थ है। प्रशासन करना एक व्यक्ति का कार्य है बहुत से व्यक्तियों का नहीं।

हेमिल्टन के अनुसार–"मण्डलों में बड़ी सभाओं की असुविधायें बढ़ जाती हैं। उनके निर्णय धीरे–धीरे होते हैं, उनमें शक्ति कम होती है। उनका उत्तरदायित्व विकेन्द्रित होता है। उनमें वह ज्ञान और योग्यता नहीं पाई जाती जो एक व्यक्ति द्वारा संचालित व्यक्ति में पाई जाती है।"

Boards partake a part of the inconvenience of the large assemblies. The decision are slower. Their energy their responsibility, more diffused, they will not have the same abilities and knowledge and an administration by single man.)

Alexander Hamilton.

महत्वपूर्ण प्रश्न

1. विभागीय संगठन के क्या आधार हैं? उनके अपेक्षाकृत गुणों की विवेचना कीजिये।
2. विभागों के संगठन के विभिन्न आधार क्या है। आपके मतानुसार उनमें से कौन–कौन श्रेष्ठ है और क्यों?
3. आप किन परिस्थितियों में विभाग के एक अध्यक्ष की अपेक्षा मण्डल अथवा आयोग की अध्यक्षता का समर्थन करेंगे? इन दोनों प्रकार के संगठनों के गुण अवगुणों को बताइए।
4. विभाग की एकल ब्यूरो तथा बहुल बोर्ड अध्यक्षता पद्धतियों से क्या अभिप्राय है? इन दोनों पद्धतियों के गुण दोषों की विवेचना कीजिये।

अध्याय 10

लोक निगम

Public Corporation

राज्य के कार्यों के सम्बन्ध में व्यक्तिवादी धारणा अब समाप्त हो चुकी है। व्यक्तिवादी विचारकों ने [illegible] अत्यधिक सीमित कर दिया था। उनकी मान्यता थी कि "वह सरकार सबसे अच्छी सरकार होती है जो सबसे [illegible] है।" इसी मान्यता के आधार पर राज्य के कार्यक्षेत्र को बाह्य आक्रमणों से देश की रक्षा तथा आतरिक शान्ति [illegible] स्थापना तक सीमित किया गया। आर्थिक क्षेत्र में व्यक्तिवादियों द्वारा 'न्यूनतम हस्तक्षेप' (Laiseez faire) के सिद्धान्त [illegible] प्रतिपादन किया गया। यह कहा गया कि औद्योगिक प्रगति के लिए राज्य को आर्थिक क्षेत्र में हस्तक्षेप नहीं करना [illegible] न्यूनतम हस्तक्षेप की इस नीति के कारण उन्मुक्त व्यापार की नीति का प्रचलन हुआ। परिणाम स्वरूप समा[illegible] वर्ग ने दुर्बल वर्ग का अत्यधिक शोषण किया। राज्य ने इस निर्बल वर्ग के कल्याण एवं आर्थिक जीवन [illegible] व्यक्तियों को प्रदान करने के लिए आर्थिक जीवन का नियमन करने का दायित्व अपने ऊपर लिया। आर्थिक [illegible] के लिए राज्य ने व्यापार भी आरम्भ कर दिया। समाजवाद के लक्ष्य को प्राप्त करने वाले लोककल्याणकारी [illegible] जीवन का शायद ही कोई ऐसा क्षेत्र हो जहाँ राज्य विद्यमान न हो। उत्पादन के साधनों पर राज्य का नियन्त्रण [illegible] के कारण राष्ट्रीयकरण की माँग बढ़ती जा रही है। समस्त लोकतान्त्रिक राष्ट्रों में राज्य ने उद्योग तथा वाणिज्य [illegible] कर लिया है। खाद्य सामग्री की कमी, मूल्यवृद्धि की समस्या, व्यापारियों की स्वार्थी मनोवृत्तियों को समाप्त करने के [illegible] अर्थव्यवस्था का एक व्यापक भाग सार्वजनिक उद्यमों के अन्तर्गत आ गया है।

सरकारी उद्यम सरकार द्वारा संचालित एक ऐसा उद्यम है जिसका संचालन और नियन्त्रण सरकार द्वारा होता है [illegible] क्षेत्रों में राज्य के प्रवेश तथा लोक प्रशासन के क्षेत्र में भी व्यक्तिगत व्यवसाय की तकनीक के अनुसरण के परिणाम [illegible] निगम का निर्माण हुआ। प्रो० राबसन के शब्दों में–"लोक निगम राजनीतिक संगठन और संवैधानिक पद्धति [illegible] महत्वपूर्ण नवीन आविष्कार है।

लोक निगम का अर्थ–सरकार आवश्यक उद्यमों की व्यवस्था के लिए विभागों का संगठन करती है किन्तु विभाग[illegible] के संचालन में अत्यधिक असुविधा और कठिनाई आती है। अतः वर्तमान शताब्दी में सरकारी क्षेत्र में निगम व्यवस्था [illegible] गया है। निगम व्यवस्था में व्यापारिक स्वतन्त्रता तथा सरकारी नियंत्रण दोनों का अदभूत समन्वय पाया जाता [illegible] **रूजवेल्ट** के शब्दों में–"निगम सरकार की शक्ति का जामा पहने होता है परन्तु उसमें व्यक्तिगत उद्यम की [illegible] लोचशीलता पाई जाती है।"

लोक निगम की परिभाषा

(Definition of Public Corporation)

चैम्बर्स शब्द कोष के अनुसार–"निगम उन व्यक्तियों के समान है जो एक व्यक्ति के समान कार्य करे तथा [illegible] आधार कानून हो।"

डीमांक के शब्दों में– सरकारी निगम जनता द्वारा संचालित ऐसा उद्योग है जो संघीय राज्य अथवा स्थानीय [illegible] उद्देश्य के लिए किसी विशेष व्यवसाय को संचालित करता है।"

प्रो. पिफनर के अनुसार–"सरकारी निगम विभिन्न व्यक्तियों को एक व्यक्ति के रूप में कार्य करने का [illegible] प्रकार निगम एक कृत्रिम व्यक्तित्व के रूप में कार्य करता है। यह किसी कार्य विशेष को करने के लिए [illegible] विभूषित होता है।"

ग्लेडन के अनुसार निगम की तीन विशेषताएँ है–कानून द्वारा स्थापित होना, अपने कार्य में पर्याप्त स्वतन्त्रता रखना और सार्वजनिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कार्य करना। इसकी स्थापना का उद्देश्य किसी सार्वजनिक लक्ष्य की पूर्ति करना होता है। इसकी स्थापना के प्रधान कारण हैं–राज्य के कार्यों में वृद्धि, इन कार्यों को सरकारी विभागों द्वारा करने में असमर्थता तथा संयुक्त पूँजीवाली कम्पनियों द्वारा इन कार्यों को न किया जाना।

लोक निगम के लक्षण–लोक निगम के सामान्य लक्षण निम्नलिखित हैं–

(1) **कानून द्वारा निर्माण**–सरकारी निगम का निर्माण व्यवस्थापिका के द्वारा निर्मित कानून के द्वारा होता है। इस कानून के अन्तर्गत सरकारी निगम के उद्देश्य, उसकी शक्तियों तथा कार्यों का वर्णन कर दिया जाता है।

(2) **स्वतन्त्र व्यक्तित्व**–इसे एक वैधानिक व्यक्तित्व प्राप्त होता है। इसके विरुद्ध कोई भी न्यायिक कार्यवाही कर सकता है। यह समझौते कर सकता है तथा अपने नाम पर सम्पत्ति भी रख सकता है।

(3) **निश्चित लक्ष्य**–इसकी स्थापना निश्चित लक्ष्य के लिए होती है तथा यह उसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहता है। इसके कार्य व्यापारिक एवं औद्योगिक प्रकृति के होते हैं तथापि इसका प्रमुख लक्ष्य लाभोपार्जन न होकर जनसेवा होता है।

(4) **वित्तीय स्वायत्तता**–इसका वित्तीय प्रबन्ध राष्ट्रीय वित्तीय प्रबन्ध से भिन्न होता है। संसद द्वारा उसे जो राशि प्रदान की जाती है उसका प्रयोग वह स्वेच्छा से कर सकता है।

(5) **स्वायत्तशासी कार्य**–इन्हें अपने कार्यों में स्वायत्तता प्राप्त होती है। मुख्य कार्यपालिका इनके दैनिक कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करती।

(6) **शासकीय कर्मचारियों से भिन्न व्यक्तित्व**–लोक निगम के कर्मचारी शासकीय कर्मचारी नहीं होते। उनकी सेवा शर्तें, प्रबन्ध एवं नियंत्रण आदि नागरिक अधिकारों की अपेक्षा व्यापारिक संगठनों के अधिक अनुरूप होते हैं।

(7) **लाभोपार्जन की भावना का अभाव**–सरकारी निगम जनहित की भावना से प्रेरित होकर कार्य करते हैं। लाभोपार्जन की भावना इनमें गौण रूप से पाई जाती है। हर्बर्ट मोरीसन के शब्दों में "सरकारी निगम को केवल पूँजीवादी व्यापार ही नहीं बनना चाहिए जिसका प्रथम तथा अन्तिम लक्ष्य केवल लाभ को कमाना ही हो। फिर भी इससे यह आशा की जाती है कि यह स्वयं ही अपना व्यय निकाल ले।"

(8) **मन्त्रियों के साथ सम्मानजनक सम्बन्ध**–सरकारी निगमों पर मंत्रिमंडल का प्रत्यक्ष नियंत्रण नहीं रहता। मन्त्री केवल व्यापक नीति का ही निर्माण कर सकते हैं तथापि दोनों के सम्बन्ध सम्मानजनक होते हैं।

(9) **एकाधिकारी प्रवृत्ति**–निगम के कार्य एकाधिकार प्रकृति के होते हैं उनमें प्रतिस्पर्धा की कोई संभावना नहीं होती। उदाहरणार्थ जिन मार्गों को राष्ट्रीयकृत मार्ग घोषित किया जाता है इन पर प्राइवेट बसें नहीं चलतीं।

सरकारी निगम का उद्देश्य-लोक निगम की स्थापना अग्रलिखित उद्देश्यों के लिए की जाती है–

(1) **ऋण की सुविधा**–निगम साधारण से साधारण व्यक्ति द्वारा संचालित उद्योग के लिए ऋण की व्यवस्था करता है। जीवन बीमा निगम द्वारा विभिन्न अर्धसरकारी एवं गैर सरकारी उद्यमों के लिए धन की व्यवस्था की जाती है।

(2) **क्षेत्र विशेष के चतुर्मुखी विकास के लिए**–इस दृष्टि से स्थापित निगमों का उद्देश्य किसी विशिष्ट भू–क्षेत्र का विकास करना होता है। पुर्नवास वित्त आयोग तथा दामोदर घाटी निगम इसी श्रेणी में आते हैं।

(3) विभिन्न प्रांतों में औद्योगिक विकास के लिए इस प्रकार के विभिन्न निगमों की स्थापना की गई है।

सरकारी निगम तथा विभागीय प्रशासन में अन्तर

Difference between Public Corporation and Government Department

यद्यपि विभाग और सरकारी निगम दोनों ही सरकारी उपक्रम के दो रूप है तथापि प्रक्रिया, संसद तथा कार्यपालिका के साथ उनके सम्बन्धों की दृष्टि से उनमें पर्याप्त भिन्नता पाई जाती है। इन दोनों में निम्नलिखित भिन्नताएँ होती हैं–

(1) **कानूनी स्वायत्तता सम्बन्धी**–सरकारी निगमों को आंतरिक मामलों में स्वायत्तता प्राप्त होती है किंतु विभागों को इस प्रकार की स्वायत्तता प्राप्त नहीं होती।

(2) **संसदीय नियंत्रण की दृष्टि से**–सरकारी निगमों पर संसदीय नियंत्रण विभागों की अपेक्षा कम होता है। संसद की स्वीकृति के बिना विभाग एक पैसा भी खर्च नहीं कर सकते। विभाग किसी अन्य अभिकरण से धन लेने के लिए स्वतन्त्र नहीं होते हैं। इसके विपरीत निगम वित्तीय दृष्टि से संसदीय नियंत्रण से मुक्त होते हैं। विभाग की प्रत्येक क्रिया संसदीय सूक्ष्म नियंत्रण का विषय है परन्तु निगम के केवल बाह्य मामलों पर नियंत्रण रखती है।

(3) **उत्तरदायित्व की दृष्टि से**–निगमों के सम्बन्ध में व्यवस्थापिका द्वारा प्रश्नों का उत्तर लिए जाने की शक्ति सीमित है। उस मन्त्री को जिसका सरकारी निगमों से संबंध है उत्तर देने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता परन्तु विभाग के संबंध में संसद द्वारा प्रश्न पूछे जाने पर मंत्री उत्तर देने के लिए बाध्य होता है।

(4) **वित्तीय दृष्टि से**–सरकारी निगम संसद द्वारा प्राप्त होने वाली आर्थिक सहायता के अतिरिक्त अपनी पूंजी में वृद्धि करने साधन जुटाने, धन एकत्रित करने, उधार लेने तथा देने, स्वयं बजट तैयार करने के लिए स्वतन्त्र होते हैं परन्तु विभाग को यह स्वतंत्रता प्राप्त नहीं होती।

(5) **कार्मिक वर्ग के प्रशासन की दृष्टि से**–विभागों के कर्मचारी नागरिक सेवाओं के सदस्य होते हैं। उन पर संघ लोक नागरिक सेवाओं के नियमों के अनुसार लागू होती है परन्तु सरकारी निगम में सेवा शर्तों में निजी उद्योग जैसी लोचशीलता रहती है।

(6) **क्रय-विक्रय के नियमों की दृष्टि से**–वस्तुओं को खरीदने तथा बेचने की प्रक्रिया की दृष्टि से विभागों को कठोर नियमों के आधीन कार्य करना होता है। विभागों में बिना टेन्डर आमंत्रित किए किसी वस्तु की खरीद नहीं की जा सकती। यदि सरकारी निगमों की प्रत्यक्ष वार्ता द्वारा अच्छी चीजें सुलभ हो जाती हैं तो वह बिना औपचारिक नियमों का पालन किए उन्हें खरीद सकते हैं।

(7) **लेखा परीक्षण की दृष्टि से**–विभागों में सरकारी आडिट करते समय वैधानिकता एवं ईमानदारी की जांच की जाती है। निगमों के वार्षिक हिसाब–किताब की परीक्षा दलीय उद्योगों की भाँति की जाती है।

(8) **कानूनी व्यक्तित्व की दृष्टि से**–विभागों पर मुकदमा नहीं चलाया जा सकता है जबकि निगमों पर मुकदमा चलाया जा सकता है। विभागों को कानूनी व्यक्ति नहीं माना जाता जबकि निगम का कानूनी व्यक्ति माना जाता है।

(9) **राजनैतिक दबाव की दृष्टि से**–सरकारी निगम अपने कार्य की प्रकृति एवं संगठन के कारण राजनैतिक दबाव से इस मात्रा में प्रभावित नहीं होते जिस मात्रा में विभागों की प्रक्रियाओं पर राजनैतिक दबाव पड़ता है।

सरकारी निगम पर मंत्रिमण्डल एवं संसद का नियन्त्रण

Ministerial and Parliamenary Control over Public Corporation

वर्तमान में लोक निगम द्वारा सरकारी उद्योगों को चलाने की पद्धति का चलन निरन्तर बढ़ता जा रहा है। अतः सार्वजनिक हित की दृष्टि से इन पर नियंत्रण स्थापित किया जाना आवश्यक प्रतीत होता है।

मन्त्रिमण्डल का नियन्त्रण–विभिन्न राष्ट्रीय योजनाओं में समन्वय उत्पन्न करने के लिए यह आवश्यक है कि सरकारी निगमों के नियन्त्रण के सम्बन्ध में मन्त्रियों के पास कुछ शक्तियाँ होनी चाहिए, किन्तु यह नियन्त्रण उसी मात्रा तक होना चाहिए जिससे कि सरकारी निगमों की स्वतन्त्रता पर आँच आती हो। सरकारी उद्यमों पर मंत्री मण्डल का नियन्त्रण निम्नलिखित प्रकार से स्थापित किया जाता है--

(1) **संचालक मण्डल की नियुक्ति**–प्रायः समस्त सरकारी निगमों में उससे सम्बन्ध रखने वाले विभाग के मंत्री को निगम के संचालक मण्डल के सदस्यों को नियुक्त करने का अधिकार दिया जाता है। भारतवर्ष में न केवल अध्यक्ष और सदस्यों को, अपितु इसके प्रबन्ध निर्देशकों और महाप्रबन्धकों को नियुक्त करने के अधिकार भी दिए जाते हैं। इन समस्त व्यक्तियों को पदच्युत करने का अधिकार भी मंत्री के पास होता है।

(2) **सामान्य नीति सम्बन्धी निर्देश देने का अधिकार**–मंत्रियों को सरकारी निगमों को सामान्य नीति विषयक निर्देश देने का अधिकार होता है। सरकारी निगम सार्वजनिक उद्देश्यों की पूर्ति ठीक प्रकार से करे यह देखना मंत्री का काम है

अतः इसके लिए आवश्यक निर्देश देना मंत्री का अधिकार है। परन्तु मंत्रियों को निगमों के दैनिक कार्य में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। मंत्रियों को कोई भी निर्देश जारी करने से पूर्व निर्देशक मण्डल के सदस्यों से परामर्श ले लेना चाहिए तथा वे निर्देश लिखित रूप से देने चाहिए।

(3) **आर्थिक प्रतिबन्धों द्वारा**–कई बार निगम के अधिनियम में ही आर्थिक प्रतिबन्धों का उल्लेख कर दिया जाता है। साधारणतः सभी निगमों को पूँजी बढ़ाने, रूपया उधार लेने, अंशधारी बढ़ाने के लिए, पूंजी कम करने के लिए, दो हजार माहवार से अधिक वेतन पाने वाले अधिकारी की नियुक्ति के लिए या 40 लाख रूपये से अधिक पूंजी व्यय करने के लिए शासन की अनुमति आवश्यक रहती है।

मन्त्रिमण्डलीय नियन्त्रण के विपक्ष में तर्क–यद्यपि सरकारी निगमों पर मन्त्रिमण्डल का नियन्त्रण उन्हें स्वेच्छाचारी होने से रोकने के लिए लगाया जाता है परन्तु इसके विपरीत परिणाम भी हो सकते हैं--

(1) सरकारी निगम की स्वायत्तता और स्वतन्त्रता समाप्त हो जाती है। मंत्रियों द्वारा अपनी शक्तियों के दुरूपयोग की सम्भावनायें सदैव रहती हैं। अपने नियुक्ति सम्बन्धी अधिकारों का दुरूपयोग कर वे अपने निर्वाचकों को पुरस्कृत कर सकते हैं।

(2) इस सम्भावना से इंकार नहीं किया जा सकता कि मंत्रीगण नीति का नाम लेकर निगम के प्रशासन के दैनिक मामलों में अनुचित हस्तक्षेप करें।

(3) मन्त्रिमण्डल निगम के कार्यों में पर्याप्त हस्तक्षेप तो करते हैं परन्तु उसका उत्तरदायित्व अपने ऊपर नहीं लेना चाहते। अर्नस्ट डेविज के शब्दों में--"यद्यपि पर्दे के पीछे रहकर वे संचालक मण्डल को पर्याप्त रूप से प्रभावित करते हैं किन्तु वे अपने कार्यों के लिए जनता के प्रति उत्तरदायित्व वहन नहीं करना चाहते। व्यक्तिगत रूप से वे अपने उत्तरदायित्व का प्रयोग करते है किंतु जनता को उसके लिए जवाब नहीं देते।"

मन्त्रीय नियन्त्रण की निरंकुशता को सीमित करने के लिए पाल.एच.एपेलबी का मत है कि--"लोक निगम को मंत्री रूपी पिता की गोद में तब तक नहीं डालना चाहिए जब तक प्यार करने वाली संसदीय माता प्राप्त न हो जाये जो पिता के अत्यधिक अनुशासन को रोक सके।"

सरकारी निगमों पर संसदीय नियन्त्रण–संसदीय शासन व्यवस्था में संसद जनता के हितों की सर्वोच्च संरक्षक होती है। लोक निगमों का निर्माण जनता के सार्वजनिक हितों की प्राप्ति के लिए किया जाता है। उन्हें अपने कार्यों को सम्पादित करने के लिए सार्वजनिक कोष से धन दिया जाता है। अतः संसद निगम की नीति निर्धारित करती है तथा मन्त्री के माध्यम से उस पर नियन्त्रण रखती है। संसदीय नियन्त्रण की स्थापना निम्नलिखित तरीके से की जाती है--

(1) प्रश्न पूछकर

(2) किसी उद्यम विशेष के कार्यों पर संसद में आधा घण्टे की बहस की मांग कर।

(3) अत्यावश्यक विषय पर स्थगन प्रस्ताव प्रस्तुत कर।

(4) बजट पर बहस के समय उद्यम की आलोचना कर।

(5) विधेयक तथा प्रस्ताव पर बहस कर।

(6) उद्यमों के वार्षिक प्रतिवेदन पर विचार कर।

(7) लेखा परीक्षण सम्बन्धी प्रतिवेदन की समीक्षा कर।

(8) संसदीय समितियों के माध्यम से नियन्त्रण।

(9) सामान्य नीति विषयक निर्देश देकर।

(10) निगम की योजनाओं को मंत्रालय की स्वीकृति प्राप्त करनी आवश्यक होती है।

(11) निगम को अपने अतिरिक्त साधनों के लिए मन्त्रालय की स्वीकृति लेनी आवश्यक होती है।

(12) [illegible] की नियुक्ति की मांग स्वीकार करके।

मर्यादाएँ- सरकारी निगमो पर संसदीय नियन्त्रण की कुछ मर्यादाए है जिनके परिणाम स्वरूप [illegible] नहीं रह पाता।

(1) संसद सदस्यों की संख्या इतनी अधिक होती है कि सभी विषयों पर प्रभावशाली ढंग से [illegible] नहीं सकता।

(2) समाजवादी विचारधारा और राष्ट्रीकरण की प्रवृत्ति के कारण सरकारी उद्यमों के कार्यक्षेत्र में [illegible] सभी निगमो पर प्रभावशाली नियन्त्रण की स्थापना नहीं कर सकती।

(3) संसद सदस्य विशेषज्ञ नहीं होते परिणाम स्वरूप व सरकारी उद्यम की जटिल समस्याओं का [illegible] हैं।

(4) निगम के अधिकारी निर्भय होकर संसद में अपनी समस्याओं को प्रस्तुत नही कर सकते परिणाम [illegible] सम्बन्धी अनेक तथ्यों की जानकारी से वंचित रह जाती है।

प्रवर समिति द्वारा नियन्त्रण

Control by a Select Committee

संसदीय नियन्त्रण की सीमाओं को देखकर अनेक विद्वानों का विचार है कि सरकारी निगमो पर नियन्त्रण का कार्य [illegible] समिति को सौंप देना चाहिए। भारत में सरकारी निगमों पर नियन्त्रण रखने के लिए प्रवर समिति नियुक्त करने [illegible] लंकासुन्दरम् द्वारा 1953 में प्रस्तुत किया गया किंतु तत्कालीन वित्तमंत्री सी.डी.देशमुख ने इस सुझाव को [illegible] सन् 1956 में जीवन बीमा निगम पर वाद--विवाद करते समय अशोक महता ने प्रवर समिति की स्थापना का [illegible] कहा "यह संसद निरीक्षण करने के कार्य में तब तक समर्थ नहीं हो सकती जब तक सरकार से स्वतन्त्र विशेषज्ञों के [illegible] द्वारा इसे विभिन्न निगमों में क्या हो रहा है, यह जानने के लिए सहयोग तथा समर्थन प्रदान न किया जाए" इस [illegible] वित्तमंत्री ने इस सुझाव का समर्थन किया। 1957 में.कांग्रेस दल द्वारा श्रीकृष्णा मेनन की अध्यक्षता में 'कृष्णा मेनन समिति' का गठन किया गया। इस समिति ने भी प्रवर समिति के संगठन का समर्थन किया और इस सम्बन्ध में निम्नलिखित [illegible] किये--

(1) प्रवर समिति एक स्थायी समिति होगी जो निगम के कार्यों में निरंतर रूचि लेगी।

(2) वास्तविक सत्य का अनावरण होगा।

(3) संसद सदस्यों को संतुष्टि।

(4) दोषों के निराकरण के विविध अवसर प्राप्त होंगे।

(5) संसद सदस्यों की आकांक्षाओं और इच्छाओं के अनुरूप व्यवस्था होगी।

(6) जनता को स्पष्ट आश्वासन प्राप्त होगा।

(7) संसद को अधिकाधिक सहयोग के अवसर प्राप्त होंगे।

प्रवर समिति के विपक्ष में तर्क--प्रवर समिति के गठन के विरोध में निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किए जाते [illegible]

(1) **अनावश्यक हस्तक्षेप**--इस समिति की स्थापना से अनावश्यक हस्तक्षेप का मार्ग प्रशस्त होगा। [illegible] अन्तर्विरोधी विचार होगा कि एक ओर तो हम सरकारी उद्यमों को प्रशासन की [illegible] जिससे उसे स्वायत्तता प्राप्त हो सके किन्तु दूसरी ओर उस पर अतिरिक्त नियन्त्रण स्थापित [illegible] मोरीसन का मत है कि "यह समिति सरकारी निगमों में लालफीताशाही, साहस विहीन एवं [illegible] जन्म देगी।

(2) **उत्तरदायित्व की स्थापना में भ्रम**--प्रवर समिति के संगठन से सरकारी निगमों के कर्मचारियों [illegible] निगम के अधिकारी यह नही जान पायेंगे कि वे मन्त्रिमण्डल के प्रति उत्तरदायी है या संसद के प्रति [illegible] समिति के प्रति।

(3) **निगम की प्रेरणा शक्ति की समाप्ति**–निगम के सदस्य सदैव इस बात से भयभीत रहेंगे कि समिति उनके दोषों को ढूँढने के लिए प्रयत्नशील है। यद्यपि निगमों को दैनिक कार्यों में अधिकाधिक स्वतन्त्रता प्राप्त होनी चाहिए किन्तु जब यह समिति कार्य करेगी तो स्वतन्त्रता नष्ट हो जाएगी। लार्ड रीथ के शब्दों में "जितना अधिक मुझे लगेगा कि हर कोई मेरे कन्धों पर बैठकर मेरा कार्य देख रहा है और बाद में कभी भी उसका निरीक्षण कर सकता है। मैं एक निर्णय लेने में उतना ही अधिक कतराऊंगा और इस प्रकार कम निर्णयात्मक बन जाऊंगा। ऐसी स्थिति में स्वाभाविक है कि उसके परिणाम भी कम होते जाएंगे।"

(4) **समितियों के नियन्त्रण में वृद्धि एवं उससे उत्पन्न दोष**–प्रवर समिति के निर्माण से सरकारी निगमों पर पर्यवेक्षण का कार्य तीन समितियों में बँट जाएगा। लोक–लेखा समिति, प्राक्कलन समिति तथा प्रवर समिति तीनों ही लोक निगम की बातों पर विचार करेगी। व्यावहारिक दृष्टि से यह सम्भव नहीं है।

अतः यह समिति सरकारी निगमों पर प्रभावी ढंग से नियन्त्रण करती है इसलिए इस समिति का होना बहुत जरूरी है जिससे कि सरकारी निगमों पर संसद का नियन्त्रण समानान्तर रूप से रहे।

महत्वपूर्ण प्रश्न

1. लोक निगम की परिभाषा दीजिए। इस प्रणाली की मुख्य विशेषताएँ कौन–कौन सही हैं?
2. सरकारी निगमों पर संसदीय नियन्त्रण के कौन–कौन से तरीके हैं? भारत के सन्दर्भ में अपने प्रश्न का उत्तर दीजिए।
3. राष्ट्रीकृत उद्योगों के संचालन के लिए बनाए गए संगठन का विवेचन कीजिए।
4. सरकारी निगम पर मन्त्री के नियन्त्रण एवं उसके माध्यम से संसद के नियन्त्रण पर विचार व्यक्त् कीजिए।
5. सरकारी निगम क्या है? समाजवादी समाज में इनकी उपयोगिता का विवेचन कीजिए।
6. सरकारी निगम क्या है? किस प्रकार इसका संगठन विभाग से भिन्न होता है?
7. सरकारी निगम सरकारी विभाग से किन बातों में भिन्न होता है? सरकारी निगम किन उद्देश्यों से स्थापित किए जाते हैं।

अध्याय 11

स्वतंत्र नियामिकी आयोग: रचना और कार्य

Independent Regulatory Commission: Composition and Functions

सभ्यता के विकास के साथ–साथ जीवन से सम्बन्धित समस्त समस्याएं विषम एव जटिल बन गई है। इन उलझी हुई समस्याओं में प्रशासन भी सम्मिलित है। हम इन विषमताओं को औद्योगिक क्रान्ति का मूलभूत अभिशाप मानते है। जिसने समाज को दो व्यापक वर्गो--श्रमिक तथा पूंजीपति मे विभाजित करके श्रमिक को इस योग्य ही नहीं छोड़ा कि वह असमानताओं व संदिग्ध वातावरण मे इंजन के साथ--साथ नैतिकता का जीवन व्यतीत कर सके और सुखमय जीवन द्वारा समाज और परिवार के प्रति अपने कर्तव्यों निश्चय ही समाज के हित में नहीं है। इस असामाजिकता को अवरूद्ध करने के लिए संविधान अधिनियम तथा कार्यपालिका सम्बन्धी समस्त साधनों का प्रयोग किया जाता है। राष्ट्रीय, स्थानीय एवं राजकीय तीनो स्तरों पर आर्थिक व्यवस्था के सम्बन्ध में नियन्त्रण रखने का प्रयास किया जाता है अतः नियामकीय कार्य प्रत्यक देश मे किये जाते हैं। ब्रिटेन और अमेरिका इसके लिए किसी नियम अथवा परिपाटी से बंधे हुए नहीं है।

अमेरिका में भी नियत्रण कार्य बहुत कुछ ब्रिटेन तथा भारत की ही भांति होता ह परन्तु फिर भी कुछ भिन्नता पाई जाती है। साधारण नियामक विधि के अतिरिक्त स्वतन्त्र नियामिकी आयोगों की व्यवस्था वहां पाई जाती है। स्वतन्त्र नियामकीय आयोग अमेरिका की ही देन है। इन आयोगों की उत्पत्ति बहुत पुरानी नहीं है। १८६३ मे पहला आयोग (Inter State Commission) बना जिसका संगठन मुख्य कार्यपालक के ही नियन्त्रण में रखा गया। राष्ट्रपति बहुत ही सरलता से उसके सदस्यों को हटा सकता था। राष्ट्रपति की शक्तियां बहुत थीं, इसकी काफी आलोचना हुई जिसके फलस्वरूप १८८७ मे इसका पुनर्गठन किया गया और कार्यपालिका के नियन्त्रण से मुक्त करके उसे स्वशासित बनाया गया। तभी से समय–समय पर अमरिका में इस प्रकार के स्वतंत्र नियामकीय आयोगों की स्थापना होती रही है।

अमेरिका में अध्यक्षात्मक सरकार की व्यवस्था है, जिसका आधार शक्ति पृथक्करण है। राष्ट्रपति कार्यपालिका का वास्तविक तथा अत्यंत शक्तिशाली व्यक्ति है। कांग्रेस प्रत्येक समय राष्ट्रपति की बढती हुई शक्तियों से भयभीत रहती है। वह यह नहीं चाहती कि राष्ट्रपति तानाशाह बने। राष्ट्रपति की शक्तियों पर कुछ और अधिक प्रतिबन्ध लगाने के लिए कांग्रेस अब किसी भी विशेष कार्य को पूर्ववत किसी भी विभाग विशेष को समर्पित न करके उसके लिए नया अभिकरण स्थापित कर देती है। इस प्रकार के स्थापित अभिकरण विधानमण्डल के ही अधीन कार्य करते हैं। यद्यपि उनके सदस्य राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किये जाते हैं परन्तु उन्हें व सुगमता से नहीं हटा सकते। इसलिए तो यह अभिकरण स्वतंत्र आयोग कहलाते हैं। जो कार्य अथवा कार्य इन आयोगों को समर्पित किये जाते है उनके सम्बन्ध मे ये लगभग स्वतंत्र होते हैं। विधानमण्डल तथा कार्यपालिका क्षेत्रों का हस्तक्षेप इसके सम्बन्ध में उतना विस्तृत नहीं होता जितना कि वह अन्य सरकारी आयोगों के सम्बन्ध में होता है। नियामिकी स्वतंत्र आयोग के कार्य अर्ध–कानूनी, अर्ध--कार्यपालक तथा अर्धन्यायिक होते हैं। इसीलिए बहुत से लोग इन्हें सरकार का चतुर्थ भाग कहते हैं। कुछ लोग इन्हे विधानमण्डल के अंग कहते हैं और कुछ आलोचक इन्हें स्वायत्तता का पर्वत कहकर पुकारते हैं। इन्हे किसी भी नाम से क्यों न पुकारा जाए। नियामकीय स्वतंत्र आयोग विशेष रूप से अमरीका की ही देन है। इनके लक्ष्यों का संक्षेप विवरण निम्नलिखित रूप से प्रस्तुत किया जा सकता है।

स्वतंत्र नियामिकी आयोग का अर्थ

Meaning of Independent Regulatory Commission

स्वतंत्र नियामिकी आयोग संविधान अथवा किसी विशेष अधिनियम द्वारा निर्मित ऐसे संस्थान है जो मुख्य रूप से व्यक्तिगत सम्पत्ति तथा सामान्य जनता की लोकहित की भावना को पूर्ण करते हें। यह सामाजिक और आर्थिक जीवन को व्यवस्थित करने वाले ऐसे प्रतिमान निर्मित करते हैं जिनका पालन करना इच्छा अथवा सुविधा की अपेक्षा आवश्यकता पर अधिक निर्भर करता है। इनका लक्ष्य सुव्यवस्थित समाज को स्वस्थ और सुरक्षित वातावरण में सहेजना है। इसकी स्वतंत्रता का आशय यह है कि

यह प्रत्यक्ष रूप से विभागीय नियंत्रण से मुक्त है। लेकिन स्वतंत्रता से इनका निम्नलिखित अभिप्राय: नहीं है–

(1) यह कांग्रेस से स्वतंत्र नहीं है, जिसने इनकी रचना की है, इन्हें शक्ति से परिपूर्ण किया है तथा इन्हें वर्ष के वर्ष धन प्रदान करती है। कांग्रेस जब चाहे इन्हें समाप्त कर सकती है।

(2) यह न्यायालय से भी स्वतंत्र नहीं है। सर्वोच्च न्यायालय उनके निर्णयों के विरुद्ध अपील सुनती है। यह उनके निर्णयों को स्थायी बना सकती है, परिवर्तन कर सकती है तथा उन्हें समाप्त कर सकती है।

(3) यह आयोग राष्ट्रपति के नियंत्रण से भी पूरी तरह मुक्त नहीं है। वह कांग्रेस के अनुमोदन से किसी सदस्य को पद से हटा सकता है।

इन आयोगों की स्वतंत्रता निम्न चार अर्थों में व्यवस्थित दिखाई देती है।

(1) इनका कार्यकाल राष्ट्रपति के कार्यकाल से अधिक है। इसमें एक समय में एक सदस्य ही सेवा निवृत्त होता है। राष्ट्रपति अपने कार्यकाल की समाप्ति के बाद इन्हें प्रतिबंधित नहीं कर सकता।

(2) यथार्थ राष्ट्रपति कांग्रेस के अनुमोदन से किसी सदस्य को पद से हटा सकता है लेकिन कांग्रेस किसी सदस्य को पद से हटाने के विशेष कारण जानना चाहेगी। बिना निश्चित कारण के किसी सदस्य को पद मुक्त नहीं किया जा सकता।

(3) इन आयोगों का निर्णय अन्तिम होता है। इनके निर्णय व्हाइट हाउस की फाइलों में जमा नहीं होते और न ही वहां उन पर किसी प्रकार का वाद–विवाद किया जाता है।

(4) राष्ट्रपति और इन आयोगों के मध्य कोई निश्चित संचारण व्यवस्था नहीं है।

नामकरण के कारण (Reasons for Nomanclature)-जब हम स्वतन्त्र नियम की आयोग के नामकरण की पूर्ण व्यवस्था को देखते है तब हमें यह आभासित होता है कि तीनों शब्द अपना पृथक–पृथक महत्व रखते हैं।

स्वतंत्र (Independent)–यह आयोग उपरोक्त व्यवस्थाओं के आधार पर बहुत सीमा तक बाह्य बंधनों से सर्वथा मुक्त है। यह व्हाइट हाउस के एक विभाग की तरह राष्टपति के आदेशों का अनुपालक नहीं है। उपरोक्त विवेचन से इसके स्वतंत्रत अस्तित्व का आभास सहज रूप में मिल जाता है।

नियामिकी (Regulatory)–इन्हें नियामिकी नामकरण इसलिए दिया गया है क्योंकि यह आयोग नागरिकों अथवा उनके समूहों द्वारा किये जाने वाले कार्यों को नियमित करते हैं। सामाजिक जीवन में संभावित असामाजिकता को अवरूद्ध करने के लिए ऐसे आयोगों की विशेष आवश्यकता होती है। यह अमेरिका के समाज के आर्थिक और सामाजिक जीवन को व्यवस्थित और नियमित करते हैं इसलिए इन्हें नियामिकी कहते हैं।

आयोग (Commission)–इन्हें आयोग का नाम इस कारण दिया गया है क्योंकि इनकी प्रबंध व्यवस्था, निर्देश व्यवस्था तथा नियंत्रण व्यवस्था बोर्ड पद्धति के अनुरूप होती है। इसमें एक व्यक्ति की वरीयता की अपेक्षा कुछ सदस्यों की सम्मिलित वरीयता कार्य करती है। यह कुछ सदस्यों के संयुक्त उत्तरदायित्व की भावना से परिचालित होता है।

इस व्यवस्था के विभिन्न नाम (Different names of this System)–'स्वतंत्र नियामिकी आयोग' को अमेरिका में विभिन्न नामों से जाना जाता है। यह विभिन्न नाम इसकी वास्तविकता और वस्तु स्थिति दोनों से सम्बन्ध रखते है। इन्हें इसके उपरोक्त प्रचलित नाम के अतिरिक्त निम्नलिखित नामों से जाना जाता है–

(1) **सरकार की शीर्षहीन शाखा (Headless branch of the government)**–ऐसा कहे जाने का मुख्य कारण यह है कि इसको मुख्य कार्यपालिका जैसी कोई सत्ता ऊपर से नियंत्रित नहीं करती।

(2) **कांग्रेस की भुजाएं (Arms of the Congress)**–यह व्यवस्थापन के महत्वपूर्ण कार्य को सफल करती है, इसलिए इसकी इस अर्थ प्रकृति के आधार पर इन्हें कांग्रेस (व्यवस्थापिका) की भुजाएं कहा गया है।

(3) **स्वायत्तता के द्वीप समूह (Islands of autonomy)**–प्रत्येक संस्था की मुख्य कार्यपालिका आदेशों को स्वीकार करने के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प नहीं होता लेकिन अमेरिका के राष्ट्रीय जीवन में इन संस्थाओं के कारण एक अजीब सी वस्तुस्थिति बन गई है। इनके कार्यक्षेत्र में राष्ट्रीय जीवन भी अधिक हस्तक्षेप करने की स्थिति में नहीं है। इन्हें इसी आधार पर 'स्वतंत्रता का द्वीप समूह' कहा जाता है।

(4) **सरकार की चतुर्थ शाखा (Fourth Branch of the government)**–स्वतंत्र नियामिकी आयोग की प्रकृति [illegible] अर्ध प्रशासकीय तथा अर्ध विधायकी होती है। ऐसी स्थिति में यह एक सर्वमान्य सत्य है कि यह आयोग [illegible] तीनों शाखाओं के अनुरूप, कार्य करते हैं। इस कारण इन्हें 'सरकार की चतुर्थ शाखा' की संज्ञा दी जाती है।

आयोग की स्थापना के उद्देश्य (Aims for the establishment of the Commission)-स्वतंत्र नियामिकी आयोग [illegible] की विशेष परिस्थितियों में जन्मी एक विचारशील संस्था है। इस संस्था के पीछे अमेरिका का सारा राजनैतिक [illegible] देता है। सामान्य रूप से इसकी स्थापना के अग्रलिखित कारण हैं–

(1) अमेरिका का प्रबुद्ध समाज किसी एक व्यक्ति और किसी एक संस्था को अपरिमित शक्ति देने का [illegible] यह आयोग इसी दृष्टिकोण का परिणाम है।

(2) अमेरिका में बहुत अंशों तक शक्ति पृथक्करण सिद्धान्त को अपनाया गया है। इस सिद्धान्त के [illegible] कार्यपालिका शक्तियों का स्त्रोत है किन्तु राष्ट्रपति की शक्तियों को सीमा में प्रतिबद्ध करने के लिए [illegible] अपनाया जाना आवश्यक है। कार्यपालिका शक्तियों को बढ़ता हुआ देखकर कांग्रेस भय की स्थिति [illegible] आयोग उस मानसिक भय की स्थिति से उसे मुक्ति देता है।

(3) व्यवस्थापिका के अपरिमित दायित्व होते हैं। वह सभी कार्य अपने आप सम्पन्न नहीं कर सकती। [illegible] सम्पन्न करने के लिए तथा उसके बोझ को कम करने के लिए व्यवस्थापिका ने इसे अपनी पूरक संस्था [illegible] किया है।

विशेषताएं (Characteristics)-जब हम इस आयोग व्यवस्था के संगठन और स्वरूप पर विचार करते हैं तब यह [illegible] होता है कि यह संगठन एक विशेष प्रकार की परिस्थितियों में जन्मा है। इसकी सामान्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं

(1) **कार्यपालिका प्रतिबन्धों से मुक्त (Free from the restrictions of Executive)**-स्वतंत्र नियामिकी [illegible] संसद की विशेष विधि के द्वारा सहयोग, समर्थन और सदभाव प्राप्त करने के लिए हुआ है। कांग्रेस [illegible] अमेरिका का राष्ट्रपति अपरिमित शक्तियों का अधिग्रहण कर ले। यद्यपि कार्यपालिका शक्तियों का [illegible] है लेकिन इन आयोगों की यह विशेषता है कि यह कार्यपालिका के प्रत्यक्ष नियन्त्रण, और आज्ञा [illegible] यह व्हाइट हाउस के एक विभाग की तरह कार्य नहीं करते। इन्हें शीर्षहीन शाखा की उपाधि दी [illegible] कारण इन्हें कार्यपालिका के प्रतिबन्धों से मुक्त करना है। यह कार्यपालिका के प्रत्यक्ष बन्धन से मुक्त [illegible] पुष्टि निम्नलिखित प्रमाणों से होती है–

   (1) इनका कार्यकाल राष्ट्रपति के कार्यकाल से अधिक होता है।

   (2) राष्ट्रपति भी कांग्रेस की अनुमति और स्वीकृति के अभाव में इसके किसी सदस्य को पद [illegible]

   (3) इनके नीति निर्धारण तथा निर्णयों के सम्बन्ध में राष्ट्रपति का कोई हस्तक्षेप स्वीकार्य नहीं [illegible]

   (4) यह राष्ट्रपति को अपने प्रतिवेदन प्रस्तुत नहीं करते।

   (5) राष्ट्रपति और इन आयोगों के बीच किसी प्रकार के परम्परागत सम्बन्ध नहीं होते।

(2) **कार्यों की मिश्रित प्रकृति (Mixed nature of the functions)**–"व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और [illegible] मिश्रित प्रकृति ही इसकी स्थापना का एक बड़ा कारण है। इसका कारण यह है कि शक्ति पृथक्करण सिद्धान्त [illegible] सरकार की तीनों शाखायें एक दूसरे के अधिकार और शक्ति का उपभोग नहीं कर सकतीं। यह आयोग [illegible] करने के लिए स्वतंत्र है। यह आयोग मुख्य निष्पादक और न्यायपालिका दोनों से स्वतत्र रहकर निर्णय [illegible] अपनी प्रक्रिया और उसके अनुरूप विधि का निर्माण करता है (लेकिन यह देश की प्रचलित विधि और व्यवस्था [illegible] प्रकार भी भिन्न नहीं होता)। इस प्रकार यह अपने निर्णयों को प्रशासित करता है तथा अपने प्रशासकीय [illegible] स्वतंत्रतापूर्वक सम्पन्न करता हैं।

(3) **कांग्रेस की सहायक व्यवस्था (Helping system of the Congress)**–स्वतंत्र नियामिकी आयोग व्यवस्था [illegible] से कार्यपालिका की निरंकुश प्रकृतियों पर अंकुश लगाने के लिए स्थापित की गई थी। लेकिन इसे हम [illegible] नकारात्मक दृष्टिकोण के रूप में स्वीकार नहीं कर सकते हैं। यह कार्यपालिका के बोझ को कम करने [illegible]

करके समस्त व्यवस्था को स्थायित्व प्रदान करती है। यह कार्य इसकी गौण प्रकृति के अंग हैं। यह अपनी रचनात्मक प्रवृत्ति के आधार पर विधायिका के कार्य भी सम्पन्न करती है। यही कारण है कि इसे कांग्रेस की भुजाएं (Arms of the Congress) की संज्ञा दी जाती है। यह आयोग कांग्रेस के प्रति उत्तरदायी है। इसका प्रत्येक कार्य व्यवस्थापन में कांग्रेस का समर्थन करता है तथा अर्ध–विधायकी कार्य के माध्यम से वह लोकप्रिय हो रहा है। कहने के लिए यह 'शासन की शीर्षहीन शाखा' है लेकिन यह शाखा व्यवस्थापिका की वास्तविक इच्छाओं को पूर्ण करने का कार्य सम्पन्न करती है। यह असामाजिक तत्वों को मर्यादित करती है तथा कांग्रेस की मूल भावना को विकसित करने में सहायक होती हे।

(4) **बोर्ड व्यवस्था के अनुरूप (Similar to Board System)**–प्रशासकीय व्यवस्था में कुशलता तथा विश्वसनीयता को लाने के लिए यह आवश्यक है कि व्यवस्था में एक व्यक्ति के स्थान पर कुछ व्यक्तियों को नियुक्त किया जाए। स्वतन्त्र नियमकीय आयोगों की व्यवस्था का दायित्व किसी एक व्यक्ति के ऊपर नहीं होता अपितु कुछ व्यक्तियों पर होता है। कुछ व्यक्तियों के ऊपर आश्रित होने के कारण ही इसे आयोग व्यवस्था की संज्ञा दी गई है। आयोग मण्डलीय व्यवस्था के अनुरूप अपना कार्य चलाते हैं। यह संयुक्त उत्तरदायित्व की भावना से कार्य करते हैं तथा अपना प्रतिवेदन कांग्रेस को संयुक्त रूप से प्रस्तुत करते हैं।

स्वतन्त्र नियामकीय आयोगों की स्थापना के कारण (Reasons for the establishment of Independent Regulatory Commissions)–अमेरिकी प्रशासकीय व्यवस्था में स्वतन्त्र नियामिकी आयोगों का एक विशिष्ट महत्व और योगदान है। यह किसी आकस्मिक भूल का परिणाम नहीं माना जा सकता। इसके निर्माण के पीछे एक निश्चित योजना है। सामान्य रूप से इसके निर्माण को निम्नलिखित कारणों से सम्बद्ध किया जा सकता है–

(1) **प्रादेशिक तथा स्थानीय समस्याओं के कारण (Due to the Provincial and Local Problems)**–अमेरिका मे राष्ट्रीय स्तर पर विविध प्रकार की कठिनाइयों और समस्याओं को देखा जा सकता है। वह विभिन्न समस्यायें अपने आप में एक कठिन समाधान रखती हैं। ऐसी स्थिति में स्थानीय प्रकृति की विविध समस्यायों अछूती रह जाती हैं। स्वतन्त्र नियामिकी आयोगों में इस प्रकार की कठिनाई का समाधान करने की क्षमता भी है और सामर्थ्य भी। यह स्थानीय समस्याओं के समाधान में विशेष रूप से जागरूक रहते हैं। समस्याओं को रूचि के साथ सम्पन्न करने की प्रक्रिया ने इन्हें बहुत लोकप्रिय बना दिया है।

(2) **तकनीकी प्रकृति के आधार पर (On the basis of Technical Nature)**–प्रशासन को प्रत्येक क्षण एक–न–एक कार्य को सम्पन्न करना पड़ता है। यह कभी सामान्य प्रकृति के होते हैं और कभी विशेष प्रकृति के होते हैं। तकनीकी प्रकृति के कार्यों को कभी भी दक्षता, विशेष ज्ञान तथा तकनीकी प्रकृति की जानकारी के अभाव में सम्पन्न नहीं किया जा सकता। यह सभी आयोग इस दृष्टि से अपना विशेष महत्व रखते हैं कि यह विशेष तकनीकी प्रकृति के कार्यों को सरलता के साथ सम्पन्न कर सकते हैं।

(3) **स्वस्थ नियन्त्रण के लिए (For the Healthy Control)**–प्रशासकीय व्यवस्था को संविधान, राष्ट्रीय आवश्यकताओं, परम्परा के आधार पर विविध प्रकार के कार्य सम्पन्न करने पड़ते हैं। यह सभी कार्य उसे पर्याप्त रूप से शक्तिशाली बना देते हैं। कभी–कभी कार्यपालिका अपनी अबाधित सत्ता के कारण निरंकुश होने लगती है। यह निरंकुशता समाज के गतिशील विकास के लिए हानिकारक है। अबाधित निरंकुशता को नियन्त्रित करने के लिए इन आयोगों की स्थापना के कारण जनता जहां एक ओर न्याय के प्रति आवश्वस्त रहती है, वहीं दूसरी ओर वह प्रशासन को उचित और उपयोगी समर्थन देती है।

(4) **दलबन्दी के ऊपर (Above the Party Politics)**–अमेरिका का राष्ट्रपति अपने शासन को प्रतिष्ठा देने के साथ–साथ अपने दल को प्रतिष्ठा देते रहने के लिए सजग रहता है। इस सजगता का यह परिणाम होता है कि वह दलीय हितों के लिए अधिक कार्य करता है। अमेरिका का 'वाटरगेट काण्ड' इसी प्रकार की एक गतिविधि है। जिसमें निक्सन प्रशासन के सभी सर्वोच्च व्यक्ति सम्मिलित पाए गए।

ऐसी किसी भी दलबन्दी से मुक्ति पाने के लिए यह आवश्यक है कि स्वतंत्र नियामिकी आयोगों की रचना की जाए। यह आयोग अपने कार्यकाल, प्रकृति और प्रक्रिया के आधार पर दलबन्दी से ऊपर रहते हैं। यही कारण है कि यह स्वार्थ–भावना से मुक्त हैं और स्थानीय और प्रादेशिक समस्याओं के समाधान को बिना किसी बाह्य दबाव के सम्पन्न कर लेते हैं।

(5) **निष्पक्षता के आधार पर (On the basis of impartiality)**—प्रत्येक प्रशासन किसी—न—किसी प्रकार की राजनैतिक से अनुप्रेरित होता है। सरकार अपने कार्य से राजनैतिक प्रभावों को कम—से—कम करना चाहती है। यह आयोग निष्पक्षता और तटस्थता की आवश्यकता को पूरा करते हैं। इनकी निष्पक्षता का आधार इनका राष्ट्रपति से अधिक का कार्यकाल है तथा यह संसद से अपनी शक्ति प्राप्त करते हैं।

(6) **प्रथम आयोग की सफलता के कारण (Due to the success of the First Commission)**—सन् 1883 तक अमेरिका में प्रशासकीय कार्य विभागों और उनकी अधीनस्थ इकाइयों के द्वारा सम्पन्न किये जाते रहे हैं। यह सभी राष्ट्रपति से शक्ति और आदेश प्राप्त करते हैं। सन् 1883 में प्रथम बार लोक सेवा आयोग (United States Civil Service Commission) की स्थापना हुई। यह राष्ट्रपति के आदेशों और निर्देशों के क्षेत्र से बाहर रहकर अपने कार्य सम्पन्न करती रही। इसके चार वर्ष बाद कांग्रेस ने अन्तर्राज्य व्यापार आयोग (Inter State Commerce Commission) की स्थापना की। इस आयोग को भी राष्ट्रपति के व्यावहारिक नियन्त्रण से मुक्त रहकर कार्य करने का अवसर प्राप्त हुआ। इन प्राथमिक आयोगों की सफलता के कारण अमेरिका में इनका प्रभाव और प्रभुत्व विशेष रूप से दिखाई देता है। नये आयोगों की स्थापना के पीछे प्रथम और प्राथमिक आयोगों की सफलता एक मुख्य कारण बनी हुई है।

अमेरिका के प्रमुख आयोग (Important Commissons of U.S.A)—अमेरिका में 1883 में प्रथम आयोग की स्थापना और उसके चार वर्ष बाद अन्तर्राज्य व्यापार आयोग की स्थापना तथा सफलता ने अमेरिका में विभिन्न आयोगों की स्थापना के मार्ग को प्रशस्त किया। अमेरिका में प्रमुख आयोग निम्नलिखित है—

1. अन्तर्राज्यीय व्यापार तथा वाणिज्य आयोग (1887)
2. संघीय व्यापार आयोग (1914)
3. संघीय शक्ति अयोग
4. संघीय संचार आयोग (1934)
5. प्रतिभूति तथा विनिमय आयोग
6. तटकर आयोग (1936)
7. संघीय रिजर्व बोर्ड
8. राष्ट्रीय श्रम बोर्ड
9. संघीय विद्युत आयोग
10. अणु शक्ति आयोग।

आयोग का विभिन्न अंगों से सम्बन्ध

Relationship of the Commission with different parts

सामान्य रूप से यह तथ्य स्वीकार किया जाता है कि यह आयोग स्वतन्त्र प्रकृति के होते हैं। इसी कारण इन्हें स्वतन्त्र आयोग कहा जाता है। लेकिन यह बात पूरी तरह से स्वीकार्य नहीं है क्योंकि आयोग अपनी स्थापना से लेकर अपने प्रतिवेदन प्रस्तुत करने की अवधि तक कहीं कार्यपालिका से, कहीं कांग्रेस से और कहीं सर्वोच्च न्यायालय से किसी—न—किसी रूप में सम्बद्ध हैं। इनकी सम्बद्धता इनके आश्रित होने की पद्धति का परिचायक नहीं है बल्कि इनके निकट सम्बन्धों की अनुभूति का द्योतक है। इनके विभिन्न अंगों से सम्बन्ध निम्नलिखित हैं—

(अ) **राष्ट्रपति से सम्बन्ध (Relationship with the President)**—इन स्वतन्त्र आयोगों का महत्वपूर्ण कार्य करने पर भी यह किसी—न—किसी रूप में राष्ट्रपति से सम्बद्ध होते हैं। इनकी सम्बद्धता के निम्नलिखित आधार हैं

(1) आयोग के सदस्य राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त होते हैं।

(2) राष्ट्रपति आयोग के सदस्यों की नियुक्ति को सीनेट द्वारा पास कराता है।

(3) राष्ट्रपति को सीमित आधार पर ही इन्हें पदमुक्त करने का अधिकार है। (बिना किसी स्पष्ट कारण के राष्ट्रपति इन्हें पदमुक्त नहीं कर सकते। राष्ट्रपति कांग्रेस की अनुमति से ही इन्हें पदमुक्त कर सकते हैं।

राष्ट्रपति के नियंत्रण से मुक्त (Free from Presidential Control)–अमेरिका संवैधानिक व्यवस्था के अनुसार आयोगों की स्थापना तथा सदस्यों की नियुक्ति का दायित्व राष्ट्रपति को वहन करना होता है। इस महत्वपूर्ण कार्य को सम्पन्न करने के बाद भी राष्ट्रपति इन्हें प्रत्यक्षतः अपने आदेश के दायरे में बन्द नहीं कर सकता। यह राष्ट्रपति के विभाग के रूप में कार्य नहीं करते। राष्ट्रपति इन पर अपना कड़ा नियन्त्रण स्थापित नहीं कर सकता। राष्ट्रपति नियंत्रण से मुक्ति के निम्नलिखित आधार हैं–

(1) **कार्यकाल के आधार पर (On the basis of the tenure)**–अमेरिका में राष्ट्रपति 4 वर्ष कि लिये निर्वाचित होता है। यदि एक ही व्यक्ति दूसरी बार भी राष्ट्रपति बने तब उसका कार्यकाल 8 वर्ष का होता है। इन आयोगों का कार्यकाल 7 वर्ष से लेकर 14 वर्षो तक का है। इसी तरह 14 वर्षो के लिए नियुक्त होने वाले आयोग सदस्य राष्ट्रपति के बन्धन से मुक्त होते हैं।

(2) **पद मुक्त करने का सीमित अधिकार (Limited right of termination)**–अमेरिका का राष्ट्रपति अधिक शक्तियाँ रखता है। वह आयोग के क्षेत्र को भी प्रभावित करता है। वह आयोग के सदस्यों की नियुक्ति करता है लेकिन किसी भी स्थिति में इनके सदस्यों को स्वेच्छा के आधार पर पदमुक्त नहीं कर सकता। इनकी पदमुक्ति के लिए स्पष्ट कारण बताने की आवश्यकता होती है। तथा उस पद मुक्ति का समर्थन कांग्रेस से होना आवश्यक है। सर्वोच्च न्यायालय भी इन्हें संरक्षण प्रदान करती है।

(3) **निर्णय अपरिवर्तनीय (Decision unchange)**-राष्ट्रपति को कार्यपालिका सम्बन्धी व्यापक अधिकार प्राप्त है। आयोग अपने क्षेत्र में किसी बाह्य सत्ता के हस्तक्षेप को बर्दाश्त नहीं करता। राष्ट्रपति को यह शक्ति नहीं होती कि वह आयोग के निर्णय में किसी प्रकार भी परिवर्तन कर सके। वह उन्हें रद्द करने की स्थिति में भी नहीं होता। इन आयोगों के निर्णय अन्तिम और मान्य होते हैं। इनमें राष्ट्रपति किसी प्रकार का भी परिवर्तन नहीं ला सकता। इनके प्रतिवेदन संसद की धरोहर हैं इसलिए राष्ट्रपति का इनसे कोई भी सम्बन्ध नहीं होता।

(4) **नीति निर्धारण में स्वतन्त्र (Free in forming the policy)**–यह आयोग विवादों को सुलझाने, प्रक्रिया को अपनाने तथा किसी भी विशेष खोज को सम्पन्न करने के लिए अपनी नीति का निर्माण स्वतन्त्रतापूर्वक कर सकते है। उनमें किसी का कहीं का हस्तक्षेप सम्भव नहीं है।

(ब) **कांग्रेस से सम्बन्ध (Relationship with the Congress)**–अमेरिका की कांग्रेस व्यवस्थापन के क्षेत्र में सर्वोच्च शक्तियों को वहन करने वाली अन्तिम और मान्य संस्था है। कार्यपालिका प्रशासकीय क्षेत्रों में कार्य करने वाली एक सुदृढ़ इकाई है। इस इकाई का प्रतिनिधित्व राष्ट्रपति करता है। राष्ट्रपति की शक्तियों को मर्यादित करने के लिए व्यवस्थापिका अपना प्रभावशाली नियन्त्रण स्थापित करती है। कांग्रेस का आयोगों की स्थापना से लेकर प्रतिवेदन प्राप्त करने तक की स्थिति में बहुत सजीव सम्बन्ध बना रहता है। इस सम्बन्ध का व्यावहारिक रूप निम्नलिखित है–

(1) आयोगों का जन्म कांग्रेस (संसद) की विशेष विधि द्वारा होता है। अमेरिका में यह व्यवस्था है कि प्रत्येक आयोग की स्थापना के लिए कांग्रेस इस आशय की एक विधि पारित करती है। यह विधि ही इसके निर्माण की आवश्यक सुविधा जुटाती है।

(2) कांग्रेस को प्राप्त शक्ति का मूल स्रोत संसद है।

(3) कांग्रेस (संसद) अपने विशेष विधि व्यवस्था के आधार पर इन्हें समाप्त कर सकती है।

(4) कांग्रेस इनकी शक्तियों में कमी अथवा वृद्धि कर सकती है।

(5) कांग्रेस इनके सुचारू रूप से कार्य करने के लिए धन की व्यवस्था करती है।

(6) आयोग अपने प्रत्येक कार्य के लिए कांग्रेस के प्रति उत्तरदायी होते हैं।

(7) आयोग अपने प्रतिवेदन कांग्रेस को प्रस्तुत करते हैं।

(स) **न्यायपालिका से सम्बन्ध (Relationship with Judiciary)**–इन आयोगों की स्थापना के पीछे मूल तत्व और प्रेरणा सामाजिक जीवन को व्यवस्थित करने की रही है। यह न्यायपालिका पर आश्रित न होने के बाद भी अर्ध न्यायिक प्रकृति का आधार प्रस्तुत करने के कारण न्यायपालिका से निम्नलिखित दृष्टि से सम्बन्ध रखते हैं–

(1) न्यायपालिका की प्रकृति के अनुरूप यह आयोग भी व्यवस्था का (जिसकी रचना आयोगों ने स्वयं की है) उल्लंघन करने पर दण्ड देने की स्थिति में है।

(2) आयोग के निर्णय सर्वोच्च न्यायालय के विचारार्थ स्वीकार किये जाते हैं।

(3) सर्वोच्च न्यायालय आयोग के निर्णयों में परिवर्तन कर सकती है, स्वीकार कर सकती है अथवा समाप्त कर सक... है।

(4) आयोग के सदस्यों को न्यायिक संरक्षण प्राप्त होता है।

आयोग के कार्य (Functions of the Commission)-आयोग की स्थापना और सफलता के बीच इतना अधिक सामीप्य दिखाई देता है कि प्रत्येक दृष्टि से आयोगों के कार्यों की समीक्षा करना आवश्यक अनुभव होता है। आयोग के निम्नलिखित कार्य सम्पन्न करते हैं–

(1) **कार्यपालिका की शक्तियों को सीमित करना (To check the powers of the executive)**–अमरिका में शक्ति पृथक्करण का सिद्धांत विशेष रूप में अपनाया गया है। यह सिद्धांत सरकार के तीनों अंगों को पृथक पृथक शक्तियाँ प्रदान करता है। शक्तियों का केन्द्र मुख्य रूप से कार्यपालिका को ही माना गया है। वास्तव में यदि कार्यपालिका की शक्ति बहुत अबाधित हो जाए तब उसका स्वरूप निरंकुशता की ओर उन्मुख होगा। यह राष्ट्र के लिए सर्वथा भयावह होगा। आयोग मुख्य रूप से अर्ध प्रशासकीय प्रकृति के कार्य सम्पन्न करने के कारण कार्यपालिका की संभावित अबाधित शक्ति को एक प्रकार से प्रतिबन्धित करते हैं।

(2) **सामाजिक जीवन को व्यवस्थित करना (To regulate the social life)**–आयोगों की स्थापना के पीछे मुख्य विचार सरकार के बढ़ते हुए बोझ को कम करने के साथ–साथ शक्तियों को विकेन्द्रित करना है। सामाजिक जीवन में व्याप्त असन्तोष और असामाजिक प्रवृत्तियों को समाप्त करने के लिए यह आयोग विशेष रूप से प्रयत्नशील होते हैं। सामाजिक जीवन के असामाजिक तत्वों पर प्रतिबन्ध लगाकर यह आर्थिक, व्यापारिक, औद्योगिक तथा सामाजिक हितों की पूर्ति करते हैं।

(3) **व्यक्तिगत सम्पत्ति और आर्थिक शक्तियों को व्यवस्थित करना (To regulate the personal property and economic forces)**–सामाजिक जीवन में असन्तोष और विद्रोह के प्रभाव का मुख्य आधार धन का असमान वितरण है। यह आयोग अवैधानिक साधनों से अर्जित सम्पत्ति और साधनों को प्रतिबंधित करने का कार्य सम्पन्न करते हैं। राष्ट्रीय जीवन को होने वाले संभावित खतरों को रोकने के महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न करके यह राष्ट्रीय जीवन को व्यवस्थित रखने का कार्य सम्पन्न करते है।

(4) **औद्योगिक क्रान्ति के दोषों को प्रतिबन्धित करने के लिए (To check the defects of industrial revolution)** औद्योगिक विकास जिस तीव्रता से राष्ट्रों के जीवन को विकसित करने का कार्य सम्पन्न करता है उतना ही वह कहीं न कहीं कुछ दोष छोड़ता चला जाता है। यह असमानता को बहुत सीमा तक प्रोत्साहित करता है। यह असमानता व्यक्तियों तक ही सीमित नहीं होती बल्कि क्षेत्रों तथा प्रदेशों तक फैली होती है। इस असमानता तथा ऐसी ही कुछ अन्य दोषपूर्ण व्यवस्था और पद्धति को प्रतिबंधित करने के लिए आयोग सदैव कार्य करते रहते हैं।

आयोग व्यवस्था के दोष अथवा आलोचनायें

Defects or the Criticism of Commission System

यह आयोग व्यवस्था अपने में कुछ दोष समाहित किये हुए है। डॉ० एल० डी० व्हाईट के अनुसार इस व्यवस्था की सामान्य आलोचनाएँ निम्न हैं–

1. इसकी स्वतन्त्रता मुख्य रूप से मुख्य कार्यपालिका की संवैधानिक शक्तियों के लिए एक चुनौती है। ये एस महत्वपूर्ण स्थान पर बैठे हुए हैं कि राष्ट्रपति के निर्देश और उत्तरदायित्व से ऊपर हैं।
2. इन्हें पूर्ण नियन्त्रित करने से इनकी अर्धन्यायिक प्रकृति तथा निष्पक्षता प्रभावित होती है।
3. यदि इन्हें स्वतन्त्र छोड़ा जाता है तब समस्त संगठनात्मक व्यवस्था में अनुत्तरदायित्व के तत्व प्रवेश कर जाते हैं

4. समय–समय पर राष्ट्रपति की स्थिति को देखते हुए इनकी शक्तियों में कटौती की जाती रही है क्योंकि इन्हें यदि अधिक शक्तियाँ दी जाती हैं तब राष्ट्रपति की स्थिति बहुत कमजोर हो जाती है।

आयोग की सामान्य आलोचनाएँ व्यवस्थित रूप से निम्नलिखित हैं–

(1) **नियन्त्रण के आधार पर (On the basis of the control)**-सामान्य रूप से यह स्वीकार किया जाता है कि स्वतन्त्र नियामिकी आयोग किसी के प्रति प्रत्यक्षतः उत्तरदायी नहीं है। वह राष्ट्रपति के नियन्त्रण से सर्वथा मुक्त है। राष्ट्रपति इन्हें पद मुक्त करने का सीमित अधिकार रखता है। इसी आधार पर इन्हें कभी–कभी अनुत्तरदायी आयोग की संज्ञा दी जाती है। यह प्रकृति और व्यवस्था के नाम पर अधिकाधिक नियन्त्रण से मुक्ति प्राप्त करने को उत्सुक रहते है। इससे इनमें अधिक अनुत्तरदायित्व की भावना घर करती है।

(2) **कार्यो की विभिन्नता के आधार पर (On the basis of difference of work)**-इन आयोगों की मिश्रित प्रकृति होती है। यह अन्य कामों को सम्पन करने के साथ–साथ आर्थिक जीवन को नियन्त्रित करने का कार्य सम्पन्न करते हैं। इनकी कार्य विषयक रूचि इतनी भिन्न और व्यापक होती है कि इन्हें समझना कभी–कभी बहुत कठिन हो जाता है। इसके अतिरिक्त इन आयोगों का झुकाव प्रशासन में विकेन्द्रीकरण और अव्यवस्था पैदा करने वाला होता है।

(3) **यह न्याय की निष्पक्षता में जनविश्वास को कमजोर करते हैं (They weaken public confidence in judicial fairness)**-आयोगों की अर्धन्यायिक प्रकृति का स्वरूप सर्वथा आलोचना के क्षेत्र से मुक्त नहीं है। जब न्यायिक कार्य आयोगों को दिये जाते हैं इसका प्रभाव यह होता है कि जनता न्यायपालिका की निष्पक्षता में संदेह करने लगती है।

(4) **समायोजन का अभाव (Lack of Coordination)**-स्वतंत्र नियामिकी आयोगों की स्थापना में स्वतंत्र वातावरण के साथ–साथ निष्पक्ष कार्य को सम्पन्न करने की प्रबल आकांक्षा दिखाई देती है। यह जिस कार्य को सम्पन्न करते हैं उसकी प्रक्रिया निर्माण का दायित्व स्वयं इन आयोगों का है। यह आयोग कभी–कभी ऐसे कार्य सम्पन्न करते हैं जो मुख्य कार्यपालिका, कांग्रेस अथवा न्याय संगठनों को रूचिकर नहीं लगते। इस तरह की स्थिति में तनाव की स्थिति का जन्म होता है और किसी भी व्यक्ति अथवा व्यवस्था के साथ समझौते नहीं होते। इससे कहीं भी समन्वय या समायोजन का कार्य पूर्ण नहीं हो पाता।

(5) **नागरिक स्वतन्त्रता के लिए चुनौती (Challenge to the Civil Liberty)**-आयोग की प्रकृति और कार्य करने के स्वरूप से नागरिकों की स्वतंत्रता पर कुठाराघात दिखाई देता है। कानून बनाने के अधिकार का कांग्रेस से पृथक् किया जाना नागरिक स्वतन्त्रता के लिए किसी रूप में भी उपयुक्त दिखाई नहीं देता। इन आयोगों को दण्ड देने का अधिकार दिया गया है लेकिन इनके पास इतनी निष्पक्षता नहीं होती जितनी किसी भी दण्ड देने वाली व्यवस्था की होती है। न्याय की निष्पक्षता का स्वरूप भी इसमे अधिक स्पष्ट दिखाई नहीं देता। इनकी निष्पक्षता बाह्य दबाव में आकर समाप्त हो जाती है।

(6) **अपव्यय और अतिव्यय (Wastage and excess expenditure)**–आयोग की स्थापना का उद्देश्य सामाजिक जीवन को व्यवस्थित करना है। यही कार्य प्रत्येक देश में प्रत्येक सरकार सम्पन्न करती है। इस प्रकार इस व्यवस्था पर जितना व्यय होता है उसे दोहरा व्यय कहा जा सकता है। यह अति व्यय का एक रूप है।

(7) **नियुक्ति में पक्षपात (Favouratism in appointment)**–यह आयोग अपने निष्पक्षता के लिए लोकप्रिय है। लेकिन यह एक स्पष्ट सी बात है कि राष्ट्रपति को जब नियुक्ति करने का अधिकार दिया गया है तब यह कैसे संभव हो सकता है कि वह अपने समर्थकों को इसमें नियुक्त न करे। आयोग में प्रत्येक सदस्य की नियुक्ति का आधार पक्षपातपूर्ण होता है।

सुझाव

Suggestions

सन् 1949 में हूबर आयोग ने इन्हें अधिक निष्पक्ष और तटस्थ बनाने के लिए निम्न सुझाव दिये–

1. वर्तमान अभिकरणों का एकीकरण।

2. चैयरमेन की शक्तियों में विकास।
3. अधिक वेतन दिया जाए।
4 स्टाफ विशेषकों को विस्तृत शक्तियां दी जाये।
5. आयोग के सदस्यों को सरलता से मुक्त न किया जाए।
6. प्रशासकीय विभागों से इसका निकट का सम्बन्ध होना चाहिए।

भारत में नियामिकी आयोग

I. R. C. In India

भारत में इस प्रणाली को सामान्य अर्थ और व्यवस्था देने के लिए विकसित किया गया लेकिन अमेरिका की तरह [illegible] नहीं रखा जा सका। चुनाव आयोग, लोक सेवा आयोग, वित्त आयोग तथा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की स्थापना [illegible] दृष्टि को लेकर की गई है। इन आयोगों की स्थापना का उल्लेख संविधान में है। सामान्य नियुक्तियां की निम्न प्रक्रिया है

1. संविधान द्वारा
2. ससंद की विशेष विधि द्वारा
3. कार्यपालिका द्वारा

आयोग के सदस्य राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किये जाते हैं। यह विभागीय प्रबन्ध के नियन्त्रण से मुक्त है। इन आयोगों की [illegible] प्रकृति स्वरूप और कार्य अमेरिकी आयोगों से सर्वथा भिन्न हैं।

महत्वपूर्ण प्रश्न

1. स्वतन्त्र नियामिकी आयोग से आप क्या समझते हैं? इनकी मुख्य–मुख्य विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
2. स्वतंत्र नियामिकी आयोग की स्थापना के कारणों का उल्लेख कीजिए।
3. स्वतंत्र नियामिकी आयोग का अमेरिकी राष्ट्रपति, कांग्रेस तथा न्याय संगठन से क्या सम्बन्ध है?
4. स्वतंत्र नियामिकी आयोग की प्रमुख आलोचनाओं का उल्लेख कीजिए।

अध्याय 12

स्टाफ तथा सूत्र अभिकरण

Staff and Line Agencies

"लोक प्रशासन के किसी दृष्टिकोण ने इतनी कठिनाई उत्पन्न नहीं कि जितनी कठिनाई सूत्र और स्टाफ अभिकरण ने की है। यह अस्पष्टता इस तथ्य को जानने से अधिक उलझ गई है कि स्टाफ क्या है?"

—जे एम पिफनर

"स्टाफ कार्यपालिका के विस्तृत व्यक्तित्व की छाया है। इसका अर्थ है अधिक आँखें, अधिक कान, और अधिक हाथ जो योजना बनाने में सहायता करें।"

—मूने

'स्टाफ' (Staff) तथा 'सूत्र' (Line) दोनों शब्द सैनिक संगठन (Military Organisation) से लिए गए हैं। सेना में दो प्रकार की इकाईयां (Units) होती हैं, सूत्र इकाई (Line Unit) तथा स्टाफ इकाई (Staff Unit)। सूत्र अधिकारी (Line Officers) सेना को युद्ध स्थल में कमाण्ड करते हैं, अर्थात् वह सेना को आदेश देते तथा उसका संचालन करते हैं। सूत्र इकाइयों का कार्य संगठन का मुख्य उद्देश्य अर्थात् युद्ध में विजय प्राप्त करना होता है और वह ही लड़ाई का वास्तविक कार्य करती है। परन्तु युद्ध भूमि में सैनिकों को भोजन, दवाइयां, अस्त्र–शस्त्र तथा गोला–बारूद आदि भी पहुंचना अति आवश्यक होता है। यह कार्य सेना की स्टाफ इकाइयों द्वारा सम्पन्न किया जाता है। इस प्रकार स्टाफ इकाइयां स्वयं नहीं लड़ती बल्कि ये युद्ध की योजना बनाती व लड़ने वाली विभिन्न इकाइयों में समन्वय स्थापित करती हैं तथा सैनिकों की सहायता करती हैं ताकि वह अपने उद्देश्य की प्राप्ति सफलतापूर्वक कर सकें।

लोक प्रशासन में स्टाफ तथा सूत्र एजेंसियों का अर्थ सैनिक प्रशासन में इनके अर्थ को ध्यान में रखकर ही किया जाता है। लोक प्रशासन में मुख्य कार्यपालिक को विभिन्न प्रकार के कार्य करने पड़ते हैं तथा दिन–प्रतिदिन उसके क्षेत्राधिकार में प्रसार हो रहा है। इसलिए मुख्य कार्यपालिका बिना सहायता के अपने कार्यों का सम्पादन नहीं कर सकता। उसको विशेषज्ञ तथा तकनीकी परामर्श और सहायता की आवश्यकता होती है। व्यवहार में उसे यह सहायता उन अंगों से प्राप्त होती है जो उससे सम्बद्ध (Attached) होते हैं। उसे बहुत से कार्य उन अंगों को सौंप दिये जाते हैं, परन्तु प्रशासन पर पर्यवेक्षण तथा नियन्त्रण रखने तथा निर्देशन करने का उत्तरदायित्व उसके पास ही रहता है। मुख्य कार्यपालिका से संलग्न प्रशासकीय अधिकारियों को जिन्हें उसकी सत्ता प्रदत्त (Delegate) की जाती है, स्टाफ कहते हैं। इस प्रकार ऐसी एजेंसियों जो मुख्य कार्यपालिक को सहायता तथा परामर्श देती हैं, उन्हें स्टाफ एजेंसियां कहा जाता है। स्टाफ से तात्पर्य है, कि जिस पर निर्भर रहा जा सके अथवा जिसके सहयोग से कठिनाइयों के बीच मार्ग ढूंढ़ा जा सके। जिस प्रकार एक छड़ी मनुष्य को चलने में सहायता देती है, उसी प्रकार स्टाफ इकाइयां विशिष्ट जानकारी तथा विवेकपूर्ण परामर्श प्रदान कर मुख्य कार्यपालिक की सहायता करती है। स्टाफ एक परामर्श देने वाला अंग है, इस पर किसी भी प्रकार का संचालन करने का उत्तरदायित्व नहीं होता।

स्टाफ अभिकरण स्टाफ तथा सूत्र शब्द सैनिक संगठन से लिए गए हैं। समस्त देशों में सैनिक संगठनों में दो प्रकार की इकाईयाँ होती है। प्रथम इकाई को लाइन या सूत्र कहते हैं। इसका प्रमुख कार्य युद्ध करने का होता है। दूसरी इकाई स्टाफ है। इसका प्रयोग लाठी के अर्थों में किया जाता है। जिस प्रकार लाठी व्यक्ति को चलने में सहारा देती है उसी प्रकार यह स्टाफ सेना को लड़ने में सहायता प्रदान करता है।

उनमें युद्ध करने वाले अंग को आवश्यक युद्ध–सामग्री, राशन आदि की व्यवस्था करने वाली, आहत सैनिकों की चिकित्सा करने वाली सेवाओं की आवश्यकता होती है। इन सेवाओं को करने वाले व्यक्तियों को 'स्टाफ' कहते हैं।

असैनिक अथवा सिविल सेवकों में स्टाफ अभिकरण से तात्पर्य अधिकारियों के उस समूह से है जो योजना, संगठन, निर्देशन समन्वय, नियन्त्रण आदि में मुख्य कार्यपालिका या अन्य प्रधान कार्यपालिका अधिकारियों को सहायता पहुचाते हैं। एम. मार्क्स

के शब्दों में–"स्टाफ केवल सूत्र अभिकरण के लिए सामग्री तैयार करता है जिससे वह निष्पादन कर [illegible] स्वयं प्रसारित नहीं करता।"

इलियट जनाथन स्मिथ के अनुसार– स्टाफ सामान्य रूप से सूत्र अभिकरण के साथ रहकर सहायता के [illegible] अभिकरण के [illegible] और उत्तरदायित्व का कभी उल्लंघन नहीं करता।

स्टाफ अभिकरण के विभिन्न प्रकार (Types of Staff Agency) पिफनर ने स्टाफ अभिकरण को तीन भागों में [illegible]

(1) सामान्य स्टाफ (General Staff)

(2) प्राविधिक स्टाफ (Technical Staff)

(3) सहायक स्टाफ (Auxiliary Staff)

(1) **सामान्य स्टाफ (General Staff)**--सामान्य स्टाफ मुख्य निष्पादक तथा उच्च प्रशासकीय अधिकारियों के [illegible] सूचनाओं को एकत्रित करने तथा अनुसंधान में सहायता पहुँचाने का कार्य करता है। वह समस्त [illegible] सम्बन्धित कागजों का अध्ययन करके केवल महत्त्वपूर्ण मामलों को ही प्रमुख अधिकारी के पास पहुँचने देता है। पिफनर के शब्दों में "सामान्य स्टाफ का प्रमुख कार्य मुख्य कार्यपालिका अथवा विभागाध्यक्ष के लिए फिल्टर और [illegible] करना किसी गहन जानकारी में बिना लिप्त हुए महत्वपूर्ण विषयों को नियमित करना है।

(2) **प्राविधिक स्टाफ (Technical Staff)**-मुख्य निष्पादक को प्रशासकीय कार्यों के लिए तकनीकी परामर्श की आवश्यकता होती है [illegible] तकनीकी स्टाफ होता है। उदाहरणार्थ [illegible] चिकित्सा सम्बन्धी [illegible] विशेषज्ञ [illegible] तकनीकी के प्रश्नों पर परामर्श देता है।

(3) **सहायक स्टाफ (Auxiliary Staff)**--प्रशासन को अपना कार्य सम्पन्न करने के लिए कितनी ही सहायक क्रियाएं करनी पड़ती हैं। सहायक क्रियाओं को सम्पन्न करने वाली इकाईयों को सहायक स्टाफ में सम्मिलित किया जाता है। [illegible] किसी नए विभाग की स्थापना की जाती है तो उसके लिए भवन, सामग्री के प्रबन्ध करने के साथ [illegible] आवश्यकता होती है। सहायक स्टाफ जिन क्रियाओं को सम्पन्न करता है उन्हें विलोबी ने संस्थागत [illegible] क्रियाओं की संज्ञा दी है।

पिफनर के शब्दों में "सहायक स्टाफ क्रियायें ऐसी गृह रक्षक क्रियाये हैं जो प्रत्येक विभाग में सामान्य [illegible] लिए होती हैं।

स्टाफ के कार्य (Functions of the Staff)-मूने ने स्टाफ द्वारा किये जाने वाले कार्यों को तीन भागों में विभाजित किया है

(1) सूचना सम्बन्धी- इसका तात्पर्य है मुख्य अधिकारी के लिए समस्त प्रकार की सूचनाओं को एकत्रित करना जिससे उसे अपना कार्य करने में सहायता मिल सके।

(2) परामर्श सम्बन्धी-मुख्य अधिकारी के सम्मुख जो समस्याएं उत्पन्न होती हैं उनके समाधान के लिए स्टाफ [illegible] परामर्श देता है। इस परामर्श को मानना अथवा न मानना मुख्य अधिकारी की इच्छा पर निर्भर करता

(3) पर्यवेक्षण सम्बन्धी- स्टाफ इस बात की देखभाल करता है कि मुख्य अधिकारी [illegible] किये गए निर्णय [illegible] के पास पहुँच रहे हैं अथवा नहीं। उन्हें कार्यरूप में परिणित करने के लिए यदि कोई कठिनाई होती [illegible] निराकरण स्टाफ द्वारा किया जाता है।

एल.डी. व्हाइट ने स्टाफ के निम्नलिखित कार्य बताए हैं–

(1) इस बात का निश्चय करना कि मुख्य अधिकारी को समस्त सूचनाएं सही ढंग से [illegible] है

(2) भावी कार्यक्रमों की योजना बनाने में सहायता देना।

(3) प्रधान अधिकारी जिस विषय में निर्णय लेने वाला है उसके सम्बद्ध में उसे समस्त [illegible]

(4) छोटी-छोटी समस्याओं का स्वयं हल करना, केवल अत्यंत महत्वपूर्ण मामले मुख्य अधिकारी के [illegible]

(5) मुख्य अधिकारी के समय की बचत करना।

(6) इस बात की व्यवस्था करना कि अधीनस्थ अधिकारी निर्धारित नीति के अनुसार ही कार्य करें।

सूत्र अभिकरण

Line Agencies

विलोबी का मत है कि प्रशासकीय कार्यों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है--(1) प्राथमिक या कार्यात्मक (2) संस्थागत या गृह पालक क्रियाएँ। प्राथमिक क्रियायें वे हैं जो उस प्रमुख लक्ष्य की प्राप्ति के लिये की जाती हैं जिसे प्राप्त करना उस संगठन का उद्देश्य है। गृह पालक या संस्थागत क्रियायें इसलिए की जाती हैं ताकि एक सेवा के रूप में बनी रहें तथा कार्य करती रहें।"

सूत्र वस्तुतः वह संगठन है जो प्रशासन के मुख्य उद्देश्यों की पूर्ति करता है। सूत्र अभिकरण का सम्बन्ध नीति के निर्माण से होता है। उसके हाथ में निर्णय लेने की शक्ति होती है।

पिफनर के शब्दों में--"सूत्र का अर्थ उस निष्पादक अधिकारियों, कर्मचारियों से है जो पद--सोपन में प्रत्यक्ष रूप से आदेश देने वाली श्रेणी में खड़े रहते हैं। यह उन लोगों में से हैं जो आदेश देने वाले इकाई के रूप में माने जाते हैं तथा जो कार्यात्मक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए कार्य करते हैं।'

सूत्र एजेंसियों के प्रकार

Kinds of Line Agencies

सूत्र एजेंसियों निम्नलिखित तीन प्रकार की होती हैं--

1. विभाग (Department)
2. लोक निगम (Public Corporation)
3. स्वतन्त्र नियामक आयोग (Independent Regulatory Commission)

1. **विभाग (Department)** प्रमुख कार्यकारी के अधीन रहने वाले समस्त सरकारी कार्य को अनेक खंडों में विभाजित कर लिया जाता है। इनमें प्रत्यक खंड को विभाग कहा जाता है। विभाग संगठन का सबसे बड़ा तथा अधिक प्रचलित स्वरूप है। यह सीधा ही मुख्य कार्यपालिका (Chief Executive) के अधीन होता है। यह स्पष्ट रूप से कमान की इकहरी श्रृखला (Single Chain of Command) के साथ जुड़ा होता है। इस प्रकार विभाग प्रशासकीय पद--सोपान (Administrative Hierarchy) में सबसे बड़ी तथा उच्चतम इकाई है। प्रत्येक सरकार का अधिकतम कार्य विभागीय प्रणाली के अन्तर्गत ही चलाया जाता है। प्रतिरक्षा, शिक्षा, स्वास्थ्य, श्रम, गृह, कृषि, रेल, डाक व तार तथा वित्त आदि सरकार के प्रमुख विभाग होते हैं।

2. **लोक निगम (Public Corporation)**--लोक निगम एक नया संगठन साधन है जो लोक प्रशासन में निजी प्रशासन से लिया गया है। लोक निगम व्यावसायिक तथा वाणिज्यिक क्षेत्रों में राज्य के प्रवेश का परिणाम है। प्रत्येक लोक निगम का एक निर्देशक मण्डल (Board of Directors) होता है, जो इस की नीतियों को बनता है और एक जनरल मैनेजर (General Manager) निगम के आन्तरिक प्रशासन को चलाता है। यह निगम--निकाय (Body Corporate) होती है जो अपने नाम पर सम्पत्ति एवं नकदी (Cash) रखती है। इसको विशाल वित्तीय तथा प्रशासकीय स्वायत्तता (Financial and Administration Autonomy) प्राप्त होती है, परन्तु यह सरकारी नियन्त्रण से पूर्णयता मुक्त नहीं होती है। लोक निगम प्रणाली का प्रयोग उस समय किया जाता है जब सरकार उद्योग, व्यापार एवं वाणिज्य के क्षेत्रों में स्वयं प्रवेश करना चाहता हो। आधुनिक काल में सरकार इन क्षेत्रों में प्रवेश कर चुकी हैं इसलिए लोक निगम, लोग प्रशासन का महत्त्वपूर्ण अंग बन चुके है। भारतीय खाद्य निगम (Food Corporation of India), जीवन बीमा निगम (Life Insurance Corporation), इंडियन एयर लाइंस निगम (Indian Air Lines Corporation), एयर इंडिया (Air India), भारतीय उद्योग निगम, केन्द्रीय भण्डारागार निगम (Central Warehousing Corporation), राजकीय व्यापार निगम (State Trading Corporation) इत्यादि भारत के कुछ प्रमुख लोक निगम हैं।

3. **स्वतन्त्र नियामिकी आयोग (Independent Regulatory Commission)**--सूत्र एजेंसियों की तीसरी प्रकार स्वतन्त्र नियामिकी आयोग कहलाती है। इसमें कुछ लक्षण विभागी प्रणाली के तथा कुछ लक्षण लोग निगम प्रणाली के होते है। शीर्ष पर इसका स्वरूप निगम जैसा परन्तु आन्तरिक कार्य--संचालन विभागीय ढांचे जैसा होता है। ये आयोग मुख्य

कार्यकारी के नियन्त्रण से प्रायः मुक्त होते हैं। इनकी उपस्थिति प्रशासन को विश्रृंखल (Disintegrated) स्वरूप प्रदान करती है। यह प्रशासकीय, अर्द्ध–विधायी (Semi-Legislative) तथा अर्द्ध–न्यायिक (Semi-Judical) प्रकृति के कार्य करते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में यह बहुत प्रचलित है तथा सरकारी प्रशासन का महत्त्वपूर्ण अंग माने जाते हैं।

स्टाफ तथा सूत्र अभिकरणों में अन्तर

Difference between Staff and Line Agencies

लोक प्रशासन में सूत्र और स्टाफ अभिकरण के अन्तर पर जब हम विचार करते हैं तो हमें ये एक दूसरे से इस प्रकार घुले हुए लगते हैं कि, इनमें अन्तर खोजना कठिन है। पाल. एच. एपलबी का मत है कि–ये दोनों अभिकरण इतने घुल मिल गए हैं कि इनमें अन्तर खोजना बहुत कठिन है। लाईन अभिकरण कभी स्टाफ अभिकरण का कार्य करता है और कभी स्टाफ अभिकरण सूत्र अभिकरण से अधिक शक्तिशाली दिखाई देता है। इन दोनों के मध्य अन्तर निम्नलिखित हैं-

(1) सूत्र अभिकरण अपने निर्धारित उद्देश्यों को पूरा करते हैं तथा अपने आप में साध्य हैं। जबकि स्टाफ सूत्र अभिकरण की सहायता के लिए होता है। अतः यह साध्य न होकर साधन मात्र है।

(2) सूत्र संगठन के समस्त अधिकारी पदसोपान क्रम में संगठित होते हैं। प्रत्येक अधिकारी अपने उच्च अधिकारी से आदेश ग्रहण करता है तथा उसके प्रति उत्तरदायी होता है। किन्तु स्टाफ में यह स्थिति नहीं होती।

(3) स्टाफ का कार्य योजनायें बनाना, नवीन अनुसन्धान करना है। सूत्र का कार्य इन योजनाओ के अनुसार कार्य करना है।

(4) सूत्र अभिकरण लोगों के सम्पर्क में सीधे आते हैं जबकि स्टाफ एजेन्सियाँ पर्दे के पीछे कार्य करती हैं।

(5) सूत्र अभिकरण अधीनस्थ कर्मचारियों को आदेश देते हैं जबकि स्टाफ एजेन्सियों को कोई ऐसी शक्तियां प्राप्त नहीं होती। वे केवल मुख्य कार्यपालिका अधिकारी को परामर्श दे सकती हैं जिसे मानना या न मानना उसकी इच्छा पर निर्भर करता है।

(6) सूत्र अभिकरण को सत्ता प्राप्त होती है जिसके माध्यम से वह अधीनस्थ कर्मचारियों पर नियन्त्रण स्थापित करता है। स्टाफ के पास कोई सत्ता नहीं होती तथापि उसका प्रभाव होता है।

स्टाफ तथा सूत्र एजेंसियों में उपरोक्त अन्त के होते हुए भी व्यवहार में उनमे अन्तर करना बहुत कठिन है। आपस में इस तरह ढग से मिली हुई हैं कि उनमे भेद नहीं किया जा सकता। इनके बीच विभाजन की रेखा खींचना अति कठिन कार्य है। व्यावहारिक रूप में स्टाफ तथा सूत्र दोनों के ही कार्य किसी एक व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के एक समूह को सौंप जा सकते हैं। छोटे संगठनों मे यह कार्य एक व्यक्ति द्वारा को निभाये जाते हैं। वास्तव में सूत्र तथा स्टाफ एजेंसियो के बीच का अन्तर बहुत कुछ सापेक्ष (Relative) है, निरपेक्ष (Absolute) नहीं। जब हम किसी एजेंसी को सूत्र अथवा स्टाफ में वर्गीकृत करते है, तो हमारा अभिप्राय यही होता है कि सम्बन्धित एजेंसी का कार्य मुख्य रूप से उस प्रकार का है जिस वर्ग के अन्तर्गत हमने उसे रखा है। दोनों का पूर्ण पृथक्करण (Separation) करना व्यावहारिक रूप से असम्भव है। उदाहरण के तौर पर किसी विभाग का सचिव (Secretary) अपने मंत्री (Minister) के साथ सम्बन्ध के पक्ष से स्टाफ अधिकारी होता है, परन्तु विभागीय पद–सोपान (Departmental Hierarchy) के पक्ष से वह सूत्र अधिकारी कहलाता है। इस प्रकार कार्य पूर्ति के लिए वह सूत्र एजेंसी का अंग बन जाती है। अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि स्टाफ तथा सूत्र एजेंसियों में अन्तर होते हुए भी वे एक–दूसरे में मिश्रित पाई जाती है।

महत्वपूर्ण प्रश्न

1. भारत का उदाहरण देते हुए स्टाफ और सहायक अभिकरणों में भेद को स्पष्ट कीजिए।
2. 'सामान्य प्रशासन के ब्यूरो' या स्टाफ अधिकरण से क्या अभिप्राय है? इसके विभिन्न कार्यो की विवेचना कीजिए
3. सूत्र एवं स्टाफ अभिकरणों के बीच अन्तर समझाइये। आधुनिक प्रशासन मे उनके कार्यों की विवेचना कीजिये।
4. सूत्र अभिकरण क्या है? इसके विभिन्न प्रकारों का वर्णन कीजिए?

अध्याय 13

लोक सम्पर्क

Public Relations

आधुनिक लोकतांत्रिक राज्यों में प्रभुसत्ता लोगों के हाथ मे होती है। पुलिस राज्य की पुरानी धारणा में राज्य के कार्य सीमित होते थे तथा प्रशासक और लोगों का सम्बन्ध मालिक और नौकर जैसा था। नागरिक प्रशासकों के आदेश चुपचाप स्वीकार कर लेते थे तथा दोनों में कोई मानवीय सम्पर्क नहीं था। लोग प्रशासकों से डरते थे तथा उन्हें लोगों के जीवन में घुसपैठिये समझा जाता था। लोग राज्य के कार्यों में कोई रूचि नहीं लेते थे।

लोकतन्त्र के उदय होने से पुलिस राज्य की धारणा समाप्त हो गई है तथा इसके स्थान पर कल्याणकारी राज्य की नयी भावना ने जन्म लिया है। आधुनिक युग में सभी राज्य चाहे उनमें किसी प्रकार की भी सरकारी संरचना हो, ऐसी सामाजिक व्यवस्था स्थापित करने में लगे हुए हैं जिसमें मनुष्य स्वतन्त्रता से जीवन व्यतीत कर सके तथा अपना विकास कर सके। इससे राज्य के कार्यकलाप बढ़ गये हैं तथा राज्य पालने से चिता तक तथा प्रातः से सायं तक नागरिकों के सारे कार्यों की व्यवस्था करता है।

राज्य की धारणा तथा कार्यों में परिवर्तन आने के कारण प्रशासनिक संरचना में भी परिवर्तन लाने की आवश्यकता अनुभव हो गई है ताकि यह परिवर्तन स्थितियों के अनुकूल बन सके। राज्य के बढ़ते हुए दायित्व ने प्रशासन को लोगों के समीप ला दिया है। लोग भी प्रशासन के बारे में जागरूक हो गये हैं तथा वे पहले की तरह चुपचाप आदेश प्राप्त नहीं करते। इसके विपरीत उनका दृष्टिकोण बहुत आलोचनात्मक हो गया है। इस आलोचनात्मक दृष्टिकोण के कारण प्रशासकों का कार्य और भी कठिन हो गया है। एक ओर तो उन्हें आदेश है कि वे वैधानिक रूप से अभिव्यक्त लोगों की इच्छा को पूरा करें, जिसके अधीन वे कार्य कर रहे हैं तथा दूसरी ओर प्रशासकों का यह भी कार्य है कि वे नागरिक को यह अनुभव करवाएं कि उनके हित का ध्यान रखा जा रहा है। किन्तु यह कठिनाई ऐसी नहीं जिसे दूर न किया सके। इसके लिए कर्मचारियों तथा लोगों में उचित सामंजस्य स्थापित करना आवश्यक है।

लोकतन्त्र में प्रशासन को भी लोकतन्त्रीय होना चाहिए। इसे लोगों को अपना स्वामी समझ कर उनकी ओर पूरा ध्यान देना चाहिए तथा उनके साथ नम्रता का व्यवहार करना चाहिए। इसे यह ज्ञात होना चाहिए कि लोग इसके कार्यों के बारे में क्या विचार रखते हैं तथा वे क्या चाहते हैं। लोगों की शिकायतों को सुन कर और यदि वे उचित हों तो उन्हें दूर किया जाना चाहिए। यदि लोगों की कठिनाइयों का ध्यान में न रखा जाये तो लोग पर अफसरशाही का आरोप लगाते हैं। यदि लोग इसके विरूद्ध हो तो कोई भी प्रशासन सफल नहीं हो सकता। सरकारी अधिकारियों को लोगों का सहयोग प्राप्त करना चाहिए। यह तभी सम्भव है यदि लोगों को सार्वजनिक मामलों के बारे में ठीक–ठीक, विस्तृत तथा समय पर सूचना दी जाये।

लोक सम्पर्क का अर्थ और परिभाषा

Meaning and Definition of Public Relations

लोक सम्पर्क के मुख्य उद्देश्य सरकारी कार्य तथा नीतियों की सूचना लोगों को देना तथा उनकी प्रतिक्रियाओं को जानना है। दूसरे शब्दों में लोक सम्पर्क में वे सभी कार्यकलाप आ जाते हैं जो सरकारी कार्यों के बारे में लोगों को सूचना देते हैं तथा लोगों के विचारों तथा इच्छाओं के बारे में सरकार को बताते है। जान डी. मिलेट के अनुसार, "लोक सम्पर्क का अर्थ इस बात की जानकारी प्राप्त करना है कि लोग क्या आशा करते हैं तथा इस बात का स्पष्टीकरण देना कि प्रशासन उन माँगों को कैसे पूरा कर रहा है। इस तरह लोक सम्पर्क का काम केवल जनता को सूचना देना ही नहीं है बल्कि जनता की इच्छाओं को जानना भी है तथा प्रशासक के लिए लोगों के हृदय में सद्भावना उत्पन्न करना भी है। किसी भी प्रशासकीय अभिकरण के लिए सद्भावना बहुत आवश्यक है क्योंकि इससे ही लोगों का सहयोग तथा समर्थन प्राप्त किया जा सकता है। यह, जैसा कि डा. एल. डी. व्हाइट ने कहा है, जनता के प्रति नम्रता तथा सहानुभूति प्रदर्शित करने से ही हो सकता है। जे.एच. ब्रेबनर के, मतानुसार,

"आधुनिक प्रशासन में लोक सम्पर्क तथा प्रचार के कार्य को साधारणतम शब्दों में ऐसे स्पष्ट किया जा सकता है कि यह ... में तथा इससे बढ़कर सरकार में मानवीय अंश के अध्ययन से सम्बन्धित है।" हारवुड. एल. चाइल्ड्स के कथानुसार, लोक ... की परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है कि ये हमारे व्यक्तिगत तथा सामूहिक व्यवहार ... वे पक्ष हैं जिनका नि... व्यक्तिगत की अपेक्षा सामाजिक महत्त्व अधिक है।" डब्ल्यू.टी.पैरी के अनुसार, "लोक सम्पर्क का अर्थ है व्यापार ... संगठन तथा इस द्वारा सेवित जनता के बीच अच्छे, न्यायपूर्ण तथा पारस्परिक लाभदायक सम्बन्धों का विकसित करना ... हारलो कहते हैं, "लोकसम्पर्क एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा कोई संगठन सभी संबंधित पक्षों की आवश्यकताओं तथा ... का विश्लेषण करता है ताकि यह उनकी ओर अधिक ध्यान दे सके।" डब्ल्यू. बी. ग्रेवस लिखते हैं, "लोक सम्पर्क का अर्थ ... एजेन्सी से जनता को सूचना भेजना नहीं है बल्कि जनता से एजेन्सी को भी सूचना भेजना है।"

लोक सम्पर्क की उपर्युक्त परिभाषाओं से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि लोक सम्पर्क का उद्देश्य केवल लोगों को सूचित करना तथा यह जानना ही नहीं है कि लोग क्या चाहते हैं बल्कि प्रशासनिक मशीनरी के लिए लोकप्रिय सद्भावना ... स्थापित करना है।

लोक सम्पर्क के बारे में स्पष्ट रूप से जानने के लिए हमें इसे प्रचार एवं प्रोपेगण्डा से पृथक करना चाहिए।

लोक सम्पर्क तथा प्रचार (Public Relations and Publicity)—लोक सम्पर्क तथा प्रचार के बारे में प्रायः भ्रमपूर्णता पाई ... है। कई सरकारें अपने लोक सम्पर्क अधिकारियों को प्रचार अधिकारी कह कर पुकारती हैं। इसमें सन्देह नहीं है कि ... पदावलियाँ जुड़ी हुई हैं तथा दोनों भिन्न प्रकार के कार्य नहीं हैं बल्कि एक ही चीज के दो पक्ष हैं। ज.एच.ब्रेवनर के मतानुसार लोक सम्पर्क तथा प्रचार में अन्तर उनके दृष्टिकोण की तकनीक में है। प्रचार जन–समूह से व्यवहार करने की कला है जबकि लोक सम्पर्क व्यक्तियों से सम्बन्धित है। इस प्रकार लोगों को सामूहिक रूप से सूचना देना प्रचार है तथा व्यक्तियों से सम्पर्क करना लोक सम्पर्क है। कई लेखक लोक सम्पर्क को व्यक्तिगत तथा समूह सम्बन्धों दोनों के लिए प्रयुक्त करते हैं। इस दृष्टिकोण से प्रचार लोक सम्पर्क की एक शाखा बन जाता है।

लोक सम्पर्क तथा प्रोपेगंडा (Public Relations and Propaganda)—जैसाकि हमने ऊपर देखा है लोक सम्पर्क का ... महत्त्वपूर्ण भाग प्रचार है। प्रायः प्रचार को प्रोपेगण्डा समझ लिया जाता है। दोनों में निम्नलिखित अन्तर है

(i) प्रचार का उद्देश्य सूचना देना है जबकि प्रोपेगण्डा का उद्देश्य आचार को प्रभावित करना है।

(ii) प्रचार का स्त्रोत सदा ज्ञात होता है जबकि प्रोपेगण्डा का स्त्रोत छुपा हुआ होता है।

(iii) प्रचार का उद्देश्य बुरा नहीं होता जबकि प्रोपेगण्डा स्वार्थ–पूर्ति करता है तथा गलत सूचना और तोड़–मोड़ तथ्य पेश करता है।

लोक सम्पर्क अधिकारी को प्रोपेगण्डा नहीं करने दिया जा सकता। उसका कार्य प्रचार है न कि प्रोपेगण्डा। लोगों को ... तथ्य दिये जाने चाहिए। युद्ध के समय में सरकार कई बार प्रापेगण्डा भी करती है ताकि शत्रु के प्रापेगण्डा का रद्द किया जा सके तथा लोगों और सैनिकों का उत्साहवर्द्धन किया जा सके।

लोक सम्पर्क के तत्त्व

Elements of Public Relations

मिलेट के अनुसार लोक सम्पर्क के चार तत्त्व हैं:

(1) लोगों की इच्छाओं तथा आकांक्षाओं को जानना।

(2) लोगों को परामर्श देना।

(3) लोगों तथा अधिकारियों के मध्य सन्तोषजनक सम्पर्क स्थापित करना।

(4) सरकार जो कुछ कर रही है उसके बारे में लोगों को सूचित करना।

1. लोगों की इच्छाओं और आकांक्षाओं को जानना (To know the aspirations of the People)

लोक सम्पर्क के चार तत्त्वों में से पहला तत्त्व लोकमत जानने के लिए लोगों की इच्छाओं तथा आकांक्षाओं को जानना है। लोकमत जानने के लिए निम्नलिखित साधन हैं:

(i) **प्रेस (Press)**—लोगों के लिए विचार अभिव्यक्त करने का प्रेस एक बहुत महत्त्वपूर्ण साधन है। समाचारपत्रों तथा पत्रिकाओं में सरकार की नीतियों तथा कार्यक्रमों के बारे में लोगों की प्रतिक्रियाएँ प्रतिबिम्बित होती है। सम्पादक के नाम पत्रों में सरकार की किसी विशेष नीति की प्रशंसा अथवा निन्दा की जाती है अथवा शिकायतें की जाती हैं। मुख्य सम्पादकों द्वारा लिखे गए सम्पादकीय भी सरकार की रचनात्मक आलोचना करते हुए लोगों की शिकायतों को दूर करने का सुझाव देते हैं। लोक सम्पर्क विभाग के अधिकारी समाचार पत्रों में से ऐसी बातें निकाल कर सम्बन्धित विभागों को भेजते हैं ताकि उन्हें उनके द्वारा संचालित सेवाओं के बारे में लोकमत का ज्ञान हो सके।

(ii) **मंच (Platform)**—सार्वजनिक व्यक्तियों विशेषतया विभिन्न नेताओं द्वारा दिए गए भाषण भी किसी विशेष विषय पर जनमत को परिलक्षित करते हैं। सार्वजनिक बैठकों के बारे में गुप्तचरों द्वारा सरकार को सूचना मिलती है अथवा संयोजक स्वयं ही 'मांगों की सूची' सरकार को प्रस्तुत कर के इसकी सूचना सरकार को देते हैं। इस प्रकार सरकार को किसी विशेष विषय पर लोकमत का ज्ञान हो जाता है।

(iii) **प्रदर्शन (Demonstration)**—यदि मौखिक अथवा लिखित शब्दों से प्रशासन पर कोई प्रभाव न पड़े तो लोग प्रदर्शन आदि द्वारा सरकार तक अपने विचार पहुँचाते हैं। प्रदर्शन किसी विशेष सरकारी नीति के प्रति सन्तोष अथवा निन्दा प्रकट करने के लिए आयोजित किये जा सकते हैं। सराहनीय कार्यक्रम के लिए लोग प्रदर्शन द्वारा प्रसन्नता प्रकट करते हैं तथा उनके हितों को ठेस लगाने वाले कार्यक्रमों के प्रति निन्दा प्रकट करते हैं। प्रायः प्रदर्शन किसी विशेष मांग को मनवाने अथवा सरकार को कोई कदम वापस लेने पर मजबूर करने के लिए किए जाते हैं। प्रदर्शन शान्तिपूर्ण भी होते हैं लेकिन कई बार हिंसात्मक भी हो जाते हैं। साधारण लोकमत अथवा किसी विशेष वर्ग का मत हर कहीं इन साधनों द्वारा अभिव्यक्ति पाता है किन्तु हमारे देश में इसका प्रयोग अधिक मौकों पर किया गया है जैसे भाषा, राज्य के पुनर्गठन तथा किसी कर के लगाने के विरूद्ध आदि विषयों पर। निस्सन्देह सरकार का ध्यान आकर्षित करने का यह एक प्रबल साधन है किन्तु एक सच्चे लोकतन्त्र में इन साधनों का आश्रय नहीं लिया जाना चाहिए। प्रतिनिधि मंडलों के द्वारा सरकार से वार्तालाप एवं समझौता अधिक श्रेयस्कर साधन हैं।

(iv) **विधान मण्डल (Legislature)**—संसद अथवा विधान मण्डल लोकमत को अभिव्यक्त करने का सर्वोत्तम स्थान है जहाँ लोगों के प्रतिनिधि लोगों की ओर से बोलते हैं। ये प्रतिनिधि सरकार को लोगों की इच्छाओं, आकाँक्षाओं तथा शिकायतों से अवगत कराने के मौके उस समय पाते हैं जब भिन्न प्रकार के बिलों पर बहस होती है अथवा अनुदानों पर मत लिया जाता है। विरोधी दलों का कार्य तभी सराहनीय है यदि वे रचनात्मक सुझावों द्वारा लोगों की उचित कठिनाइयों का सरकार द्वारा निवारण करवायें।

(v) **अनौपचारिक बातचीत (Informal Conversation)**—लोकमत गाड़ियों, बसों, बाजारों आदि में अनौपचारिक बातचीत द्वारा भी प्रकट होता है। ऐसे समय पर लोग अपने दिल की सच्ची बात कहते हैं। जो कुछ वे कहते हैं उसमें अतिशयोक्ति नहीं होती। अतः लोकमत की सर्वोत्तम कसौटी लोगों की सरकारी नीतियों एवं कार्यों के बारे में अनौपचारिक बातचीत है।

(vi) **सरकारी कर्मचारी (Government Employees)**—सरकारी कर्मचारी भी सरकार के किसी कार्य के बारे में लोकमत जानने के लिए एक अच्छी एजेन्सी का कार्य कर सकते हैं। वे विभिन्न वर्गों के अनेक लोगों के सम्पर्क में प्रतिदिन आते हैं। अतः वे इस स्थिति में होते हैं कि सरकार के प्रति लोगों के विचार जान सकें। यदि उन्हें प्रोत्साहित किया जाये तो वे लोक मत की ठीक–ठीक रिपोर्ट दे सकते हैं।

(vii) **लोगों में स्वतन्त्रता से घूमना (Moving freely among the People)**—लार्ड ब्राइस के मतानुसार, "किसी समुदाय की प्रवृत्तियों को जानने के लिए सभी प्रकार के लोगों के साथ स्वतन्त्रता से घूमना तथा यह जानना आवश्यक है कि वे दिन–प्रति–दिन के समाचारों से कैसे प्रभावित होते हैं।" लोगों में स्वतन्त्रतापूर्वक घूमना तथा उनकी प्रतिक्रियाएँ जानना एक महत्वपूर्ण तकनीक है। इससे सरकार तथा प्रशासन के बारे में लोगों के सच्चे विचार ज्ञात हो जाते हैं। इसलिए इस प्रणाली को अशोक तथा अकबर जैसे महान राजाओं ने अपनाया था। वे वेश बदल कर रात को लोगों में घूमते थे तथा उनकी प्रतिक्रियाओं तथा शिकायतों का पता लगाते थे तथा उन्हें दूर करते थे।

(viii) **परामर्श समिति (Advisory Committee)**—सरकार किसी विशेष कार्य के बारे में लोगों का दृष्टिकोण, परामर्श समितियों से भी जान सकती है। इन समितियों में प्रभावित हितों के प्रतिनिधि होते हैं। ये समितियाँ सम्बन्धित लोगों की भावनाओं तथा हितों के बारे में सरकार को बता कर उसे किसी विशेष नीति पर चलने के लिए परामर्श देती

है। ऐसी परामर्श समितियाँ प्रशासन के प्रत्येक स्तर–राष्ट्रीय, राज्य, स्थानीय पर विद्यमान होती हैं। विशेष इसका प्रयोग समाज सेवी विभागों जैसे शिक्षा, खाद्य, तथा कृषि, वाणिज्य तथा उद्योग, सामुदायिक विकास तथा अन्य उद्यमों में किया जाता है।

(ix) **लोकमत संग्रह (Public Opinion Polls)**—अन्ततः किसी मामले पर लोकमत जानने के लिए उस मामले का मत लेने के लिए निर्दिष्ट किया जा सकता है अथवा उनको एक प्रश्नावली (Questionnaire) जारी की जा सकती है। उनके उत्तरों से स्पष्ट पता चल जाता है कि लोग उसके पक्ष में हैं अथवा विरूद्ध हैं। अमरीका में तथा अन्य सम्बन्धित एजेंन्सियाँ इस प्रकार लोकमत संग्रह करती हैं तथा उनके परिणाम प्रायः ठीक होते हैं। किन्तु किसी बड़े देश में मत लेना अथवा प्रश्नावली भेजना कठिन हो जाता है। यह तरीका बहुत महंगा पड़ता है। इसलिए व्यहारात्मक ढंग यही है कि भिन्न–भिन्न आयु, लिंग, व्यवसाय, स्थान आदि से संबंधित जनता के विभिन्न वर्गों के नेताओं से मत ले लिया जाये जो वस्तुतः जनमत की अभिव्यक्ति होगा।

2. लोगों को परामर्श देना (Advising the Public)

लोक सम्पर्क का दूसरा तत्त्व लोगों को परामर्श देना है कि उन्हें क्या सोचना और करना चाहिए। लोगों को यह बताना कि उन्हें क्या करना चाहिए, सरकार द्वारा प्रोपेगण्डा कहा जा सकता है। लोगों को कुछ आवश्यक बातों जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, व्यापार तथा वाणिज्य, कृषि, परिवार नियोजन आदि के बारे में परामर्श देना जरूरी है। भारत जैसे विकासशील देश में लोगों को पंचवर्षीय योजनाएँ सफल बनाने में सहयोग देने के लिए सरकार उन्हें परामर्श दे सकती है। परामर्श को झूठ तथा राजनीतिक लाग लपेट से पृथक रखना चाहिए।

3. लोगों से व्यवहार करना (Dealing with the Public)

लोक सम्पर्क का तीसरा तत्त्व सरकारी कर्मचारियों का लोगों के साथ अच्छा व्यवहार तथा सन्तोषजनक सम्बन्ध स्थापित करना है। सरकारी कर्मचारी, विशेषतया निम्न स्तर के, प्रतिदिन लोगों के सम्पर्क में आते हैं। उनका बर्ताव उनके विभाग के लिए अच्छी अथवा बुरी साख पैदा कर सकता है। लोग किसी भी एजेन्सी के अच्छे अथवा बुरे होने के बारे में निर्णय उसके कर्मचारियों के प्रति अपने अनुभव से लगाते हैं। अतः अधिकारियों को लोगों के साथ अपने सम्पर्कों का महत्त्व समझना चाहिए। यदि वे नम्रता तथा सहानुभूति दिखायेंगे तो उनकी सराहना होगी तथा उनके संगठन को लोगों का अनुमोदन प्राप्त होगा। किन्तु इसके विपरीत यदि उनका बर्ताव उग्र अथवा घमण्डी होगा तो लोग उनके संगठन की निन्दा करेंगे।

लोगों के साथ अच्छा सम्पर्क स्थापित करना केवल किसी एक अधिकारी का कार्य नहीं है, बल्कि सभी कर्मचारियों का है जो लोगों के सम्पर्क में आते हैं तथा उन पर अपने आचार एवं गतिविधियों के बारे में प्रभाव डालते रहते हैं। इसलिए एल. डी. व्हाईट कहते हैं, "प्रत्येक सरकारी अधिकारी अथवा कर्मचारी लोक सम्पर्क अधिकारी है।" इसलिए प्रत्येक सरकारी अधिकारी का यही यत्न होना चाहिए कि वह इस प्रकार का व्यवहार करे कि लोग उसके संगठन के बारे में अच्छा विचार बनायें। इसके लिए प्रत्येक अधिकारी में कुछ गुण होने चाहिए, जिनका वर्णन हम नीचे करेंगे। इसके अतिरिक्त लोगों से बर्ताव की कुछ तकनीक होती है जिसे लोगों के सम्पर्क में आने वाले अधिकारियों को ध्यान में रखना चाहिए।

अच्छे लोक सम्पर्क अधिकारी के गुण

Qualities of a Good Public Relations Officer

सरकारी कर्मचारी लोगों के सम्पर्क में या तो व्यक्तिगत स्तर पर आते हैं अथवा पत्र व्यवहार से। इन दोनों सम्पर्कों में पूरा यत्न किया जाना चाहिए कि उनके साथ नम्रता तथा सहानुभूति से पेश आया जाए। अधिकारी को यह अनुभव करना चाहिए कि नम्रता पर कुछ खर्च नहीं आता किन्तु नम्रता न बरतने से अधिकारी तथा उसकी एजन्सी की साख पर धब्बा लगता है। कई बार विनम्रता न दिखाने से बुरा दृश्य उत्पन्न होता है जिससे लड़ाई तथा गाली–गलौच भी हो जाती है। कर्मचारियों को यह अनुभव करना चाहिए कि वे लोक सेवक हैं तथा उन्हें अफसरशाही प्रदर्शित नहीं करनी चाहिए। अफसरशाही में प्रायः रूखापन, तीखापन, पृथकता तथा घमण्ड तक भी पाया जाता है। आधुनिक लोकतन्त्र में अधिकारी को दयालु, सहानुभूतिपूर्ण एवं नम्र होना चाहिए जिसे लोग सुगमता से मिल सकें। लोगों के साथ इस प्रकार का अच्छा व्यवहार होना चाहिए कि वे अनुभव करें कि उनकी अपनी सरकार है तथा अधिकारी रूखे अथवा तीखे नहीं हैं बल्कि उनके हितैषी, मित्र तथा पथप्रदर्शक हैं।

जब नागरिक किसी अधिकारी को मिलने आयें तो उन्हें असुविधा नहीं होनी चाहिए। कई बार नागरिकों को दफ्तर अथवा अधिकारियों को ढूँढना कठिन हो जाता है। इस सम्बन्ध में उन्हें सहायता अथवा मार्गदर्शन नहीं मिलता जिससे उन्हें दुःख होता है। इसलिए प्रत्येक बड़े अधिकारी को एक प्रतीक्षा कक्ष की व्यवस्था करनी चाहिए जिसमें लोकप्रिय साहित्य पड़ा हो ताकि प्रतीक्षक प्रतीक्षा का समय अच्छी तरह व्यतीत कर सके। दूसरा, प्रत्येक अधिकारी के पास एक आगन्तुक लिपिक अथवा पूछताछ अधिकारी होना चाहिए जो आगन्तुकों की सहायता अथवा मार्गदर्शन कर सके। यह व्यक्ति अच्छे व्यक्तित्व वाला तथा अच्छे स्वभाव का होना चाहिए। यदि महिलाओं को इस पद पर नियुक्त किया जाये तो बेहतर होगा क्योंकि स्पष्टतया वे अधिक नम्र तथा मधुर भाषी हो सकती हैं। तीसरा, अधिकारियों को लोगों के लिए मिलने का समय निश्चित करना चाहिए। यदि किसी विवशता के कारण उस समय अधिकारी उन्हें न मिल सके तो उसे यह सूचना उन्हें देनी चाहिए तथा उनकी सुविधा के अनुसार ऐसा समय उनके लिये निकालना चाहिए जब वह उन्हें मिल सकता हो। निश्चित समय का यथासम्भव जरूर पालन किया जाना चाहिए क्योंकि लोगों का समय भी इतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना अधिकारियों का। चौथा, जहाँ तक हो सके लोगों की कठिनाइयों में उनकी सहायता करनी चाहिए। उन्हें वांछित सूचना दी जानी चाहिए, यदि नियम अनुमति न देते हों तो असमर्थता प्रकट कर देनी चाहिए।

लोग व्यक्तिगत रूप से प्रशासन के सम्पर्क में इतने नहीं आते जितने पत्रव्यवहार के माध्यम से। प्रशासन ने अपने तरीके अपनाये हुए हैं जिनको लोग 'Officialese' कह कर पुकारते हैं। लोगों की चिट्ठियों की पावती भेजनी चाहिए तथा उत्तर स्पष्ट, साधारण तथा सीधी–सादी भाषा में लिखा होना चाहिए। सार्वजनिक शिकायतों को सुनने के लिए एक अधिकारी होना चाहिए अथवा उस उद्देश्य के लिए एक शिकायत पुस्तिका होनी चाहिए अथवा शिकायत डिब्बा होना चाहिए जो स्पष्ट दिखने वाले स्थान पर रखा होना चाहिए। ऐसी शिकायतें विधिवत रूप से दर्ज की जानी चाहिए तथा उन पर कार्रवाई की जानी चाहिए। छपे हुए सरकारी फ़ार्म स्पष्ट संक्षिप्त तथा संगत होने चाहिए। अनावश्यक सूचना नहीं माँगी जानी चाहिए। इनकी भाषा भी साधारण व्यक्ति को समझ आ जाने वाली होनी चाहिए।

उपर्युक्त बातों को अपनाने के अतिरिक्त सरकारी अधिकारियों को निजी बर्ताव में भी गौरवपूर्ण ढंग अपनाना चाहिए। उन्हें हल्की बातें करने, सार्वजनिक विवादों अथवा राजनीतिक पक्ष लेने से दूर रहना चाहिए। उन्हें राजनीति में निष्पक्ष रहना चाहिए। इसलिए उन्हें ऐसा कोई शब्द भी नहीं बोलना चाहिए जिससे लोगों पर यह प्रभाव पड़े कि वे पक्षपाती हैं अथवा एक या दूसरे राजनीतिक दल से सम्बन्धित हैं। उनका ढंग, व्यवहार तथा बर्ताव ऐसा होना चाहिए जिससे लोगों की सहानुभूति, समर्थन तथा सराहना प्राप्त की जा सके। यह हर्ष का विषय है कि हमारे देश के अधिकारी धीरे–धीरे अच्छे लोक सम्पर्क अधिकारी के गुण ग्रहण कर रहे हैं। उनको इन गुणों का महत्त्व बताने के लिए कई विभाग नम्रता–सप्ताह (Courtesy Week) मनाते हैं। अभी पुलिस विभाग अच्छा लोक सम्पर्क स्थापित नहीं कर सका जो शायद उसके द्वारा निभाए जाने वाले कर्त्तव्यों के कारण है। फिर भी वे लोगों के प्रति अपना दृष्टिकोण बदल रहे हैं तथा वह समय दूर नहीं जब वे भी लोगों की सहानुभूति प्राप्त कर सकेंगे तथा उन्हें भी लोग अपना मित्र तथा जीवन और सम्पति का रक्षक समझेंगे।

4. लोगों को सूचित करना (Informing the Public)

लोक सम्पर्क का चौथा तत्त्व सरकार के कार्यकलापों के बारे में लोगों को सूचित करना है। लोगों को सरकार की नीति तथा कार्यों के बारे में निम्नलिखित प्रचार साधनों से सूचित किया जाता है:

1. **प्रेस (Press)**–प्रेस प्रचार का सबसे महत्त्वपूर्ण साधन है। सरकार अपने कार्यकलापों के बारे में लोगों को सूचित करने के लिए प्रायः इसका प्रयोग करती है। सरकार प्रेस को प्रेस विज्ञाप्तियाँ, प्रेस नोट, अधिसूचनाएँ, प्रस्ताव आदि भेजती है। कई बार महत्त्वपूर्ण व्यक्ति जैसे प्रधानमंत्री प्रेस कान्फ्रेंस बुलाते हैं जिसमें वे सरकारी नीति अथवा किसी स्थानीय, राष्ट्रीय अथवा अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति पर कोई स्पष्टीकरण देते हैं। सरकार द्वारा दिए गए इन प्रपत्रों को प्रेस छापता है। किन्तु प्रेस सरकार द्वारा दी गई प्रत्येक सूचना छापने के लिए बाध्य नहीं है। यह केवल वही सूचना छापता है जो खबर बन सकती है। यह बहुत आवश्यक है कि सरकार तथा प्रेस में अच्छा सम्बन्ध हो ताकि प्रेस सरकार के कार्यों के बारे में ठीक–ठीक सूचना दे तथा अनुचित ढंग से तथा झूठी आलोचना न करे।

   प्रशासन अपने प्रेस अधिकारियों के माध्यम से प्रेस के साथ सम्बन्ध रखता है। इसलिए प्रेस अधिकारियों को चाहिए कि वे सम्पादकों तथा रिपोर्टरों का विश्वास प्राप्त करें ताकि वे सरकारी नीतियों के प्रति खण्डनात्मक तथा विषैला दृष्टिकोण न अपनाएँ बल्कि सरकार की स्थिति लोगों को ठीक ढंग से स्पष्ट करें।

2. **सरकारी प्रकाशन (Government Publication)**—प्रत्येक देश में सरकार साप्ताहिक अथवा मासिक सूचना बुलेटिन निकालती है तथा सरकारी राजपत्र (Gazette) भी निकालती है जिसमें इसके कार्यकलापों सम्बन्धी बहुत सूचना मिलती है। इसके अतिरिक्त सरकार पुस्तकें, पुस्तिकाएँ, इश्तिहार आदि प्रकाशित करके भी अपनी नीतियों, कार्यक्रमों तथा प्रशासकीय एजेंसियों के कार्यकलापों की सूचना लोगों को देती है। इनमें से कुछ प्रकाशन कुछ चुने हुए लोगों तथा संस्थाओं को निःशुल्क दिये जाते हैं तथा कुछ नाममात्र कीमत पर दिये जाते हैं।

   भारत सरकार के विभिन्न विभाग अपने कार्य के बारे में वार्षिक रिपोर्ट भी प्रकाशित करते हैं। विभिन्न आयोग, समितियाँ आदि भी अपनी रिपोर्ट प्रकाशित करती हैं, किन्तु उनके बहुत विस्तृत होने के कारण साधारण लोगों को उनसे विशेष लाभ नहीं होता, किन्तु उनके अंश अथवा उनका सारांश जो समाचार-पत्रों में प्रकाशित होता है, वह साधारण लोगों के लिए लाभदायक होता है।

3. **मंच (Platform)**—राजनीतिक अध्यक्ष तथा बड़े-बड़े सरकारी अधिकारी मंच से शैक्षणिक, व्यावसायिक या सांस्कृतिक सम्मेलनों में भाषण द्वारा लोगों को सूचना देते हैं।

4. **रेडियो (Radio)**—रेडियो अब लोक सम्पर्क तथा संचार का एक महत्त्वपूर्ण साधन बन गया है। समाचार पत्र तो केवल पढ़े-लिखे लोगों के पास ही जाते हैं किन्तु रेडियो तो संसार के किसी भी भाग में प्रत्येक प्रकार के व्यक्ति के पास पहुँच सकता है। सरकार लोगों को सूचना देने के लिए प्रसारण का प्रयोग करती है। इस माध्यम से सरकार न केवल समाचार तथा विचार ही लोगों तक पहुँचाती है बल्कि भिन्न प्रकार के शैक्षणिक तथा लाभदायक कार्यक्रमों का भी प्रसारण करती हैं, जैसे वार्ता, वाद-विवाद, भाषण-प्रतियोगिता, नाटक आदि जिनसे सरकार की योजनाएँ तथा नीतियाँ जनता में लोकप्रिय हो सकें।

5. **चलचित्र (Films)**—चलचित्रों को आजकल जन-शिक्षा का एक महत्वपूर्ण साधन माना जाता है। वे केवल मनोरंजन ही नहीं बल्कि शिक्षा भी देते हैं। आधुनिक सरकारें इनका काफी प्रयोग करती हैं। दूरस्थ गाँव में भी लोक सम्पर्क विभाग द्वारा चलते फिरते वाहनों के माध्यम से इनका प्रयोग किया जाता है। सरकार का अपना स्टूडियो होता है जहाँ डाकूमेंट्री तथा न्यूज रीलें तैयार की जाती हैं।

6. **प्रदर्शनियाँ (Exhibitions)**—प्रदर्शनियाँ भी जन संचार तथा प्रचार का कार्य करती हैं। इसलिए ये किसी विशेष प्रशासन के अंतर्गत हुई प्रगति के बारे में जनता को अवगत कराने का महत्त्वपूर्ण साधन हैं। विभिन्न प्रकार के मेले तथा औद्योगिक मेला, व्यापार मेला, कृषि मेला, हस्त उद्योग मेला, निर्यात मेला आदि में भारत में स्वतंत्रता-उपरान्त विभिन्न क्षेत्रों में हुई प्रगति को इस शानदार ढंग से दिखाया जाता है कि अनपढ़ व्यक्ति को भी देश की उपलब्धियों के बारे में ज्ञान प्राप्त हो सके।

7. **विज्ञापन (Advertisements)**—सरकार के प्रशासकीय कार्यकलापों की सूचना विज्ञापनों द्वारा भी दी जाती है। समाचार पत्रों तथा पत्रिकाओं में विज्ञापन देने के अतिरिक्त सरकार पोस्टरों, होल्डरों, कैलेण्डरों तथा इश्तिहारों आदि का भी प्रयोग करती है। सरकारी विज्ञापनों में प्रायः सरकार के व्यापारिक कार्यकलापों तथा इस द्वारा चलाये जा रहे भिन्न व्यापारों में ग्राहकों को दी जाने वाली रियायतों तथा सुविधाओं का वर्णन होता है। उदाहरणार्थ सरकार के आर्ट एंड क्राफ्ट एम्पोरियम की विज्ञप्तियाँ, विभिन्न राज्य सरकारों के पर्यटन विभागों द्वारा लोगों को दी जाने वाली सुविधाओं की घोषणा, पंचवर्षीय योजनाओं, राष्ट्रीय बचत-पत्रों, परिवार नियोजन, छुआछूत उन्मूलन आदि के बारे में विज्ञापन रेलवे स्टेशनों, बस अड्डों, डाकखानों तथा बाजारों में लगाए जाते हैं।

भारत में लोक सम्पर्क मशीनरी

Public Relations Machinery in India

लोक प्रशासन के लिए लोक सम्पर्क का अत्याधिक महत्त्व है। स्पष्टतया कोई भी लोक प्रशासन लोक सम्पर्क स्थापित किये बिना सफल नहीं हो सकता। अच्छा लोक सम्पर्क स्थापित करने के लिये सभी सभ्य सरकारों ने राष्ट्रीय तथा राज्य स्तर पर लोक सम्पर्क एजेन्सियाँ स्थापित की हुई हैं।

इंगलैंड में प्रथम महायुद्ध के बाद सुरक्षा मंत्रालय में पहली बार प्रेस अथवा प्रचार अधिकारी नियुक्त किये गये थे। कई और विभागों ने भी लोक सम्पर्क डिविजन स्थापित किये थे। 1939 में नियमित रूप से एक सूचना मंत्रालय की स्थापना की गई। 1946 में केन्द्रीय सूचना कार्यालय की स्थापना की गई जिसने युद्धकालीन मन्त्रालय का स्थान लिया। इसका काम विभिन्न केन्द्रीय विभागों का प्रचार करना था। दो या तीन वर्ष बाद सूचना अधिकारियों की एक सामान्य श्रेणी आरम्भ की गई।

भारत का लोक सम्पर्क संगठन इंगलैंड जैसा ही है। प्रथम महायुद्ध के बाद एक केन्द्रीय ब्यूरो, प्रेस प्रचार तथा प्रापेगण्डा के लिए स्थापित किया गया। इस ब्यूरो को गृह विभाग के अधीन रखा गया। 1939 में सूचना महानिदेशक की नियुक्ति की गयी जिसका कार्य युद्ध प्रचार का नियंत्रण तथा समायोजन करना था। अक्टूबर, 1941 में सूचना तथा प्रसारण विभाग बनाया गया तथा विभिन्न मन्त्रालयों के अधीन कार्य करने वाली विभिन्न प्रचार एजेन्सियों को इस विभाग के नियन्त्रणाधीन कर दिया गया। 1936 में आल इण्डिया रेडियो की स्थापना की गई। 1941 में इसे सूचना तथा प्रसारण विभाग को स्थानान्तरित कर दिया गया। 1947 में स्वतन्त्रता के बाद इस विभाग का पुनर्गठन किया गया और इसे मन्त्रालय बना दिया गया।

सूचना तथा प्रसारण मन्त्रालय निम्नलिखित कार्यों के लिए उत्तरदायी है:

(क) आल इण्डिया रेडियो सम्बन्धी सारा कार्य, जिसमें समाचार सेवा, रेडियो पत्रिका, अनुसंधान तथा टेलीविजन सम्मिलित हैं,

(ख) डाकूमेंटरी, न्यूजरील तथा अन्य चलचित्रों का उत्पादन तथा वितरण;

(ग) संघीय सूची की प्रविष्टि 60 के अधीन विधान निर्माण अर्थात् "प्रदर्शन के लिए सिनेमाटोग्राफ फिल्मों की स्वीकृति देना";

(घ) भारत सरकार के सभी विज्ञापनों का निर्माण तथा उन्हें जारी करना तथा संघीय सरकार की ओर से वर्गीकृत विज्ञापन जारी करना,

(ङ) प्रेस के माध्यम से संघीय सरकार की नीतियों तथा कार्यकलापों की प्रस्तुति तथा उनकी व्याख्या।

(च) प्रेस सम्बन्धी समस्याओं पर सरकार को परामर्श देना;

(छ) प्रेस अधिनियम तथा समाचार पत्र अधिनियम लागू करना;

(ज) राष्ट्रीय महत्त्व मे मामलों से संबंधित लोकप्रिय इश्तिहारों, पुस्तकों तथा पत्रिकाओं का उत्पादन, विक्रय तथा वितरण करना;

(झ) प्रचार, सूचना तथा प्रसारण के क्षेत्र में अनुसंधान तथा निर्देश।

सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालय का संगठन

Organization of Information and Broadcasting Ministry

सूचना तथा प्रसारण मंत्रालय में एक सचिवालय, पाँच सम्बद्ध तथा सात अधीनस्थ कार्यलय है। इसके अतिरिक्त इस मंत्रालय के नियन्त्राधीन एक लोक निगम है इसकी महत्त्वपूर्ण एजेन्सियाँ निम्नलिखित हैं:

(1) **आल इण्डिया रेडियो निदेशालय (Directorate of All India Radio)**—भारत के प्रसारण स्टेशन की श्रृंखला को आल इण्डिया रेडियो कहा जाता है। इसका अध्यक्ष महानिदेशक होता है जिसकी सहायता के लिए कई उप—महानिदेशक तथा एक मुख्य इंजीनियर होता है। समाचार, संगीत, नाटक आदि जैसे नियमित कार्यक्रमों के अतिरिक्त आल इण्डिया रेडियो ग्रामीणों, स्कूलों तथा विश्वविद्यालयों के विद्यार्थियों, औद्योगिक कामगारों, आदिवासियों तथा सैनिकों के लिए विशेष कार्यक्रम भी प्रस्तुत करता है। सितम्बर, 1959 मे टेलीविजन सेवा शुरू की गई। चन्दा समिति (1964) ने आल इण्डिया रेडियो के वर्तमान विभागीय प्रबन्ध के स्थान पर स्वायत्त निगम स्थापित करने की सिफारिश की है। आल इण्डिया रेडियो के मुख्य डिविजन ये हैं: (i) समाचार सेवा डिवीजन, (ii) बाह्य सेवा डिविजन, (iii) मानीटरिंग सेवा डिवीजन (iv) टांस्क्रिपशन तथा कार्यक्रम विनिमय सेवा डिविजन, (v) इंजीनियरिंग डिविजन।

(2) **प्रेस सूचना ब्यूरो (Press Information Bureau)**—यह भारत सकार का मुख्य प्रचार संगठन है। यह प्रेस के माध्यम से लोगों की सरकार के कार्यकलापों तथा नीतियों से अवगत करवा कर तथा सरकार को लोकमत की मुख्य प्रवृत्तियों

की सूचना देकर सरकार तथा जनता में एक कड़ी का काम करता है। यह केन्द्रीय सरकार अथवा राज्य सरकारों के लिए वांछित सामग्री इकट्ठी करता है। इस प्रकार एकत्रित सामग्री सम्बन्धित मंत्रालयों तथा विभागों को भेज दी जाती है। यह परियोजनओं, स्कीमो अथवा किसी नयी नीति की सूचना देने के लिए विशेष लेख लिखने का कार्य भी करता है। यह मन्त्रियों तथा बड़े अधिकारियों के लिए प्रेस सम्मेलनों की भी व्यवस्था करता है ताकि वे महत्त्वपूर्ण सरकारी निर्णयों अथवा नीतियों को स्पष्ट कर सकें। ब्यूरो द्वारा प्रेस सम्पर्क सेवाओं की भी व्यवस्था की जाती है। ब्यूरो का अध्यक्ष प्रिंसिपल आफिसर होता है जिसकी सहायता के लिए सूचना अधिकारी, उपसूचना अधिकारी तथा सहायक सूचना अधिकारी होते हैं।

(3) **विज्ञापन तथा दृश्य प्रचार निदेशालय (Directorate of Advertising and Visual Publicity)**—यह पत्र पत्रिकाओं, फोल्डरों, कलैण्डरों, डायरियों, इश्तिहारों तथा सिनेमा स्लाइडों आदि के माध्यम से भारत सरकार के विज्ञापनों को तैयार करने, जारी करने तथा प्रदर्शित करने के लिए उत्तरदायी है। यह सूचना तथा प्रसारण मंत्रालय के प्रकाशनों में विज्ञापन की बिक्री के लिए भी उत्तरदायी है।

(4) **प्रकाशन डिविजन (Publications Division)**—यह देश तथा इसकी संस्कृति के सम्बन्ध में तथा केन्द्रीय सरकार के कार्यकलापों के बारे में पर्यटन स्थानों तथा देश के विभिन्न विकास कार्यक्रमों में हुई प्रगति के बारे में कई प्रकार के प्रकाशनों की तैयारी, उत्पादन तथा वितरण के लिए उत्तरदायी है। इस डिवीजन द्वारा राष्ट्रीय बुक ट्रस्ट, केन्द्रीय सामाजिक कल्याण बोर्ड तथा शिक्षा मंत्रालय की ओर से भी पुस्तकें प्रकाशित की जाती हैं। यह नेशनल म्यूजियम, ललित कला अकादमी, राष्ट्रीय बुक ट्रस्ट तथा आल इण्डिया हैण्डीक्राफ्ट्स बोर्ड के लिए भी बिक्री तथा वितरण एजेन्सी के रूप में कार्य करता है। यह कई पत्रिकाएँ भी प्रकाशित करता है, जैसे 'आजकल', 'बाल भारती', 'कुरूक्षेत्र', 'भागीरथी' तथा 'पंचायती राज'। निर्देश–पुस्तक', 'इण्डिया' भी इसी डिवीजन द्वारा प्रकाशित की जाती है।

(5) **फिल्म डिविजन (Films Division)**—यह डिवीजन बम्बई में स्थित है तथा यह डाकुमेंटरी और न्यूजरील तैयार करता है।

(6) **केन्द्रीय फिल्म सेन्सर बोर्ड (Central Board of Film Censors)**—इसे 1952 में लोक प्रदर्शन के लिए फिल्मों को अनुमोदित करने के लिए स्थापित किया गया। इसका पूर्णकालिक अध्यक्ष है तथा आठ गैर–सरकारी सदस्य हैं जो अंशकालिक हैं तथा अवैतनिक कार्य करते हैं। फिल्मों के सत्यापन का आरम्भिक कार्य निरीक्षण समितियों द्वारा किया जाता है जिसमें बोर्ड का क्षेत्रीय अधिकारी तथा जनजीवन के विभिन्न क्षेत्रों से लिए गए प्रसिद्ध व्यक्ति परामर्श पैनल के रूप में कार्य करते हैं। अबोध प्रदर्शन के लिए 'यू' प्रमाण पत्र दिया जाता है तथा जो केवल वयस्कों के लिए है उन्हें 'ए' प्रमाण पत्र दिया जाता है। प्रमाण पत्र जारी करने की तिथि से दस वर्ष तक मान्य होता है।

(7) **अनुसंधान तथा संदर्भ डिविजन (Research and Reference Division)**—यह मन्त्रालय तथा इसके विभिन्न दृश्य साधन के यूनिटों को प्रचार के लिए सामग्री सप्लाई करने के लिए उत्तरदायी है। यह प्रेस तथा फिल्म उद्योग की पद्धतियों का निरन्तर अध्ययन करता है। यह 'इण्डिया' निर्देश पुस्तक प्रकाशित करता है। यह महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों की जीवनियाँ भी तैयार करता है। यह राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व के समाचारों तथा लेखों की विस्तृत अनुक्रमणी रखता है।

(8) **भारतीय लोक सम्पर्क संस्थान (Indian Institute of Public Relations)**—17 अगस्त, 1965 को लोक सम्पर्क के क्षेत्र में उच्चतर अध्ययन हेतु भारतीय लोक सम्पर्क संस्थान की स्थापना की गई। यह सूचना तथा प्रसारण मन्त्री के अधीन एक कार्यकारिणी परिषद् द्वारा संचालित किया जाता है। यह केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों के प्रचार अधिकारियों को प्रशिक्षण देता है। यह विश्वविद्यालय, अनुसंधान संस्थाओं तथा उद्योग की सहायता से लोक सम्पर्क सम्बन्धी समस्याओं पर विचार गोष्ठियाँ व्यवस्थित करता है। यह अनुसंधान कार्य भी करता है।

राज्यों में लोक सम्पर्क सेवाएँ (Public Relations Services in the States)—राज्यों की लोक सम्पर्क मशीनरी केन्द्र की मशीनरी के अनुकूल ही है, यद्यपि यह इतने बड़े पैमाने पर व्यवस्थित नहीं है। बहुत सारे राज्यों में सूचना तथा लोक सम्पर्क विभाग हैं जो निदेशक, लोक सम्पर्क विभाग के अधीन हैं। विभिन्न मंत्रालयों तथा विभागों के साथ भी सम्बद्ध सूचना अधिकारी हैं। निदेशक की सहायतार्थ दो अथवा तीन उपनिदेशक होते हैं। एक उपनिदेशक सरकार के कार्यकलापों के सम्बन्ध में प्रेस को सूचना देने तथा प्रेस मे आने वाली बातों से सरकार को अवगत कराने के लिए उत्तरदायी है। दूसरा जिला स्तर पर लोक सम्पर्क अधिकारी होता है जिसका काम जिले में सरकार के कार्यकलापों का प्रचार करना है तथा सरकार के विकास सम्बन्धी कार्यक्रमों के लिए लोगों का सहयोग प्राप्त करना है।

लोक सम्पर्क के माध्यम व साधन
Media and Means of Public Relations

लोक सम्पर्क के प्रमुखतः तीन प्रकार के माध्यम होते हैं: *(i)* दृश्य, *(ii)* श्रव्य तथा *(iii)* श्रव्य–दृश्य। दृश्य माध्यमों में निम्नलिखित सम्मिलित हैं: (i) विज्ञापन तथा (ii) प्रकाशन। श्रव्य एवं दृश्य माध्यमों में (i) फिल्में तथा (ii) प्रदर्शनियाँ सम्मिलित हैं। रेडियो प्रसारण तथा भाषण श्रव्य माध्यम में आते हैं।

लोक सम्पर्क के साधन
Means of Public Relations

(i) **विज्ञापन (Advertising)**–समाचार–पत्रों, पत्रिकाओं, स्क्रीन तथा रेडियो पर इश्तिहारों, फोल्डरों, कैलेण्डरों आदि द्वारा विज्ञापन किया जा सकता है।

(ii) **प्रकाशन (Publications)**–विज्ञापनों पर सरकार इसलिए खर्च करती है ताकि लोगों का ध्यान आकर्षित किया जा सके। प्रकाशनों का आधार इस बात पर है कि लोग इन्हें लाभदायक समझ कर खरीदेंगे। यद्यपि कई प्रकाशन कुछ चुने हुए व्यक्तियों तथा संस्थाओं को निःशुल्क दिये जाते हैं, तथापि अनेक को पैसे खर्च करके खरीदना पड़ता है। सरकारी प्रकाशनों में अधिकॉश तो वार्षिक रिपोर्ट होती हैं जो विभागों, समितियों तथा आयोगों आदि से सम्बन्धित होती हैं। इन रिपोर्टों को साधारण एवं सरल भाषा मे लिखा जाना चाहिए। ये पेचीदगियों से मुक्त होनी चाहिएँ ताकि लोग इन्हें आसानी से समझ सकें। उनकी शैली भी सुन्दर होनी चाहिए तथा उनके प्रकाशन में अनुचित देरी नहीं होनी चाहिए।

(iii) **फिल्में (Films)**–फिल्में अथवा चलचित्र लोक सूचना का महत्त्वपूर्ण साधन हैं। मनोरंजन के साथ–साथ ये दर्शकों के विचारों तथा आचार पर भी गहरा प्रभाव डालते हैं। डाकुमेंटरीज तथा न्यूजरीलें सूचना तथा प्रसारण मंत्रालय के फिल्म डिविजन द्वारा तैयार की जाती हैं तथा प्रत्येक सिनेमा हाल में प्रत्येक शो में दिखाई जाती हैं।

(iv) **प्रदर्शनियाँ (Exhibitions)**–प्रचार प्रदर्शनियाँ व्यापार मेलों से भिन्न होती हैं। उनका उद्देश्य शैक्षिक होता है न कि वस्तुओं को बिक्री के लिए प्रदर्शित करना। ऐसी प्रदर्शनियाँ सभी प्रकार की दृश्य सामग्री, पेंटिंग, रेखाचित्र, चित्र आदि वस्तुओं का प्रयोग करती हैं। प्रचार प्रदर्शनियों की सामग्री के चयन तथा प्रबन्ध में बहुत कौसल की आवश्यकता है।

(v) **रेडियो कार्यक्रम (Radio Programmes)**–रेडियो तथा टेलीविजन लोक संपर्क का एक महत्त्वपूर्ण साधन बन गये है। उनका प्रयोग सरकार के कार्यकलापों के बारे में जनता को अवगत कराने के लिए किया जाता है। इनके माध्यम से लोगों को खाद के प्रयोग, कीड़ों से फसलों की रक्षा करने, स्वास्थ्य नियमों के पालन करने तथा परिवार नियोजन आदि जैसे महत्त्वपूर्ण मामलों के बारे में शिक्षित किया जाता है। यह आवश्यक है कि रेडियों से प्रसारित होने वाले कार्यक्रम रोचक, सुगम तथा ज्ञानवर्द्धक होने चाहिए।

(vi) **भाषण तथा वार्ताएं (Lectures and Talks)**–लोक सम्पर्क विभाग कई विषयों पर विशेषज्ञों द्वारा वार्ताएँ प्रसारित करने की भी व्यवस्था करता है। कई भाषणों को स्लाइडों से सचित्र बनाया जाता है। ये भाषण कामगारों, किसानों तथा कर्मचारियों को सामयिक विषयों पर दिये जाते हैं।

भारत में लोक सम्पर्क
Public Relations in India

हमने इस अध्याय के एक पूर्व भाग में भारत में लोक सम्पर्क संगठन का वर्णन किया है। लोकतन्त्रात्मक ढाँचे के अनुकूल प्रचार कार्य भारत के लिए अपेक्षाकृत नया कार्य है तथा इसमें उसका अनुभव भी कम है। अतः हमारे देश में सरकार द्वारा किये जाने वाले प्रचार में कुछ सुधारों की आवश्यकता है:

प्रथम, सरकार तथा प्रेस में सम्बन्ध बहुत अच्छे नहीं हैं। प्रेस, जैसे कि हमने देखा है, प्रचार का बहुत महत्त्वपूर्ण साधन है। प्रेस आयोग (1954) ने कहा कि सरकार की यह प्रवृत्ति है कि वह प्रेस को राज्य एवं व्यक्तियों के किन्हीं विशेष चर्चित कार्यकलापो

के प्रचार का साधन समझती है। संवाददाताओं को पूरी सुविधाएँ नहीं दी जातीं तथा कई बार उनसे अच्छा व्यवहार भी नहीं किया जाता। यह भी कहा गया है कि प्रेस से अच्छी रिपोर्टें पाने के लिए अधिकारियों की ओर से दबाव भी डाला जाता है। सरकार के विरूद्ध समाचार देने वाले समाचार–पत्र को खतरनाक परिणामों की भी धमकी दी गई है। विरोधी प्रेस से अच्छा बर्ताव नहीं किया जाता तथा सरकारी विज्ञापन भी नहीं दिए जाते। इसके प्रसार को रोकने के लिए भी यत्न किए जाते हैं।

दूसरा, विज्ञापन तथा दृश्य प्रचार निदेशालय द्वारा तैयार की गई डाकुमेंटरियाँ रोचक तथा प्रेरणादायक नहीं होतीं। अधिकांश में पुरानी बातें होती हैं तथा अन्य उचित ढंग से नहीं दिखाई जातीं। उदाहरणतया, परिवार नियोजन से संबंधित विज्ञापन व लघु चल–चित्र भारतीय सांस्कृतिक परिवेश से मेल नहीं खाते। ये उपदेशात्मक अधिक हैं तथा मानवी भावनाओं एवं सामाजिक नैतिकता को चोट पहुँचाते हैं।

तीसरा, प्रकाशन डिविजन द्वारा प्रकाशित पुस्तकें देरी से निकलती हैं तथा शैली में तथा देखने में भी आकर्षक नहीं होतीं। ग्राहकों को उचित आदर नहीं दिया जाता विभागीय विक्रय केन्द्रों में अफसरशाही अधिक है, विक्रय के प्रयास कम।

चौथा, जनता के प्रति सिविल सेवकों के दृष्टिकोण में नम्रता तथा मानवीयता का अभाव है। नागरिकों को अधिकारियों से मिलने की पूरी सुविधाएँ उपलब्ध नहीं हैं तथा कई बार उन्हें कठिनाई सहन करनी पड़ती है। उनकी शिकायतों पर संतोषजनक ढंग से ध्यान नहीं दिया जाता। यहाँ तक कि उनकी प्राप्ति की सूचना तक भी नहीं दी जाती। लाल फीताशाही बहुत अधिक है। सरकारी कर्मचारियों का बर्ताव रूखा है। उनमें सामान्य नम्रता का अभाव है।

लोक सम्पर्क को आधुनिक लोकतन्त्र की आवश्यकताओं के अनुसार ढालने के लिए यह आवश्यक है कि लोक सम्पर्क के विभिन्न साधनों को इस प्रकार पूर्ण बनाया जाये कि लोक संपर्क के सारे उद्देश्यों की पूर्ति हो सके। लोक सम्पर्क का शिक्षा के लिए प्रयुक्त किया जाये न कि प्रापेगण्डा के लिए। इसे लोगों का सहयोग प्राप्त करना चाहिए। लोक सम्पर्क का सम्बन्ध केवल औपचारिक प्रचार मात्र से ही नहीं है बल्कि कर्मचारियों तथा नागरिकों के वैयक्तिक सम्बन्धों से है। आश्चर्य की बात है कि भारत में लोक सम्पर्क के इस पक्ष की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया।

महत्वपूर्ण प्रश्न

1. लोक सम्पर्क का अर्थ क्या है? इसके तत्वों का वर्णन किजिए।
2. लोक सम्पर्क के अर्थ तथा एक अच्छे लोक सम्पर्क अधिकारी के क्या गुण हैं?
3. लोक सम्पर्क का अर्थ एवं साधनों का वर्णन कीजिए।
4. भारत में लोक सम्पर्क मशीनरी का वर्णन किजिए।

अध्याय 14

लोक कार्मिक प्रशासन की अवधारणा, प्रकृति एवं क्षेत्र

Public Personnel Administration: Concept, Nature and Scope

भूमिका

जिस प्रकार किसी भी देश में जन–मानस, उस देश की एक धरोहर है उसी तरह सरकार द्वारा गठित विभिन्न संगठन उस देश की अमूल्य निधि होते है। किसी भी संगठन का अपने उद्देश्यों को सफलतापूर्वक प्राप्त करना मुख्यतः उस संगठन में कार्यरत कार्मिकों की क्षमता तथा प्रभावी नेतृत्व पर आधारित होता है। यद्यपि यह सत्य है कि संगठनों में कार्यरत कार्मिक ही संगठन के विकास में सहायक होते हैं लेकिन संगठनों में कार्यरत मानव संसाधन की क्रमबद्ध योजना, उनका वाँछित प्रशिक्षण और शिक्षा इत्यादि उन संगठनों को ज्यादा प्रभावी तौर पर विकसित एवं सफल बनाने में सहायक सिद्ध हो सकते हैं। संगठन अपने लक्ष्यों तथा उद्देश्यों को, बिना मानव संसाधन का विकास किए, प्राप्त करने में सक्षम नहीं हो सकता है।

किसी भी संगठन का मानव संसाधन या मानव निधि उस संगठन में कार्यरत क्रामिकों के ज्ञान, प्रवीणता तथा कौशलता को मिलाकर आंका जाता है। अतः भारत जैसे विकासशील देश के लिए मानव संसाधन का विकास करना एक चुनौती बन गया है। मनुष्य के विकास के लिए किया गया खर्च चाहे वह सरकार द्वारा किया गया है अथवा निजी संगठन द्वारा किया गया है, सही अर्थों में मानव विकास करने में सहायक होता है। ऐसे खर्च का कभी अवमूल्यन नहीं होता बल्कि इस विनियोग की उपयोगिता की निरन्तर बढौतरी होती रहती है। मानव की निधि किसी भी संगठन की समस्त निधियों में एक महत्त्वपूर्ण निधि कही जाती है। तथापि इसका यहां यह अर्थ कदापि नहीं है कि दूसरे वित्तीय, तकनीकी, मशीनों इत्यादि की संगठन में महत्ता नहीं है। उन सभी की भी अपनी महत्ता है परन्तु मानव निधि किसी भी संगठन में अति आवश्यक समझी जाती है। क्योंकि मानव निधि या मानव संसाधन ही दूसरी निधियों के उत्पादन और मशीनों इत्यादि का सही उपयोग करने में सक्षम बनाता है। यहां यह भी सत्य है कि कोई भी संगठन अपनी सभी निधियों का सही प्रयोग किये बिना प्रभावी प्रबन्ध का लक्ष्य प्राप्त नहीं कर सकता परन्तु तुलनात्मक दृष्टि में मानव निधि इन सब मे सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण कही जाती है क्योंकि यही निधि दूसरी निधियों के प्रबन्ध में सहायक होती है और जो प्रशासन किसी संगठन में मानव संसाधन के प्रबन्ध तथा विकास सम्बन्धित कार्यों की देख रेख करता है उसे कार्मिक प्रशासन कहा जाता है। सरकारी संगठनों में इसे लोक कार्मिक प्रशासन की संज्ञा दी गई है।

कार्मिक प्रशासन की अवधारणा

कार्मिक प्रशासन प्रशासकीय व्यवस्था का एक अभिन्न एवं जटिल क्षेत्र है। किसी भी संगठन में कार्यरत कार्मिक वर्ग उस संगठन की सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण धरोहर तथा साधन होता है और संगठन की सफलता कार्मिक प्रशासन के कुशल प्रबन्ध की सफलता पर निर्भर करती है। इसलिए कार्मिक प्रशासन अभिप्रेरित तथा अच्छी तरह काम करने वाले कुशल कर्मचारियों का चयन करने तथा उनसे सम्बन्धित अन्य समस्याओं के लिए उत्तरदायी होता है। यह तथ्य सत्य है कि कार्मिक वर्ग अन्य साधनों के सम्मिश्रण से ही संगठन के उद्देश्यों तथा लक्ष्यों को प्राप्त करने मे सक्षम होता है। परन्तु ये दूसरे साधन जो संगठन के कार्य में उपयोग में लाये जाते है, व्यक्तियों द्वारा ही नियन्त्रित किये जाते हैं। इसके अतिरिक्त सोचने विचारने की क्षमता केवल मनुष्य के पास होती है अतः संगठन में कार्मिकों की महत्ता अत्यधिक बढ़ जाती है। यद्यपि यह बात भी सच है कि आजकल संगठन की क्षमता उत्पादकता के विकास हेतु प्रबन्ध के क्षेत्र में स्वाचालित एवं इलैक्ट्रोनिक्स उपकरणों का आश्चर्यजनक रूप से विकास हुआ है तथापि जहां भी व्यक्तिगत निर्णय एवं निर्देशन की आवश्यकता होती है वहाँ कार्मिकों की महत्ता अति आवश्यक हो जाती है।

कार्मिक प्रशासन को जटिल इसलिये [illegible] जाता है क्योंकि कार्मिक वर्ग अपने से सम्बन्धित विषयों में स्वयं [illegible] आग्रह करते हैं तथा प्रायः प्रबन्ध की अवहेलना करने का प्रयास करते हैं। इस प्रकार की समस्याएं [illegible] विकासशील देशों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं में कुछ ज्यादा ही उग्र रुप में दिखाई देने लगी है। आज के युग में [illegible] देशों के लोक कार्मिक अपने नियोजनकर्ताओं के लिए अनेक समस्याएं जैसे कि वेतन, भत्ते, अनुशासनात्मक प्रक्रियाओं [illegible] के स्वरूप व आकार के बारे में तथा उनको लागू करने की प्रक्रियाओं के बारे में समस्याएं उत्पन्न करते रहते हैं। इस [illegible] की अवस्थाओं में यह अत्यन्त आवश्यक हो जाता है कि प्रशासकों को कार्मिकों के विचारों का औचित्य समझने का प्रयास [illegible] चाहिए तथा यथासम्भव उनके विचारों को कार्मिक योजनाएं बनाते समय ध्यान में रखना चाहिए। इसके अतिरिक्त आज [illegible] युग में राष्ट्र कल्याण उसके प्रशासन की कार्य कुशलता पर निर्भर करता है क्योंकि सरकार अपने सभी राष्ट्र कल्याण [illegible] का कार्यरूप में लाने के लिए कार्मिक वर्ग पर निर्भर करती है और इसलिए भी कार्मिक प्रशासन अध्ययन एवं मनन करने [illegible] एक महत्त्वपूर्ण क्षेत्र बन गया है।

आज का युग बड़े संगठनों का युग कहा जाता है। औद्योगिक क्रान्ति से पहले जब मानव जीवन सरल था, छोटे छोटे संगठन जिनके लक्ष्य व उद्देश्य सीमित हुआ करते थे, शासन प्रणाली को प्रभावी तौर पर चलाने में सक्षम थे। इसके अतिरिक्त [illegible] समय सरकारी विभागों की संख्या बिल्कुल सीमित होती थी और विकास की दृष्टि से उनका आकार ज्यादा बड़ा नहीं [illegible] था। इन सभी कारणों के फलस्वरूप कार्मिक प्रशासन की समस्याएं आज के युग की अपेक्षा बिल्कुल सीमित [illegible] सरल [illegible] थी। संगठन में कार्य करने वालों की संख्या कम होने के कारण संगठन का मुख्य प्रशासक/अध्यक्ष लगभग सभी कर्मचारियों के साथ व्यक्तिगत सम्बन्ध रखने में सक्षम होता था और इस प्रकार मध्यवर्गीय पर्यवेक्षण वर्ग (Intermediatory Supervisory Category) की या तो आवश्यकता ही नहीं थी या फिर उनका अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं था। साधारणतः यह माना जाता था कि प्रशासक/मालिक का काम आदेश देना है तथा कार्मिकों/नौकरों का कार्य उन आदेशों का पालन करना है। मालिकों तथा नौकरों या कर्मचारियों के दायित्व पूर्णतः निर्धारित थे। दोनों की तरफ से एक दूसरे के प्रति सदभावना होती थी। परन्तु औद्योगिक क्रान्ति के बाद सभी परिस्थितियों में बदलाव आया और बदलाव के कारण ही छोटे संगठनों के स्थान पर बड़े संगठनों का जन्म हुआ। पुराने संगठनों की नई आवश्यकताओं के आधार पर विस्तार होना स्वाभाविक था।

विभिन्न संगठनों में कार्यरत कर्मचारियों की संख्या उनके लक्ष्यों व उद्देश्यों के साथ दिन प्रतिदिन बढ़ती गई जिसके [illegible] मुख्य प्रशासक/मालिक तथा कर्मचारियों के बीच व्यक्तिगत सम्बन्ध होना अस्वाभाविक हो गया। अतः मध्यवर्गीय पर्यवेक्षकों [illegible] आवश्यकता अनुभव की जाने लगी और इस प्रकार आज के युग में जहाँ हजारों की संख्या में कर्मचारी संगठनों में [illegible] हों वहां कार्मिक समस्याओं का जटिल होना स्वाभाविक है।

शिक्षा के प्रसार से सामाजिक बदलाव आया है। व्यक्ति हर बात को परीक्षण व तर्क की कसौटी पर परखना चाहता है। [illegible] की बात को बिना किसी तर्क के मानने की प्रथा लगभग समाप्त हो गई है। इसके अलावा सामाजिक और आर्थिक बदलाव, समाज के व्यक्तिवादी दृष्टिकोण तथा तर्क की कसौटी पर खरा उतारने की आवश्यकता के कारण घर में माता पिता [illegible] शिक्षण संस्थाओं में शिक्षक का प्रभाव कम हो गया है। इस सभी कारणों का प्रभाव कार्यालयों में कार्यरत कार्मिकों पर [illegible] भी स्वाभाविक है। अब मालिक अथवा उनके प्रतिनिधि के आदेश माने ही जायें ऐसी मान्यता नहीं रही और ऐसे प्रश्न [illegible] जाने लगे कि क्या मालिक को ऐसा आदेश देना उचित था? क्या कानून तथा संविधान की दृष्टि से यह आदेश ठीक था? [illegible] तरह के प्रश्नों ने परम्परागत पर्यवेक्षकों तथा विभागाध्यक्षों के सम्मान को चुनौती दी है और मालिकों/विभागाध्यक्ष तथा कार्मिकों के बीच बनी सद्भावना प्रायः समाप्त सी हो गई है। दोनों ही तरफ से कानून की बारीकियों पर जोर दिया जाने लगा। [illegible] इन सभी कारकों के बावजूद यह सर्वमान्य है कि प्रशासन की क्षमता कार्मिकों की क्षमता पर निर्भर करती है। कोई भी प्रशासन अपने कार्मिकों की क्षमता के स्तर से अधिक ऊंचा या नीचा स्तर नहीं रख सकता जिस का अर्थ यह है कि किसी भी [illegible] प्रशासन या किसी भी संस्था की क्षमता उसमें कार्यरत कार्मिकों की क्षमता के अनुरूप ही होगी। अतः कार्मिक प्रशासन [illegible] करता है कि कार्मिकों की कार्यक्षमता का स्तर ऊंचा रहे परन्तु यह तभी सम्भव है कि जब कार्मिक पूर्ण रूप से अभिप्रेरित [illegible] तथा बिना किसी विरोध अथवा टकराव के काम होता रहे। वैसे तो इस प्रकार की दशायें उपलब्ध कराना सारे प्रशासन [illegible] ही दायित्व है लेकिन कार्मिक प्रशासन का इस दिशा में विशेष रूप से उत्तरदायित्व होता है।

लोक कार्मिक प्रशासन का अर्थ

लोक कार्मिक प्रशासन लोक प्रशासन का वह भाग है जो सरकारी संगठन में कार्यरत कार्मिकों के पारस्परिक [illegible] सम्बन्धों तथा कार्मिकों के संगठन से सम्बन्धों की विवेचना करता है दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि किसी संगठन

(लोक प्रशासन) का कार्मिक प्रशासन उस संगठन से सम्बन्धित उन सभी कार्यकलापों का समूह है जो कि संगठन में कार्यरत मानव संसाधन से सम्बन्धित होते है। अतः यह भी कहा जा सकता है कि कार्मिक प्रशासन वह प्रशासन है जो कि संगठन में कार्मिकों की भर्ती से ले कर उनके अवकाश प्राप्ति तक के सभी कार्यों के लिए जिम्मेदार होता है। इसका अर्थ है कि वे कार्य जो कार्मिक नियोजन, कार्मिकों के बारे किया गया पूर्वविचार, कार्मिक कार्यों के आंकलन, कार्मिकों के चयन, नियुक्ति, प्रशिक्षण और विकास तथा कार्मिकों की कार्यक्षमता एवं उत्पादकता को बनाए रखना तथा उसमें लगातार सुधार लाना इत्यादि से सम्बन्धित क्रियाओं का समूह कार्मिक प्रशासन के अन्तर्गत आता है। अतः कार्मिक प्रशासन वह प्रशासन है जो संगठन के प्रशासन को पूर्ण क्षमताशाली व प्रभावी बनाने में घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है।

यद्यपि 'कार्मिक प्रशासन' की कोई एक प्रामाणिक परिभाषा नहीं है तथापि लेखकों में इसके अर्थ सीमा एवं उद्देश्यों से सम्बन्धित काफी सर्वमान्यता है। फलिपो (Flippo) के अनुसार कार्मिक कार्य संगठन में कार्मिकों का उपार्जन विकास शुल्क या प्रतिफल प्रदान करना विभिन्न विभागों को आपस में जोड़ने का कार्य करना तथा उनको सम्भालना है ताकि वे संगठन के मुख्य लक्ष्यों एंव उद्देश्यों की प्राप्ति में अपना योगदान कर सके। डेल याडर (Dale Yoder) ने 'कार्मिक प्रबन्ध' पद की जगह मानवशक्ति प्रबन्ध (Manpower Management) का उपयोग किया है तथा इसके अन्तर्गत मजदूरों के सम्बन्धों और कार्मिक प्रशासन का समन्वय किया है। उनके अनुसार मानवशक्ति प्रबन्ध वह प्रबन्ध है जो सही तरीके से रोजगार में लगे मानव संसाधन के नियोजन निदेशन, क्रियान्वित करने, विकास और उपयोग की प्रक्रिया को अच्छी तरह से वर्णित करता है। इसमें नियोक्ता/मालिक, कार्मिक समूह, कार्मिक संघ तथा लोक निकाय सभी के सभी सामूहिक रूप से इन प्रक्रियाओं में अपनी भूमिका अदा करते हैं। माइकल जुसिस (Michael Jucius) ने 'कार्मिक प्रबन्ध' की परिभाषा इस प्रकार की है कि "यह प्रबन्ध का वह क्षेत्र है जो कि कार्मिक शक्ति के उपार्जन, विकास, संभालने की प्रक्रिया तथा उसको उपयोग करने के लिए विभिन्न कार्यक्रमों का नियोजन संगठन और नियन्त्रण करता है ताकि:

(1) इन उद्देश्यों को, जिनके लिए कम्पनी स्थापित की गई है प्रभावी तथा मितव्ययता के साथ, प्राप्त किया जा सके।

(2) कार्मिकों के वे उद्देश्य जिनके लिए कार्मिक किसी संगठन में कार्य करते हैं, सभी स्तरों पर जितने ज्यादा सम्भव हो पूरे हो सकें।

(3) उन समुदाय के उद्देश्यों को सही तरीके से समझा जा सके और पूर्ण किया जा सके।

इसके अतिरिक्त ब्रिटेन की क्रार्मिक प्रबन्ध संस्था ने कार्मिक प्रबन्ध को इस प्रकार परिभाषित किया है कि यह प्रबन्ध का वह कार्य क्षेत्र है जो संगठन के अन्दर प्राथमिक तौर पर मनुष्यों के सम्बन्धों से सम्बन्धित है। इसका मुख्य उद्देश्य उन सभी सम्बन्धों की रक्षा करना है जिन पर संगठन में कार्यरत किसी एक व्यक्ति की कार्य कुशलता निर्भर करती है। इस परिभाषा के गुणों को देखते हुए भारतीय प्रबन्ध संस्था ने भी इस परिभाषा को अपना लिया था परन्तु 1966 में इस परिभाषा को परिवर्तित कर दिया गया। नई विस्तृत परिभाषा के अनुसार 'कार्मिक प्रबन्ध' प्रबन्ध का वह कार्य क्षेत्र है जो किसी व्यावसायिक संगठन (Enterprise) में कार्यरत कार्मिकों से सम्बन्धित है तथा उस संगठन के साथ कार्मिकों से सम्बन्धों की व्याख्या करता है। इसका (कार्मिक प्रबन्ध) उद्देश्य संगठन में कार्यरत पुरूष और स्त्रियों को इकट्ठा करना है जो कि उस संगठन को संगठित करने और उसका विकास करने में सहायक होते हैं तथा किसी एक व्यक्ति या व्यक्ति समूह कि भलाई को ध्यान में रखते हुए उनको ऐसा सुयोग्य बनाना है ताकि वे संगठन की सफलता के लिए अपना अति उत्तम योगदान प्रदान कर सके।

विशेष रूप से कार्मिक प्रशासन या कार्मिक प्रबन्ध उन नीतियों से सम्बन्धित होता है जो–

(1) मानव संसाधन के नियोजन, भर्ती, चयन स्थापित करने की प्रक्रिया तथा पदच्युत करने से सम्बन्धित है।

(2) शिक्षा एवं प्रशिक्षण तथा जीवनवृत्ति व्यवसाय के विकास से सम्बन्धित है।

(3) नौकरी की शर्तों, शुल्क प्रदान के तरीकों तथा माप–दण्डों से सम्बन्धित है।

(4) कार्य करने की अवस्थाओं और सेवीय नियमित (Formal) एवं अनियमित (Informal) पत्र व्यवहार/कथन या व्यवहार से सम्बन्धित कार्यों तथा संगठन के हर स्तर पर नियोक्ताओं और कर्मिकों के प्रतिनिधियों के बीच आपस में सलाह मशवरा करने की प्रक्रिया से सम्बन्धित है, और

(5) कार्मिकों के वेतन तथा कार्य करने की परिस्थितियाँ संगठन के झगड़ों को सुलझाने एवं उनसे बचने की प्रक्रिया के तरीकों को अपनाने के लिए बातचीत करना व उन तरीकों का प्रयोग करने इत्यादि से सम्बन्धित है।

इसके अतिरिक्त कार्मिक प्रबन्ध मनुष्य और संगठन में आन्तरिक सामाजिक बदलाव के परिणामों, कार्य करने के तरीके तथा जन समुदाय में आए आर्थिक बदलाव से भी सम्बन्धित होता है।

उपरोक्त विवरणों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कार्मिक प्रशासन किसी संगठन में कार्मिकों अर्थात् व्यक्तियों की भर्ती, कार्य पर लगाने की प्रक्रिया उनका प्रशिक्षण, अनुशासनात्मक कार्यवाही, वित्तीय तथा आवश्यक शर्तों तथा अवकाश प्राप्ति पर दिये जाने वाले लांभाशों के सन्दर्भ में वर्णित किया जाता है। यह उन सभी क्रियाओं और कार्यों का समूह है जो किसी संगठन में कार्मिकों से सम्बन्धित नीति निर्धारण, नियोजन, नीति कार्यन्वयन, सामाजिक बदलाव तथा आधुनिकता लाने में, प्रशासकीय सुधारों और जन सम्पर्क से सम्बन्धित है। इसका मुख्य उद्देश्य मानव–ससाधन का संरक्षण, विकास एवं सही उपयोग करना है ताकि मितव्ययता अपनाते हुए तथा कम से कम यान्त्रिकी साधनों का उपयोग में लाकर भी ज्यादा से ज्यादा परिणामों की प्राप्ति की जा सके।

कार्मिक प्रशासन मुख्यतः निम्नलिखित कार्यों को सम्पन्न करने का प्रयास करता है।

1. मानव संसाधन का पूर्ण उपयोग
2. संगठन के सभी सदस्यों के बीच सद्भावना स्थापित करना
3. ज्यादा से ज्यादा कार्मिक विकास करना
4. संगठन की सामाजिक और कानूनी जिम्मेदारियों को पूरा करना इत्यादि।

माइकल जूसस के अनुसार कार्मिक प्रशासन के प्रयास यह सुनिश्चित करते हैं कि

1. संगठन के उद्देश्यों का मितव्ययता पूर्ण तथा क्षमतापूर्ण रूपों में प्राप्त किया जा सके,
2. संगठन में हर व्यक्ति के उद्देश्य पूर्णरूप से पूरे हों, तथा
3. समुदाय की सामान्य भलाई का संरक्षण तथा विकास हो।

उपरोक्त लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए कार्मिक प्रशासन संगठन में व्यक्तियों के सहकारी प्रयास का नियोजन, निर्देशन, प्रशासन के सभी भागों में ताल मेल लाने और नियन्त्रण करने में कार्यरत रहता है।

कार्मिक प्रशासन की प्रकृति

कार्मिक प्रशासन मानव समूह से सम्बन्धित है। इस मानव समूह की अपनी आकाक्षाएँ, इच्छाएँ, आवश्यकताएँ तथा औपचारिक एवं अनौपचारिक संगठन है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि कोई भी कर्मचारी जीवन निर्वाह के लिए नौकरी करने आया है पर यह भी तो सत्य है कि उसका स्वयं का भी एक व्यक्तित्व है। यदि नौकरी की शर्तें, काम करने की स्थितियाँ इत्यादि उसके व्यक्तित्व पर प्रतिकूल प्रभाव डालती हैं तो वह या तो नौकरी छोड़ देगा और या फिर असंतुष्ट कार्यकर्ता के रूप में पद पर बना रहेगा। यदि वृत्तिपूर्णता की स्थिति है तो वह नौकरी छोड़कर कहीं और चला जायेगा लेकिन यदि बराजगारी की समस्या है तो वह नौकरी पर तो बना रहेगा पर असन्तुष्ट होने के कारण संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति में सक्रिय नहीं रह सकेगा।

इसके अतिरिक्त किसी भी शासन सम्बन्धी संगठन में वहाँ कार्यरत कार्मिक बहुत ही महत्त्वपूर्ण होता है। संगठन किसी भी कार्मिक को अनदेखा नहीं कर सकता और इसलिए यह उस संगठन के प्रबन्ध की जिम्मेदारी बन जाती है कि वह हर कार्मिक के प्रति सजग रहे ताकि वह अपनी पूर्ण क्षमता से संगठन का कार्य करता रहे। परन्तु सामाजिक और आर्थिक बदलाव का असर प्रबन्ध पर भी पड़ा है। सामाजिक आर्थिक ही नहीं बल्कि राजनैतिक बदलाव ने भी संगठन की कार्यशैली को प्रभावित किया है और इस तरह का प्रभाव हमारे कार्मिक प्रशासन में साफ दिखाई पड़ते हैं, जैसे कि

1. राजकीय सेवा संगठनों में विभिन्न सामाजिक और आर्थिक परिवेश से कार्मिकों की भर्ती का होना
2. कार्मिकों का मूल्यांकन करने के मानदण्ड में बदलाव आना,
3. सरकार की अपने कर्मचारियों से आशाएं ज्यादा बढ़ना, और
4. लोगों की सरकार से हर स्तर पर आशाएं अधिक होना।

आर्थिक और राजनैतिक बदलाव का प्रभाव हमारी प्रबन्ध प्रणाली पर भी पड़ा है। सरकार के 'विकास' और 'भलाई' के प्रावधान को क्रियान्वित करने में हर कार्मिक से यह उम्मीद की जाती है कि वह अपने कार्य में दक्ष और सक्षम हो। आम जनता की

यह उम्मीद करती है कि सरकारी प्रशासन तन्त्र सक्षम प्रभावशाली और संवेदनशील हो। इसके अलावा लोग प्रशासन प्रक्रिया में बढ़ चढ़ कर भाग लेने लगे हैं तथा प्रशासन पर इस तरह निरन्तर बढ़ते बोझ के कारण कार्मिक प्रशासन के कार्य में बदलाव आना जरूरी हो गया है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि कार्मिक हमेशा औपचारिक संगठनों में काम नहीं कर सकता और यह भी सत्य है कि कोई भी संगठन केवल औपचारिक रूप में नहीं चलाया जा सकता क्योंकि किसी भी संगठन को बनाने में मनुष्य एक महत्वपूर्ण एवं अहम् भूमिका निभाता है। कार्मिक ही किसी संगठन में उसके उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए कार्यों को क्रियान्वित करते हैं और जिम्मेदारियां संभालते है। कई बार औपचारिक संगठन अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए अनौपचारिक संगठनों की सहायता लेते हैं। अनौपचारिक संगठन एक प्राकृतिक प्रक्रिया है और सामाजिक तथा सांस्कृतिक रिश्तों पर आधारित होती है। इसके अलावा राजनैतिक, आर्थिक और मानसिक कारक भी अनौपचारिक संगठनों की स्थापना में सहायता करते हैं।

अन्त में, कार्मिक प्रशासन के कार्य दिन–प्रतिदिन जटिल होते जा रहे हैं और कार्मिक प्रशासन की कठिनाईयाँ एक संगठन से दूसरे संगठन में भिन्न होती है। जैसे कि बड़े संगठनों को बहुत सारे कार्य करने पड़ते हैं और वे अधिक कर्मचारियों की भर्ती करते हैं और उनके उद्देश्य भी विस्तृत होते हैं। इसलिए उनकी कार्मिक प्रशासन की कठिनाईयाँ ज्यादा जटिल हैं। इस तरह से कहा जा सकता है कि कार्मिक प्रशासन की समस्याएँ निम्नलिखित रूपों में प्रशासन के अन्य क्षेत्रों से भिन्न हैं।

(1) कार्मिक प्रशासन मनुष्य अथवा मनुष्य समुदायों से सम्बन्धित होता है। किस नियम अथवा किस आदेश की क्या प्रतिक्रिया होगी, यह ठीक ठीक जान सकना सम्भव नहीं है। कई बार ऊपरी रूप से निर्दोष दिखाई देने वाले नियम, विनियम या आदेश के प्रति भी गम्भीर प्रतिक्रिया हो जाती है।

(2) सभी प्रकार के कार्मिकों के लिए एक प्रकार के ही अभिप्रेरक काम नहीं करते। अभिप्रेरक की क्षमता कार्मिक की आवश्यकता पर निर्भर करती है और क्योंकि भिन्न कार्मिकों की आवश्यकता भिन्न होती है अतः उनके लिए अभिप्रेरक भी भिन्न होने चाहिए और यह पता लगाना कि किस कार्मिक के लिए कौन सा अभिप्रेरक सक्षम होगा, यह कार्मिक प्रशासन की जिम्मेदारी है।

(3) प्रशासन के अन्य क्षेत्रों में समस्याओं पर केवल कार्यक्षमता के आधार पर निर्णय लेना संभव है परन्तु कार्मिक प्रशासन में केवल काम की आवश्यकता अथवा कार्यक्षमता के आधार पर निर्णय लेना कदापि सम्भव नहीं हो सकता। उदाहरण के लिए आप किसी कर्मचारी को छुट्टी देने से इन्कार इसलिए नहीं कर सकते क्योंकि संगठन को उसकी जरूरत है इसलिए वह अपने बीमार बच्चों की बीमारी को अनदेखा कर दे। ऐसी दशा में आप उस कर्मचारी को मना नहीं कर सकेंगे क्योंकि बच्चे की देखभाल करना उसका प्रथम कर्तव्य है और संगठन का कार्य करना ऐसी दशा में उतना महत्वपूर्ण नहीं हो सकता।

(4) आज कार्मिकों की समस्याओं को सुलझाने में प्रबन्ध वर्ग का एकाधिकार नहीं रह गया है। कार्मिकों के शक्तिशाली संगठन हैं और कोई भी निर्णय जो कार्मिकों पर प्रभाव डालता हो बिना यूनियनों की सहमति के कदापि लागू नहीं किये जा सकते। वर्तमान समय में औद्योगिक शान्ति बनाए रखने का एक रास्ता यह है कि प्रबन्धक कार्मिकों से सम्बन्धित मामलों में यूनियनों की सहमति प्राप्त करने का प्रयास करें।

(5) कार्मिको की आकांक्षाएँ भी समय के साथ बदल गई हैं। आज का कार्मिक पहले की अपेक्षा ज्यादा अच्छी तरह रहना, खाना, पीना या जीवन निर्वाह करना चाहता है। आज का कर्मचारी ज्यादा सुख सुविधा चाहता है तथा अधिक कठोर पर्यवेक्षण का विरोध करता है। यह आकांक्षाएं भी कार्मिक प्रशासन के लिए गम्भीर चुनौती बनी हुई है क्योंकि सरकार चाहती है कि कम से कम खर्च से ज्यादा क्षमता व उत्पादकता बढ़ाई जाए लेकिन कर्मचारी अपनी आकांक्षाओं के कारण ज्यादा से ज्यादा वेतन और दूसरे भत्तों की मांग करते हैं।

(6) कार्मिकों का शैक्षणिक स्तर पहले की अपेक्षा कहीं अधिक बढ़ गया है और इसी कारण आज के कार्मिक पहले की अपेक्षा अपने अधिकारों के बारे में ज्यादा जागरूक हो गये हैं।

(7) जिस प्रजातन्त्रीय समाज में हम रहते हैं उसकी भी कुछ मान्यताएँ है जिसके अनुसार प्रबन्धक वर्ग को चलना है। प्रजातन्त्र प्रत्येक मनुष्य को चाहे समाज में उसका कोई भी दर्जा क्यों न हो, समानता का दर्जा देता है। गरीब और अनपढ़ व्यक्ति को भी मनुष्य होने के नाते सम्मान दिया जाना चाहिए। पहले जिस प्रकार का कठोर व्यवहार प्रबन्धक अपने कार्मिकों

के स्पष्ट करते थे उसे आज का प्रजातन्त्र समाज गलत मानता है। यदि प्रबन्धक वर्ग इन मान्यताओं के प्रतिकूल ... करता है तो वह आलोचना का शिकार होता है।

(8) यह विचारधारा कि प्रबन्धकों का विशेषाधिकार होता है कि वे निर्णय लें तथा कर्मचारी उन निर्णयों या प्रबन्धकों ... का पालन करें, लगभग समाप्त हो गई है। आज का कार्मिक, प्रबन्ध में भागीदारी की माग करता है ... प्रतिनिधि प्रबन्ध मण्डलों तथा विभागीय समितियों में लिये जाते हैं। आज प्रबन्धकों को अपना परम्परागत विशेषाधिकार ... कर्मचारियों की सहमति से प्रयोग में लाना होता है।

(9) आज का कार्मिक वृत्ति पूर्णता (Full Employment) के कारण इस बात से कदापि नहीं डरता कि ... प्रबन्धक ... से निकाल देगा जबकि इस प्रकार का सरक्षण पहले के कार्मिकों को उपलब्ध नहीं था। आज कार्मिकों की सहायता ... लिए उनकी यूनियन है। आवश्यकता पड़ने पर इन्हें बेरोजगारी भत्ता मिल सकता है। वृत्ति पूर्णता के कारण ... उसकी आवश्यकता भी न पड़े लेकिन देश में वृत्तिपूर्णता की दशा नहीं है।

(10) मनोवैज्ञानिक शोधों ने यह प्रमाणित कर दिया है कि सन्तुष्ट कार्यकर्ता की उत्पादन क्षमता ज्यादा होती है। ... नाकारात्मक शक्ति है। इससे सन्तोष की उत्पत्ति नहीं होती। अतः डर के स्थान पर धनात्मक उत्प्रेरक (Positive Motivators) का उपयोग करना चाहिए उदाहरण के लिए वित्तीय उत्प्रेरक, पदान्नति आदि अधिक प्रभावी ...

कार्मिक प्रशासन का क्षेत्र

कार्मिक प्रशासन संगठन के उन सभी प्रबन्ध के स्वरूपों का समन्वय करता है जो मनुष्य के प्रबन्ध से सम्बन्धित हैं। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि कार्मिक प्रशासन का प्रथम उद्देश्य संगठन के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए संगठन में कार्यरत/मानव संसाधन का सही उपयोग में लाना है। इसलिए कार्मिक प्रशासन को चाहिए कि वह संगठन के कार्यों (Organisational tasks) को विभिन्न छोटे कार्यों (Jobs) में बांटकर संगठन में कार्यरत कार्मिकों के बीच प्रभावी कार्य ... के सम्बन्ध स्थापित करे तथा विभिन्न विभाजित छोटे कार्यों के साथ जुड़ी जिम्मेदारी, सत्ता (authority) ... इन छोटे कार्यों का दूसरे कार्यों के साथ सम्बन्ध साफ तरीके से वर्णित करें। कार्मिक प्रशासन को चाहिए कि वह कार्मिकों में अपने कार्य ... दूसरे कार्यों के प्रति लगन तथा समर्पण का भावना पैदा करें। इसका मुख्य उद्देश्य संगठन में कार्मिकों में भाईचारे की भावना को पैदा करना तथा आपसी टकराव से उनको बचाने का है और इस तरह के परिवेश में ही संगठन अपने उद्देश्यों की प्राप्ति अच्छे ढंग से कर सकता है। इसके अलावा कार्मिक प्रशासन को चाहिए कि वह अवांछित पक्षपात व भाई भतीजावाद को संगठन में न पनपने दे।

कार्मिक प्रशासन किसी भी संगठन में मुख्य रूप से निम्नलिखित प्रबन्ध के कार्य करता है–

(1) **कार्मिकों की भर्ती तथा चयन:** कार्मिकों को भर्ती के लिए विज्ञापन देना, उचित प्रकार के उम्मीदवारों को प्रार्थना पत्र देने के लिए प्रोत्साहित करना, प्रार्थना–पत्रों की प्राथमिक जांच पड़ताल, योग्य प्रत्याशियों के लिए परीक्षाओं का संचालन करना तथा सफल उम्मीदवारों की नियुक्ति के लिए सत्यापन आदि का कार्य कार्मिक प्रशासन के कार्य हैं। इसके अतिरिक्त प्रत्याशियों की योग्यता जांचने के लिए नये तरीकों का पता लगाना तथा उनका उपयोग करना भी कार्मिक प्रशासन की जिम्मेदारियों के भाग हैं। कार्मिक प्रशासन विभिन्न श्रमिक बाजारों का सर्वेक्षण, तथा भविष्य में संगठन के लिए कार्मिकों की आवश्यकताओं का अध्ययन भी करता है। यद्यपि इस तरह के कार्य आजकल संगठन अलग ... विशेष एजेंसियों या संस्थाओं को सौंपने लग गई है तथापि फिर भी लगभग सभी संगठन कार्मिकों की भर्ती का कार्य स्वयं करते हैं। विशेष संस्थाओं को प्रायः तभी सौंपा जाता है जब भर्ती किसी विशेष क्षेत्र में करनी हो या भर्ती ... सारे कार्मिकों की करनी है।

(2) **नियुक्ति (Posting):** कुछ संस्थाओं में कार्मिकों की नियुक्ति का काम भी कार्मिक प्रशासन विभाग ही करता है, ... किस कर्मचारी को किस स्थान पर लगाना है तथा कहां किस कर्मचारी की ज्यादा उपयोगिता होगी, इस बात का निर्णय लेने का अधिकार कार्मिक प्रशासन को ही होता है।

(3) **कार्य विश्लेषण (Job Analysis):** किसी पद के अधिकारी का क्या दायित्व है? उसे क्या–क्या काम करने हैं? कौन–कौन से अभिलेख (Records) उसे तैयार करवाने हैं? कौन–कौन से प्रतिवेदन इसे प्रस्तुत करने हैं? इस तरह के सभी ... से सम्बन्धित कार्य विश्लेषण कार्मिक विभाग की देख–रेख में ही किया जाता है।

(4) **वेतनमान तथा प्रतिफल से सम्बन्धित कार्य:** वेतनमान प्रशासन तथा वार्षिक वेतन वृद्धि के आदेश, क्षमता रोध (Efficiency Bar) को पार करने के आदेश आदि इस श्रेणी में आते हैं। कई बार कार्मिक को योग्यता वेतन (Merit Pay) भी देने की व्यवस्था होती है। कार्मिकों को बोनस देना तथा अन्य वित्तीय अभिप्रेरकों की व्यवस्था भी इसी के अन्तर्गत आती है।

(5) **कर्मचारियों की योग्यता आंकना (Employee Appraisal):** कर्मचारी की कार्यक्षमता कैसी है? वह उत्तरदायित्व ग्रहण के योग्य है या नहीं है। वह कार्य करने में उत्सुकता रखता है या नहीं। उसका व्यवहार अपने सहयोगियों, अधिकारियों, अधीनस्थों तथा जनता के सदस्यों के प्रति कैसा है। उसे दिया गया कार्य वह निर्धारित कार्य अवधि में पूरा करता है या नहीं? उसका कार्य सन्तोषजनक रहा है या नहीं इत्यादि को सही रूप में आंकने का उत्तरदायित्व कार्मिक विभाग का ही है।

(6) **रोजगार अभिलेख (Employment Record):** इसके अन्तर्गत निम्नलिखित बातें आती हैं:–

(i) अधिकारी की कुशलता (Skill) का अभिलेख

(ii) शैक्षणिक योग्यता तथा नई उपलब्धियां

(iii) कर्मचारियों की अभिवृति (Attitude) का अभिलेख

(iv) वेतनमान से सम्बन्धित सूचनायें

(v) ओवर टाइम आय

(vi) छुट्टियों का अभिलेख

(vii) अभिप्रेरक वेतन

(7) **कार्मिकों के लाभ के लिए चलाए गए कार्यक्रमों का प्रशासन:** इसके अन्तर्गत निम्नलिखित कार्यक्रम अधिक महत्त्वपूर्ण कहे जा सकते हैं:

(i) कर्मचारियों के लिए स्थापित विभिन्न बीमा योजना

(ii) अवकाश प्राप्ति लाभ (Retirement Benefits)

(iii) स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्यक्रम

(iv) कल्याण सम्बन्धी कार्यक्रम

(v) अल्प बचत योजनाएं

(vi) केन्टीन सुविधा

(vii) कार्मिकों के लिए क्लब आदि की सुविधा

(viii) परामर्श दात्री सेवाएँ

(ix) कार्मिकों के लिए स्थापित चिकित्सा सेवाएँ

(8) **विशेष सेवाएँ:** इसके अन्तर्गत मुख्यतः निम्नलिखित सेवाएँ आती हैं:

(i) अग्नि शमन सेवाएं

(ii) सुरक्षा निरीक्षण

(iii) संगठन के द्वारा प्रकाशित विशेष समाचार पत्र इत्यादि

(iv) विशेष प्रकार के समाचार पत्रों का प्रसारण

(v) मैनुअल (Manual) आदि का प्रकाशन

(9) **शिक्षण तथा प्रशिक्षण सम्बन्धी कार्यक्रम:** इसके अन्तर्गत निम्नलिखित कार्य आते हैं:

(i) प्रशिक्षण देने वाली संस्थाओं से सम्पर्क बनाए रखना

(ii) प्रशिक्षण आवश्यकताओं को निर्धारित करना

(iii) कर्मचारियों के लिए अनेक प्रकार के प्रशिक्षण कार्यक्रमों को आयोजित करना

(iv) प्रशिक्षण की उपयोगिता को आंकना

(10) **कार्मिक नियोजन एवं मूल्यांकनः** इसके अन्तर्गत निम्नलिखित कार्य आते हैं:

(i) कार्मिक नीतियों का मूल्यांकन

(ii) कार्मिक नीतियों में मूल्यांकन के बाद पाई गई कमियों को दूर करने का प्रयास

(iii) कार्मिकों की मनोदशा का सर्वेक्षण

(iv) कार्मिक क्षेत्र में अनुसन्धान

(v) कार्मिक प्रशासन के विभिन्न तरीकों का मूल्यांकन और उनमें सुधार

यहां यह बात उल्लेखनीय है कि कार्मिक प्रशासन की उपरोक्त गतिविधियां सम्पूर्ण (Exhaustive) नहीं है। यह दृष्टांत (Illustrative) मात्र है। विभिन्न देशों में स्थिति अलग–अलग हो सकती है। इससे केवल इतना ही अनुमान लगाया जा सकता है कि मुख्य रूप से कार्मिक प्रशासन के क्षेत्र में उपरोक्त वर्णित कार्य कुछ फेर बदल के साथ आते हैं।

महत्वपूर्ण प्रश्न

1. कार्मिक लोक प्रशासन का अर्थ तथा प्रकृति का वर्णण कीजिए।
2. कार्मिक लोक प्रशासन की अवधारणा तथा क्षेत्र का वर्णण कीजिए।

अध्याय 15

भर्ती और प्रशिक्षण

Recruitment and Training

प्रशासकीय कुशलता की दृष्टि से सुदृढ़ कार्मिक व्यवस्था अति आवश्यक है। प्रशासकीय कुशलता के अभाव में कोई सरकार अपने किसी उद्देश्य को सफलतापूर्वक नहीं कर सकती। सरकार में कार्मिकों की संख्या दिन पर दिन बढ रही है। अतः काम के अनुसार योग्य व्यक्ति की भर्ती तथा उसे कार्य हेतु प्रशिक्षित करना कार्मिक व्यवस्था की सबसे कठिन किन्तु आवश्यक क्रियाएं हैं।

भर्ती

प्रशासकीय संगठन में रिक्त पदों हेतु योग्य व्यक्तियों को आकर्षित करने की प्रक्रिया को सामान्य शब्दों में भर्ती कहते हैं। प्रसिद्ध विचारक एल. डी. व्हाइट के अनुसार व्यक्तियों को आकर्षित करना ही भर्ती है। कुछ लोग इसके अर्थ को सीमित रूप में किसी विशेष पद के लिए प्रार्थना पत्र मात्र समर्पित करने से लगाते हैं। किंगस्ले (Kingsely) के अनुसार सार्वजनिक भर्ती की व्याख्या इस रूप में की जा सकती है कि यह वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा लोक सेवाओं हेतु अभ्यार्थियों को स्पर्धात्मक रूप में आकर्षित किया जा सकता है। यह व्यापक प्रक्रिया का आन्तरिक भाग है। नियुक्ति में परीक्षा एवं प्रमाण सम्बन्धी प्रक्रियाएं भी सम्मलित है। जे. सी. चार्ल्सवर्थ ने भर्ती को व्यापक प्रक्रिया के रूप में "विज्ञापन से लेकर स्थानपूर्ति तक की व्यवस्था को भर्ती में स्वीकार किया है।"

लोक सेवाओं मे भर्ती का प्रश्न योग्य प्रत्याशियों की नियुक्ति से जुड़ा हुआ है। वास्तव में प्रत्येक प्रशासन का लक्ष्य और दृष्टिकोण यही रहता है कि योग्य, उपयुक्त, कुशल, सक्षम और निष्ठावान लोकसेवक उपलब्ध हो सके। भर्ती अपने स्वरूप में एक ऐसा कार्यक्रम है जिसके द्वारा नये कार्मिकों को सेवा के क्षेत्र में लिया जाता है। भर्ती स्वयं कोई उपलब्धि नहीं है बल्कि यह महान् उपलब्धियों हतु आवश्यक आधार प्रस्तुत करती है। प्रत्येक देश में भर्ती का एक सामाजिक पक्ष होता है। समाज के श्रेष्ठ लोग समाज की सेवा करने हेतु चुने जाते हैं। लोक सेवकों को प्रत्येक व्यवस्था में एक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करना पड़ता है। मुख्य कार्यपालिका के सभी दायित्वों को कुशल लोकसेवक ही निष्ठा भावना से पूर्ण करते हैं। अतः इस दृष्टि से सबसे अधिक महत्व भर्ती की व्यवस्था को दिया जाना स्वाभाविक है।

भर्ती के दृष्टिकोण

यदि भर्ती का उद्देश्य पक्षपात को रोकना अथवा राजनीतिक दवाब को समाप्त करना है या गलत व्यक्तियों को बाहर रखना है, तो इसे नकारात्मक भर्ती की संज्ञा देगें। प्रारम्भ में जब योग्यता प्रणाली को लूट प्रणाली के स्थान पर लागू किया गया तो इसका उद्देश्य योग्यतम व्यक्तियों का चयन करना नहीं था। इस नकारात्मक पद्धति का परिणाम यह हुआ कि साधारण दर्जे के व्यक्ति भर्ती हुए। लेकिन कुछ समय के बाद लूट प्रणाली का अन्त हो गया। अब इस बात पर बल दिया गया कि सार्वजनिक सेवाओं के लिए योग्यतम व्यक्तियों का चयन होना चाहिए। इस बात ने सकारात्मक भर्ती के विचार को जन्म दिया। इस दृष्टिकोण की यह मान्यता है कि लोक सेवाएं केवल योग्य, प्रतिभाशाली और समर्थ लोगों के लिए बनी है। इन सेवाओं में अयोग्य और अकुशल लोगों हेतु कोई स्थान नहीं है। अतः सकारात्मक भर्ती का अर्थ है कि कार्मिक अभिकरण सर्वोत्तम और योग्यतम कार्मिकों का चयन करे। इस पद्धति में योग्यतम व्यक्तियों को आकर्षित करने हेतु नई–नई प्रणालियों का प्रयोग करना होता है। दूसरे शब्दों में, भर्ती के तरीके इस प्रकार के होते हैं कि केवल योग्य उम्मीदवारों को ही प्रतियोगिता में मुकाबला करने का अवसर प्राप्त हो। जहाँ प्रथम नकारात्मक दृष्टिकोण लोक सेवकों के हृदय में कोई आकर्षण पैदा नहीं करता वहां सकारात्मक दृष्टिकोण प्रत्येक प्रतिभाशाली को लोक सेवाओं की ओर आकृष्ट होने की व्यवस्था सुलभ करता है। इससे ऐसे लोग अपने को सम्मलित और प्रतिष्ठत अनुभव करते हैं। साधारणतः दूसरा प्रभाव यह होता है कि लोक सेवाओं को जीवन–वृत्ति के रूप में अपनाने की आकांक्षा सहज रूप से पूर्ण हो जाती है।

भर्ती के प्रकार

भर्ती करने वाली सत्ता का निर्णय करने के पश्चात् दूसरी समस्या यह है कि भर्ती करने के लिए कौन–कौन सी विधियां अपनाई जा सकती हैं। लूयिस मायरज (Lewis Mayers) के शब्दों में, "मौलिक रूप से चुनने की दो विधियां हैं सेवा के बाहर से प्रत्यक्ष या भर्ती एवं चुनाव सेवा के भीतर से पदोन्नति द्वारा।" इस प्रकार भर्ती करने के दो तरीके हैं सीधी भर्ती (Recruitment Proper *or* Direct Recruitment) तथा पदोन्नति द्वारा (Recruitment Through Promotion) भर्ती। दूसरे तरीके के अधीन सभी नियुक्तियां या तो निम्न अधिकारियों को पदोन्नत करने की जाती हैं या निम्न सरकारी कर्मचारियों में से प्रतियोग्यता परीक्षा द्वारा, परंतु यह प्रतियोग्यता परीक्षा केवल सरकारी कर्मचारियों तक ही सीमित होती है। सरकारी कर्मचारियों के अतिरिक्त इसमें कोई व्यक्ति भाग नहीं ले सकता।

इन दोनों तरीकों को अपनाया जाना पदाधिकारी प्रणाली की प्रकृति पर निर्भर करता है। एक लोकतंत्रीय प्रणाली में प्रायः खुले एवं प्रत्यक्ष भर्ती प्रणाली (Recruitment from Without) को अपनाया जाता है जबकि कुलीनतंत्रात्मक तथा नौकरशाही प्रणाली में भीतरी भर्ती प्रणाली को श्रेष्ठ समझा जाता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि लोकतंत्रात्मक प्रणाली में सभी नागरिकों को उच्च सेवाओं में प्रवेश करने का अवसर दिया जाना मान्य समझा जाता है जबकि नौकरशाही तथा कुलीनतंत्रात्मक प्रणाली में उच्च सेवाओं के व्यावसायिक होने पर बल दिया जाता है। इन दोनों तरीकों में कौन सा श्रेष्ठ है यह कहना कठिन है। दोनों के अपने–अपने गुण तथा दोष हैं जिनका वर्णन इस प्रकार है–

भीतरी भर्ती प्रणाली के लाभ (Advantages of Recruitment from Within)-इस पद्धति के मुख्य लाभ इस प्रकार हैं :

1. इस पद्धति के अंतर्गत अनुभवी लोग उच्च पदों पर नियुक्त किए जाते हैं। उन्हें काम करने का पूर्ण ज्ञान होता है। उनके प्रशिक्षण पर कोई खर्च नहीं पड़ता बल्कि उनके अनुभव से प्रशासन में कुशलता बढ़ती है।
2. इस पद्धति में कर्मचारियों को पदोन्नति प्राप्त करने के अवसर मिलते हैं। उन्हें यह प्रलोभन बना रहता है कि वे समय आने पर उच्च पद प्राप्त कर सकते हैं। इसलिए वे अपने कार्यों में अधिक ध्यान से दक्षतापूर्ण काम करते हैं।
3. इस पद्धति में कर्मचारियों को यह विश्वास रहता है कि वे किसी–न–किसी दिन एक उच्च पद अवश्य ग्रहण करेंगे। अतः वे निम्न स्तरों पर काम करते समय थोड़े वेतन से भी संतुष्ट रह सकते हैं।
4. इस पद्धति के अधीन क्योंकि कर्मचारियों का पदोन्नति के अवसर मिल जाते हैं इसलिए उनमें नैतिकता का अधिक विकास होता है और उनमें आत्मबल तथा आत्मविश्वास बढ़ जाता है।
5. क्योंकि इस पद्धति के अधीन अनुभवी व्यक्तियों को उच्च पदों पर नियुक्त किया जाता है इसलिए प्रशासन में कुशलता बढ़ती है।
6. इस पद्धति के पक्ष में यह कहा जा सकता है कि परीक्षा द्वारा लोगों की कार्य क्षमता का ठीक–ठीक ज्ञान नहीं होता। इस प्रणाली के अधीन यह दोष भी समाप्त हो जाता है, क्योंकि कर्मचारी पहले से ही काम कर रहे होते हैं और उनकी कार्यक्षमता का ज्ञान सभी को होता है।
7. इससे भर्ती की समस्या भी सरल हो जाती है। केवल अधीनस्थ पदों के लिए नए आवेदकों की परीक्षा लेनी पड़ती है। इससे लोक सेवा–आयोग का कार्यभार भी कम हो जाता है। उसे सभी पदों के लिए प्रतियोग्यता परीक्षा का प्रबन्ध नहीं करना पड़ता। इससे आर्थिक तौर पर भी लाभ होता है। परीक्षा प्रतियोगिताओं पर कोई व्यय नहीं करना पड़ता।

भीतरी प्रणाली के दोष (Disadvantages of Recruitment from Within)-इस पद्धति के जहां पर कई लाभ हैं वहां पर इसके कई दोष भी हैं जिनका वर्णन निम्न प्रकार है–

1. इस पद्धति का सर्वप्रथम दोष यह है कि इसके अन्तर्गत चुनाव का क्षेत्र सीमित हो जाता है क्योंकि भर्ती केवल उन्हीं कर्मचारियों में करनी होती है जो पहले से निम्न पदों पर आसीन होते हैं। चुनाव क्षेत्र के सीमित होने के कारण कई बार उच्च पदों के लिए योग्य व्यक्ति नहीं मिलते।
2. इसका यह दोष भी है कि इसके अन्तर्गत पदोन्नति के सम्बन्ध में पक्षपात पाया जाता है। पदोन्नति करते समय कर्मचारियों की रिपोर्ट पर विशेष ध्यान दिया जाता है। कई बार उच्च कर्मचारी अपने निम्न कर्मचारियों से व्यक्तिगत सम्बन्धों के कारण पक्षपात करते हैं। ऐसी दशा में कई बार योग्य व्यक्तियों को उच्च अधिकारियों की कृपा का पात्र न होने के कारण पदोन्नति के अवसर से वांछित होना पड़ता है।

3. इस पद्धति के अधीन नवयुवक व्यक्ति सरकारी सेवा में प्रवेश नहीं कर सकते। जिससे सरकारी सेवाओं में रूढ़िवादिता आ जाती है। क्योंकि छोटे पद पर दीर्घकाल के लिए काम करने वाले कर्मचारियों में संकीर्णता आ जाती है तथा वे नवीन वातावरण की आवश्यकताओं के अनुसार अपने आपको ढाल नहीं सकते।
4. इस पद्धति का यह भी दोष है कि इसके अन्दर कर्मचारियों के रूढ़िवादी होने के कारण उनको अपने क्षेत्र की नवीन प्रगति से परिचय रखने की प्रेरणा नहीं मिलती। वे नए तरीके अपनाने का यत्न नहीं करते। वे सदैव लकीर के फकीर रहते हैं।
5. क्योंकि कर्मचारियों को उच्च पद पदोन्नति के आधार पर प्राप्त होते हैं और पदोन्नति प्रायः ज्येष्ठता के आधार पर होती है, इसलिए उनमें परिश्रम की प्रेरणा समाप्त हो जाती है।
6. इस पद्धति में सरकारी सेवा के बाहर से योग्य व्यक्ति सरकारी सेवा में प्रवेश नहीं कर पाते।

बाहर से भर्ती के लाभ (Advantages of Recruitment from Without)-

1. यह पद्धति लोकतन्त्रात्मक प्रकृति की है। इस पद्धति के अन्तर्गत सभी योग्य व्यक्तियों को सरकारी सेवा में प्रवेश होने का अवसर मिलता है। यह पद्धति समानता एवं योग्यता के सिद्धान्तों पर आधारित है।
2. इस पद्धति द्वारा सरकारी सेवा के लिए कर्मचारियों को चुनने का क्षेत्र विस्तृत हो जाता है। इसमें कोई भी व्यक्ति किसी पद के लिए प्रार्थना–पत्र देकर प्रतियोगिता में भाग ले सकता है और अपनी योग्यता अनुसार पद प्राप्त कर सकता है।
3. इस पद्धति के अन्तर्गत नवयुवकों को सरकारी सेवा में प्रवेश करने का अवसर मिलता है। ये नवयुवक कर्मचारी नए–नए कार्यों का ज्ञान उत्साहपूर्ण प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। उनकी विचारधारा नवीन होती है और वे अपने उत्तरदायित्व को बड़े उत्साह तथा जिम्मेदारी से निभाते हैं। इससे प्रशासन में रूढ़िवादिता नहीं आती और प्रशासन में विशालता का विकास होता है। प्रशासन में नवीन प्रयोग किए जा सकते हैं।
4. इस पद्धति में कर्मचारियों को नवीन प्रकृति एवं ज्ञान से परिचित रहने के लिए प्रेरणा मिलती है तथा वे अपने ज्ञान को दिनाप्त (Upto-date) रखते हैं क्योंकि उन्हें ऊंचे पदों की प्रतियोगिता में नवयुवकों का मुकाबला करना पड़ता है। इससे प्रशासन में नवीनता बनी रहती है और कार्यक्षमता बढ़ती है।
5. बाहर से भर्ती होकर सरकारी सेवा में प्रवेश होने वाले कर्मचारी विभाग में कार्य करने वाले कर्मचारियों में पाए जाने वाले विभागीय दोषों से मुक्त होते हैं और अपनी सेवाओं को बनाए रखने के लिए ईमानदारी तथा मेहनत से काम करते हैं।
6. इस प्रशासन में नए रक्त का संचार होता है जिससे शासन की कुशलता बढ़ती है बाहरी भर्ती न होने पर कर्मचारियों को ऐसी अवस्था में ऊंचे पदों पर नियुक्त किया जाता है। जिस समय उनमें कार्यारम्भ क्षमता (Initiative) और फुर्ती से काम करने की शक्ति समाप्त हो जाती है।

बाहर से भर्ती के दोष (Disadvantages of Recruitment from Without)-

1. इसमें बिना प्रशासकीय अनुभव के लोग सरकारी सेवा में आते हैं और उन्हें प्रशासन का काम चलाने में कठिनाई पड़ती है।
2. इस पद्धति द्वारा भर्ती किए जाने वाले कर्मचारी अनुभवहीनता के कारण अपने अधीनस्थ कर्मचारियों के हाथों कठपुतली बन जाते हैं। वे स्वयं विवेकशील नहीं रहते।
3. इससे विभागीय कर्मचारियों के साहस का अन्त हो जाता है। जब उन्हें इस बात का ज्ञान होता है कि उन्हें पदोन्नति के स्थान पर नवीन लोगों के साथ प्रतियोगिता परीक्षा में बैठना पड़ेगा और इस परीक्षा में सफल होने पर ही उन्नति कर पायेंगे तो वे अपने दायित्व से लापरवाह हो जाते हैं।
4. इस पद्धति के अधीन वृद्धि और अनुभवी लोगों को नवयुवकों के अधीन काम करना पड़ता है जिसके कारण उनमें ईर्ष्या और जलन पैदा हो जाती है। वे हार्दिक सहयोग नहीं देते जिससे शासन में नीरसता आ जाती है।
5. इस पद्धति का आधार प्रतियोग्यता परीक्षा होती है। परीक्षा में अच्छे अंक लेकर सफल होने वाला व्यक्ति सभी बातों में कुशल होगा, यह विश्वास करना कल्पना है। यह आवश्यक नहीं कि वह व्यक्ति व्यावहारिक रूप में कुशल हो।

6. इस पद्धति के अधीन कई बार नियुक्ति केवल मौखिक परीक्षा (Interview) के आधार पर की जाती है। यह विश्वास करना है कि कुछ समय में मौखिक परीक्षा द्वारा व्यक्ति की योग्यता को परखा जा सकता है उचित नहीं।

भर्ती की समस्याएं

प्रशासन की प्रारम्भिक शब्दावली में भर्ती का अर्थ विशिष्ट पदों हेतु उपयुक्त प्रकार के उम्मीदवारों को आकर्षित करना है। किन्तु प्रशासन के लिए उपयुक्त और योग्य व्यक्तियों के चयन में निम्नलिखित समस्याएं सामने आती हैं:–

(1) चयन करने की शक्ति किसको प्राप्त होनी चाहिए?

(2) भर्ती के तरीके क्या हों?

(3) उम्मीदवारों की योग्यताएं क्या हों?

(4) योग्यताओं को निर्धारित करने के तरीके क्या हों?

(5) योग्यताओं का निर्धारण करने का प्रशासकीय तन्त्र क्या हो?

1. चयन शक्ति

भर्ती के सम्बन्ध में सबसे पहला प्रश्न यही है कि लोक सेवकों के चयन की शक्ति किसको प्राप्त हो। क्या जनता प्रत्यक्ष रीति से अधिकारियों का चुनाव करे अथवा कोई अधिकारी या कोई शासकीय अंग यह कार्य करे। प्रथम तरीके को प्रजातन्त्रीय तरीका कहा जाता है, किन्तु यह संभव नहीं है। चयन का दूसरा तरीका यह है कि चयन शक्ति औपचारिक रूप में मुख्य कार्यपालिका को दी जाये परन्तु वास्तविक रूप में यह अर्द्धन्यायिक स्वायत्त अंग लोक सेवा आयोग के पास होती है। आज विश्व के बहुत से देशों में लोक सेवा आयोग चयन हेतु कार्यरत है। भारत में भी लोक सेवा आयोग चयन का कार्य कर रहा है, किन्तु कुछ पदों जैसे राज्यपाल, राजदूत आदि का चयन मुख्य कार्यपालिका करती है।

2. भर्ती के तरीके:

भर्ती से सम्बन्धित अगली समस्या प्रत्यक्ष भर्ती बनाम अप्रत्यक्ष भर्ती की है। लेबी मेयर्त के अनुसार, "चयन के तरीके मुख्यतया दो हैं: सेवा से बाहर से भर्ती अथवा सेवा के अन्दर से चुनाव।" यह समस्या केवल दो तरीकों में से एक को छांटने की ही नहीं है अपितु इसका सम्बन्ध सम्पूर्ण कार्मिक प्रणाली के स्वरूप से है। इन दोनों प्रकारों के गुण व अवगुण हैं। भर्ती के तरीके की समस्या वास्तव में उच्चतर मध्य स्तरीय पदों के सम्बन्ध में ही उत्पन्न होती है। यह स्पष्ट है कि निम्नतम पदों की भर्ती प्रत्यक्ष (बाहर से) होगी क्योंकि उनके नीचे कोई ऐसा कार्मिक स्तर नहीं होता जिससे पदोन्नति करके भर्ती की जा सके। यह भी स्पष्ट है कि विभागाध्यक्षों जैसे उच्चतर पदों के लिए बाहर से नये और अनुभवहीन व्यक्तियों का भर्ती किया जाना ठीक नहीं होता है। अतः अधिकांश देशों में दोनों ही प्रकार से लोक सेवाओं में भर्ती होती है।

3. कार्मिकों की योग्यताएं:

कार्मिकों की योग्यताएं क्या हों, इसका निर्धारण करना भी भर्ती की एक समस्या है। लोक सेवाओं की कार्य कुशलता इस बात पर निर्भर करती है, कि कार्मिकों की योग्यताएँ क्या उस सेवा हेतु उपयुक्त हैं। प्रत्येक देश में लोक सेवा में प्रवेश हेतु कुछ योग्यताएं निर्धारित की जाती हैं। ये दो प्रकार की होती हैं:–सामान्य तथा विशेष। प्रथम प्रकार के अन्तर्गत नागरिकता, लिंग निवास, स्थान एवं आयु सम्मलित हैं तथा दूसरी प्रकार के अन्तर्गत शिक्षा, अनुभव, प्राविधिक ज्ञान तथा वैयक्तिक गुण आते हैं।

योग्यता निर्धारण के तरीके:

लोक सेवाओं हेतु आवश्यक योग्यताओं का निर्धारण करना भी आवश्यक हो जाता है। इन योग्यताओं को निश्चित करने का उद्देश्य सरकारी सेवा में योग्य एवं कुशल व्यक्तियों को लेना है। ज्ञान द्वारा ही योग्यता फलीभूत होती है। इस योग्यता का आकलन एक प्रकार से जटिल प्रक्रिया है, लेकिन लोक सेवा में प्रवेश पाने से पूर्व इस जटिल प्रक्रिया का समाधान अवश्य खोज लिया जाता है। सामान्यतया, योग्यताओं को निर्धारित करने में निम्नलिखित ढंग प्रस्तुत किये जाते हैं:–

(i) नियोक्ता का वैयक्तिक निर्णय।

(ii) क्षमता, चरित्र और शिक्षा सम्बन्धी प्रमाण पत्र।

(iii) पूर्व अनुभव सम्बन्धी अभिलेख।

(iv) परीक्षाएं–प्रतियोगी और अप्रतियोगी।

प्रत्येक देश में आज प्रतियोगिता परीक्षाओं का आयोजन सेवाओं हेतु किया जाता है।

5. योग्यता निर्धारण के लिए प्रशासकीय तंत्रः

लोक सेवाओं को व्यवस्थित और पूर्ण बनाने का दायित्व प्रतिभाशाली लोक सेवकों पर होता है, उनके चयन हेतु एक स्वतन्त्र एवं निष्पक्ष प्रशासकीय तन्त्र का होना आवश्यक होता है। वर्तमान में प्रायः सभी देशों में योग्यता निर्धारण हेतु प्रशसकीय तन्त्र कार्यरत हैं, जिन्हें लोक सेवा आयोग कहा जाता है। भारत में इस दायित्व को केन्द्र और राज्यों में पृथक्–पृथक् लोक सेवा आयोग सम्पन्न करते हैं।

इस प्रकार कार्मिक प्रशासन में भर्ती को उचित महत्त्व दिया जाना चाहिए। लोक सेवाओं के लिए प्रतिबद्ध, योग्य, कार्य कुशल एवं उच्च मनोबल के व्यक्ति चयनित होंगे, तभी प्रशासन अच्छा हो सकता है। अतः लोक सेवकों की भर्ती उचित एवं आदर्श व्यवस्था नितान्त आवश्यक प्रतीत होती है।

भर्ती की समस्याओं का अध्ययन करने के पश्चात् अब हम भारत में भर्ती प्रणाली का अध्ययन करेंगे।

भारत में भर्ती प्रणाली

कहा जाता है कि चीन प्रथम देश है जिसमें प्रतियोगी परीक्षाओं द्वारा भर्ती की वैज्ञानिक पद्धति का विकास ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी में हुआ। आधुनिक काल में प्रशिया (Prussia) ने प्रतियोगी पद्धति को सर्व प्रथम अपनाया था। भारत में यह पद्धति सन् 1853 में आरम्भ हुई। भारतीय संविधान के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार तथा घटक राज्यों प्रशासन हेतु पृथक्–पृथक् लोक सेवाओं के प्रावधान किये गये हैं। वास्तव में लोक सेवाओं को तीन मुख्य श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है:

(1) अखिल भारतीय सेवाएं।

(2) केन्द्रीय सेवाएं तथा

(3) राज्य सेवाएं।

इनमें से केन्द्रीय सेवाएं केन्द्रीय विषयों जैसे विदेशी मामले, सुरक्षा, आय–कर, सीमा शुल्क, डाक–तार, रेलवे, तथा अंकेक्षण आदि का प्रबन्ध करती है जो संघीय विषय हैं। केन्द्रीय सेवाओं के पदाधिकारी पृथक रूप से केन्द्रीय सरकार के कार्मिक होते हैं। इसी प्रकार राज्य सेवाएं राज्यों के क्षेत्राधिकार से सम्बन्धित विषयों जैसे भू–राजस्व, स्वास्थ्य, वन आदि का प्रबन्ध करती है। इन सेवाओं के कार्मिक पूर्णतया राज्य सरकारों के अधीन होते हैं। प्रशासन की एक विशेषता यह है, कि कुछ सेवाएं संघ तथा राज्यों दोनों हेतु सामान्य रूप से संगठित की गयी है, जैसे अखिल भारतीय सेवाएं। इस सेवा के अधिकारी पूर्णतः केन्द्रीय अथवा राज्यों की सेवाओं में नहीं होते अपितु दोनों में से किसी एक के अन्तर्गत विभिन्न समयों पर कार्य करते हैं। इनकी भर्ती अखिल भारतीय आधार पर होती हैं और वेतनमान समान होता है। वर्तमान में भारतीय प्रशासनिक सेवा, भारतीय पुलिस सेवा और भारतीय वन सेवा अखिल भारतीय सेवा है।

भारत में अखिल भारतीय सेवाओं तथा अन्य केन्द्रीय सेवाओं की भर्ती संघ लोक सेवा आयोग द्वारा की जाती है। भर्ती प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार से होती है। उच्च लोक सेवाओं में प्रत्यक्ष भर्ती 1979 से पूर्व एक लिखित परीक्षा तथा साक्षात्कार द्वारा होती थी।

सन् 1979 में प्रारम्भ की गयी सिविल सेवा परीक्षा की नयी प्रणाली प्रतियोगिता परीक्षाओं की प्रणाली में एक महत्त्वपूर्ण नवोन्मेष है। अब उच्चस्तरीय लोक सेवा के लिए परीक्षा दो चरणों में हो रही है। प्रथम चरण में एक प्रारम्भिक परीक्षा जून माह में आयोजित की जाती है, जो अभिकांक्षी उम्मीदवारों की योग्यता की अनुवीक्षण परीक्षा मानी जाती है। जो इस अनुवीक्षण परीक्षा में सफल होते हैं, वे ही मुख्य परीक्षा में बैठ सकते हैं। यह परीक्षा की एकीकृत योजना है, जिसके द्वारा अखिल भारतीय तथा केन्द्रीय सेवाओं में अधिसंख्य पदों हेतु भर्ती की जाती है। इससे उम्मीदवार एक ही परीक्षा देकर अपनी श्रेष्ठता के आधार पर इसमें से किसी एक सेवा में प्रवेश कर सकते हैं।

प्रतियोगी परीक्षाओं में भाग लेने हेतु पात्रता:

(1) भारतीय प्रशासनिक और भारतीय पुलिस सेवा के उम्मीदवार को भारत का नागरिक होना चाहिए। अन्य सेवाओं में उम्मीदवार को या तो भारत का नागरिक होना चाहिए या नेपाल, भूटान, तिब्बती शरणार्थी हो।

(2) युवक और युवतियां दोनों ही परीक्षा में बैठ सकते हैं, जिनकी आयु 21 वर्ष और 28 वर्ष के भीतर हो। अधिकतम आयु सीमा में कुछ विशिष्ट वर्गों को 5 वर्ष तक की छूट दी जाती है।

(3) उम्मीदवार के पास भारत के केन्द्र या राज्य विधान मंडल द्वारा नियमित किसी विश्वविद्यालय की स्नातक की डिग्री होना चाहिए।

(4) सामान्य उम्मीदवार को निर्धारित आयु सीमा में तीन ही अवसर मिलते हैं। अनुसूचित जाति एवं जनजाति के उम्मीदवारों के लिए अवसरों की कोई सीमा नहीं है। यदि कोई उम्मीदवार प्रारम्भिक परीक्षा में बैठता है तो एक अवसर गिना जाता है।

वर्तमान में लोक सेवा परीक्षा की योजना

खण्ड-1

परीक्षा की योजना

इस प्रतियोगिता परीक्षा में दो चरण हैं:–

(1) प्रधान परीक्षा के लिए उम्मीदवारों के चयन हेतु सिविल सेवा प्रारम्भिक परीक्षा (वस्तु पूरक) तथा

(2) विभिन्न सेवाओं तथा पदों पर भर्ती हेतु उम्मीदवारों का चयन करने के लिए सिविल सेवा (प्रधान) परीक्षा लिखित तथा साक्षात्कार।

खण्ड-2

1. प्रारम्भिक तथा प्रधान परीक्षा की रूपरेखा तथा विषय:

(क) प्रारम्भिक परीक्षा-

उक्त परीक्षा में दो प्रश्न–पत्र होंगे:–

प्रश्न पत्र (प्रथम) सामान्य अध्ययन 150 अंक

प्रश्न पत्र (द्वितीय) 300 अंक

कुल योग 450 अंक

नीचे पैरा 2 में दिए गए एच्छिक विषयों में से चुना गया एक विषय।

2. ऐच्छिक विषयों की सूची:

कृषि विज्ञान, रसायन विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, सिविल इन्जीनीयरिंग, विद्युत इंजीनियरिंग, भू–विज्ञान, भूगोल, विधि, अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान, लोक प्रशासन, समाज शास्त्र, राजनीति विज्ञान, प्राणि विज्ञान, भौतिकी, सांख्यिकी आदि।

टिप्पणी:

(1) दोनों ही प्रश्न–पत्र वस्तु परक (बहुविकल्पी प्रश्न) होंगे।

(2) प्रश्न–पत्र हिन्दी और अंग्रेजी दोनों में होंगे।

(3) प्रत्येक प्रश्न–पत्र दो घण्टे का होगा।

(4) ऐच्छिक विषयों के लिए पाठ्य विवरणों की पाठ्यक्रम सामग्री डिग्री स्तर की होगी।

(ख) प्रधान परीक्षा:

लिखित परीक्षा में निम्नलिखित प्रश्न–पत्र होंगे:

प्रश्न पत्र 1 संविधान की आठवीं अनुसूची में सम्मिलित भाषाओं में से उम्मीदवारों द्वारा चुनी गई कोई एक भारतीय भाषा।

प्रश्न पत्र 2 अंग्रेजी — अंक 300

प्रश्न पत्र 3 निबन्ध — अंक 200

प्रश्न पत्र 4 और 5 सामान्य अध्ययन प्रत्येक प्रश्न–पत्र के लिए — अंक 300+300=600

प्रश्न पत्र 6, 7, 8, 9 विषयों की सूची में से चुने जाने वाले कोई दो विषय प्रत्येक विषय को दो प्रश्न पत्र होंगे। प्रत्येक प्रश्न पत्र के लिए — अंक 300x4=1200

(ग) साक्षात्कार परीक्षण: **अंक 300**

उम्मीदवार का साक्षात्कार एक बोर्ड (मण्डल) द्वारा होगा जिसके सामने उम्मीदवार के परिचयवृत्त का अभिलेख रहेगा। उससे सामान्य रूचि की बातों पर प्रश्न पूछे जाएंगे। इससे उम्मीदवार की मानसिक सतर्कता, आलोचनात्मक ग्रहण शक्ति, संतुलित निर्णय की शक्ति, रूचि की विविधता, बौद्धिक और नैतिक ईमानदारी आदि की जांच हो सकती है।

टिप्पणी:

(1) भारतीय भाषाओं और अंग्रेजी के प्रश्न–पत्र मैट्रीकुलेशन अथवा समकक्ष स्तर के होंगे। इनमें केवल अर्हता प्राप्त करनी होगी और इनके प्राप्त अंकों को योग्यता क्रम निर्धारित करने में नहीं गिना जाएगा।

(2) केवल उन्हीं उम्मीदवारों के सामान्य अध्ययन तथा वैकल्पिक विषयों के प्रश्न पत्रों का मूल्यांकन किया जाएगा जो भारतीय भाषा और अंग्रेजी के अर्हक प्रश्न पत्रों में आयोग द्वारा अपनी विवक्षा पर निर्धारित न्यूनतम स्तर प्राप्त कर लेंगे।

(3) ऐच्छिक विषयों की सूचि:

कृषि विज्ञान, अर्थशास्त्र, इतिहास, भूगोल, रसायन विज्ञान, प्रबन्ध, भौतिकी, मनोविज्ञान, लोक प्रशासन, समाजशास्त्र, राजनीति विज्ञान तथा अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, प्राणि विज्ञान, दर्शन शास्त्र, विद्युत इंजीनियरी, सिविल इंजीनियरी आदि।

(4) परीक्षा के लिए प्रश्न–पत्र परम्परागत निबन्ध शैली के होंगे।

(5) प्रत्येक प्रश्न–पत्र तीन घण्टे की अवधि का होगा।

(6) भाषा–सम्बन्धी प्रश्न–पत्रों को छोड़कर बाकी सभी प्रश्न–पत्र हिन्दी और अंग्रेज़ी में होंगे।

सिविल सेवा परीक्षा के पाठ्यक्रम में परिवर्तन:

संघ लोक सेवा आयोग ने सतीश चन्द्र समिति की सिफारिशों को स्वीकार करते हुए, 1993 से सिविल सेवा परीक्षा में कुछ परिवर्तन करने का निश्चय किया। अब सिविल सेवा परीक्षा (मुख्य) में 200 अंकों का निबन्ध आरम्भ किया गया। परीक्षार्थी इसका उत्तर अंग्रेजी या संविधान की आठवीं अनुसूची की किसी भी भाषा में दे सकेंगे। व्यक्तित्व परीक्षण (साक्षात्कार) अब 250 अंकों के स्थान पर 300 अंकों का और लिखित परीक्षा तथा व्यक्तित्व परीक्षण के लिए 2050 के स्थान पर 2300 अंक है। यह नई व्यवस्था 1993 की परीक्षाओं से लागू की गई है। अब वैकल्पिक विषयों की सूची में फ्रांसीसी, जर्मन, चीनी, रूसी, अरबी, फारसी और पाली भाषाओं को हटाया जा रहा है। समिति ने शिक्षा, इलेक्ट्रॉनिक्स और दूरसंचार तथा चिकित्सा विज्ञान को वैकल्पिक विषयों के रूप में प्राथमिक व मुख्य परीक्षा में सम्मिलित करने की सिफारिश की है। चिकित्सा विज्ञान को 1994 की परीक्षाओं से वैकल्पिक विषय के रूप में सम्मिलित किया गया है।

उल्लेखनीय है कि संघ लोक सेवा आयोग ने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के पूर्व अध्यक्ष श्री सतीश चन्द्र की अध्यक्षता में एक समीति अगस्त 1988 में गठित की थी, जिसने अगस्त 1989 में अपनी रिपोर्ट (प्रतिवेदन) आयोग को सौंप दी थी।

मूल्यांकनः

भारत में उच्च लोक सेवाओ में भर्ती हेतु वर्तमान प्रधान परीक्षा के प्रश्न–पत्रों में प्राप्त कुल अंकों को साक्षात्कार के प्राप्तांकों को जोड़कर योग्यता सूची बनाई जाती है। आवेदन पत्र में उम्मीदवार की सेवा विशेष की माग एवं सूची में उसके स्थान के आधार पर प्रत्येक चयनित उम्मीदवार की सेवा निर्धारित कर दी जाती है। इसकी सिफारिश संघीय लोक सेवा आयोग भारत के कार्मिक और प्रशासनिक सुधार मंत्रालय को कर देता है। भारत सरकार द्वारा नियुक्ति पत्र सफल प्रत्याशियों को भेजे जाते हैं। वास्तव में लोक सेवाओं में चयन के पश्चात अभ्यार्थियों को पद प्राप्त करने से पूर्व प्रशिक्षण लेना होता है। अतः उन्हें प्रशिक्षण हेतु प्रशिक्षण संस्थाओं में भेज दिया जाता है।

प्रशिक्षण

Training

भारत में लोक सेवकों की भर्ती और चयंन के पश्चात् उनकी प्रशिक्षण की समस्या कार्मिक प्रशासन के सामने आती है। जैसा की सबको ज्ञात है कि किसी भी व्यक्ति को अपने पद का उत्तरदायित्व निभाने हेतु प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। लोक सेवकों के कार्य की प्रकृति और स्वरूप इतना जटिल और भिन्न होता है कि उसे असाधारण प्रतिभा के व्यक्ति को भी कुछ आवश्यक जानकारी की अपेक्षा होती है। इस प्रकार की जानकारी की व्यवस्था का नाम ही प्रशिक्षण है। कुछ देशों में सरकारी सेवा एक व्यवसाय (Profession) के रूप में विकसित हुई है, जिसे प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। प्रशिक्षण लोक सेवकों को उनकी मानसिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक क्षमताओं को बढ़ाने में मदद करता है। प्रशासकों को उस कार्य को सम्पन्न करने हेतु प्रशिक्षण प्राप्त करना होता है जिसके लिए उनकी भर्ती हुई है।

प्रशिक्षण का अर्थ

शब्द कोष में इसका अर्थ किसी व्यवसाय, कला या हस्तकला में प्रायोगिक शिक्षा, निर्देश तथा अनुशासन है। लोक प्रशासन में इसका अर्थ है, कार्मिक कौशल, उसकी बुद्धि और शक्तियों को उन्नत करने हेतु की गई प्रत्यक्ष कोशिश तथा वांछित दिशा में उसकी रूचियों एवं मूल्यों के बारे में उसके दृष्टिकोण को विकसित करना।" प्रशासनिक सुधार आयोग के अनुसार "प्रशिक्षण मानव संसाधनों में निवेश है, यह मानवीय क्षमता को बढ़ाने तथा कार्मिक कुशलता में अभिवृद्धि का महत्वपूर्ण साधन है।" विचारक विलियम जी० दोरपी के अनुसार "प्रशिक्षण एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसके द्वारा कार्मिकों की उनके वर्तमान पदों पर दक्षता बढ़ाने के लिए उनके कौशल, ज्ञान एवं उनकी रूचियों तथा आदतों को विकसित किया जाता है, ताकि वे भावी सरकारी पद पर भी अपने कार्य को ठीक प्रकार से कर सकें।"

प्रशिक्षण के उद्देश्य

लोक प्रशासन में कार्मिकों हेतु प्रशिक्षण का महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रशिक्षण के द्वारा उनमें काम को बिल्कुल सही प्रकार से करने का कौशल आता है। यह उनमें आत्मविश्वास और स्वतन्त्रता की भावना उत्पन्न करता है और निर्णय शक्ति को विकसित करता है। यह वास्तव में एक सतत् प्रक्रिया है। लोक सेवकों के प्रशिक्षण पर विचार करने हेतु सन् 1944 में यू० के० (U.K.) में गठित अशेटन समिति (Assheton Committee) ने प्रशिक्षण के प्रमुख उद्देश्यों को इन शब्दों में वर्णित किया है कि "किसी विशाल संगठन में दक्षता दो तत्त्वों पर निर्भर करती है, कार्मिक की उसे दिये गये कार्य को करने की प्राविधिक दक्षता तथा संगठन की एक निगमात्मक निकाय के रूप में दक्षता जो उन कार्मिकों की सामूहिक भावना एवं उनके दृष्टिकोण पर निर्भर करती है जिनसे मिलकर यह निकाय बना है। प्रशिक्षण में इन दोनों तत्त्वों पर ध्यान देना चाहिए। इस समिति द्वारा प्रशिक्षण के निम्नलिखित प्रमुख उद्देश्य बताये गये हैं।

1. लोक सेवा कार्य निष्पादन कला स्पष्टता एवम् यथार्थता विकसित करना।
2. परिवर्तित समय की नयी माँग के अनुसार लोक सेवक के दृष्टिकोण तथा कार्य तकनीक में निरन्तर सामंजस्य बनाये रखना।
3. प्रशिक्षण कार्मिकों को यन्त्रवत बनने से रोकता है। यह उन्हें उस कार्य से परिचित करवाता है, जो उन्हें समाज की सेवा हेतु करना है, ताकि वे सजीव ओर उदार बने रहें।

4. यह उन्हें केवल वर्तमान कर्तव्यों को अधिक दक्षतापूर्वक करने योग्य नहीं बनाता अपितु उन्हें भविष्य में उच्चतर उत्तरदायित्वों और अधिक कार्यों को करने के भी योग्य बनाता है।
5. प्रशिक्षण दीक्षित व्यक्तियों के मान को विशद् करता है ताकि उनमें यह भावना बनी रहे कि वे लोक सेवी हैं, न कि लोक स्वामी।

कोल्डवैल (Coldwell) ने ठीक ही कहा है कि "प्रभावशाली प्रशासन में संगठनात्मक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये प्रभावशाली प्रशिक्षण की आवश्यकता है, क्योंकि यदि कार्मिकों को बिना किसी पथ–प्रदर्शन या सहारे के स्वयं शिक्षित होने के लिए छोड़ दिया जाता है तो इससे काफी हानि हो सकती है।" अतः कार्मिकों हेतु प्रशिक्षण आवश्यक व लाभकारी है।

प्रशिक्षण के प्रकार

(Kinds of Training)

विस्तृत रूप में विधि के आधार पर प्रशिक्षण के दो ही प्रकार– औपचारिक तथा अनौपचारिक होते हैं–

(क) **अनौपचारिक** (Informal)–यह स्वरूप प्रशिक्षण का परम्परागत रूप है जिसे सदैव प्रयोग में लाया जाता है। इस विधि का प्रयोग प्रशासन के अधिकांश भाग में किया जाता है तथा प्रशासन की अधिकांश इकाईयों एवं निकायों में कर्मचारी इसी प्रकार से प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं। साधारण शब्दों में अनौपचारिक प्रशिक्षण से अभिप्राय उस प्रकार के प्रशिक्षण से है जिसमें कर्मचारी अपने उच्च अधिकारी के अधीन काम करते हुए अपनी त्रुटियों से सीखते हैं तथा अनुभव के माध्यम से प्रशासकीय कुशलता प्राप्त करते हैं। दूसरे शब्दों में इस विधि के अन्तर्गत नए कर्मचारियों को न्यूनतम परामर्श देकर कार्य पर लगा दिया जाता है। कर्मचारी अपने उच्च कर्मचारी के निरीक्षण में काम करते–करते अपने ही अनुभव से सीखते हैं या उच्च कर्मचारी उन्हें कभी–कभी दैनिक कार्य करते समय परामर्श या हिदायत देते हैं जिनसे उन्हें अपने कार्य के बारे में ज्ञान प्राप्त होता है। संक्षिप्त रूप में इस विधि को 'काम करो और जानो' (Work and Know) या अनुभव द्वारा प्रशिक्षण कहा जा सकता है। पदाधिकारियों की वास्तविक शिक्षा तभी होती है जब वे फाइलों तथा कागजात से व्यक्तिगत रूप में सम्पर्क स्थापित करते हैं। मिल्टन एम० मैंडल (Milton M. Mandell) के अनुसार, "कर्मचारी तथा उनके उच्चाधिकारियों के बीच के दैनिक सम्बन्धों, सभाओं तथा कर्मचारी–वर्ग की बैठकों, कर्मचारियों के समाचार–पत्रों तथा संगठन के प्रकाशनों, व्यावसायिक संघों की बैठकों तथा उस साहित्य के पढ़ने और अध्ययन द्वारा जो कर्मचारी स्वयं अपने संकल्प से या अपने निरीक्षक (Supervisor) के सुझाव पर प्रयोग में लाता है उनसे भी प्रशिक्षण प्राप्त हो जाता है। क्योंकि ऐसे प्रशिक्षण का सम्बन्ध कर्मचारी के नियमित कार्यों से होता है, इसलिए वह अपने निजी अनुभव से मिलाकर सर्वोत्तम लाभ उठा सकता है। अपितु इससे सम्बन्धित कोई बाध्यता नहीं है, अतः इसकी प्रवृत्ति साकारात्मक होती है। इसका प्रभाव चाहे अच्छा हो या बुरा, गहरा होता है।" अतः अनौपचारिक प्रशिक्षण से अभिप्राय काम करने से प्रशिक्षण प्रयोग एवं त्रुटि से अध्ययन तथा अनुभव से प्रशासकीय निपुणता की प्राप्ति है। भारत में इस प्रकार के प्रशिक्षण को अंग्रेज़ों ने उपराजस्व अधिकारियों (Assistant Collectors) को प्रशिक्षण देने के लिए अपनाया था जिसके अनुसार नवीन अधिकारी अपने उच्च अधिकारियों के अधीन काम करते थे और परस्पर सम्बन्धों के आधार पर प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं। उच्च अधिकारी दैनिक कार्यों को करते समय अपने अधीन नवीन अधिकारियों को परामर्श तथा हिदायतें देकर उन्हें प्रशासन तथा उनके कार्यों के सम्बन्ध में ज्ञान प्रदान करते हैं। जब कभी वे अपना कार्य करते हुए त्रुटि करें तो उन्हें ठीक मार्ग बता कर उनका नेतृत्व करते हैं। इससे नवीन अधिकारियों में उपक्रमण, प्रशासकीय कुशलता, दायित्व, क्षमता तथा प्रशासकीय नेतृत्व की योग्यताओं का विकास होता है। परन्तु अनौपचारिक प्रशिक्षण की सफलता, उच्च अधिकारी के अनुभव, व्यवहार तथा नए अधिकारियों में रूचि तथा नए अधिकारी द्वारा निरन्तर प्रयास, उच्च अधिकारियों के प्रति सम्मान की भावना तथा काम सीखने की धारणा पर निर्भर करती है। अनौपचारिक प्रशिक्षण किसी योग्य पदाधिकारी की देख–रेख में रहकर तथा उससे सहानुभूति प्राप्त करके ही प्राप्त किया जा सकता है। यदि पदाधिकारी का रूख सहानुभूतिपूर्ण न हो और वह कर्मचारी से उदारता का व्यवहार न करे तो कर्मचारी हताश एवं हतोत्साहित हो जाएगा और वह कुछ भी नहीं सीख सकेगा। संक्षेप में अनौपचारिक प्रशिक्षण निरीक्षक अधिकारी (Supervising Officer) के उदार विचारों एवं उसकी सहानुभूति से ही सम्भव हो सकता है। यदि निरीक्षक अधिकारी नए प्रवेश होने वाले अधिकारी या कर्मचारी को आदर, सम्मान तथा प्रोत्साहन न दें तो उसका अनौपचारिक प्रशिक्षण सम्भव नहीं हो सकता। अतः इस विधि के अधीन प्रशिक्षण प्राप्त करना नए कर्मचारी की लग्न तथा उच्च अधिकारी के अधीन कर्मचारियों में रूचि पर निर्भर है। टिकनर (Tickner)

ने इसके सम्बन्ध में ठीक ही कहा है, "सीखने का यह मार्ग कठोर है और पूर्णतः सफल होने के लिए यह आवश्यक है कि सीखने वाला सीखने पर तुला हुआ हो। औसत कर्मचारी में इससे बुरी आदतें, निराशा तथा उत्साहहीनता उत्पन्न हो सकती है।" इसलिए यह आवश्यक है कि नए कर्मचारी दत्तचित्त होकर काम सीखने का प्रयास करें और उच्च अधिकारी उन्हें पूर्ण रूचि तथा लगन से प्रशिक्षण दें तथा उनका मार्गदर्शन करें।

(ख) **औपचारिक प्रशिक्षण** (Formal Training)—जब विभागीय अध्यक्षों अथवा उच्च अधिकारियों द्वारा कर्मचारियों को उपदेश, पाठ्यों, निर्देशों आदि द्वारा प्रशिक्षण दिया जाए तो उसे औपचारिक प्रशिक्षण कहते हैं। इस प्रकार का प्रशिक्षण देने के लिए प्रशासकीय विद्यालयों तथा संस्थाओं की स्थापना की जाती है। इस प्रशिक्षण द्वारा कर्मचारियों को विभाग की कार्यप्रणाली, उनके कर्त्तव्यों तथा आचार संहिता (Code of Conduct) आदि से परिचित करवाया जाता है ताकि वे कार्यालय में पहुंचते ही अनुशासन में रहते हुए अपने कार्यों को भली भान्ति समझ तथा कर सकें। इसके द्वारा कर्मचारियों को अपने कर्त्तव्यों का ज्ञान हो जाता है और उनमें अपने कार्यों को करने की क्षमता बढ़ जाती है। इसमें केवल उन्हें उनके कर्त्तव्यों तथा कार्यों से ही परिचित नहीं करवाया जाता बल्कि साथ ही आचार संहिता का ज्ञान प्रदान करके उन्हें अनुशासन में रहने के सम्बन्ध में भी बताया जाता है। अनौपचारिक प्रशिक्षण की तुलना में औपचारिक प्रशिक्षण नियमित ढंग से किया जाता है। इसका उद्देश्य कर्मचारी को अपने कार्य की प्रकृति का ज्ञान पहले ही प्रदान करना होता है ताकि जब वह अपने पद को सम्भाले तो वह निस्संकोच होकर अपने कार्य को कर सके।

औपचारिक प्रशिक्षण एक लाभदायक सन्तुलित तथा पूर्व–नियोजित प्रक्रिया है।

औपचारिक प्रशिक्षण के भी कई स्वरूप होते हैं, जिनके आधार पर इसे निम्नलिखित प्रकारों में विभाजित कर सकते हैं–

1. **पूर्व प्रवेश प्रशिक्षण** (Pre-entry Training)—सरकारी सेवा में प्रवेश होने से पहले जो प्रशिक्षण दिया जाता है उसे पूर्व प्रवेश प्रशिक्षण कहते हैं। इसका उद्देश्य कर्मचारियों को सेवा में प्रवेश करने से पहले उन्हें अपने कार्यों से परिचित करवा कर सकुशल बनाने का यत्न करना होता है। ह्वाइट (White) के अनुसार, "पूर्व प्रवेश प्रशिक्षण से प्रयोजन है कि सेवा में प्रवेश करने वाले महत्त्वाकांक्षा रखने वाला व्यक्ति परीक्षा पास करने की क्षमता प्राप्त कर ले या किसी अन्य प्रकार नियुक्ति के लिए योग्यता प्रदर्शित कर सके या अधिक व्यापक रूप में ऐसा ज्ञान या मानसिक गुण विकसित कर लें जिन से उसे आगे चल कर सफलता प्राप्त होगी।" ऐसे प्रशिक्षण की व्यवस्था स्कूलों, कालिजों विश्वविद्यालयों तथा अन्य शिक्षा संस्थाओं में की जाती है ताकि वहां से शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् युवकों को सरकारी सेवा तुरन्त प्राप्त हो सके और प्रशासन को पूर्व प्रशिक्षित पदाधिकारी एवं कर्मचारी मिल सकें। इसके उदाहरण चिकित्सा, तकनीकी इंजीनियरिंग आदि प्रशिक्षण हैं जिन्हें व्यवसायिक सेवाओं के लिए व्यवसाय केन्द्रों तथा शिक्षा केन्द्रों (स्कूल व कालिज) में निश्चित योजना अनुसार दिया जाता है। अध्यापक बनने के लिए B.T.C. की शिक्षा प्राप्त करना भी इसी श्रेणी में आ जाता है। व्यवसायिक संस्थाओं में प्रशिक्षण प्राप्त करने के पश्चात परीक्षार्थी वास्तविक क्षेत्रों में प्रवेश करते हैं।

   पूर्व प्रशिक्षण प्रायः दो प्रकार का होता है– Internship and Apprenticeship. इन्टरनशिप (Internship) प्रशिक्षण प्रशिक्षण का वह ढंग है जिसके द्वारा विशेष ढंग से चुने गए तथा पर्वेक्षित किए गए विद्यार्थियों को लोक प्रशासन में प्रशासकीय तथा नीति सम्बन्धी कार्यों के लिए तैयार किया जाता है। इस प्रशिक्षण द्वारा कर्मचारी को ऐसे कार्य का प्रशिक्षण दिया जाता है जो उनके वर्तमान कार्यों के अनुरूप हो। इसका अच्छा उदाहरण अमेरिका में प्राप्त होता है। यहां सेवाओं में प्रवेश होने से पहले ही विभिन्न विश्वविद्यालयों एवं व्यावसायिक केन्द्रों से विद्यार्थियों का चयन करके प्रशिक्षण दिया जाता है। इस उद्देश्य से ही वहां पर 1934 में नैशनल इंस्टीच्यूट ऑफ पब्लिक एफेयरज़ (National Institute of Public Affairs) की स्थापना की गई थी। इस संस्था में प्रशिक्षण प्राप्त करने के पश्चात् उम्मीदवारों को विभिन्न सरकारी क्षेत्रों में कार्य करने के लिए भेज दिया जाता है। यह प्रणाली अब भारत, इंग्लैंड, फिलिपाइन आदि देशों में भी लोकप्रिय है। भारत में अनेक विश्वविद्यालयों में लोक प्रशासन सम्बन्धी सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक दोनों प्रकार का प्रशिक्षण देने की व्यवस्था की गई है।

   शिल्प शिक्षण व्यवस्था (Apprenticeship) का उद्देश्य व्यापार या उद्योगों के क्षेत्रों में कुशलता प्रदान करना है। विलियम जी० टॉर्पी (William G. Torpey) के अनुसार शिल्पशिक्षण व्यवस्था का लक्ष्य व्यापार या शिल्प सम्बन्धी कुशलता प्रदान करना है। इस प्रकार के प्रशिक्षण में परीक्षार्थी को किसी एक अधिकारी के साथ रख

जाता है जिसके सहायक के रूप में वह काम करता है और अधिकारी से व्यवहारिक तथा प्रशिक्षण प्राप्त करता है। यह प्रशिक्षण अनेक प्रकार के विषयों में दिया जा सकता है जैसे मेकैनिक, कलाकार आदि। इन दोनों प्रकार के प्रशिक्षणों में केवल अन्तर यह है कि Internship प्रशिक्षण का सम्बन्ध प्रशासकीय या व्यवसायिक कार्यों से होता है जबकि शिल्प शिक्षण का सम्बन्ध व्यापारिक एवं औद्योगिक कुशलता से है।

2 **सेवा कालीन प्रशिक्षण** (In Service Training)—सेवा कालीन प्रशिक्षण उस प्रशिक्षण को कहते हैं जो कर्मचारियों को सेवा में प्रवेश करते ही दी जाती है। इस प्रक्रिया को उन देशों में अपनाया जाता है जहां पर लोक सेवाओं को जीविकोपार्जन का स्थायी माध्यम माना जाता है। ऐसे देशों में सेवाकालीन प्रशिक्षण को विशेष महत्त्व दिया जाता है। वास्तव में जब कर्मचारियों को लोक–सेवाओं में भर्ती किया जाता है तो उनको कोई अनुभव नहीं होता। ऐसी दशा में यह आवश्यक है कि नए कर्मचारियों को उनके कार्यों एवं उत्तरदायित्वों से परिचित करवाया जाए ताकि वे अपने कार्य को कुशलता से कर सकें और उन्हें अपने कार्यों से सम्बन्धित बहुत सी नई बातों का ज्ञान प्राप्त हो सके। इस प्रकार के प्रशिक्षण से कर्मचारी को अपने कार्य निष्पादन (Performance) में सुधार करने का अवसर मिलता है, उनके आत्मबल में वृद्धि होती है तथा नए कार्यों को करने के लिए जानकारी प्राप्त होती है। इस प्रकार के प्रशिक्षण के लिए कोई विशेष व्यवस्था नहीं की जाती। कर्मचारियों को उनके काम के घण्टों में ही पर्यवेक्षक अधिकारियों द्वारा प्रशिक्षण दिया जाता है। परन्तु आधुनिक काल में पर्यवेक्षक अधिकारियों के अपने कार्यों में अधिक व्यस्त होने तथा कर्मचारियों की संख्या में अधिकतर वृद्धि होने के कारण इस प्रशिक्षण का कार्य करने के लिए बाहरी प्रशिक्षण संस्थाओं अथवा विभागीय प्रशिक्षण केन्द्रों की सहायता ली जाती है। कई बार विश्वविद्यालयों तथा अन्य प्रशिक्षण संस्थाओं में कर्मचारियों को प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए भेजा जाता है। जैसे अखिल भारतीय प्रशासकीय सेवाओं में भर्ती किए गए पदाधिकारियों के प्रशिक्षण के लिए राष्ट्रीय अकादमी ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन मंसूरी की स्थापना की गई है। इंग्लैंड में भर्ती किए हुए व्यक्तियों को विश्वविद्यालयों में असैनिक सेवाओं में प्रशिक्षण के लिए भेजा जाता है। अमेरिका में भी इस प्रकार के प्रशिक्षण को विशेष महत्त्व दिया जाता है। सरकार प्रशिक्षणार्थियों को उन विभिन्न केन्द्रों में भेजती है जहां पर लोक प्रशासन सम्बन्धी प्रशिक्षण दिया जाता है।

3. **प्रवेशोपरन्त प्रशिक्षण** (Post Entry Training)—सेवा में भर्ती होने के पश्चात् सेवाकालीन प्रशिक्षण के साथ ही प्रशिक्षण का काम समाप्त नहीं हो जाता। कर्मचारियों को अपने कार्यों में सदैव निपुण रखने के लिए उन्हें प्रवेशोपरान्त प्रशिक्षण देने की भी विशेष आवश्यकता है। प्रवेशोपरान्त प्रशिक्षण से अभिप्राय उस प्रशिक्षण से है जो कर्मचारी को वर्तमान तथा भावी पदों सम्बन्धी उत्तरदायित्वों का समुचित रूप में निर्वाह करने के लिए सेवा में कुछ समय काम करने के उपरान्त दिया जाता है। इस प्रकार के प्रशिक्षण का मुख्य उद्देश्य कर्मचारियों में कार्य कुशलता का स्तर बनाए रखना है। कर्मचारी काफी समय तक काम करते–करते रूढ़िवादी बन जाते हैं। उन्हें नवीन धारणाओं का ज्ञान नहीं होता और न ही वे उन्हें जानने का यत्न करते हैं। ऐसी दशा में कर्मचारियों के ज्ञान का नवीनीकरण करने तथा उन्हें नवीन यन्त्रों, उपकरणों तथा प्रगतिशील बातों से परिचय करवाने के लिए प्रवेशोपरान्त प्रशिक्षण का सहारा लिया जाता है ताकि वे वर्तमान काल में होने वाले परिवर्तनों से परिचित रहें और उनके ज्ञान में समयानुकूल वृद्धि हो सके। इस प्रकार का प्रशिक्षण प्रायः दो ढंग से दिया जाता है।

प्रथम ढंग यह है कि कर्मचारियों को नवीन प्रशासकीय तकनीकों से परिचित करवाने के लिए उनके लिए नवीनीकरण पाठ्यक्रमों (Refresher Courses), सेमीनार आदि की व्यवस्था की जाये। इससे एक तो कर्मचारियों को अपने दैनिक कार्यों से कुछ समय के लिये अवकाश मिल जाता है तथा दूसरे उन्हें अपने कार्य से सम्बन्धित आधुनिक तकनीकों की जानकारी मिल जाती है। इस प्रकार की व्यवस्था उच्च अधिकारियों के लिए की जाती है जैसे राष्ट्र अकादमी ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन मंसूरी में आई०ए०एस० तथा अन्य उच्च अधिकारियों के लिए समय–समय पर नवीनीकरण पाठ्यक्रमों का प्रबन्ध किया जाता है। कई बार कर्मचारियों के लिये विभागीय प्रशासन द्वारा सेमीनार तथा भाषणों (Lectures) का भी प्रबन्ध किया जाता है ताकि कर्मचारी एक–दूसरे के तथा अधिक अनुभवी अधिकारियों के अनुभव से लाभ उठा सकें।

दूसरा ढंग कर्मचारी द्वारा अपनी योग्यता में स्वयं प्रयास से वृद्धि करना है। क्योंकि योग्यता में वृद्धि करना एवं अतिरिक्त ज्ञान द्वारा अनुभवात्मक व्यापकता प्राप्त करना राज्य का ही कर्त्तव्य नहीं, इसके लिए कर्मचारी की रूचि तथा प्रयास का होना आवश्यक है। इसलिए कर्मचारियों को अपनी योग्यता (Qualifications) में वृद्धि तथा सुधार

करने का अवसर प्रदान करना चाहिए। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये उन्हें आवश्यक सुविधाएं देनी चाहिए ताकि वे प्रशासन सम्बन्धी नवीन अनुसन्धानों एवं प्रयोगों का निरीक्षण तथा पर्यवेक्षण प्राप्त कर सकें। कर्मचारियों के लिए इस कार्य के लिए वेतन सहित अवकाश अथवा छात्रवृत्ति आदि की व्यवस्था होनी चाहिए ताकि वे पदोन्नति प्राप्त के लिए अपनी योग्यता में वृद्धि कर सकें। यदि आवश्यक हो तो उनके लिये विदेशों में जाने के लिए स्वीकृति तथा छात्रवृत्ति आदि की व्यवस्था भी करनी चाहिए। इस प्रकार के प्रयत्नों तथा योग्यता वृद्धि (Improve Qualifications) को लेखा कर्मचारी की व्यक्तिगत फाइल में सम्मिलित किया जाए और पदवृद्धि अथवा वेतन वृद्धि के समय उसका प्रयोग किया जाना चाहिए।

आधुनिक काल में प्रवेशोपरान्त प्रशिक्षण की महत्ता को लगभग सभी देशों में अनुभव किया जाने लगा है। भारत में भी इसे विशेष महत्त्व दिया जाता है। इसी उद्देश्य से विभिन्न प्रकार के सरकारी पदाधिकारियों के समय समय पर नवीनीकरण पाठ्यक्रमों, सेमीनार की व्यवस्था की जाती है। कर्मचारियों को अपनी योग्यता में वृद्धि करने के लिए अध्ययन अवकाश (Study Leave), छात्रवृत्तियां तथा अन्य सुविधाएं दी जाती हैं।

अन्य प्रकार (Other Types)—चाहे मुख्य तौर पर प्रशिक्षण के उपरोक्त प्रकारों को ही महत्त्व दिया जाता है परन्तु फिर भी प्रशिक्षण की विधि के आधार पर इसके और भी कई प्रकार हैं जिनका वर्णन निम्न प्रकार है—

4. **विभागीय तथा केन्द्रीय प्रशिक्षण** (Departmental and Central Training)—जब किसी विभाग द्वारा प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाए जिसमें नए कर्मचारियों एवं पदाधिकारियों को वरिष्ट अधिकारियों द्वारा प्रशिक्षण दिया जाए तो उसे विभागीय प्रशिक्षण कहते हैं। इसके उल्ट जब सभी विभागों के कर्मचारियों के लिए प्रशिक्षण का प्रबन्ध सरकार द्वारा किसी केन्द्रीय संस्था में किया जाए तो उसे केन्द्रीय प्रशिक्षण कहते हैं। भारत में प्रशासकीय सेवाओं के प्रशिक्षण की व्यवस्था केन्द्रीय शासन द्वारा दी जाती है।

5. **अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन प्रशिक्षण** (Short and Long term Training)—इन दोनों में अन्तर कवल अवधि का है। यदि प्रशिक्षण की अवधि बहुत कम (कुछ सप्ताह या महीने) हो तो उसे अल्पकालीन प्रशिक्षण कहत हैं जैसे संकट काल में सैनिकों को अल्पकालीन प्रशिक्षण दिया जाता है। परन्तु जब प्रशिक्षण की अवधि एक लम्ब समय के लिए हो तो उसे दीर्घकालीन प्रशिक्षण कहते हैं। जैसे भारत में आई० ए० एस० के पदाधिकारियों को एक वर्ष के लिए राष्ट्रीय अकादमी ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन में प्रशिक्षण दिया जाता है।

6. **कलात्मक एवं आधारभूत प्रशिक्षण** (Skill and Background Training)—जब कर्मचारियों को किसी विशेष कला में निपुण करने के लिए प्रशिक्षण दिया जाये तो उसे कलात्मक प्रशिक्षण कहते हैं। पुलिस कर्मचारियों का अपराधों की रोकथाम करने तथा अपराधियों को पकड़ने में प्रशिक्षण देना इसी प्रकार के प्रशिक्षण का उदाहरण है। इसकी तुलना में जब प्रशिक्षण किसी सामान्य विषय तथा सामग्री के सम्बन्ध में दिया जाए ताकि कर्मचारी प्रशासन सम्बन्धी सभी समस्याओं को समझ सकें तो उसे आधारभूत प्रशिक्षण कहत हैं। ऐसी दशा में कर्मचारियों को उदार शिक्षा (Liberal Education) पर आधारित सामान्य विषयों में शिक्षा दी जाती है। राष्ट्रीय अकादमी ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन मंसूरी में प्रशासकीय सेवाओं में कर्मचारियों को इसी प्रकार का प्रशिक्षण दिया जाता है।

प्रशिक्षण पद्धतियां

(Methods of Training)

कर्मचारियों को प्रशिक्षण देने के लिए कई प्रकार की विधियों को अपनाया जाता है। प्रशिक्षण देने की मुख्य विधिया निम्न प्रकार हैं—

1. **अनुभव द्वारा प्रशिक्षण** (Training through Experience)—इस विधि के अनुसार कर्मचारियों को तुरन्त काम पर लगा दिया जाता है ताकि वे भी काम करते हुए अपने अनुभव द्वारा स्वयं प्रशिक्षित हो जाएं। यह विधि प्रशिक्षण तथा त्रुटि के सिद्धान्त पर आधारित है जिसका अभिप्राय है काम करो और सीखो। इस विधि में कर्मचारी अपने विभाग के उच्च अधिकारियों से आदेश प्राप्त करते हैं और आवश्यकता पड़ने पर उनका परामर्श लेते हैं। यह सिद्धान्त इस बात पर आधारित है कि प्रशासन एक कला है जिसमें निपुणता व्यावहारिक ज्ञान द्वारा प्राप्त की जा सकती है। इस पद्धति के अन्तर्गत नए भर्ती होने वाले कर्मचारियों को सीधे काम पर लगा दिया जाता है और उन्हें इस प्रकार के काम सौंपे जाते

हैं जिनसे उनका अनुभव धीरे–धीरे बढ़ता जाता है और अन्त में वे अपने अनुभव से ही अपने कार्यों के सम्बन्ध में पूर्ण रूप से प्रशिक्षित हो जाते हैं। यह सिद्धान्त इसलिए अच्छा है क्योंकि अनुभव के द्वारा प्राप्त की हुई वस्तु एवं ज्ञान स्थायी तथा अधिक महत्त्व का होता है। परन्तु इसमें दोष यह है कि परीक्षण एवं त्रुटि की विधि के कारण प्रशासनिक कार्य–कुशलता का अभाव होता है जो सार्वजनिक हितों के विपरीत है।

2. **औपचारिक साधनों द्वारा** (By Formal Instructions)–इस विधि के अन्तर्गत कर्मचारियों को प्रशिक्षण उसी प्रकार दिया जाता है जिस प्रकार कक्षाओं में विद्यार्थियों को शिक्षा दी जाती है। उच्च पदाधिकारी अपने अधीन कर्मचारियों को व्याख्यानों, आदेशों तथा हिदायतों द्वारा प्रशासन के सिद्धान्तों, विषय में तथा विभाग की व्यावहारिकता के बारे में निर्देश देते हैं जिससे कर्मचारियों को अपने कार्य के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त होता है। इसी विधि द्वारा कर्मचारियों को विभागीय सूचनाएं दी जाती हैं।

3. **संचारण द्वारा प्रशिक्षण** (Training through Communication)–प्रशिक्षण की एक और विधि संचारण भी है। इसके द्वारा कर्मचारियों को उनके विभाग से सम्बन्धित नियमों तथा समस्याओं से अवगत करवाया जाता है ताकि वे अपने विभाग के नियमों तथा समस्याओं को समझ सकें तथा उनका समाधान कर सकें। इस विधि द्वारा विभागीय अध्यक्ष कर्मचारियों को उनके कर्त्तव्यों, उत्तरदायित्वों, प्रतिबन्धों तथा विशेषाधिकारों के सम्बन्ध में सूचनाएं भेजते है।

4. **सम्मेलन तथा वर्गीय वाद–विवाद द्वारा प्रशिक्षण** (Training through Conference and Group Discussion)–कर्मचारियों को प्रशिक्षण देने के लिए कई बार इस विधि को भी अपनाया जाता है। इस विधि के अनुसार एक या अनेक विभागों के प्रशिक्षणार्थियों का एक सम्मेलन बुलाया जाता है जिसकी अध्यक्षता किसी उच्च अधिकारी द्वारा की जाती है। इस सम्मेलन में कुछ चुनी हुई समस्याओं पर विचार–विमर्श होता है। कर्मचारी अपने–अपने विचार स्वतन्त्रापूर्वक प्रकट कर सकते हैं। अध्यक्ष केवल सलाह या सुझाव के रूप में हस्तक्षेप करता है। उसका मुख्य कार्य कर्मचारियों का पथ–प्रदर्शन करना होता है। इस विधि का मुख्य उद्देश्य कर्मचारियों को परस्पर विचार–विमर्श द्वारा प्रशासकीय समस्याओं के सम्बन्ध में ज्ञान प्रदान करना तथा उनके समाधान के लिए प्रयास करना होता है। कर्मचारी एक दूसरे के विचारों से अपने ज्ञान में वृद्धि करते हैं। इन सम्मेलनों में कर्मचारियों को कई नए अनुभव होते हैं जिससे उनके दृष्टिकोण की व्यापकता बढ़ती है। इस विधि का प्रयोग उच्च अधिकारियों के प्रशिक्षण के लिए किया जाता है।

उपरोक्त वर्णित पद्धतियों में से किसी भी एक पद्धति का प्रयोग पदाधिकारियों को प्रशिक्षा प्रदान करने के लिए किया जा सकता है। परन्तु इसके लिए यह जरूरी है कि प्रशिक्षणार्थियों को प्रशिक्षण देने वालों का ज्ञान अधिक होना चाहिए। उन्हें सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक दोनों ही प्रकार का ज्ञान होना चाहिए ताकि वे प्रशिक्षणार्थियों का मार्गदर्शन कर सकें और उनकी समस्याओं का समाधान कर सकें।

भारत में उच्च लोक सेवाओं का प्रशिक्षण

भारत में उच्च लोक सेवाओं में प्रशिक्षण की व्यवस्था का निरन्तर विकास हो रहा है। भर्ती हेतु परीक्षाओं द्वारा उच्च लोक सेवा हेतु जो स्नातक चुने जाते हैं, उन्हें प्रशिक्षण हेतु प्रशिक्षण अकादमी में भेजा जाता है। भारत में स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व केन्द्रीय और प्रान्तीय लोक सेवाओं हेतु प्रशिक्षण की कोई सुनियोजित तथा समन्वित व्यवस्था नहीं थी। कार्मिकों से यही आशा की जाती थी, कि वे अनुभव द्वारा प्रशिक्षण ग्रहण कर लेंगे। परन्तु आई० सी० एस० (I.C.S) के प्रवेशार्थियों को एक वर्ष हेतु ऑक्सफोर्ड अथवा कैम्ब्रिज विश्वविद्यालयों में भेज दिया जाता था, जहाँ उनको भारतीय इतिहास, सरकारी फौजदारी कानून एवं प्रक्रिया और भारतीय भाषाओं पर कुछ व्याख्यान दिये जाते थे। स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत सरकार ने लोक सेवाओं के गठन और प्रशिक्षण की ओर कुछ ध्यान दिया और इसके बाद समय–समय पर प्रशिक्षण हेतु प्रगतिशील कार्य होते रहे हैं। भारतीय लोक सेवाओं के प्रशिक्षण हेतु केन्द्र तथा राज्य स्तर पर अनेक प्रशिक्षण संस्थान सरकार द्वारा स्थापित किये जा चुके हैं। मार्च 1985 में भारत सरकार द्वारा कार्मिक, जन अभियोग एवम् पेंशन नामक नये मन्त्रालय की स्थापना की गयी है। इसका एक महत्वपूर्ण विभाग कार्मिक और प्रशिक्षण विभाग है। जनवरी 31, 1986 को भारत के प्रधान मन्त्री ने यह आदेश दिया कि देश के सभी आई० ए० एस० अधिकारियों को अनिवार्य रूप से प्रतिवर्ष कम से कम एक सप्ताह का प्रशिक्षण अवश्य दिया जाना चाहिए। अतः यह स्पष्ट होता जा रहा है, कि प्रशिक्षण के महत्त्व को स्वीकार किया जा रहा है।

प्रशिक्षण व्यवस्था को अच्छी प्रकार से समझने हेतु वहाँ भारतीय लोक सेवाओं में से कुछ के प्रशिक्षण को विस्तार से दिया जा रहा है।

1. भारतीय प्रशासनिक सेवा हेतु प्रशिक्षण व्यवस्था:

भारत में स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व आई० सी० एस० (I.C.S) के अधिकारी प्रशिक्षण हेतु इंग्लैण्ड भेजे जाते थे। युद्ध के कारण जब ऐसा न हो सका तो देहरादून में एक प्रशिक्षण कैम्प खोला गया। सन् 1947 में दिल्ली में आई.ए.एस. (I.A.S.) के अधिकारियों के प्रशिक्षण हेतु एक प्रशिक्षण स्कूल की स्थापना की गई। वर्तमान में प्रशिक्षण सर्वप्रथम "लाल बहादुर शास्त्री एकेडमी", मसूरी में होता है। इसके बाद वह राज्यों में व्यावहारिक प्रशिक्षण या काम पर प्रशिक्षण हेतु चले जाते हैं। और अन्त में उन्हें फिर से एकेडमी में प्रशिक्षण हेतु आना होता है।

सर्वप्रथम चार माह का आधारभूत पाठ्यक्रम एकेडमी मसूरी में पूरा करवाया जाता है। इसमें आई.ए.एस., आई.पी.एस., आई.एफ.एस. आदि सभी प्रशिक्षाणार्थी साथ-साथ प्रशिक्षण करते हैं। इस पाठ्यक्रम में निम्नलिखित विषयों का ज्ञान करवाया जाता है।

(1) लोक प्रशासन प्रबन्ध एवं व्यवहार विज्ञान,

(2) कानून,

(3) राजनीति के सिद्धान्त एवं भारत का संविधान,

(4) अर्थशास्त्र एवं पंचवर्षीय योजना,

(5) भारतीय इतिहास एवं संस्कृति,

(6) एवं हिन्दी

इसके पश्चात् आई. ए. एस. (I.A.S) के अतिरिक्त सेवाओं के प्रशिक्षणार्थी प्रशिक्षण हेतु अपने सम्बन्धित संस्थानों को चले जाते हैं। आई. ए. एस. (I.A.S.) के प्रशिक्षणार्थी इसी एकेडमी में व्यावसायिक प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं। यहां इन्हें आधारभूत पाठ्यक्रम के उपरोक्त 6 विषयों के अलावा क्षेत्रीय भाषा का भी ज्ञान दिया जाता है। व्यावसायिक प्रशिक्षण के बाद इन्हें 12 माह अर्थात् एक वर्ष के लिए उनके संवर्ग (Cadre) के अनुसार राज्यों में भेज दिया जाता है। इस काल में इन्हें प्रशासन के विभिन्न स्तर पर विभिन्न अधिकारियों के पर्यवेक्षण में काम करने का मौका दिया जाता है। प्रशिक्षणार्थी एक पद से दूसरे पद पर थोड़े-थोड़े समय हेतु लगाये जाते हैं। इस प्रशिक्षण को कार्य पर प्रशिक्षण कहा जा सकता है। सभी प्रशिक्षणार्थियों को इस दौरान पर्यवेक्षण एवं मार्ग-दर्शन दिया जाता है। इसके पश्चात् एक माह के लिए भारत दर्शन हेतु भ्रमण पर ले जाया जाता है। पन्द्रह दिन के सिविल डिफेंस का प्रशिक्षण दिया जाता है तथा लगभग तीन सप्ताह सेना के साथ रखा जाता है। अन्त में वह फिर से 3 माह के प्रशिक्षण हेतु "लाल बहादुर एकेडमी, मसूरी" आते हैं। इस काल के प्रशिक्षण के माध्यम से ज्ञान एवं व्यवहार को मिलाकर देखा जाता है। यह समस्या समाधान का प्रयास होता है। प्रशिक्षणार्थी अपनी शंकाओं का समाधान करते हैं। इस प्रकार आई.ए.एस. के प्रशिक्षण की कुल अवधि लगभग 2¼ वर्ष रखी गयी है। अन्त में संघीय लोक सेवा आयोग द्वारा एक परीक्षा एकेडमी मसूरी में ली जाती है। इस परीक्षा में सफलता प्राप्त करने पर ही नियुक्ति को स्थायी किया जाता है।"

2. भारतीय पुलिस सेवा हेतु प्रशिक्षण व्यवस्था:

भारतीय पुलिस सेवा के अधिकारियों को व्यावसायिक प्रशिक्षण "सरदार पटेल पुलिस एकेडमी", हैदराबाद में दिया जाता है यहां इन्हें विभिन्न विषयों जैसे दण्ड विधि, दण्ड प्रक्रिया, भारतीय साक्ष्य अधिनियम, फौजदारी कानून, दीवानी कानून, भारतीय संविधान आदि का ज्ञान करवाया जाता है। इसके अलावा विशेष महत्त्व शारीरिक प्रशिक्षण जैसे पी. टी. ड्रिल (Drill) तथा हथियार (अशस्त्र-शस्त्र) सम्बन्धी प्रशिक्षण भी दिया जाता है। मोटर, घुड़सवारी, ऊंट सवारी आदि का भी प्रशिक्षण दिया जाता है। इन्हें सेना इकाई में काम पर प्रशिक्षण प्राप्त करने हेतु भी भेजा जाता है। एकेडमी में उन्हें एक वर्ष हेतु काफी कठिन प्रशिक्षण प्राप्त करना होता है तथा बाद में इन्हें जिलों में पुलिस प्रशासन का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करने हेतु भेजा जाता है। जिलों में प्रशिक्षण प्रायः एक वर्ष तक चलता है और प्रशिक्षणार्थी पुलिस विभाग के विभिन्न छोटे-मोटे पदों पर कार्य करके व्यावहारिक प्रशिक्षण प्राप्त करता है।

पुलिस एकेडमी में अब सिंडीकेट पद्धति तथा गोष्ठियों के माध्यम से प्रशिक्षण देने की शुरूआत कर दी गई है। कुछ नये विषय जैसे अपराध तथा इस सम्बन्ध में कार्य करने का ढंग, पुलिस और लोक-प्रशासन, अपराधी मनोविज्ञान, जनता और प्रशासन पुलिस कार्य में कम्प्यूटर आदि। अब इन्हें अपराध विरोध, भीड़ को तितर-बितर करने, यातायात नियन्त्रण, तस्करों का सामना

और आतंकवादी गतिविधियों से निपटने का प्रशिक्षण भी दिया जाने लगा है। इस प्रकार एकेडमी और जिले में विभिन्न पदों पर रह कर प्रशिक्षण प्राप्त करने के बाद अधिकारी स्थायी हो जाता है। आई. पी. एस. अधिकारी को प्रशिक्षण के बाद सहायक अधीक्षक के पद पर नियुक्त किया जाता है।

3. भारतीय विदेश सेवा हेतु प्रशिक्षण व्यवस्थाः

भारतीय विदेश सेवा के प्रवेशार्थी को लगभग 3 वर्ष के प्रशिक्षण कार्यक्रम से होकर गुजरना पड़ता है। इनके प्रशिक्षण की वर्तमान व्यवस्था निम्नलिखित है:

4 महीने–आधारभूत प्रशिक्षण मसूरी प्रशिक्षण एकेडमी में दिया जाता है।

5 महीने–इंडियन स्कूल ऑफ इंटरनेशनल स्टडीज, नई दिल्ली में दिया जाता है।

6 महीने–राज्यों के जिलों में प्रशिक्षण होता है।

6–8 महीने–विदेश मन्त्रालय में प्रशिक्षण होता है।

इसके अलावा उन्हें कुछ समय हेतु सेना की इकाई के साथ रखा जाता है, तथा विदेशी भाषाओं में प्रशिक्षण का प्रबन्ध भी किया जाता है। इन्हें उन विषयों के ज्ञान पर भी प्रशिक्षण दिया जाता है, जिन्हें भारतीय विदेश सेवा के लिये आवश्यक समझा जाता है।

4. भारतीय आडिट और एकाउन्ट सेवा (I.A.A.S.) हेतु प्रशिक्षण व्यवस्थाः

भारतीय लेखा–परीक्षण और लेखा–सेवा के परीवीक्षाधीनों को विभागीय प्रशिक्षण हेतु आई. ए. ए. एस. प्रशिक्षण एकेडमी, शिमला में एक वर्ष के संस्थागत प्रशिक्षण हेतु भेजा जाता है। यहां प्रशिक्षण उन्हीं विषयों में दिया जाता है, जिनका उनके काम से प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है। प्रशिक्षण पाठ्यक्रम के प्रमुख विषय हैं जैसे लागत लेखा, लेखा परीक्षण, लेखा संहिता, मौलिक नियम, सरकारी लेखा और लेखा परीक्षण के सिद्धान्त, आर्थिक सिद्धान्त और आर्थिक विकास, संसदीय वित्तीय नियन्त्रण और भारतीय वित्तीय व्यवस्था, भारतीय संविधान, वाणिज्यिक बही खाता, लागत और प्रबन्ध लेखा आदि। इसके अलावा परीवीक्षाधीनों को कार्य का व्यावहारिक अथवा प्रयोगात्मक प्रशिक्षण देने हेतु विभिन्न महा–लेखा अधिकारी (A.G) के कार्यालय में योग्य, अनुभवी और वरिष्ठ अधिकारियों के साथ सम्बद्ध कर दिया जाता है। इस प्रकार कार्यालयों में कार्य करते हुए वे प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं प्रशिक्षण के पश्चात् दो विभागीय परीक्षाएं उत्तीर्ण करनी होती हैं, जिसका आयोजन आई.ए.ए. एस प्रशिक्षण एकेडमी, शिमला में ही होता है। इसके बाद ही सहायक महा–लेखा अधिकारी (A.A.G) के पद पर नियुक्त कर दिया जाता है।

5. भारतीय आयकर सेवा हेतु प्रशिक्षण व्यवस्थाः

इस सेवा के अधिकारियों का विभागीय संस्थागत प्रशिक्षण केन्द्रीय प्रत्यक्ष कर प्रशिक्षण एकेडमी, नागपुर में 18 माह का होता है। इस प्रशिक्षण काल में उन्हें आयकर अधिनियम, भारतीय वित्त व्यवस्था, प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष कर, आयकर कानून आदि विषयों का ज्ञान कराया जाता है, जो उनके कार्य से सम्बन्धित होते हैं।

6. भारतीय डाक सेवा हेतु प्रशिक्षण व्यवस्थाः

इस सेवा के अधिकारियों का प्रशिक्षण लगभग दो वर्ष का होता है, जिसमें से चार माह का प्रशिक्षण डाक सेवाओं के संचालन से सम्बन्धित पोस्ट एण्ड टेलीग्राफ ट्रेनिंग सेन्टर, सहारनपुर में तथा 16 माह का व्यावहारिका एवं प्रयोगात्मक प्रशिक्षण विभिन्न अधीनस्थ पदों पर कार्य करा के दिया जाता है।

7. भारतीय रेलवे सेवा हेतु प्रशिक्षण व्यवस्थाः

इस सेवा के अधिकारियों के प्रशिक्षण हेतु रेलवे प्रशासन ने बड़ौदा में प्रशिक्षण संस्थान की स्थापना की है। यहां अधिकारियों को यातायात, परिवहन आदि के नियमों एवं अन्य व्यावहारिक बातों का प्रशिक्षण दिया जाता है।

8. केन्द्रीय सचिवालय सेवा हेतु प्रशिक्षण व्यवस्थाः

भारत में केन्द्रीय सचिवालय सेवा के अधिकारियों के प्रशिक्षण हेतु सरकार ने नई दिल्ली में सन् 1948 में सेक्रेटेरियट प्रशिक्षण विद्यालय (Secretariat Training School) की स्थापना की थी। यहां अनुभाग अधिकारी (Section Officer) सहायक (Assis-

tant) तथा लिपिकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था है। इसके अलावा इस विद्यालय में केन्द्रीय सचिवालय के अधिकारियों हेतु कई प्रकार के नवीनीकरण पाठ्यक्रम की भी व्यवस्था की जाती है। यहां प्रशिक्षण के व्यावहारिक पक्ष पर अधिक ध्यान दिया जाता है।

प्रशिक्षण विधियां (तरीके)

प्रशिक्षण कार्यक्रम की सफलता उसे प्रदान करने की विधि (तरीके) पर बहुत निर्भर करती है। किसी संगठन मे प्रशिक्षण निम्नलिखित विधि से दिया जा सकता है। इनमें से कौन सा तरीका कहां, कब अपनाया जाये यह तो संगठन अपने साधन एव आवश्यकताओं के अनुसार करता है। प्रमुखतः प्रशिक्षण विधियां निम्नलिखित हैं:

1. **व्याख्यानः** प्रारम्भ से ही प्रशिक्षण की प्रमुख विधि व्याख्यान रहा है। 25–30 लोगों को एक प्रशिक्षक आसानी से इस माध्यम से प्रशिक्षण दे सकता है। विभिन्न विषयों पर प्रशिक्षक कक्षा में व्याख्यान देता है, जिससे लोक सेवक विषय ज्ञान प्राप्त करते हैं।
2. **निर्देशित सम्मेलनः** यह विधि विश्वविद्यालयों की गोष्ठी (Discussion Class) जैसी होती है। यहाँ प्रशिक्षक और शिक्षार्थी दोनों ही विचारों का आदान–प्रदान कर सकते हैं।
3. **सिंडिकेट पद्धतिः** इस विधि में कक्षा (क्लास) को छोटे–छोटे (5–8) सदस्य दलों में विभाजित कर दिया जाता है। हर दल का एक अध्यक्ष होता है, जो अपने दल के साथ विचार विमर्श करके विषय समस्या पर प्रतिवेदन (रिपोर्ट) प्रस्तुत करता है। फिर सारी क्लास के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है। अब अन्य सदस्य आपत्ति उठाते है, तो सिंडीकट के सदस्य अपने पक्ष का बचाव करते हैं।
4. **केस पद्धतिः** यह विधि (पद्धति) हार्वड बिजिनेस द्वारा विकसित की गई है और अनेक संगठनों में अन्य प्रशिक्षण के लिए इसका उपयोग किया जाने लगा है। इनमें किसी निर्णय की प्रक्रिया का अध्ययन किया जाता है। इस पद्धति से प्रशिक्षार्थी प्रशासन की वास्तविक समस्याओं के अधिक नजदीक आ जाता है।
5. **काम करके सीखने की विधिः** यह व्यावहारिक एवं प्रयोगात्मक प्रशिक्षण विधि है। इसमें नये कार्मिको अनुभवी सेवकों के अधीन काम करने को भेजा जाता है। काम करके नये अधिकारी वास्तविक ज्ञान प्राप्त करते हैं। भारत में ब्रिटिश काल में इस विधि का प्रारम्भ नये आई, सी, एस. (I.C.S) के अधिकारियों हेतु किया गया था। वर्तमान में भी प्रयोगात्मक एवं व्यावहारिक हेतु यह विधि कार्यरत है।
6. **अन्य विधियाँः** इन विधियों के अलावा प्रशैक्षणिक भ्रमण, ग्राम भ्रमण, सिनेमा अनुभवी प्रशिक्षकों की देखरेख में स्वाध्याय आदि भी वर्तमान में प्रशिक्षण के साधन हैं।

भारत में लोक सेवाओं में प्रशिक्षण देने हेतु उपरोक्त कोई भी विधि अपनाई जाती है। एक ही प्रशिक्षण पाठयक्रम कोर्स में कई प्रकार के प्रशिक्षण के साधनों का उपयोग किया जा सकता है। नये लोक सेवकों हेतु साधारणतः व्याख्यान विधि उपयोगी हैं, किन्तु ऐसे अधिकारी जो 15–20 वर्ष सेवा में रह चुके हैं, उनके लिए अन्य विधियाँ जैसे सम्मेलन, गोष्ठी, सिंडीकेट आदि ज्यादा उपयोगी हो सकती है। प्रशिक्षण विधि कोई भी हो लोक सेवकों को ऐसा प्रशिक्षण दिया जाना चाहिये कि वे अपने उत्तरदायित्वों और कार्यो को उचित रूप से सम्पन्न कर सकें। भारतीय लोक सेवाओं के प्रशिक्षण में सभी विधियों के प्रयोग का प्रयास किया जा रहा है। प्रायः सैंडविच कोर्स के दौरान आधारभूत पाठ्यक्रम भाषण तथा विचार विमर्श पद्धति से कक्षा में काम द्वारा सीखने एवं पुनः एकेडमी से समूह विचार विमर्श (ग्रुप डिसक्शन) पर अधिक बल दिया जाता है। सिनिअर्स कोर्स तो पूरी तरह विचार–विमर्श पर आधारित रहता है।

भारतीय प्रशिक्षण व्यवस्था के दोषः

वर्तमान में भारतीय प्रशिक्षण व्यवस्था की अनेक प्रशासनिक समस्याएं एवं दोष हैं। कुछ प्रमुख दोष निम्नलिखित हैं:

(1) योग्य तथा क्षमतावाले प्रशिक्षकों का अभाव है, जो संगठन के कार्मिकों को ज्ञान देने के साथ–साथ उनकी व्यावहारिक समस्याओं में भी रूचि ले सकें।

(2) प्रशिक्षण औपचारिक तथा संस्थागत अधिक होता है।

(3) प्रशिक्षण के समय की समस्या भी उल्लेखनीय है। अधिक लम्बे समय तक दिए जाने वाले प्रशिक्षण का भार कोई भी सरकार वहन नहीं कर सकता। कम समय में दिया गया प्रशिक्षण प्राय: प्रभावहीन रहता है। क्योंकि ऐसा प्रशिक्षण केवल औपचारिकता तक ही सीमित रहता है।

(4) रिफ्रेशर पाठ्यक्रम की संख्या एवं क्रम इतना कम तथा सीमित होता है कि लोक सेवक प्रशासन एवं नियोजन की आधुनिक तकनीकों से अपरिचित रह जाते हैं।

(5) प्राय: प्रशिक्षण में ज्ञान के नवीनीकरण को कम अवसर दिया जाता है।

(6) वर्तमान में सैद्धान्तिक पक्ष पर अधिक जोर दिया जाता है।

(7) जिन लोक सेवकों को प्रशिक्षण केन्द्रों में भेजा जाता है, उनमें से अधिकांश की भावना यह होती है कि सरकार ने भेजा है तो कोर्स को पूरा कर लें। उन्हें स्वत: प्रशिक्षण की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती है। अत: वे लोग प्रशिक्षण कार्यक्रमों में गम्भीर होकर ध्यान नहीं देते हैं। प्रशिक्षण तभी प्रभावी हो सकता है जब प्रशिक्षार्थी इसकी आवश्यकता को समझें।

(8) प्रशिक्षण कार्यक्रम की सफलता को आंकने के लिए कोई शोध नहीं किया जाता है। प्राय: यह माना जाता है कि व्यवहार में प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित व्यक्ति के मध्य प्रशासकीय कुशलता की दृष्टि से कोई फर्क नहीं है। इसी कारण प्रशिक्षण अरूचिपूर्ण हो जाता है।

सुझाव:

भारत में लोक सेवकों हेतु प्रशिक्षण आवश्यक एवं लाभकारी है। प्रशिक्षण व्यवस्था में कुछ समस्याएं एवं दोष हैं, जिन्हें दूर करना जरूरी है। अत: प्रशिक्षण व्यवस्था को सुदृढ़ एवं उपयोगी करने हेतु निम्नलिखित सुझाव दिये जा सकते हैं:

1. भारत में प्रशिक्षण हेतु एक दीर्घकालीन नीति तथा योजना बनायी जानी चाहिये जिससे आवश्यकतानुसार संस्थान, केन्द्रीय सामग्री तथा कार्यक्रम तैयार किये जा सकें।
2. प्रत्येक मन्त्रालय/विभाग में एक मुख्य प्रशिक्षण अधिकारी रखा जाये जो विभागों में प्रशिक्षण कार्यों का समन्वय करे।
3. प्रशिक्षक वे लोग ही बनाये जाये जो प्रशासकीय कुशलता के धनी रहें हो और स्वयं प्रशिक्षक बनने की इच्छा रखें। प्रशिक्षक तैयार करने के विशेष प्रयास किये जायें।
4. प्रशिक्षण सामग्री तैयार एवं विकसित करने पर विशेष बल दिया जाये।
5. प्रशिक्षण में लोक सेवकों की रूचि विकसित करने हेतु आवश्यक है कि प्रशिक्षित व्यक्तियों को यही पद दिए जाएं जहां प्रशिक्षण काम आ सके और साथ ही पदोन्नति आदि हेतु प्रशिक्षण आवश्यक कर दिया जायें।
6. प्रशिक्षण व्यावहारिक होना चाहिये। योग्य और अनुभवी जिलाधीशों अधिकारियों की देख-रेख में प्रशिक्षणार्थी को प्रशिक्षण दिया जाए।
7. प्रशिक्षार्थी को घटना कार्य (Case Work) भी करना चाहिये, जिससे कि वह कानून आदि विषयों से अधिक निकटता प्राप्त कर सकें।
8. प्रशिक्षणार्थी के दृष्टिकोण एवं ज्ञान को व्यापक बनाने हेतु विषयों का यथेष्ट ज्ञान कराया जाना चाहिये।
9. स्थानीय प्रशिक्षण पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए।

महत्वपूर्ण प्रश्न

1. उच्च लोक सेवकों की भर्ती कैसे होती है?
2. लोक सेवकों की भर्ती की विभिन्न विधियाँ क्या है?
3. आन्तरिक तथा बाह्य भर्ती क्या है? इनके गुणों व दोषों का वर्णन कीजिए।
4. भारत में उच्चतर लोक सेवकों के प्रशिक्षण की विधि का वर्णन कीजिए।
5. प्रशिक्षण क्या है? लोक सेवकों को प्रशिक्षण के उद्देश्यों का विवेचन कीजिए।
6. भारतीय प्रशिक्षण के दोषों का उल्लेख करें एवं सुधार के उपाय सुझायें।

अध्याय 16

पदोन्नति

Promotion

पदाधिकारी प्रशासन की सबसे आकर्षक एवं महत्वपूर्ण समस्या पदोन्नति है। किसी भी प्रशासकीय संगठन में कार्यकुशलता बनाये रखने के लिए उसके पदाधिकारियों को कुछ प्रेरणा प्रदान करना आवश्यक है ताकि वे उत्साहित होकर सत्परता तथा कुशलता से अपने कर्त्तव्य का पालन करें। पदाधिकारियों के लिए पदोन्नति से बढ़कर और कोई प्रेरणा नहीं है। पदोन्नति से अभिप्राय निम्न पद से उच्च पद अथवा उत्तरदायित्व की ओर जाने में है। एल० डी० ह्वाइट (L.D. White) के शब्दों में, "पदोन्नति का अर्थ यह है कि वर्तमान स्थिति में अधिक कठिन कार्य तथा अधिक उत्तरदायित्व वाले पद पर नियुक्ति जिसके साथ पदशीर्ष (Title) में परिवर्तन तथा प्रायः वेतन में वृद्धि होती है।" यद्यपि स्थानान्तरण द्वारा भी प्रत्येक अधिकारी की दशा में परिवर्तन होता है, परन्तु इसे पदोन्नति नहीं कहा जा सकता है। स्थानान्तरण द्वारा केवल एक पदाधिकारी के कार्य करने के स्थान में परिवर्तन होता है, परन्तु उसके पद तथा स्थिति में कोई अन्तर नहीं आता। इसी प्रकार पदोन्नति तथा वेतन वृद्धि को समान वेतनक्रम (Grade) के अन्तर्गत प्रतिवर्ष कुछ निश्चित नियमों के अनुसार वृद्धि होती है, परन्तु यह पदोन्नति नहीं है। किसी पदाधिकारी के वेतन में वृद्धि हुए बिना उस की पदोन्नति हो सकती है। पदोन्नति के पदाधिकारी की योग्यता (Qualification) में वृद्धि से भी कोई सम्बन्ध नहीं। विभिन्न प्रकार की सेवाओं एवं पदों के लिए एक ही प्रकार की शिक्षा योग्यता निश्चित की जाती है जैसे भारत में क्लर्क, सहायक (Assistant) , राज्य सेवाओं (P.C.S.) तथा केन्द्रीय उच्च सेवाओं (I.A.S., I.F.S & I.P.S. etc.) में भर्ती होने के लिए स्नातक (Graduate) होना आवश्यक है। परिणामस्वरूप यह कहा जा सकता है कि कर्त्तव्यों, उत्तरदायित्व तथा वेतनक्रम में परिवर्तन होना पदोन्नति के अनिवार्य लक्षण हैं। डॉ० त्यागी (Dr. Tyagi) के शब्दों में, "पदोन्नति से = अधिक उत्तरदायित्व, उच्च पद तथा प्रसंगवश (Incidentally) यद्यपि मौलिक रूप में नहीं, उच्च वेतनक्रम से है।"

महत्त्व (Importance):– पदोन्नति का मुख्य उद्देश्य पदाधिकारियों की कुशलता तथा आचरण में वृद्धि करना है। पदोन्नति के अभाव का पदाधिकारियों पर गम्भीर प्रभाव पड़ता है। प्रोक्टर आर्थर डब्ल्यू० (Arthur. W. Procter) के मतानुसार, "पदोन्नति की समुचित व्यवस्था की अनुपस्थिति का प्रशासन पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। कर्मचारियों की भर्ती पर इसका निराशाजनक प्रभाव होता है। कुशल तथा इच्छुक कर्मचारियों के लोकसेवाओं में प्रवेश करने का अवरोध करता है।" इसी प्रकार ह्वाइट (White) ने भी कहा है, "बुरी तरह नियोजित पदोन्नति पद्धति एक संगठन को अयोग्य कर्मचारियों के पद में वृद्धि के कारण ही नहीं, परन्तु सभी कर्मचारियों के नैतिक स्तर में गिरावट करके हानि करती है। पदोन्नति में असफल हो जाने से कर्मचारियों में सन्तुष्टता, प्रोत्साहन तथा आचरण का अभाव हो जाता है।"

अच्छी पदोन्नति पद्धति द्वारा कर्मचारियों तथा प्रबंधक वर्ग दोनों को विशेष लाभ होता है। यदि कर्मचारियों के पद स्थिति उत्तरदायित्व में वृद्धि होती है तो इसके द्वारा प्रबन्धक वर्ग उच्च पद के लिए सुयोग्य व्यक्तियों की नियुक्ति कर सकता है। आर्थर प्रोक्टर (Arthur Procter) के मतानुसार, "पदोन्नति का प्रत्यक्ष महत्त्व प्रबन्धक वर्ग के लिए है क्योंकि इसके द्वारा कर्मचारियों को पुरस्कार दिए जाते हैं तथा यह उनके लिए कार्य की प्रेरणा बना रखती है। इसकी प्रतिक्रिया प्रशासन के लगभग सभी पहलुओं पर होती है। कर्मचारी पदोन्नति से सन्तुष्ट, स्थिर तथा कुशल रहते हैं।"

पदोन्नति के आधार
(Basis of Promotion)

साधारणतया पदोन्नति के दो सिद्धान्तों–ज्येष्ठता (Seniority) एवं योग्यता (Merit) पर आधारित है। इन दोनों सिद्धान्तों के सम्बन्धों में प्रायः यह प्रश्न उठता है कि क्या पदोन्नति ज्येष्ठता के आधार पर की जाए या योग्यता के आधार पर। इस प्रश्न का निर्णय करने के लिए दोनों सिद्धान्तों के गुण तथा दोषों का अध्ययन करना जरूरी है।

ज्येष्ठता का सिद्धान्त
(Principle of Seniority)

ज्येष्ठता सिद्धान्त के अनुसार पदोन्नति ज्येष्ठता के आधार पर की जाती है। इससे अभिप्राय: यह है कि जिस कर्मचारी का अपने वर्ग के कर्मचारियों में सबसे अधिक सेवा काल होगा उसी का पदोन्नति करना चाहिए। उदाहरण के लिए यदि कोई हैड क्लर्क का स्थान रिक्त होता है तो उसी क्लर्क को पदोन्नति करना चाहिए जिसका सेवाकाल अपने वर्ग के सभी क्लर्कों में से सबसे अधिक है। इस सिद्धांत को प्राय: पदोन्नति का आधार माना जाता है और लगभग सभी देशों में अधिकांश पदों को इस सिद्धान्त के आधार पर निम्न वर्ग के कर्मचारियों को पदोन्नत करके भरा जाता है। इसके कई लाभ हैं जिसका विवरण निम्न प्रकार है–

1. इस प्रणाली का प्रथम लाभ यह है कि इसमें पदोन्नति तटस्थता तथा निष्पक्षता के आधार पर बिना किसी राजनीतिक हस्तक्षेप तथा पक्षपात से की जाती है। मेयरज (Mayers) के अनुसार, "इस पद्धति में पदोन्नति के लिए आन्तरिक झगड़े समाप्त हो जाते हैं और जिन व्यक्तियों के हाथ में पदोन्नत करने की शक्ति होती है, उन पर राजनैतिक अथवा अन्य कोई बाहरी दबाव नहीं पड़ता।"
2. यह प्रणाली अनुभव पर आधारित है। इसके अन्तर्गत केवल उसी व्यक्ति को पदोन्नत किया जाता है जिसका अनुभव अधिक हो। इससे प्रशासन की कुशलता में वृद्धि होती है।
3. इस विधि द्वारा सभी कर्मचारी सन्तुष्ट रहते हैं क्योंकि पदोन्नति न्याय के आधार पर क्रमिक रूप में बिना किसी पक्षपात के होती है।
4. इस सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक कर्मचारी को पदोन्नति के अवसर प्राप्त होते हैं जिससे उनका मनोबल उच्च रहता है। वे अपने कार्य को लगन से करते हैं और सदैव यह आशा करते रहते हैं कि समय आने पर उन्हें पदोन्नति दी जाएगी।
5. इस प्रणाली में नवयुवक उचित ढंग से सरकारी सेवा में प्रवेश नहीं कर सकते जिसके परिणामस्वरूप कर्मचारियों में कम से कम यह सन्तोष बना रहता है कि जिस अधिकारी के अधीन वे काम करते हैं, वह उनसे योग्यता तथा अनुभव में श्रेष्ठ है।
6. इससे सेवाओं में स्थायीत्व (Stability) बनी रहती है क्योंकि इस सिद्धान्त के अनुसार कर्मचारियों को यह निश्चय होता है कि अवसर आने पर उनको पदोन्नति अवश्य दी जाएगी। इसलिए वे सेवा को नहीं छोड़ते तथा इसे जीवनोपार्जन के रूप में अपनाते हैं।
7. यह सिद्धान्त वास्तविकता पर निर्भर है। ज्येष्ठता निश्चित करने में कोई कठिनाई नहीं होती। वास्तव में वह पहले से ही निर्धारित होती है। इसलिए यह सिद्धान्त सबके लिए मान्यता होता है।
8. यह सिद्धान्त स्वाभाविक है और व्यक्तियों के पारस्परिक अनावश्यक एवं अनुचित गतिरोध को समाप्त करता है। नवयुवक कर्मचारियों को अनुभवी व्यक्तियों से ऊपर नहीं बैठाता। यह पक्षपात तथा राजनीतिक प्रभाव एवं हस्तक्षेप के विरुद्ध एक रोक है। यह सिद्धान्त इतना स्पष्ट, सरल तथा वस्तुगत (Objective) है कि इसके कारण कर्मचारियों में परस्पर ईर्ष्या या नाराज़गी नहीं रहती। वे सदैव इसे अच्छा समझते हैं।

ज्येष्ठता के सिद्धान्त के दोष
(Defects of Seniority Principles)

इस सिद्धान्त के जहां पर बहुत से लाभ हैं, वहीं पर इसमें बहुत से दोष भी हैं। इसके मुख्य दोष निम्न प्रकार हैं–

1. इस सिद्धान्त का सबसे बड़ा दोष यह है कि ज्येष्ठता के आधार पर पदोन्नति वाला व्यक्ति अवश्य ही योग्य होगा। यह सम्भव है कि एक अयोग्य व्यक्ति ज्येष्ठता के आधार पर पदवृद्धि पा कर विभाग का उच्च अधिकारी बन जाए। इससे अधीनस्थ अधिकारियों में निराशा उत्पन्न होगी जिसके परिणामस्वरूप प्रशासन में अकुशलता उत्पन्न होगी।
2. इस सिद्धान्त की यह मान्यता कि सभी अधिकारी पदोन्नति के योग्य हैं, ठीक नहीं है।
3. यह सिद्धान्त इस बात का आश्वासन नहीं देता कि प्रत्येक कर्मचारी पदोन्नति द्वारा उच्च पद को प्राप्त कर सकता है तथा उपर्युक्त समय के लिए इस पद पर रह सकता है। वास्तव में ज्यों–ज्यों हम ऊपर जाते हैं, पदों की संख्या कम होती

जाती है। ऐसी दशा में सभी कर्मचारी पदोन्नति पा सकते हैं और न ही सभी कर्मचारी पदोन्नति के योग्य होते हैं। गलडन (Gladen) के अनुसार इसमें यह मान लिया जाता है कि रिक्त स्थान काफी अधिक मात्रा में उत्पन्न होते हैं परन्तु व्यवहार में ऐसी आदर्श दशाओं का पाया जाना पूर्णतया एक अनहोनी सी बात होती है। एक पदक्रम के सभी व्यक्ति पदोन्नति के लिए उपर्युक्त नहीं होते, पदोन्नतियां सामान्यतः थोड़ी होती हैं।

4. इस सिद्धांत में यह माना जाता है कि ज्येष्ठता सूची न्यायिक रूप में कर्मचारी वर्ग की आयु के अनुसार ही इस प्रकार क्रमबद्ध की जाती है, जिससे कि क्रमानुसार प्रत्येक व्यक्ति उस उच्च पद पर सेवा करने का अवसर प्राप्त कर सकग परन्तु यह ठीक नहीं। प्रत्येक व्यक्ति को आयु के अनुसार पदोन्नति प्रदान नहीं की जा सकती। पदोन्नति रिक्त स्थानो की संख्या पर निर्भर होती है और इसे क्रमानुसार प्रदान किया जाता है।

5. जब कर्मचारियों को पहले ही पता होता है कि उन्हें सेवाकाल के आधार पर पदोन्नति मिल ही जानी है तो वे उत्साह तथा लगन से कार्य नही करते। इससे प्रशासन में अकुशलता उत्पन्न होती है तथा कर्मचारियों में आत्मविश्वास, प्रगतिशील दृष्टिकोण, साहस तथा दायित्व की भावना का विकास नहीं होता। इसके साथ ही वे कर्मचारी जिन्हें पदोन्नति का अवसर प्राप्त होने की सम्भावना नहीं होती, उत्साहहीन तथा निराश हो जाते हैं। अतः यह सिद्धान्त दोनो प्रकार के कर्मचारियों के लिए हानिकारक है।

6. इस सिद्धान्त के अनुसार योग्य व्यक्तियों की परख नहीं की जा सकती। इनमें परिश्रमी तथा आलसी कर्मचारियों का समान समझा जाता है।

7. यह सिद्धान्त इसलिए भी खतरनाक है क्योंकि इनके अनुसार कुछ पदों पर ऐसे अयोग्य तथा असमर्थ कर्मचारियों की नियुक्ति हो जाती है जो उन पदों के दायित्वों को निभा नहीं सकते। फिनर (Pfiffner) के अनुसार, "ज्येष्ठता के सिद्धान्त के अनुसार पदोन्नति देने का परिणाम यह होगा कि कुछ निरीक्षीय तथा निर्देशीय पदों पर क्रैन्क विचारों वाले व्यक्तियों को पदोन्नत किया जाएगा।.....ज्येष्ठता के आधार पर उच्च पदों पर अयोग्य व्यक्तियों द्वारा भी भरा जाएगा। इससे कर्मचारियों की महत्वकांक्षा नष्ट हो जाएगी और वे प्रेरणा समाप्त हो जाएंगी जिनके द्वारा कर्मचारियों में व्यक्तित्व, साहस आत्मनिर्भरता तथा प्रगतिशील दृष्टिकोण का विकास होता है। इससे कर्मचारियों में आत्म–सन्तुष्टि तथा उदासीनता के साथ कार्य को सम्पन्न करने की भावना उत्पन्न हो जाएगी।"

8. इस सिद्धान्त के अनुसार योग्य व्यक्तियों को पदोन्नति प्राप्त करने का अवसर नहीं मिलता। विशेषकर उन नवयुवक कर्मचारियों को जो ज्येष्ठ कर्मचारियों की तुलना में अधिक योग्यता प्राप्त (Qualified) तथा कुशल होते हैं।

9. इस सिद्धान्त का समर्थन उन्हीं लोगों द्वारा किया जाता है जो प्रतिभाशाली नहीं होते तथा जो विश्वविद्यालयों से आने वाले विद्यार्थियों से मुकाबला करने से घबराते हैं।

10. यह सिद्धान्त लोकतंत्र के सिद्धांत के विरूद्ध है। इसमें सभी व्यक्तियों को पदोन्नति प्राप्त करने का अवसर नहीं मिलता।

11. यह सिद्धान्त रूढ़िवादिता को जन्म देता है। ज्येष्ठता के आधार पर पदोन्नति पाने वाले व्यक्ति प्रायः रूढिवादी, चिड़चिड़े तथा विचित्र स्वभाव के होते हैं। वे नवीन परिवर्तन तथा वज्ञानिक प्रगति, सामाजिक एवं राजनीतिक आवश्यकताओं का स्वागत नहीं करते। वे सदैव लकीर के फकीर रहते हैं। इससे प्रशासन में नवीन वैज्ञानिक तरीकों को नहीं अपनाया जा सकता तथा इसमें लाल फीताशाही जैसे दोष विद्यमान रहते हैं।

12. यह सिद्धान्त रूढ़िवादिता के कारण निर्विरोध रूप में उस राष्ट्र के लिए तो बहुत ही हानिकारक है जिसने जनकल्याण के आदर्श को अपना कर कल्याणकारी राज्य का रूप धारण किया हो।

निष्कर्ष (Conclusion)–ज्येष्ठता के सिद्धान्त के लाभों तथा दोषों के विवरण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि केवल ज्येष्ठता को ही पदोन्नति का आधार नहीं मानना चाहिए। इस सिद्धान्त को केवल निम्न पदों पर लागू किया जा सकता है। उच्च पदों पर पदोन्नति करते समय हमें योग्यता को प्राथमिकता देनी चाहिए।

योग्यता का सिद्धान्त
(Principle of Merit)

ज्येष्ठता की तुलना में पदोन्नति का दूसरा सिद्धांत है। इस सिद्धान्त के अनुसार कर्मचारियों को उनकी योग्यता तथा प्राप्तियों (Achievements) के आधार पर पदोन्नत करना चाहिए। योग्यता का अभिप्रायः एक कर्मचारी की शिक्षा मानसिक स्थिति

[illegible] तथा नेतृत्व करने की क्षमता से है। किन्तु प्रश्न यह उठता है कि कर्मचारी की योग्यता किस प्रकार देखी [illegible] योग्यता को निर्धारित करने के लिए निम्नलिखित विधियों का प्रयोग किया जा सकता है–

1. [illegible] अध्यक्ष द्वारा निर्णय (Personal Indgement of the Head of Department)
2. [illegible] पदोन्नति परीक्षा।
3. [illegible] (Service Rating)

[illegible]गीय अध्यक्ष द्वारा निर्णय

Personal Judgement of the Head of Department

[illegible] के अनुसार कर्मचारी की योग्यता की जांच के सम्बन्ध में निर्णय करने की शक्ति विभागीय अध्यक्ष को सौंप देनी चाहिए। [illegible] आधार यह है कि विभागीय अध्यक्ष का अधीन कर्मचारियों से अधिक–से–अधिक सम्पर्क रहता है जिसके कारण [illegible] उनकी योग्यता, नैतिकता, साहस, चरित्र, कर्त्तव्यपरायणता कार्य करने की क्षमता आदि के बारे में भली–भान्ति जान सकता [illegible] क्या विभागीय अध्यक्ष का कर्मचारी का अनुशासन सम्बन्धी चेतावनी कितनी बार मिल चुकी है अथवा [illegible] बार दण्ड दिया जा चुका है। इस सिद्धान्त का सबसे बड़ा गुण यह है कि यह अत्यन्त सरल विधि है। इसके द्वारा उच्च अधिकारी अपने अधीन कर्मचारियों पर नियंत्रण रख सकते हैं। इस प्रणाली के अधीन कर्मचारियों को पदोन्नति देने में कम समय लगता है और निर्णय शीघ्र हो जाता है।

परन्तु इस प्रणाली के कुछ दोष भी

1. यह सिद्धान्त छोटे संगठनों के लिए उपयोगी है जहां पर विभागीय अध्यक्ष का अपने अधीन कर्मचारियों से प्रत्यक्ष रूप से सम्पर्क होता है। परन्तु बड़े संगठनों के लिए यह उपयोगी नही है। बड़े संगठनों अथवा लोक प्रशासन जैसे व्यापक संगठनों में यह सम्भव नहीं है कि विभागीय अध्यक्ष विभाग के सभी कर्मचारियों से सम्पर्क स्थापित कर सके। एक तो कर्मचारियों की इतनी संख्या होती है कि एक व्यक्ति के लिए सभी को जानना कठिन ही नहीं बल्कि असम्भव है। दूसरे सभी कर्मचारियों की कार्यक्षमता तथा अन्य योग्यताओं का एक व्यक्ति द्वारा सही प्रकार से मूल्यांकन करना सरल नहीं है।
2. दूसरे यह प्रणाली बहुत ही आत्मपरक (Subjective) है तथा इसमें पक्षपात तथा व्यक्तिगत पसन्द अथवा नापसन्द आदि त्रुटियां पाई जाती है। इस प्रणाली मे कर्मचारी के सम्बन्ध में विभागीय अध्यक्ष की मान्यताएं व्यक्तिगत सम्बन्धों एवं सम्पर्क पर निर्भर करती है। प्रायः यह देखा जाता है कि योग्य कर्मचारी जो आत्मसम्मान के कारण अनुचित ढंग से अपने उच्च अधिकारियों की चापलूसी नहीं करते, वे सदैव पीछे रह जाते हैं और अनुचित ढंग से खुशामद करने वाले कर्मचारी आगे बढ़ जाते हैं। विभागीय अध्यक्ष खुशामदी कर्मचारियों की त्रुटियों की ओर ध्यान नहीं देते बल्कि उनकी रक्षा करते हैं। परन्तु दूसरे कर्मचारियों की छोटी–छोटी भूलों पर दण्ड नहीं देते हैं। इसके अतिरिक्त इस प्रणाली में राजनीतिक व अन्य [illegible] का भी प्रभाव होता है।

दोषों को कैसे दूर किया जाए?

(How to remove these Defects?)

इस सिद्धान्त में विद्यमान दोषों को दूर करने के लिए कुछ सुझाव इस प्रकार दिए जाते हैं–

(क) मेयर (Mayers) के अनुसार पदोन्नति का प्रश्न विभागीय अध्यक्ष के व्यक्तिगत निर्णय के स्थान पर एक निश्चित विभागीय पदोन्नति बोर्ड (Departmental Promotion Board) द्वारा करना चाहिए। उसके शब्दों में, "प्रत्येक सेवा ब्यूरो या अन्य संगठन की इकाई में प्रशासकीय अधिकारियों की एक समिति होनी चाहिए जिस पदोन्नति से सम्बन्धित सभी सिफारशें करने का उत्तरदायित्व होना चाहिए। इस समिति को पदोन्नत होने वाले सभी कर्मचारियों के चरित्र, कार्यक्षमता, पदोन्नत की योग्यताएं आदि के सम्बन्ध में पूर्ण सूचना प्रदान करने की व्यवस्था होनी चाहिए।"

(ख) यदि कोई कर्मचारी इस बोर्ड के निर्णय से संतुष्ट न हो तो उसे अपील करने का अधिकार होना चाहिए। इस बोर्ड में विभाग के मुख्य अधिकारी सम्मिलित किए जाने चाहिए। ऐसे अधिकारियों को बोर्ड में मनोनीत करते समय उनकी ज्येष्ठता तथा अन्य कार्यों एवं योग्यताओं को ध्यान में रखना चाहिए। चाहे विलोबी (Willoughby) इस सुझाव से सहमत नहीं हैं

परन्तु इस प्रणाली में कई उपयोगी बातें पाई जाती हैं। उस में काफी सीमा तक राजनीतिक तथा अन्य प्रभावों से मुक्त पाई जा सकती है।

इसलिए इस पद्धति को बहुत से देशों में अपनाया गया है तथा पदोन्नति के लिए ऐसे बोर्डों की स्थापना की गई है जो इस के सम्बन्ध में विभागीय अध्यक्ष को परामर्श देते हैं। इसीलिए भारत में केन्द्र तथा राज्य स्तर पर उच्च पदों के लिए पदोन्नतियां लोक सेवा–आयोगों के परामर्श से की जाती हैं।

पदोन्नति परीक्षा

(Promotion Examination)

कर्मचारियों की योग्यता की जांच करने के लिए परीक्षा को उपयोगी माना जाता है। भर्ती करते समय तो इस एक महत्वपूर्ण साधन के रूप में अपनाया जाता है। इसी प्रकार कर्मचारियों की योग्यता एवं कार्य–क्षमता की जांच करने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है तथा इसे वस्तुआत्मक विधि समझा जाता है। पदोन्नति से सम्बन्धित परीक्षाएं तीन प्रकार की होती हैं–

(क) **खुली प्रतियोगिता (Open Competition)**– खुली प्रतियोगिता परीक्षा में कोई भी व्यक्ति भाग ले सकता है। दूसरे शब्दों में, जब पदोन्नति की परीक्षा में विभागीय कर्मचारियों के अतिरिक्त अन्य कोई भी व्यक्ति भाग ले सकता हो तो उसे खुली प्रतियोगिता परीक्षा कहते हैं। इसके लिए यह आवश्यक नहीं है कि परीक्षा में केवल विभाग के कर्मचारी ही भाग लें। इस पद्धति के पक्ष में यह कहा जाता है कि (i) इसके द्वारा उच्च पदों के लिए चुनाव करने का क्षेत्र व्यापक बन जाता है और वर्तमान कर्मचारियों का हित भी विक्षिप्त नहीं होता। उन्हें योग्य व्यक्ति के अधीन काम करने का अवसर मिलता है। (ii) इस पद्धति के अन्तर्गत नए रक्त के सेवाओं में प्रवेश करने के कारण उनके प्रगतिशील विचारों का वर्तमान कर्मचारियों तथा प्रशासन पर प्रभाव पड़ता है। (iii) इन लाभों के अतिरिक्त इन पद्धति का एक विशेष लाभ यह है कि खुली प्रतियोगिता द्वारा वर्तमान कर्मचारियों को अपनी योग्यताओं एवं मानसिक क्षेत्र व्यापक बनाने का अवसर मिलता है।

परन्तु इस प्रणाली की आलोचना इस आधार पर की जाती है कि इसके द्वारा वर्तमान कर्मचारियों के मनोबल पर बुरा प्रभाव पड़ता है क्योंकि बाहर से नए कर्मचारियों को पुराने कर्मचारियों के उच्च पदों पर नियुक्त किए जाने से पुराने कर्मचारियों में घृणा तथा द्वेष की भावना उत्पन्न हो जाती है।

(ख) **सीमित प्रतियोगिता (Limited Competition)**– इस प्रणाली के अन्तर्गत केवल उन कर्मचारियों को प्रतियोगिता परीक्षा में बैठने की अनुमति होती है जो पहले ही सेवा में होते हैं। इस प्रणाली के अनुसार बाहर से किसी भी व्यक्ति का पदोन्नति का अवसर प्रदान नहीं किया जाता। इस प्रणाली का भारत में निम्न पदों के लिए पदोन्नत करने के लिए प्रयोग किया जाता है। केन्द्रीय सरकार इस का प्रयोग सैक्सन अधिकारी, सहायक आदि के पदों के लिए पदोन्नति करने के लिए इस विधि का प्रयोग करती है। इस प्रणाली से कर्मचारी प्रसन्न रहते हैं क्योंकि यह उनके हितों के अनुकूल है तथा इस से उन्हें इस बात का संतोष रहता है कि पदोन्नति उन्हीं में से की जाएगी। परन्तु यह सिद्धान्त सार्वजनिक तथा योग्यता सम्बन्धी सिद्धान्तों के विरुद्ध है।

(ग) **उत्तीर्ण परीक्षाएं (Pass Examinations)**– पदोन्नति के सम्बन्ध में तीसरी प्रकार की परीक्षा उत्तीर्ण परीक्षाएं हैं। इसके अन्तर्गत कर्मचारी को केवल परीक्षा में पास होना होता है तथा इस के द्वारा वह अपनी योग्यता का परिचय देता है। परीक्षा में पास होने वाले कर्मचारियों की एक सूची तैयार कर ली जाती है और जब पदोन्नति के लिए कोई रिक्त स्थान होता है तो इस सूची में प्रत्याशियों में से क्रमानुसार कर्मचारियों को पदोन्नति किया जाता है। इस पद्धति का अधिकांश प्रयोग लिपिक तथा (Typist) आदि श्रेणियों के कर्मचारियों के सम्बन्ध में किया जाता है।

उपरोक्त परीक्षाओं के सम्बन्ध में एक बात स्मरणीय है कि कुछ परीक्षाएं सन्दर्शन (Interview) सहित होती हैं और कुछ सन्दर्शन रहित होती हैं और उत्तीर्ण परीक्षाएं जो निम्न पदों की पदोन्नति के लिए की जाती हैं, सन्दर्शन रहित होती हैं।

आलोचना (Criticism)– चाहे पदोन्नति के सम्बन्ध में परीक्षाओं को अधिक उपयोगी माना जाता है तथा इन में किसी प्रकार की हानि होने की सम्भावना नहीं होती है परन्तु फिर भी इनकी आलोचना की जाती है तथा इनके विरुद्ध निम्नलिखित तर्क दिए जाते हैं–

(i) परीक्षा द्वारा किसी कर्मचारी के व्यक्तित्व की पूर्ण जांच नहीं की सकती।

(ii) परीक्षा एक ऐसी प्रणाली है जिसमें केवल विशेष तथ्यों को रटकर प्रत्याशी परीक्षा में उत्तीर्ण हो सकता है। इससे उसके वास्तविक ज्ञान तथा गुणों का पता नहीं लगाया जा सकता।

(iii) परीक्षा प्रणाली पूर्णतः न्यायपूर्ण नहीं। इसके द्वारा दीर्घ आयु कर्मचारियों को नवयुवक प्रत्याशियों से मुकाबला करना पड़ता है जो अनुचित है क्योंकि दीर्घ आयु वाले कर्मचारी नवयुवकों की भान्ति विषय–वस्तु तथा आंकड़ों को न तो याद कर सकते हैं और न ही अधिक समय तक याद रख सकते हैं।

(iv) प्रशासन में उच्च पदों के लिए नेतृत्व प्रदान करने की योग्यता, निरीक्षण एवं नियन्त्रण करने की क्षमता आदि उच्च गुणों की आवश्यकता होती है जिनकी जांच परीक्षाओं द्वारा नहीं की जा सकती।

(v) बहुत से देशों मे परीक्षा की प्रणाली को पदोन्नति का आधार नहीं माना जाता; जैसे इंग्लैण्ड, फ्रांस तथा भारत में पदोन्नति के लिए विभागीय परीक्षाओं को बहुत कम महत्व दिया जाता है।

इन सभी कारणों से परीक्षा पद्धति को योग्यता निर्धारण करने की लोकप्रिय विधि नहीं माना जा सकता।

सेवा अभिलेख अथवा कार्यकुशलता का माप
(Service Record or Efficiency Rating)

कर्मचारियों की योग्यता को अधिक विषयगत (Objective) रूप में निर्धारित करने के लिए एक और पद्धति सेवा–अभिलेखा रखना अथवा कार्यकुशलता का माप करना है। इस पद्धति के अनुसार प्रत्येक कर्मचारी की सेवा का अभिलेखा रखा जाता है और उसी के विवरण के आधार पर सेवा के उच्च पदाधिकारी की सेवा का अभिलेख रखा जाता है और उसकी के विवरण के आधार पर सेवा के उच्च पदाधिकारी अपने अधीन कर्मचारियों की कार्यक्षमता का पता लगाते हैं। जब कर्मचारियों की पदोन्नति का प्रश्न उत्पन्न होता है तो उनके सेवा अभिलेख को देखा जाता है और जिस कर्मचारी का अभिलेख अच्छा हो, उसे पदोन्नत कर दिया जाता है। इस सेवा अभिलेख के विवरण में कर्मचारियों के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातों को लिखा जाता है।

(i) कर्मचारी की शाखा तथा विभाग के सम्बन्ध में ज्ञान

(ii) कर्मचारी की व्यक्तित्व एवं चरित्र

(iii) कर्मचारी की विवेक शक्ति

(iv) कर्मचारी की उत्तरदायित्व ग्रहाण करने की क्षमता

(v) कर्मचारी में स्वयं प्रेरणा (Initiative)

(vi) कर्मचारी की परिशुद्धता (Accuracy)

(vii) कर्मचारी का बात–चीत करने का ढंग तथा व्यवहार कौशल

(viii) कर्मचारी के पर्यवेक्षण करने की क्षमता

(ix) कर्मचारी का उत्साह

(x) कर्मचारी के विषय में यह लिख दिया जाता है कि वह औसत से ऊपर है या नीचे या औसत से ऊपर है या नीचे या औसत पर है।

(xi) कर्मचारी असाधारण रूप से पदोन्नति के योग्य है या नहीं।

सेवा अभिलेख की समीक्षा करते समय उच्च अधिकारी अपने अधीन कर्मचारियों की योगयता के सम्बन्ध में पांच प्रकार के विशेषणों का प्रयोग करते हैं–

(i) उत्कृष्ट (Outstanding), (ii) बहुत श्रेष्ठ (Very Good), (iii) सन्तोषजनक (Satisfactory), (iv) उदासीन (Indifferent), (v) निकृष्ट (Poor)।

भारत में पदोन्नति सिद्धांत

पदोन्नति के लिए भारत में वरिष्ठता सिद्धांत व योग्यता सिद्धांत दोनों को काम में लिया जाता है और कहीं पर वरिष्ठता सिद्धांत को प्राथमिकता दी जाती है और कहीं पर योग्यता सिद्धांत को। साधारणतया वरिष्ठता को ही ध्यान में रखा जाता है। यदि वरिष्ठ कर्मचारी अयोग्य हो तभी वरिष्ठता की अवहेलना की जाती है। उच्च पदों पर एक अनुपात में योग्यता के आधार पर भी भर्ती की जाती है। विभाग के कर्मचारियों के अतिरिक्त बाहर के लोगों को भी आवेदन करने का अवसर प्रदान किया जाता है।

भारतीय प्रशासनिक सेवा में राज्य सेवाओं से पदोन्नति

भारतीय प्रशासनिक सेवा संवर्ग का गठन प्रत्यक्ष भर्ती तथा पदोन्नत अधिकारियों से होता है। आजकल आई ए एस. समत तीनों अखिल भारतीय सेवाओं में 33 पद राज्य लोक सेवा अधिकारियों में से पदोन्नति द्वारा भरे जाते हैं।

राज्य सेवा से जब भारतीय प्रशासनिक सेवा के लिए जो पदोन्नतियां होती हैं तो उनके लिए संघ लोक सेवा आयोग के एक सदस्य तथा सम्बन्धित राज्य के भारतीय प्रशासन सेवा (आई .ए .एस) के वरिष्ठ सदस्यों को मिलाकर एक समीति बनायी जाती है। ऐसी समीति प्रत्येक राज्य के लिए अलग रहती है। वह राज्य की प्रशासकीय सेवा के उन अधिकारियों की क्रमानुसार एक सूची तैयार करती है जो कि भारतीय प्रशासनिक सेवा में पदोन्नति के योग्य हैं। यह सूची योग्यता के आधार पर बनायी जाती है। परन्तु वरिष्ठता का भी ध्यान रखा जाता है। यह भी सम्भव है कि कनिष्ठ अधिकारी का नाम वरिष्ठ अधिकारी के ऊपर रखा जाये। ऐसे चुनाव के लिए आठ साल की न्यूनतम सेवा पूरी होनी चाहिए। राज्य की सरकार उस सूची को संघ लोक सेवा आयोग के पास अनुमति के लिए भेजती है। जब–जब स्थान रिक्त होते हैं, तब–तब उस सूची के अधिकारियों को पदोन्नत किया जाता है। उक्त समिति की बैठक कम से कम साल में एक बार अवश्य होती है।

केन्द्रीय सेवाओं में पदोन्नति

भारतीय शासन के अन्तर्गत केन्द्रीय सेवा समूह क के लगभग 55 पद पुनः व्यक्तियों द्वारा भरे जाते हैं जिनकी इस श्रेणी में सीधी भर्ती की जाती है और शेष स्थान पदोन्नति द्वारा भरे जाते हैं। पदोन्नति द्वारा भरे जाने वाले पदों का ठीक–ठीक अनुपात सेवा के अनुसार भिन्न–भिन्न होता है। भारतीय विदेश सेवा में 90 पद सीधी भर्ती से भरे जाते हैं जबकि केन्द्रीय सचिवालय के उच्चतम पदों के लिए अनुपात बहुत ही कम है जहाँ कि प्रथम श्रेणी के स्तर पर सीधी भर्ती होती ही नहीं। सारे पद पदोन्नति से भरे जाते हैं। समूह "स" (राजपत्रित) की सेवाओं एवम् पदों में सीधी भर्ती अपेक्षाकृत कम ही होती है। इस श्रेणी के लगभग 65 पदों की भर्ती समूह 'ग' के स्टाफ के लिए सुरक्षित रहती है। समूह 'घ' से बहुत कम कर्मचारियों की पदोन्नति समूह 'ग' में होती है। रेलवे तथा डाक तार विभाग में ऐसी कुछ व्यवस्था अवश्य पायी जाती है कि समूह 'घ' के कर्मचारियों को समूह 'ग' में आने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। डाक और तार विभाग में 41% तक पद पदोन्नति से भरे जाते हैं। रेलवे में यह प्रतिशत केवल 10 है।

केन्द्रीय वेतन आयोग ने यह सिफारिश कर दी थी कि जिन पदों के लिए कार्यालयीन कार्य की जानकारी ही पर्याप्त प्रशिक्षण है, उन पदों के लिए वरिष्ठता के आधार पर ही पदोन्नतियाँ की जायें, ऊंचे पदों पर पदोन्नति करते समय मात्र वरिष्ठता का ही ध्यान नहीं रखा जाना चाहिए।

भारत में पदोन्नति हेतु विभागाध्यक्ष एवम् पदोन्नति मण्डल

भारत में पदोन्नति करने का अधिकार विभागाध्यक्ष का है। जब भारतीय शासन के उच्च पदों पर पदोन्नतियाँ की जाती है तब संघ लोक सवा आयोग का भी परामर्श लिया जाता है। इसी प्रकार जब राज्य शासन के उच्च पदों पर पदोन्नतियाँ की जाती है तब राज्य लोक सेवा आयोग से परामर्श लिया जाता है। जब एक श्रेणी से दूसरी श्रेणी में पदोन्नति होती है तब वित्त मंत्रालय की भी स्वीकृति ले ली जाती है। विभागीय सचिवों के पद पर जब पदोन्नति की जाती है तो केन्द्र में प्रधानमंत्री की तथा राज्य में मुख्यमंत्री की अनुमति भी प्राप्त की जाती है।

भारतीय शासन के कतिपय विभागों में तथा कतिपय राज्यों में कुछ विभागों में "पदोन्नति मण्डल" या विभागीय "पदोन्नति समिति" के माध्यम से भी पदोन्नतियाँ की जाती हैं। केन्द्रीय सचिवालय सेवा में एक वेतनमान से दूसरे वेतनमान में जो पदोन्नतियां होती हैं वे विभागीय "पदोन्नति समिति" की अनुशंसा से होती है। इसके अतिरिक्त सम्बन्धित विभाग में कुछ अधिकारी जो कर्मचारियों के कार्य की व्यक्तिगत जानकारी रखते हैं, भी पदोन्नति समिति में सम्मलित होते हैं।

पदोन्नति व्यवस्था के दोष

भारतीय पदोन्नति व्यवस्था के कई दोष बतलाये गये हैं–प्रथम, इसमें सरकारी सेवा के बाहर के व्यक्तियों को पदोन्नति के अवसर नहीं देना है। यह व्यवस्था सरकारी कर्मचारियों को विशेष लाभ प्रदान करती है, उन्हें बाहर से योग्य व्यक्तियों के साथ प्रतियोगिता नहीं करनी पड़ती, द्वितीय इसमें निम्न स्तर के कर्मचारियों के लिए बहुत ही कम और सीमित अवसर होता है। तृतीय, वरिष्ठता के कठोर नियम के कारण योग्यता के आधार पर पदोन्नति नहीं हो पाती। चतुर्थ, पदोन्नति परिषद् जैसी नियमित संस्था के अभाव में पदोन्नति मनमाने ढंग से की जाती है। पंचम, कर्मचारी की व्यक्तिगत फाइल की जिन बातों को पदोन्नति

के समय देखा जाता है वे पूरी जाँच–पड़ताल तथा निष्पक्षता के साथ नहीं बनायी जाती। पष्ठ, कई पदोन्नतियाँ स्वेच्छाचारी तथा असम्बद्ध रूप से होती है। जिस गोपनीय प्रतिवेदन के आधार पर की जाती है उसका निष्पक्ष एवम् विश्वसनीय होना भी संदेहजनक है। सप्तम् ऐसी कोई कारगर व्यवस्था नहीं है जिसके द्वारा प्रभावित कर्मचारी अपनी पदोन्नति सम्बन्धी शिकायतों का निदान पा सकें। उच्च अधिकारी अपने अधीनस्थ अधिकारी के प्रतिवेदन पर विरोध या आपत्ति प्रकट नहीं करते उसे यथावत् स्वीकार कर लेते हैं।

पदोन्नति के सम्बन्ध में वेतन आयोग की सिफारिशें

वेतन आयोग द्वारा पदोन्नति के सम्बन्ध में की गयी सिफारिशें निम्नलिखित हैं–

1. उच्च पदों पर पदोन्नति करते समय योग्यता को मापदण्ड बनाना चाहिए और निम्न स्तर के पदों पर वरिष्ठता एवम् उपयुक्तता को अपनाना चाहिए।
2. पदोन्नति के लिए योग्यता परीक्षाएं केवल उन्हीं पदों के सम्बन्ध में की जानी चाहिए जिनके लिए विशिष्ट ज्ञान की आवश्यकता होती है।
3. तृतीय श्रेणी तथा राजपत्रित द्वितीय श्रेणी कर्मचारियों की पदोन्नति करते समय समिति प्रतियोगी परीक्षाओं की व्यवस्था की जानी चाहिए।
4. गोपनीय प्रतिवेदन का उच्चस्तर पर सूक्ष्म परीक्षण करके यह पता लगाना चाहिए कि क्या इसे सम्बन्धित अनुदेशों के आधार पर ही तैयार किया गया है। ऐसा न होने पर उसे संशोधन के लिए वापस लौटा दिया जाना चाहिए।

प्रशासकीय सुधार आयोग की पदोन्नति विषयक सिफारिशें

सन् 1969 में प्रशासनिक सुधार आयोग ने केन्द्रीय कर्मचारियों की पदोन्नति के बारे में निम्नलिखित सिफारिशें की थीः

1. **विभागीय पदोन्नति समितिः** पदोन्नति का कार्य सदैव विभागीय पदोन्नति समितियों द्वारा किया जाना चाहिये, क्योंकि केवल विभागाध्यक्ष द्वारा किये जाने वाले पदोन्नति के कार्य से यह अधिक अच्छा है।
2. **कार्य सम्पन्नता प्रतिवेदनः** वर्ष की समाप्ति पर जिस अधिकारी की रिपोर्ट लिखी जानी है उसे स्वयंमेव 300 शब्दों में उसके द्वारा वर्ष भर में किए गए विशेष कार्यों का विवरण अपने सम्बन्ध में उच्च अधिकारी को (रिर्पोट देने वाले अधिकारी को) प्रस्तुत करना चाहिए। इस विवरण पर रिपोर्ट देने वाले आधिकारी को इन्हें भेज देना चाहिए। समीक्षक अधिकारी को इस पर आवश्यकतानुसार अपनी टिप्पणियाँ देते हुए सम्बद्ध अधिकारी के कार्य का मूल्यांकन करते हुए उसका क्रम निर्धारण करना चाहिए। इसमें केवल तीन ही क्रम या दर्जे होने चाहिए।
   क. अवसर न होने पर भी पदोन्नति योग्य
   ख. पदोन्नति योग्य
   ग. अभी पदोन्नति योग्य न होना।
3. समूह "ख" में पदोन्नति हेतु परक्षाएं–बर्तमान में प्रायः समूह "ख" से समूह "क" में पदोन्नति से भरे जाने वाले पदों की संख्या 20 होती है। प्रशासकीय सुधार आयोग ने इसे 40 तक बढ़ाने की सिफारिश की थी और यह कहा था कि इनमें से आधे पदों के लिए परीक्षा पद्धति को अपनाया जाये ताकि इससे ऐसे व्यक्तियों को पर्याप्त प्रोत्साहन मिले जो तुलनात्मक दृष्टि से कम आयु के और कनिष्ठ होते हुए भी बहुत योग्य हैं।
4. समूह "ग" वालों की समूह "ख" में पदोन्नति–ऐसे कर्मचारियों की संख्या काफी होती है जो समूह "ग" से समूह "ख" में पदोन्नति किये जाते हैं। ऐसे 50 पदों पर पदोन्नति के लिए परीक्षा प्रारम्भ की जानी चाहिए। शेष 50 प्रतिशत की पदोन्नति के लिए वर्तमान तरीका ही अपनाया जाना चाहिए।

महत्वपूर्ण प्रश्नः

1. पदोन्नति शब्द से आप क्या समझते हैं? लोक सेवकों की पदोन्नति के लिए किन किन सिद्धांतों का पालन किया जाना चाहिए?
2. एक स्वस्थ्य पदोन्नति पद्धति के लिए कौन कौन से तत्व अनिवार्य हैं?
3. वरीयता एवं योग्यता के सिद्धान्तों में से पदोन्नति के लिए किसे आप प्रमुख रूप से अपनाना ठीक समझते हैं?

अध्याय 17

संघ लोक सेवा आयोगः संगठन, शक्तियाँ एवं कार्य

Union Public Service Commission: Organisation, Powers and Functions

भारत में कार्मिक वर्ग के प्रशासन के क्षेत्र में संघ लोक सेवा आयोग का महत्वपूर्ण योगदान है। भारत में [illegible] लोकतंत्र का एक आधर माना जाता है। सेवा विषयों के सम्बन्ध में स्वतंत्र विचार रखने के कारण यह [illegible] व प्रशासन तंत्र के मध्य आवश्यक संतुलन स्थापित करने में सहायता देता है। संघ लोक सेवा आयोग यद्यपि [illegible] संस्था है तथापि इसकी सिफारिशें प्रायः ठुकराई नहीं जाती।

लोक सेवा आयोग की आवश्यकता

भारत में संघ तथा राज्यों के लोक सेवा आयोगों को लोकतंत्र का संरक्षक माना जाता है। ये आयोग, [illegible] को एकमात्र मापदंड स्वीकार कर लोकतंत्र के अर्थ एवं उसके व्यवहार को घोषित करते हैं। ये प्रशासन [illegible] प्रदान कर उसे राजनीतिक संस्थाओं के संभावित दवाबों से बचाते हैं। संघ लोक सेवा आयोग के भूतपूर्व [illegible] के शब्दों में, "संसदीय लोकतंत्र में लोक सेवा आयोगों को बहुत महत्वपूर्ण भूमिका अदा करनी होती है, क्योंकि [illegible] में लोक सेवाओं में गुण–दोष के आधार पर भर्ती की व्यवस्था होना आवश्यक होता है और यह काम [illegible] माध्यम से ही हो सकता है।" प्रो. एम. वी. पायली के अनुसार "लोक सेवा आयोग का कार्य दो [illegible] धूर्त जनों को सेवा से बाहर रखना और दूसरा योग्य व्यक्तियों को लोक सेवाओं में लाने का प्रयास करना [illegible] सेवा आयोग की आवश्यकता के प्रमुख कारण हैं प्रथम आवश्यक संतुलन स्थापित करने में सहायता [illegible] में नियुक्ति के लिए योग्यतम प्रत्याशियो का चयन करना। तृतीय, लोक सेवाओं को [illegible] रखना। चतुर्थ, लोक सेवाओं के मामलों पर सरकार को तकनीकी परामर्श प्रदान करना। जॉन एस. टी. [illegible] सेवा आयोग लोक सेवा से राजनीति को अलग रखने तथा उसके स्थानीयकरण को तीव्र करने के [illegible] नियुक्ति, पदोन्नति स्थानांतरण तथ अनुशासन के बहाल के लिए भी उत्तरदायी है।" भारत जैसे देश में लोक [illegible] आवश्यकता के संबंध में अत्युक्ति कर सकना ही संभव नहीं है। भारतीय समाज में विभिन्न जा[illegible] उपस्थिति के कारण यदि लोक सेवाओं के नियोजन में राजनीतिक विचार या अनुग्रह प्रभाव का दब[illegible] के विकास में अत्यधिक बाधा पहुँचेगी। इसी कारण संविधान निर्माताओं ने भी लोक सेवा आयोगों की महत्ता [illegible] किया था। यही कारण है कि भारत में लोक सेवा आयोगों को संवैधानिक संस्थाओं का दर्जा प्रदान किया [illegible]

भारत में सर्वप्रथम सन् 1919 के भारत शासन अधिनियम के अधीन सन् 1926 में "लोक सेवा आयोग" स्थापित [illegible] 1924 के ली कमीशन की संस्तुतियों के आधार पर इस आयोग को कतिपय कृत्य सौंपे गए थे। बाद में सन् 19[illegible] शासन के उपबंधों के अधीन संघीय लोक सेवा आयोग स्थापित होने पर इसके कृत्यों का विस्तार हुआ। [illegible] जब स्वतंत्र भारत का नया गणतंत्रात्मक संविधान लागू हुआ तब उसमें यह प्रावधान किया गया कि एक सं[illegible] लोक सेवा आयोग होगा और संघ के घटक प्रत्येक राज्य के लिए भी एक–एक लोक सेवा आयोग [illegible]

संघ लोक सेवा आयोगः संगठन

(क) **सदस्यों की नियुक्ति तथा पदावधि**–संघ लोक सेवा आयोग में एक अध्यक्ष तथा [illegible] नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। आयोग के सदस्यों की संख्या राष्ट्रपति द्वारा निर्धारित [illegible]

संघ लोक सेवा आयोग के कम से कम आधे सदस्य ऐसे होने चाहिए जो कम से कम दस वर्ष तक के लिए सरकारी सेवा का अनुभव प्राप्त कर चुके हों। इस उपबंध का अभिप्राय यह निश्चित करना है कि आयोग के सदस्य अनुभवी व्यक्ति हों तथा आयोग एक विशेषज्ञों की संस्था के रूप में कार्य कर सके। सन् 1924 में ली आयोग ने कहा था कि इस बात की सर्वाधिक आवश्यकता है कि अत्याधिक लोक प्रतिष्ठा प्राप्त व्यक्तियों को आयोग का सदस्य बनाया जाए ताकि वे राज्य तथा उसके कर्मचारियों के मध्य महत्वपूर्ण व आत्मीय संबंध स्थापित कर सकें। इस प्रकार आयोग के अध्यक्ष सहित अन्य सदस्यों का चयन करते समय राष्ट्रपति को अपने संवैधानिक दायित्व के अनुरूप यह देखना होता है कि लगभग आधे सदस्य ऐसे हों जिन्होंने अपने नियुक्ति काल से पूर्व कम से कम दस वर्ष तक या तो किसी राज्य सरकार अथवा केन्द्रीय सरकार के अधीन कार्य किया हो। संविधान सभा में डॉ0 अम्बेडकर ने भी कहा था कि उस व्यक्ति से अधिक उपयुक्त कोई अन्य व्यक्ति नहीं हो सकता जो स्वयं लोक सेवाओं से संबद्ध रहा हो।

संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष तथा अन्य सदस्यों का कार्यकाल पद भार ग्रहण करने की तिथि से छः वर्ष तक अथवा पैंसठ वर्ष की आयु प्राप्त करने तक जो भी पूर्व हो, होता है।

(ख) **वेतन तथा सेवा शर्ते**–आयोग के सदस्यों के वेतन तथा भत्तों एवं अन्य शर्तों को निर्धारित करने का अधिकार राष्ट्रपति को प्रदान किया गया है। किसी सदस्य के वेतन, भत्तों तथा सेवा की अन्य शर्तों को उसकी पदावधि में बदला नहीं जा सकता। संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष को 30000, रू० तथा सदस्यों को 26000 रू० मासिक वेतन मिलता है। अपनी कार्यावधि की समाप्ति के बाद सदस्य भारत सरकार या किसी राज्य सरकार के अधीन संघ लोक सेवा आयोग का अध्यक्ष या राज्य आयोग का अध्यक्ष बन सकता है। संघ लोक सेवा आयोग का अध्यक्ष भारत सरकार या किसी राज्य सरकार के अधीन कोई नियुक्ति नहीं पा सकता। डॉ० एम. ए. मुतालिब के अनुसार, "इस प्रतिबन्ध का जनता पर गंभीर मनोवैज्ञानिक प्रभाप पड़ा है और आयोग के सदस्यों का विशेष सम्मान इस कारण करती है क्योंकि जनहित के लिए वे भावी पदों का त्याग करते हैं।"

(ग) **आयोग के सदस्यों को हटाया जाना**–संविधान के अनुच्छेद 317 में आयोग के सदस्यों को अपदस्थ करने की प्रक्रिया का वर्णन किया गया है। आयोग के सदस्यों को दुराचार के लिए राष्ट्रपति के आदेश द्वारा पदच्युत किया जा सकता है। दुराचार को प्रमाणित करने की प्रक्रिया संविधान द्वारा निश्चित की गई है। राष्ट्रपति द्वारा ऐसा मामला सर्वोच्च न्यायालय के पास विचारार्थ प्रस्तुत किया जाएगा। संविधान के अनुच्छेद 145 द्वारा निर्धारित प्रक्रियानुसार जाँच करने के बाद न्यायालय राष्ट्रपति के सम्मुख अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करेगा। इस जाँच के पूर्ण होने तक राष्ट्रपति उक्त सदस्य को आयोग से निलम्बित कर सकता है। लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष तथा किसी सदस्य को राष्ट्रपति द्वारा निम्नलिखित किसी कारण के आधार पर भी अपदस्थ किया जा सकता है। यदि (क) वह दिवालिया हो, या (ख) वह अपने कार्यकाल में कोई अन्य संवैधानिक कार्य स्वीकार कर लेता है, या (ग) राष्ट्रपति की सम्मति में वह व्यक्ति मानसिक या शारीरिक दुर्बलता के कारण अपने पद पर कार्य करने में असमर्थ हो गया है, या (घ) अनुच्छेद 217 के अनुसार यदि भारत सरकार या किसी राज्य सरकार द्वारा या इनके वास्ते किए गए किसी संविदा या करार से लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष या सदस्य का सम्बन्ध हो तो इसको दुराचार समझा जाएगा और इस आधार पर उसको पदच्युत किया जा सकेगा।

(घ) **संघ लोक सेवा आयोग का स्टाफ**–संविधान के अनुसार राष्ट्रपति को आयोग के स्टाफ की संख्या तथा सेवा की शर्ते निर्धारित करने का अधिकार दिया गया है। राष्ट्रपति सेवा की शर्ते आदि निर्धारित करने से पूर्व आयोग से परामर्श करते हैं। वर्तमान नियमों के अनुसार आयोग को स्टाफ की नियुक्ति का अधिकार दिया गया है। आयोग के कार्यालय में सभी उच्च नियुक्तियाँ औपचारिक रूप से आयोग के अध्यक्ष द्वारा की जाती है।

आयोग के कार्यालय को केन्द्रीय सरकार के सचिवालय का एक भाग माना जाता है। परिणामतः आयोग के कर्मचारियों की पदोन्नति के अवसर अधिक हो गए हैं। केन्द्रीय सचिवालय में उन्हें पदोन्नति के अवसर मिलते हैं। केन्द्रीय सचिवालय के कर्मचारी भी पदोन्नति पर आयोग के कार्यालय में आते हैं।

आयोग के स्थायी स्टाफ में सचिव तथा अन्य अधिकारी तथा कर्मचारी हैं जिनकी संख्या समय–समय पर राष्ट्रपति द्वारा निर्धारित की जाती है। आयोग के अध्यक्ष भी अपनी अधिकार सीमा के भीतर स्थाई तथा अस्थाई पदों की स्वीकृति देते हैं।

आयोग के सचिव का दर्जा भारत सरकार के संयुक्त सचिव के समान है। उसका वेतनमान तथा सेवा की शर्तें, भारत सरकार के संयुक्त सचियों के समान ही है। सचिव की नियुक्ति आयोग द्वारा एक निश्चित अवधि के लिए की जाती है। यदि कमीशन

चाहे तो उसका कार्यकाल बढ़ा भी सकता है। अखिल भारतीय और केंद्रीय सेवाओं के अधिकारी आयोग में प्रतिनियुक्ति पर आते हैं। अपने कार्यकाल की समाप्ति पर वे अपनी सेवाओं में लौट जाते हैं। आयोग का स्टाफ आयोग द्वारा नियुक्त किया जाता है। इसका वेतनमान तथा सेवा की शर्तें, भत्ते आदि समान स्तर वाले भारत सरकार के अधिकारियों जैसे होते हैं।

लोक सेवा आयोग के कार्य

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 320 के अनुसार लोक सेवा आयोग को निम्नांकित कार्य सौंपे गए हैं

(1) संघ तथा राज्यों की सेवाओं में नियुक्तियों के लिए परीक्षाओं का आयोजन करना।

(2) यदि दो या अधिक राज्य संघ लोक सेवा आयोग को संयुक्त नियोजन अथवा भर्ती के लिए आग्रह करें तो राज्यों को इस प्रकार की योजनाएँ बनाने में सहायता करना।

(3) संघ तथा राज्य सरकारों को निम्नांकित मामलों पर आयोग के साथ परामर्श करना अपेक्षित है:—

(क) लोक सेवाओं में भर्ती के तरीके के बारे में मामलों पर,

(ख) लोक सेवाओं में नियुक्ति और पदों के लिए अपनाए जाने वाले सिद्धान्तों पर और एक सेवा से दूसरी में स्थानांतरण और पदोन्नति के मामलों पर,

(ग) अनुशासनात्मक मामलों पर

(घ) कानूनी खर्च की प्रतिपूर्ति पर,

(ङ) शासकीय सेवा में रहते हुए घायल हो जाने के कारण पेन्शन देने के मामलों पर।

संघ लोक सेवा आयोग के कार्यों पर प्रकाश डालते हुए इसके भूतपूर्व अध्यक्ष डॉ० किददई लिखते हैं, "वस्तुतः में संघ लोक सेवा आयोग विभिन्न संगठित सेवाओं में भर्ती के लिए साक्षात्कार के माध्यम से चयन करता है, सेवा के नियमों ओर विनियमों के बारे में सरकार को परामर्श देता है, विभिन्न पदों और सेवाओं के लिए भर्ती के नियम बनाता है, नई सेवाओं का गठन करता है, पदोन्नति के लिए सिद्धान्त बनाता है, नागरिक कर्मचारियों के अनुशासनात्मक मामलों पर और नागरिक कर्मचारियों द्वारा भारत के राष्ट्रपति को की गई अपीलों, और याचिकाओं के मामले में परामर्श देता है।" डॉ० मुतालिब ने आयोग के कार्यों को तीन श्रेणियों में विभक्त किया है--(1) कार्यकारी (2) नियामक (3) अर्द्धन्यायिक। परीक्षाओं के माध्यम से लोक महत्व के पदों पर प्रत्याशियों का चयन करना आयोग का कार्यकारी कर्त्तव्य है। भर्ती की पद्धतियों तथा नियुक्ति, पदोन्नति एवं विभिन्न सेवाओं में स्थानांतरण आदि आयोग के नियामक प्रकृति के कार्य हैं तथा लोक सेवाओं से संबंधित अनुशासन के मामलों पर सलाह देना आयोग का न्यायिक कार्य है।

लोक सेवा आयोग के प्रतिवेदन

संघ लोक सेवा आयोग को प्रतिवर्ष अपने कार्यों के संबंध में एक प्रतिवेदन तैयार कर राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत करना पड़ता है। सरकार इस प्रतिवेदन के साथ ज्ञापन जोड़ते हुए, जिसमें इस बात का उल्लेख किया जाता है कि आयोग की सिफारिशों पर किस प्रकार से अमल किया गया है, संसद के दोनों सदनों के सम्मुख प्रस्तुत करती हैं। लोक सेवा आयोग के प्रतिवेदनों से यह सिद्ध होता है कि कुछ मामलों को छोड़कर विभिन्न सरकारों ने आयोग की सिफारिशों को स्वीकार किया है और समुचित कार्यवाही की है। उदाहरणार्थ, सन् 1950 से 1991 तक कार्मिकों की नियुक्ति, पदोन्नति आदि के संबंध में हजारों सिफारिशें संघ लोक सेवा आयोग ने केन्द्रीय सरकार के सम्मुख प्रस्तुत की, किन्तु केवल 110 मामलों में ही सरकार ने उसके परामर्श का अस्वीकार किया। संघ लोक सेवा आयोग ने न केवल सरकार द्वारा की जाने वाली अनियमित नियुक्तियों का विरोध ही किया है बल्कि उसने निडरता से अपने वार्षिक प्रतिवेदनों में ऐसे मामलों पर विस्तारपूर्वक प्रकाश भी डाला है। उदाहरणार्थ सन 1971—1972 के वार्षिक प्रतिवेदन में आयोग ने स्पष्ट शिकायत की है कि सरकार ने अनियमित नियुक्तियों के संबंध में आयोग से सलाह तक नहीं ली। 1989--90 के प्रतिवेदन में आयोग को खेद के साथ कहना पड़ा है कि सरकार की ओर से आयोग द्वारा अनुमोदित भर्ती नियमों को अधिसूचित करने में असाधारण विलम्ब होता है। आयोग द्वारा ऐसी शिकायतों से कई बार संबंधित मंत्रालय, संसद तथा इसके बाहर आलोचना के शिकार हुए हैं।

लोक सेवा आयोग के सदस्यों की स्वतंत्रता

हमारे संविधान में लोक सेवा आयोग के सदस्यों को स्वतंत्रता बनाए रखने हेतु निम्नलिखित प्रावधान किए हैं–

(1) आयोग के अध्यक्ष तथा सदस्यों को संविधान में निर्धारत प्रक्रियानुसार ही पदच्युत किया जा सकता है।

(2) आयोग के किसी भी सदस्य के पद से संबंधित शर्तों को उसके कार्यकाल में हानि के रूप में नहीं बदला जा सकता।

(3) लोक सेवा आयोग के सदस्यों के वेतन, भत्ते तथा प्रशासकीय व्यय भारत सरकार की संचित निधि पर भारित है। अतः संघ लोक सेवा आयोग के सदस्यों के वेतन तथा भत्तों के संबंध में संसद में मतदान नहीं किया जा सकता है।

(4) संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष और सदस्यों को कुछ अपवादों को छोड़कर पुनः उसी पद या सरकारी पद पर नियुक्त नहीं किया जा सकता है। संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष की अनुपयुक्तता की प्रकृति महत्वपूर्ण है क्योंकि वह भारत सरकार अथवा राज्य सरकार के अधीन कोई नियुक्ति नहीं पा सकता। ऐसा प्रतिबंध तो सर्वोच्च न्यायालय के न्यायधीशों पर भी नहीं है।

उपयुर्क्त संवैधानिक उपबंधों द्वारा लोक सेवा आयोग के सदस्यों की निष्पक्षता बनाए रखने का भरसक प्रयास किया गया है। 1950 में कार्यपालिका के निर्णय द्वारा लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष का दर्जा भारत सरकार के सचिवों से ऊंचा है किन्तु आयोगों के सदस्यों को ऐसा दर्जा प्राप्त नहीं है। सन् 1924 में ली कमीशन ने सुझाव दिया था कि आयोग का दर्जा उच्च न्यायालय के समतुल्य होना चाहिए और सन् 1967–68 में प्राक्कलन समिति ने भी स्वीकार किया कि आयोग के सदस्यों व अध्यक्ष के वेतन एवं भत्तों का पुनः निर्धारण होना चाहिए किन्तु इस ओर लम्बे समय तक ध्यान नहीं दिया गया। लोक सेवा आयोग की स्वतंत्रता को बनाए रखने के लिए संघ लोक सेवा आयोग के भूतपर्व अध्यक्ष आर.सी.एस. सरकार ने सुझाव दिया कि संघ तथा राज्य लोक सेवा आयोग में उच्च गुणों वाले निष्पक्ष व्यक्तियों को आकर्षित करने के लिए उनका दर्जा, वेतन तथा भत्ते उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायधीशों के समतुल्य कर दिए जाएं और सभी नियुक्तियों में अध्यक्ष की सलाह को अधिक महत्त्व दिया जाए।

संघ लोक सेवा आयोग को राजनैतिक प्रभाव से मुक्त रखने के लिए इसे प्रशासनिक पदसोपान से बाहर रखा गया है और स्वतन्त्र रूप से संगठित किया गया है किन्तु व्यवहार में विविध कानूनों एवं नियमों के माध्यम से कार्यपालिका प्रमाणिक रूप से आयोग का कार्य–क्षेत्र निर्धारित करती है। फिर राजनैतिक आधार पर भी आज अनेक नियुक्तियां हो रही हैं। अनेक पदों को आयोग के कार्य–क्षेत्र से बाहर कर दिया गया है जिससे कार्यपालिका एवं मंत्रालयों की नियुक्तियों में हस्तक्षेप की प्रवृत्ति बढ़ गई है। लोक सेवा आयोग के सदस्यों की नियुक्ति करते समय उसके अध्यक्ष का भी परामर्श नहीं लिया जाता। यदि आयोग का कोई गैर–सरकारी सदस्य है तो उसे पेन्शन नहीं मिलती। फिर, अपने सेवाकाल के मध्य में कोई भी व्यक्ति आयोग की सदस्यता के प्रति मुश्किल से आकर्षित होता है क्योंकि केंद्रीय अथवा राज्य सरकारों के अधीन कार्य पाने की संभावनाओं पर यहाँ प्रतिबन्ध व सीमाएँ लगी हुई हैं। कोई व्यक्ति जो अध्यक्ष पद स्वीकार करता है अनिवार्यतः या तो अपने सेवा कार्यकाल की समाप्ति पर होता है या उस समय ऐसे पद पर होता है कि उसके लिए भावी सरकारी पद रूचि का विषय नहीं रह जाता।

आयोग की सलाहकारी भूमिका

संविधान में लोक सेवा आयोगों का कार्य सिर्फ सलाह देना रखा गया है। सरकार आयोग द्वारा चुने प्रत्याशियों को नियुक्ति देने के लिए अथवा आयोग द्वारा निर्धारित योग्यता क्रम में नियुक्ति देने के लिए किसी प्रकार बाध्य नहीं है। हाँ, साधारणतया सरकार, आयोग की सलाह स्वीकार कर ही लेती है। इसी प्रकार अन्य सेवी संबंधी मामलों में, जिनमें पदोन्नति आदि के मामले भी सम्मिलित हैं, आयोग का कार्य सलाह भर देना है। सन् 1919 तथा 1935 के अधिनियम के अधीन स्थापित आयोग भी सलाहकारी थे, सरकार को बाध्य करने वाले नहीं। 1935 में भारत सचिव समुअल होर ने ब्रिटिश लोक सदन में लोक सेवा आयोग को सलाहकारी स्थिति प्रदान करने की वकालत करते हुए कहा था, "यह संयुक्त प्रवर समिति का निश्चित विचार था और यहाँ के भारतीय सलाहकारों का भी निश्चित विचार है कि लोक सेवा आयोग को सलाहकार रखना ही अच्छा है। अनुभव दर्शाता है कि सलाहकार होने पर बाध्यकारी (मेण्डेटरी) होने की अपेक्षा वे अधिक प्रभावशाली होते हैं। खतरा यह है कि यदि आप उन्हें मेण्डेटरी शक्तियाँ दे दें तो आप प्रत्येक राज्य में और केन्द्र में दो–दो सरकारें बना देंगे–अनेक दृष्टिकोणों से यही अच्छा है कि वे सलाहकार ही हों।"

हमारे संविधान निर्माताओं ने लोक सेवा आयोगों का 1935 के अधिनियम में निर्धारित सलाहकार स्वरूप सुरक्षित रखा। परंतु इस स्वरूप को अधिक उपयोगी बनाने की व्यवस्था भी कर दी। अनुच्छेद 323 द्वारा वर्तमान संविधान ने यह भी व्यवस्था की है कि संघ लोक सेवा आयोग राष्ट्रपति को और राज्य लोक सेवा आयोग संबंधित राज्य के राज्यपाल को एक वार्षिक प्रतिवेदन प्रस्तुत करें जिसे संबंधित विधानमंडलों के सम्मुख प्रस्तुत किया जाए। आयोग अपने प्रतिवेदन में उन मामलों का उल्लेख जिनमें उनका परामर्श सरकार ने नहीं माना और सरकार इस संबंध में ज्ञापन द्वारा सदन को स्पष्ट करे कि आयोग का परामर्श क्यों नहीं माना गया। डॉ. एम.वी. पायली के अनुसार आयोग की सिफारिशें केवल परामर्श के रूप में पेश किए जाने पर अधिक प्रभावशाली होती हैं। यदि ये बाध्यकारी होतीं तो शायद कम प्रभावशाली होतीं। यदि आयोग को बाध्यकारी सत्ता प्रदान की गई तो इस बात का भय है कि सरकार तथा आयोग के बीच विवाद उत्पन्न होंगे और ऐसी स्थिति उत्पन्न हो सकती है जिनमें दोनों एक ही से अधिकार के अंतर्गत प्रतिद्वन्द्वी संस्थाएँ बन बैठें और प्रत्येक अपनी इच्छा दूसरे पर लादने का प्रयास करने लगे। इस प्रकार जहाँ एक ओर संविधान ने आयोग को राजनीति और अन्य संभव दबावों से मुक्त रखने की समुचित व्यवस्था कर उन्हें निष्पक्ष सलाह देने के लिए निर्भय कर दिया है, वहीं दूसरी ओर उनकी सलाह मानने के लिए सरकार को बाध्य कर इस बात की भी व्यवस्था की है कि आयोग अपने अधिकारों का दुरूपयोग न कर सकें।

संघ लोक सेवा आयोग के भूतपूर्व अध्यक्ष श्री युत् सरकार का अभिमत है कि आयोग की सिफारिशों को मानना सरकार के लिए बाध्यकारी कर दिया जाए। वे यह तो स्वीकार करते हैं कि केंद्र में एक अच्छी परंपरा विकसित हो गई है कि आयोग की सिफारिशों को प्रायः स्वीकार कर लिया जाता है। कोई भी मंत्रालय उस समय तक आयोग की सिफारिशों को अस्वीकार नहीं करता जब तक कि मंत्रिमंडल की नियुक्ति समिति की स्वीकृति नहीं ले लेता। और उसके बाद भी उसे संसद में उन कारणों का स्पष्टीकरण देना होता है जिसके आधार पर आयोग की सलाह को अस्वीकार किया गया है। औसतन आयोग की प्रतिवर्ष हजारों में से दो से भी कम सिफारिशों को सरकार ने अस्वीकार किया है। किंतु 1984–85 के बाद आयोग की सिफारिशों को व्यापक रूप में अस्वीकृत करने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। यह व्याकुल करने वाली प्रवृत्ति है और हम इस पर गहरी चिंता व्यक्त कर सकते हैं।

ऐसा कहा जाता है कि आयोग की सलाह को बिना सार्वजनिक विवाद का विषय बनाते हुए सरकार अन्य तरीकों से भी नियुक्तियाँ कर देती है। यदि कोई मंत्रालय किसी उम्मीदवार का चयन पसंद नहीं करता तो वह प्रस्तावित पद वापस माँग सकता है और फिर उस पर एक वर्ष के लिए अपनी पसंद के व्यक्ति की अस्थायी नियुक्ति कर सकता है और वह अस्थायी व्यक्ति भी इसमें अपने अर्जित अनुभव लाभ के आधार पर भाग ले सकता है, जिससे निश्चित वह लाभान्वित होगा। कभी–कभी कोई मंत्रालय अल्पकाल के लिए तदर्थ नियुक्तियाँ कर लेता है और प्रत्याशी की कार्यावधि निरंतर बढ़ाता रहता है। मंत्रालय आयोग को यह आश्वासन दे सकता है कि प्रस्तावित पद कुछ समय बाद समाप्त हो जाएगा और इस प्रकार आयोग को मत्रालय की बात माननी पड़ती है। संघ लोक सेवा आयोग ने इस प्रकार की हरकतों का बार–बार विरोध किया है।

लोक सेवा आयोग का दुर्बल पक्ष

भारतीय राजव्यवस्था में लोक सेवा आयोगों का विशिष्ट महत्त्व है, किंतु वर्तमान में आयोगों के ढाँचे एवं कार्यशैली में अनेक दुर्बलताएँ आ गई हैं, जिनमें से कतिपय दुर्बलताएं इस प्रकार हैं:–

(1) आयोग के सदस्यों की नियुक्ति करते समय पर्याप्त ध्यान नहीं रखा जाता है।

(2) संघ लोक सेवा आयोग के अधिकार क्षेत्र से विभिन्न तरीकों द्वारा अनेक पदों पर नियुक्ति का अधिकार छीन लिया जाता है। उदाहरणार्थ, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् के मामले को लिया जा सकता है जो पूर्व में एक विभाग था और बाद में उसे स्वायतशासी संस्था बना दिया गया है। आयोग के भूतपूर्व अध्यक्ष श्रीयुत् सरकार की दृष्टि में इसका कारण यह था कि नियुक्तियों में मनमानी की जा सके। यह भी प्रयास चल रहा है कि वैज्ञानिक और तकनीकी स्वरूप के पदों पर नियुक्ति का अधिकार आयोग के क्षेत्राधिकार से बाहर कर दिया जाए। यदि ऐसा किया जाता है तो लगभग 80 प्रतिशत नियुक्तियों में आयोग का कोई वर्चस्व नहीं रह जाएगा।

(3) ऐसा माना जाता है कि संसद और विधानमंडलों में आयोग के प्रतिवेदनों पर समुचित वाद–विवाद और विचार मंथन नहीं होता है। श्रीयुत सरकार के अनुसार, व्यवहार में संसदीय नियंत्रण प्रभावकारी नहीं रहा है। आयोगों के वार्षिक प्रतिवेदनों पर पर्याप्त रूप से वाद–विवाद नहीं हो पाता। श्री धर्मवीर के अनुसार, संसद और विधानमंडलों में प्रतिपक्ष की दुर्बल स्थिति के कारण आयोग के प्रतिवदेनों के बारे में सरकार पर कोई औचित्यपूर्ण प्रतिबंध नहीं रह जाता है।

(4) आयोग द्वारा आयोजित मौखिक परीक्षाओं तथा व्यक्तित्व परीक्षाओं में शहरी तथा अंग्रेजी स्कूलों से आए प्रत्याशियों को देहाती प्रत्याशियों की अपेक्षा अधिक प्रश्रय दिया जाता है।

(5) आयोग द्वारा अपनाई गई चयन प्रक्रिया के कारण केवल उच्च परिवारों के धनी प्रत्याशियों को ही उच्च सेवाओं में प्रवेश मिल पाता है। डॉ. भाम्भरी ने लोक सेवा आयोग को बंद नौकरशाही निगम (Closed Bureaucratic Corporation) कहा है जो अपने भर्ती के तरीकों द्वारा स्थापित नौकरशाही व्यवस्था को निरंतर बनाए रखता है।

(6) भारत में लोक सेवा आयोग का दृष्टिकोण एवं कार्य प्रक्रिया अभी तक मूल रूप से नकारात्मक है। यह धूर्तों को दूर रखने का ही प्रयत्न करता है। इनके द्वारा रिक्त पदों के लिए किए जाने वाले विज्ञापन योग्य तथा कुशल प्रत्याशियों को आकर्षित नहीं कर पाते।

(7) आयोग का कार्य भार अधिक है। वह सदैव अपने नियमित कार्यों में ही व्यस्त रहने के कारण भर्ती नीतियों में अधिक नए प्रयोग नहीं कर पाता।

(8) संघ लोक सेवा आयोग द्वारा आयोजित की जाने वाली सिविल सेवा परीक्षा के पर्चों की गोपनीयता भंग होने के मामले प्रकाश में आने लगे हैं। इससे आयोग की विश्वसनीयता घट सकती है।

आयोग की बदलती भूमिका

राज्यों के लोक सेवा आयोगों के सदस्यों और अध्यक्षों के सम्मेलन में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने इस बात पर जोर दिया कि इस प्रकार की रोजगार नीति अपनाई जानी चाहिए कि लोक सेवाओं मे अधिक से अधिक ग्रामोन्मुख प्रत्याशी शामिल हो जाएँ ताकि जो लोग गाँवों में काम करना चाहते हैं, उन्हें अधिक अवसर मिले। हमारे पास ऐसे प्रशासक हो जो लोगों की अभिलाषाओं के प्रति उदासीन न हों। यह अभिलाषाएं चाहे समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता और प्रजातंत्र संबंधी हों। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि अधिकारियों को सांप्रदायिक, क्षेत्रीय और भाषाई पूर्वाग्रहों के ऊपर होना चाहिए।

सर्वत्र यह अनुभव किया जा रहा है कि अब देश की परिस्थितियाँ और लोगों की महत्त्वाकांक्षाएं इतनी बदल गई हैं कि संघ लोक सेवा आयोग के साथ–साथ राज्य के लोक सेवा आयोगों को भी अपनी कार्य प्रणाली और संगठन पर पुनर्विचार करना होगा। शैक्षणिक संस्थाओं से प्रतिवर्ष भारी संख्या मे शिक्षित युवक निकल आते हैं जिनके कारण लोक सेवा आयोगों का कार्य और भी जटिल हो गया है। ये आयोग एक विचित्र भँवर में फंस गए हैं।

लोक सेवा आयोगों के कार्यों में सुधार

लोक सेवा आयोगों के परिप्रेक्ष्य में कई सुधार अपेक्षित हैं। आयोगों का दर्जा बढ़ाना आवश्यक है। उन्हें उच्च न्यायालय के समतुल्य दर्जा मिलना चाहिए। आयोगों के अध्यक्षों तथा सदस्यों के वेतन भत्तों का यथाशीघ्र पुनर्निरीक्षण किया जाना चाहिए। राज्यों में लोक सेवा आयोगों की गिरती हुई प्रतिष्ठा को बचाना बहुत आवश्यक है। आयोगों में ऐसे व्यक्ति नियुक्त किए जाने चाहिए जिनकी साख पर कोई धब्बा न हो। आजकल आयोग का काम सरकारी सेवा तक ही सीमित है। सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों में नियुक्तियों का काम आयोग के अधिकार क्षेत्र से बाहर रखा गया है, जो ठीक नहीं। प्राक्कलन समिति ने भी सुझाव दिया है कि सार्वजनिक उद्यमों में भर्ती का कार्य पुनः आयोग को ही सौंप दिया जाना चाहिए। प्रशासनिक सुधार आयोग के अध्ययन दल ने कहा है कि संविधान के अनुच्छेद 321 के अधीन संसदीय विधि द्वारा संघ लोक सेवा आयोग के अधिकार क्षेत्र का विस्तार किया जाना चाहिए ताकि सरकारी धन राशि से चलाए जाने वाले सार्वजनिक क्षेत्र के अलाभकारी संगठन भी उनके अधिकार क्षेत्र में लाए जा सकें। अध्ययन दल ने भी यह सुझाव दिया है कि संघ लोक सेवा आयोगों को भर्ती, साक्षात्कार कार्य के मूल्यांकन, आदि के लिए आधुनिक तरीकों का विकास करना चाहिए।

संघ लोक सेवा आयोग के भूतपूर्व अध्यक्ष डॉ. किदवई का यह सुझाव उचित है कि राष्ट्रीय प्रतिभा परीक्षाओं के प्रयोग को चालू किया जाए। यही एक रास्ता है जिससे हम राष्ट्रीय रोजगार नीति बना पाने में सफल होंगें। परीक्षा की आवश्यकता पर जोर देते हुए उन्होंने कहा कि आज 100 में से 97.3 प्रत्याशी संघ आयोग की विभिन्न परीक्षाओं में अनुत्तीर्ण हो जाते हैं मगर यदि राष्ट्रीय स्तर पर सभी प्रकार के रोजगार के लिए एक ही परीक्षा का आयोजन किया जाता है तो इन अनुत्तीर्ण नवयुवकों में से एक तिहाई को विभिन्न प्रकार के कामों में लगाया जा सकता था। उद्देश्य यह है कि प्रत्याशियों को अलग–अलग नौकरियों के लिए आवेदन देते समय बार–बार एक ही प्रकार की परीक्षा में बैठना पड़ता है जो धन, समय एवं शक्ति का भी अपव्यय

है। यदि एक ऐसी योजना बनाई जाए जिससे प्रति वर्ष नौकरी चाहने वाले सभी नवयुवकों को केवल एक बार परीक्षा में बैठने का मौका दिया जाए और उसी परीक्षा के मूल्यांकन के आधार पर उन्हें योग्यता अनुसार अलग–अलग नौकरियों की ओर भेज जाए तो समस्या का निदान हो सकता है। आशा है सरकार, गृह मंत्रालय तथा राज्यों के आयोग भी इस सुझाव पर गंभीरता से विचार मंथन कर कुछ नया खोज निकालेंगे।

निष्कर्षतः संसद और राज्य विधानमंडलों में लोक सेवा आयोगों के कार्यों की भूरि–भूरि प्रशंसा हुई है और उनके चयन में निष्पक्षता होने की आमतौर पर सराहना की गई है। संघ लोक सेवा आयोग की स्थिति एवं शक्ति का अनुमान इसी उदाहरण से लगाया जा सकता है कि जब सरकार ने एक भूतपूर्व वित्त सचिव एच.एम. पटेल को बर्खास्त करने का विचार किया तो आयोग ने उन्हें संरक्षण दिया, तदनुरूप वित्तमंत्री को ही त्याग पत्र देना पड़ा।

महत्वपूर्ण प्रश्नः

1. संघ लोक सेवा आयोग की भूमिका का वर्णन कीजिए।
2. संघ लोक सेवा आयोग के कार्यों का वर्णन कीजिए।
3. संघ लोक सेवा आयोग की प्रमुख समस्याएं क्या हैं?

अध्याय 18

मनोबल

Morale

व्यक्ति किसी कार्य को तब अधिक कुशलता से कर सकता है जब वह उसके साथ प्रतिबद्ध होगा। वह मन लगाकर कार्य करेगा तो उसकी लगन अधिक होगी। ऐसी स्थिति में वह अनेक कमियों तथा बाधाओं को अनदेखा करके भी कार्य को सफल बनाने का प्रयास करता है। कर्मचारी की ऐसी स्थिति को मनोबल कहा जाता है। लोक प्रशासन में मनोबल का महत्वपूर्ण स्थान है। लोक सेवकों के मनोबल पर ही प्रशासन की कार्य–कुशलता निर्भर करती है। आज प्रशासनिक कर्मचारियों के मनोबल का अध्ययन आवश्यक है, क्योंकि किसी भी प्रशासनिक या औद्योगिक संगठन का वह आधार स्तम्भ है जिसके सहारे उनकी समस्त क्रियाएँ संचालित होती हैं। मनोबल कर्मचारियों की कार्यक्षमता में वृद्धि करता है। जब किसी संगठन या विभाग के कर्मचारियों का मनोबल ऊँचा होता है तब उसका कार्य सुचारू रूप से सम्पादित होता है। यद्यपि यह एक वास्तविकता है फिर भी इसकी प्रकृति अदृश्य है जिसे भौतिक तत्व की भांति साकार रूप में देखा नहीं जा सकता, मात्र अनुभव किया जा सकता है। यह एक ऐसा तत्व है जो व्यक्ति में आत्म–सम्मान पैदा करता है एवं व्यक्तिगत विकास का अवसर प्रदान करता है।

मनोबल का अर्थ

The Meaning of Morale

'मनोबल' (Morale) का शब्दकोषीय अर्थ "कार्य के प्रति विश्वास तथा रूचि संबंधी भावना से है। यह वह आंतरिक शक्ति है जो किसी व्यक्ति को कार्य के लिए प्रेरित करती है।" सन् 1930 में 'मानवीय संबंध शब्द की उत्पत्ति से पूर्व 'मनोबल शब्द ही अधिकांशतः प्रयोग किया जाता था। मनोबल किसी भी प्रशासनिक या औद्योगिक संगठन का आधार स्तम्भ होता है जिनके सहारे उनकी समस्त क्रियाएँ संचालित होती हैं। कर्मचारियों का उच्च मनोबल किसी भी उपक्रम की सफलता के लिए आवश्यक है। संगठन तथा उपक्रम को निर्देशित, पथ–प्रदर्शित एवं पर्यवेक्षित करने के लिए संबंधित अधिकारियों द्वारा जो कदम उठाये जाते हैं उनका संगठन के मनोबल पर गहरा प्रभाव पड़ता है। मनोबल को एक प्रकार से संगठन की जीवन–शक्ति कह सकते हैं, जिसके बिना समस्त प्रबन्धकीय क्रियाएँ निर्जीव रूप से संचालित होती हैं।

'मनोबल' से आशय मन के बल तथा आंतरिक बल से है जिसके माध्यम से कोई व्यक्ति कार्य करने के लिए प्रेरित होता है। यदि प्रतिष्ठान में कर्मचारी समय पर आते हैं, ईमानदारी से अपना कार्य–निष्पादन करते हैं, कार्य में आने वाले अवरोधों को तुरन्त दूर करने का प्रयत्न करते हैं, अधिकारियों के आदेशों का अनुपालन करते हैं तो यही माना जाता है कि उस प्रतिष्ठान के कर्मचारियों या श्रमिकों का मनोबल ऊँचा है। इस प्रकार, 'उच्च मनोबल' (Higher Morale) वह सुनिश्चित स्थिति है जिसमें सामूहिक प्रयास के लिए पूर्ण सहयोग पाया जाता है। औद्योगिक जगत में विभिन्न अध्ययनों से यह सामान्य मत प्रतिपादित हुआ है कि प्रतिष्ठान के पक्ष में विचार रखने वाले कर्मचारी साधारणतः अधिक अच्छे कर्मचारी (Better Employees) होते हैं और उनका मनोबल उच्च होता है।

संगठन में मनोबल के स्वरूप तथा अर्थ से सम्बन्धित विभिन्न परिभाषाएँ प्रस्तुत की गई हैं। एलेक्जेण्डर लाइटन (Alexander Lighton) के अनुसार, "मनोबल व्यक्तियों के सामूहिक लक्ष्य की खोज में धैर्य के साथ एवं लगातार एक साथ चलने की क्षमता है।"

स्टाउपर एवं लुचानन के अनुसार–"मनोबल किसी समूह या संगठन के कार्यों एवं समूहों की अभिवृत्ति है, जो उनकी सहयोग करने की स्वेच्छा का निर्धारण करती है।"

विलियम आर. स्प्रीगल के शब्दों में—"मनोबल का आशय बहुत से व्यक्तियों के, जो आपस में किसी आधार पर एक दूसरे से संबंधित हैं, सहकारी दृष्टिकोण या सामूहिक मानसिक व्यवस्था से है।"

लेटन के मत में—"मनोबल व्यक्तियों के समूह की एक ऐसी क्षमता है जो सामान्य उद्देश्यों की प्राप्ति हतु निरन्तर एवं अधिक कार्य करने को प्रेरित करती है।"

डी. एफ. एल. ब्रेच के शब्दों में—"मनोबल को किसी समूह या संगठन कार्यों तथा उद्देश्यों की प्राप्ति में सहयोग देने की तत्परता के रूप में व्यक्त किया जा सकता है।"

कारवेल के अनुसार—"मनोबल शिथिलता से रोजगार के प्रति कर्मचारियों की अभिवृत्तियों के सम्मिश्रण के रूप में परिभाषित किया जाता है। कर्मचारी अपने कृत्यों, कार्य–दशाओं, पर्यवेक्षकों, कम्पनी वेतन और रोजगार के अन्य पहलुओं के संबंध में सोचते हैं या महसूस करते हैं, उन सबका यह (मनोबल) एक संश्लेषण (Synthesis) है, उन सबको एक साथ प्रस्तुत करता है। इस प्रकार परिभाषित करने से मनोबल शब्द में वैयक्तिक और सामूहिक मनोबल सम्मिलित होता है।"

डेल योडर के अनुसार—"मनोबल रोजगार के प्रति कर्मचारियों की अवस्थाओं, उनके वैयक्तिक कृत्यों, जिनके साथ वे काम करते हैं, उनके पर्यवेक्षकों, उनके संघ, कार्य की दशाओं और सम्पूर्ण रोजगार के प्रति एक संश्लेषण की तरह माना गया है।"

जॉन एफ. मी के शब्दों में—"कर्मचारी या समूह का अच्छा मनोबल व्यक्ति तथा समूह के मानसिक व्यवहार का द्योतक है जिसमें कर्मचारी यह अनुभव करने लगता है कि उसके संतोषप्रद कार्य एवं कम्पनी के उद्देश्यों की पूर्ति में तालमेल है।" दूसरे शब्दों में, कर्मचारी कम्पनी तथा स्वयं के हित एक साथ देखने लगता है और यह केवल कम्पनी के आदेशों का पालन करने तक ही सीमित नहीं रहता।

मनोबल की उपर्युक्त विभिन्न परिभाषाओं के अध्ययन से स्पष्ट है कि—"मनोबल शब्द वैयक्तिक और सामूहिम मनोबल सम्मिलित है।" मनोबल वह उत्साह, अनुभूति और साहस है जिससे व्यक्ति अथवा समुदाय प्रेरित होकर अधिक कार्य करते हैं। मनोबल कर्मचारी की शक्ति, विश्वास, स्वाभिमान व लगन अथवा उत्साह का प्रतीक है। मनोबल में उच्च और निम्न दोनों ही तरह के मनोबल सम्मिलित होते है।

मनोबल की विशेषताएँ

Characteristics of Morale

मनोबल के अर्थ और उसकी परिभाषाओं के आधार पर इसकी विशेषताओं को निम्नानुसार रूप से रखा जा सकता है

1. **व्यक्तिगत एवं सामूहिक**—मनोबल में व्यक्तिगत और सामूहिक दोनों तरह के मनोबल सम्मिलित हैं। वैयक्तिक मनोबल उस दृष्टिकोण को स्पष्ट करता है जो एक कर्मचारी अपनी संस्था के प्रति रखता है। दूसरे शब्दों में, इसका आधार उस संतुष्टि से है जो कर्मचारी को अपने कार्य से तथा कार्य करने वाले समूह का सदस्य होने से प्राप्त होती है। सामूहिक मनोबल का दृष्टिकोण अधिक व्यापक है। यह कार्य करने वाले सम्पूर्ण समूह की संतुष्टि पर बल देता है। यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि वैयक्तिक मनोबल द्वारा ही सामूहिक मनोबल का आविर्भाव तथा उत्पत्ति होती है।
2. **उच्च एवं निम्न**—मनोबल दो भागों में वर्गीकृत है—(क) उच्च एवं (ख) निम्न। उच्च मनोबल को अभिव्यक्त करने के लिए सामान्यतः समूह–भावना (Team-Spirit), जोश या उत्साह, टिके रहने का गुण, नैराश्य–प्रतिरोध आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है। दूसरे शब्दों में, यदि व्यक्ति या समूह बिना विवाद या कलम की ठीक भावना से या जोश से अपना कार्य सम्पादित करते हैं और उनमें कार्य करने की चाह अथवा उत्सुकता परिलक्षित होती है तो मनोबल उच्च माना जाता है। निम्न मनोबल को अभिव्यक्त करने के लिए सामान्यतः विवाद, उदासीनता, निराशा आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है। उच्च मनोबल तस्वीर के घनात्मक (Positive) या सकारात्मक पहलू को और निम्न मनोबल, ऋणात्मक (Negative) या नकारात्मक पहलू को अभिव्यक्त करता है।
3. **मानसिक अवस्था**—मनोबल व्यक्ति की और समूहों की मानसिक अवस्थओं का सूचक है।
4. **मानसिक तत्व**—मनोबल, उत्साह, भावना, विश्वास, आशा आदि मानसिक तत्वों पर आधारित है।
5. **सम्पूर्ण वातावरण**—मनोबल किसी वर्ग, सम्प्रदाय, समाज के व्यक्तियों में व्याप्त समग्र वातावरण को अभिव्यक्त करता है।

6. **सामूहिक उद्देश्य**—मनोबल किसी सामूहिक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए किसी व्यक्ति–समूह की दृढ़तापूर्वक और निरन्तर एक साथ काम करने की इच्छा भावना या रूचि है।

मनोबल की विशेषताओं पर अनेक विद्वानों ने अपने विचार प्रकट किये हैं। डेल योडर का विचार है कि अधिकांश नियोक्ता उत्पादकता (Productivity) और गुणवत्ता (Quality) को उच्च मनोबल के साथ सम्बन्धित करते हैं ताकि कर्मचारियों के मनोबल का विकास एवं संरक्षण संभव हो सके। डेल योडर ने उच्च मनोबल को कर्मचारी या श्रमिक समूह की उस मस्तिष्कावस्था से सम्बन्धित किया है जो समूह की गतिविधियों और समूह के कार्यों के प्रति उत्साही व मैत्रीपूर्ण दृष्टिगत होती है। इसके विपरीत, यदि समूह असंतुष्ट, आलोचक, क्षुब्ध अथवा निराशावादी हो तो यह उसके निम्न मनोबल का सूचक है। कीथ डेविस का अभिमत है कि उच्च मनोबल एक सुप्रबन्धित संगठन का प्रतीक है जिसे उकसाया अथवा खरीदा नहीं जा सकता है। निम्न मनोबल के सूचक तत्त्व हड़तालें, शिथिल कार्य, अनुपस्थिति आदि होते हैं।

मनोबल का महत्त्व

Morale: Its Importance

प्रत्येक संगठन या संस्था में मनोबल का महत्त्व या भूमिका निर्विवाद है–

(1) **मनोबल संस्था का मानसिक बल**—मनोबल प्रत्येक संगठन या संस्था का मानसिक बल है, उसका आवश्यक तत्त्व है। उच्च मनोबल संगठन को सफलता की ओर अग्रसर करता है जबकि निम्न मनोबल संस्था के विकास में बाधक होता है। एक सैनिक संगठन मनोबल के आधार पर ही पराजय को विजय में बदल सकता है। व्यापारिक तथा प्रशासनिक संगठनों में मनोबल वह केन्द्र–बिन्दु है जिससे प्रशासन की सभी रेखाएँ प्रसारित होती हैं।

(2) **प्रशासकीय व्यवहार का प्रेरक**—मनोबल प्रशासकीय व्यवहार का प्रेरक है साथ ही उसका संचालक भी। प्रशासन के विभिन्न सिद्धान्तों का संगठन में जिस रूप में पालन किया जाता है वह उसके मनोबल पर अपना प्रभाव डालता है। संगठन को निर्देशित, पथ–प्रदर्शित एवं पर्यवेक्षित करने के लिए सम्बन्धित अधिकारियों द्वारा जो कदम उठाये जाते हैं, उनका संगठन के मनोबल पर गहरा प्रभाव पड़ता है।

(3) **संगठन की जीवन शक्ति**—मनोबल को एक प्रकार से संगठन की जीवन–शक्ति कह सकते हैं जिसके बिना समस्त प्रशासकीय क्रियाएँ निर्जीव रूप में संचालित होती रहती हैं। यदि संगठन को परम्परावादी सिद्धान्तों के आधार पर संचालित किया जाये तो यह संभव नहीं है कि उसके सभी सदस्यों का वांछित सहयोग प्राप्त किया जा सके। आजकल बड़े स्तर के संगठनों में यांत्रिक विचारधारा को निराधार एवं प्रभावहीन माना जा चुका है।

(4) **प्रशासन का प्रभावी रूप से संचालन**—वर्तमान में यह समझा जाता है कि संगठन तथा सरकार एक मानवीय संस्था है जिसे केवल औपचारिक प्रबन्ध एवं सिद्धान्तों के आधार पर संचालित नहीं किया जा सकता है। इसके लिए मानवीय दृष्टिकोण, उत्साह एवं स्वामिभक्ति आवश्यक है। प्रशासकीय कार्य मूल रूप से एक मानवीय कार्य है और इससे सम्बन्धित सभी समस्याएँ मानवीय मनोदशा एवं बौद्धिक चेतना की समस्याएँ हैं। दूसरे शब्दों में प्रशासन का स्वरूप उसके कर्मचारियों एवं अधिकारियों के मनोबल व भावनात्मक तुष्टि के आधार पर निर्धारित होता है। जिस संगठन के पदाधिकारियों को अपने कार्य से संतोष रहता है वे अपेक्षाकृत संगठन को अपना अधिक योगदान देते हैं। इस प्रकार जिस कर्मचारी के कार्य का उचित मूल्यांकन किया जाता है तथा जिसके व्यवहार की उचित प्रशंसा की जाती है, वह कई बार आशातीत रूप में अपनी योग्यताओं से संगठन को लाभन्वित करता है। एक मानवीय क्रिया होने के नाते प्रशासकीय संगठन की सफलता उसके सेवीवर्ग के संतोष–असंतोष, दुःख, ग्लानि, प्रशंसा तथा ऐसे ही अन्य अनेक भावों तथा प्रवृत्तियों द्वारा निश्चित की जाती है। जिस देश के लोक सेवक अपने कार्य में पूरा उत्साह दिखाते हैं और देशभक्तिपूर्ण भावनाओं से अभिप्रेरित रहते हैं उस देश का प्रशासन निश्चित रूप से प्रभावी रूप में संचालित होता है। ब्रिटिश नागरिक सेवा के सम्बन्ध में जो प्रशंसात्मक वाक्य लिखे गये हैं उन सब के पीछे सेवीवर्ग का उच्च मनोबल ही कार्य कर रहा है। यदि किसी संगठन में योग्य व्यक्तियों को भर्ती किया जाये, प्रशिक्षण द्वारा उनकी क्षमताओं को परिष्कृत कर दिया जाये, साथ ही सेवीवर्ग के साथ उचित व्यवहार किया जाए, तो उस संगठन के असफल होने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता है।

मनोबल के प्रभाव

Effects of Morale

आर. सी. डेविस (R.C. Davis) के अनुसार उच्च मनोबल से किसी संस्था व उपक्रम में निम्नांकित प्रभाव उत्पन्न होते हैं

(1) संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु स्वैच्छिक सहयोग।

(2) श्रेष्ठ अनुशासन और नियमों, व्यवस्थाओं तथा आदेशों का स्वैच्छिक अनुपालन।

(3) संगठन तथा नेतृत्व के प्रति वफादारी।

(4) संगठन के प्रति गौरव।

(5) कर्मचारियों की पहल (Initiative) का उचित प्रभावपूर्ण प्रदर्शन।

(6) सुदृढ़ संगठनात्मक क्षमता या कठिन समय में संगठन को उबारने की चेष्टा और योग्यता।

(7) संगठन तथा कार्यों में कर्मचारियों की बढ़ी हुई रुचि।

जब कर्मचारियों का मनोबल गिरा हुआ होता है तो संगठन में अनेक दोष पैदा हो जाते हैं। यदि कर्मचारी उदासीन हैं, झगड़ालू प्रकृति के हैं, अनुशासनहीन हैं, कार्य के प्रति रुचि नहीं रखते हैं, आलोचक और विरोधी हैं तो यही माना जाता है कि कर्मचारियों का मनोबल निम्न है। डॉ. विलियम आर. स्प्रीगल (William R. Spriegal) ने निम्न मनोबल के प्रभाव और परिणाम निम्नांकित बतलाये हैं –

(1) उत्पादकता में कमी आती है।

(2) अनुपस्थितियाँ बढ़ती हैं।

(3) नियमों तथा पर्यवेक्षण कार्य में विरोध उत्पन्न होता है।

(4) शिकायतों, परिवेदनाओं आदि में वृद्धि होती है।

(5) कर्मचारियों में मनमुटाव होता है।

(6) श्रमिकों की बदली में वृद्धि होती है।

(7) दुर्घटनाएँ बढ़ती हैं।

(8) संगठन के कार्य और व्यवहार में शिथिलता आती है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि मनोबल एक संस्था का प्राण है, उसकी जीवन शक्ति है। कीथ डेविस ने मनोबल के महत्व को इंगित करते हुए ठीक ही लिखा है कि –"जिस प्रकार औरत की शक्ति का अनुमान कभी भी कम नहीं लगाना चाहिए, उसी प्रकार मनोबल की शक्ति का अनुमान भी कम नहीं लगाना चाहिए।

मनोबल के परिणाम

Consequences of Morale

मनोबल प्रत्येक संगठन का मानसिक बल है, उसका आवश्यक तत्त्व है। उच्च मनोबल संगठन को सफलता की ओर अग्रसर करता है। सैनिक संगठन मनोबल के आधार पर हार को जीत में बदल सकता है। नेपोलियन कहा करता था कि युद्ध में 75% विजय और पराजय मनोबल द्वारा ही निश्चित की जाती है। व्यापारिक और प्रशासनिक संगठनों में मनोबल वह केन्द्र बिन्दु है जिससे प्रशासन की सभी रेखाएँ प्रसारित की जाती हैं। डॉ. एल. डी. व्हाइट के अनुसार उच्च मनोबल स्वामिभक्ति, सहयोग और एकजुट हो कर काम करने की भावना को प्रोत्साहित करता है। मनोबल इस बात पर निर्भर है कि कर्मचारियों का अपने काम, संगठन, काम करने की दशाओं, अधिकारियों, सहयोगियों आदि से कितना सहयोग और संतोष प्राप्त होता है। उच्च मनोबल के फलस्वरूप संगठन को निम्नांकित लाभ प्राप्त होते हैं–

(1) **कर्मचारियों को दायित्व–निर्वाह की प्रेरणा**–कर्मचारी अपने दायित्वों का पालन करने में प्रसन्न होते हैं, जो जटिल से जटिल कार्य से भी नहीं घबराते। संगठन के कार्यों का सफल संचालन उन्हें संतोष देता है। मनोबल से हीन कर्मचारी हर काम को बाधा मानते हैं।

(2) **कर्मचारियों में सहयोगी भावना का विकास**—संगठन में मनोबल का ऊँचा स्तर कर्मचारियों में सहयोगी भावना का विकास करता है। सामूहिक कार्य (Team Wrok) और मनोबल समानार्थक होते हुए भी एक नहीं हैं। मनोबल का अर्थ एक समूह के विभिन्न दृष्टिकोणों से है जबकि सामूहिक कार्य (Team Work) एक छोटे समूह द्वारा घनिष्ठता के साथ और समन्वित रूप में किये गये कार्य की ओर संकेत करता है। श्रेष्ठ मनोबल सामूहिक कार्य की स्थापना का कारण बन जाता है, अतः यह माना जाता है कि कर्मचारी पूरी तरह मिल–जुलकर काम कर सकेंगे किन्तु यह भी संभव है कि उच्च मनोबल के होते हुए भी समुदाय के लोग टीम भावना से कार्य न कर सकें।

(3) **कर्मचारियों में संगठन के प्रति गौरव की अनुभूति**—जिस संगठन के कर्मचारियों का मनोबल ऊँचा होता है उनमें अपने संगठन के प्रति गौरव की अनुभूति होती है जिसके फलस्वरूप वे संगठन के लक्ष्यों को अपना लक्ष्य मानकर चलते हैं।

(4) **कर्मचारियों की अनुपस्थिति पर नियन्त्रण**—उच्च मनोबल के फलस्वरूप संगठन में कर्मचारियों की अनुपस्थितियाँ कम होती हैं। बिना नोटिस के हड़ताल–घेराव आदि नहीं होते और न ही कर्मचारी प्रायः स्वेच्छा से त्यागपत्र देते हैं।

(5) **कर्मचारियों का आंदोलनों से अप्रभावित रहना**—संगठन के कर्मचारियों में जब उच्च मनोबल होता है तो वे इस प्रकार के आंदोलनों से प्रभावित नहीं होते जैसे कम काम करो, नियमानुसार काम करो, सीट पर बैठे रहो आदि। कर्मचारियों की शिकायतें भी कम होती हैं और वे हिंसात्मक प्रदर्शनों की ओर उन्मुख नहीं होते।

(6) **नेतृत्व में विश्वास जाग्रत करना**—वास्तव में उच्च मनोबल समूह के उद्देश्य तथा नेता के नेतृत्व में विश्वास जाग्रत करता है, सदस्यों का एक दूसरे के प्रति सहयोग बढ़ता है, संगठन में कार्यकुशलता लाता है और सदस्यों के शारीरिक एवं भावात्मक स्वास्थ्य की अभिवृद्धि करता है।

(7) **नेतृत्व के अभाव में अनेक दोष उजागर होना**—जब कर्मचारियों का मनोबल गिरा हुआ होता है तो संगठन में अनेक दोष पैदा हो जाते हैं जैसे कर्मचारी अपना काम पसन्द नहीं करते एवं उनमें एक दूसरे से मिल–जुलकर काम करने की भावना नहीं रहती, अनुपस्थितियाँ अधिक होती हैं, बिना नोटिस के हड़ताल–घेराव आदि होते रहते हैं, कर्मचारी विभिन्न प्रकार के आंदोलनों में रुचि लेते हैं आदि। मनोबल का अभाव या कमी संगठन को खोखला कर देता है। ऐसे में उसकी सफलता भी संदिग्ध हो जाती है।

मनोबल को प्रभावित करने वाले तत्त्व

Factors Affecting Morale

अथवा

मनोबल के निर्धारक तत्त्व या घटक

Morale Determinants

किसी भी संस्था अथवा उपक्रम में मनोबल को प्रभावित करने वाले अनेक तत्त्व होते हैं। प्रायः कहा जाता है कि मनोबल को प्रत्येक चीज प्रभावित करती है—कुछ की तीव्रता अधिक होती है, कुछ की सामान्य और कुछ की बहुत ही कम फ्लिप्पो (Flippo) ने मनोबल को प्रभावित करने वाले घटकों में निम्नांकित को सम्मिलित किया है–

(1) वेतन (Pay), (2) सुरक्षा (Security), (3) किये गये कार्य की प्रसिद्धि (Credit for Work Done), कार्य–दशाएँ (Working Conditions), (5) उचित एवं योग्य नेतृत्व (Fair and Competant Leadership), (6) अवसर (Opportunity), (7) सहयोगियों की अनुकूलता (Congeniality of Associates), (8) कर्मचारी–लाभ (Employee Benefits), (9) सामाजिक प्रतिष्ठा (Social Status) तथा (10) उचित तीव्रता (Worthwhile Activity)।

प्रायः मनोबल को प्रभावित करने वाले या उसके निर्धारक तत्त्वों में निकटतम पर्यवेक्षण (Immediate Supervision), संगठन के कार्य (Company Operations), व्यक्तिगत पुरस्कार (Personal Reward), कार्य–सन्तुष्टि (Job Satisfaction), कार्य की मनोवैज्ञानिक दशाएँ (Psychological Condition of Work, और कार्य के सम्बन्ध (Work Relations), संगठन में एकीकरण (Integration in the Organisation) आदि को सम्मिलित किया जाता है।

मनोबल को प्रभावित करने वाले अन्य तत्त्व—किसी भी संगठन के सदस्यों के मनोबल को प्रभावित करने में [illegible] की भी प्रभावपूर्ण भूमिका रहती है—

प्रथम, संगठन के सदस्यों के मनोबल के पीछे उसका स्तर एवं स्थिति भी महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है। एक [illegible] में कार्य करने वाले उन मजदूरों में, जो प्रभावशाली संघों के नेता हैं या सदस्य हैं, एक विशेष प्रकार का मनोबल [illegible] पारिवारिक समस्याएँ, धार्मिक एवं सामाजिक संस्थाओं के उत्तरदायित्व एवं मज़दूर संघों आदि की माँग कुछ ऐसे तत्त्व हैं जो बाह्य होते हुए भी मनोबल को प्रभावित करते हैं। ये संघ एवं संस्थाएँ आवश्यक रूप से संगठन के मनोबल को नीचे नहीं [illegible] किंतु कई बार ये उसके विकास में सहायक होती हैं। तीसरे, मनोबल को प्रभावित करने वाले कुछ तत्त्व ऐसे हैं जो [illegible] अधिकार क्षेत्र में होते हैं। जैसे संगठन की नीतियाँ, प्रक्रियाएँ, लक्ष्य, संचार—व्यवस्था आदि। इनके अतिरिक्त संगठन में [illegible] नेतृत्व, संतोषजनक संगठनात्मक व्यवस्था, आदेश की एकता, पर्याप्त पुरस्कार और अनुशासन, उच्च अधिकारी का [illegible] के प्रति दृष्टिकोण आदि मिलकर संगठन में मनोबल को निर्धारित करते हैं। कई बार अधीनस्थ अधिकारियों के मनोबल [illegible] उस कार्य का बहुत कम प्रभाव पड़ता है जो किया जा रहा है, किन्तु उस तरीके का अधिक प्रभाव पड़ता है जो [illegible] जा रहा है। यदि अधीनस्थों को यह शक हो जाये कि उच्च अधिकारी उनके व्यवहार तथा कार्य के लक्ष्यों पर [illegible] करता तो मनोबल निम्न स्तर का होगा। हेमैन के शब्दों में—"इसमें संदेह नहीं कि अधीनस्थ का मनोबल प्रबन्धक [illegible] के सम्पर्क द्वारा दृढ़ता से प्रभावित होता है। प्रबन्धक जिस ढंग से पर्यवेक्षण, निर्देशन, नेतृत्व एवं सामान्य दृष्टिकोण प्रदर्शित [illegible] उसके आधार पर अच्छा या बुरा मनोबल बन जायेगा।"

मनोबल के अंग

Components of Morale

लेटन एवं सिलिण्डर (Laighton and Schelinder) ने लिखा है कि—"मनोबल एक भावनात्मक एवं मानसिक स्थिति [illegible] करने की इच्छा को प्रभावित करती है और इस इच्छा से व्यक्तिगत एवं संगठनात्मक उद्देश्य प्रभावित होते हैं। [illegible] अभिमत है कि कर्मचारी मनोबल (Employee Morale) निम्नांकित अंगों के संयोजन का परिणाम है

(1) **यह क्या है? (What it is?)**—यह मानव—मस्तिष्क की एक अभिवृत्ति है, कार्य की प्रवृत्ति है, कल्याण [illegible] है और एक भावनात्मक दबाव है।

(2) **यह क्या करता है? (What it does?)**—यह उत्पादन, किस्म, लागत, सहयोग, उत्साह, अनुशासन, [illegible] सफलता सम्बन्धी तत्त्वों को प्रमुखता से प्रभावित करता है।

(3) **यह कहाँ रहता है? (Where it resides?)**—यह व्यक्तियों और सहयोगियों के मस्तिष्क एवं भावना [illegible] सामूहिक क्रिया—प्रतिक्रियाओं में निवास करता है।

(4) **यह किसको प्रभावित करता है? (Whom does it effect?)**—यह निकटतम सहयोगियों, अधिकारियों [illegible] उपभोक्ताओं को प्रभावित करता है।

(5) **यह क्या प्रभावित करता है? (What does it effect?)**—यह कार्य के प्रति अभिरुचि, प्रतिष्ठान के [illegible] सहयोग, व्यक्तिगत लाभ की दृष्टि में सहयोग आदि को प्रभावित करता है।

मनोबल कैसे विकसित करें?

How to Develop Morale?

किसी भी संगठन में उच्च मनोबल की स्थापना के लिए विभिन्न उपाय सुझाये गये हैं। इनमें से कतिपय निम्नांकित हैं

(1) **संगठन के उद्देश्य एवं लक्ष्य का ज्ञान**—जिस संगठन में हम उच्च मनोबल की स्थापना करने जा रहे हैं उसमें सर्वप्रथम यह व्यवस्था करनी चाहिए कि सभी सदस्य संगठन के उद्देश्यों एवं लक्ष्यों से परिचित हो सकें। लक्ष्यहीन प्रयास [illegible] प्रभावशीलता, उत्साह एवं व्यक्तिगत रुचि का अभाव पाया जाता है। उद्देश्य का ज्ञान कराने पर मनोबल ऊँचा [illegible] के उदाहरण सैनिक प्रशासन में पर्याप्त रूप से दृष्टिगोचर होते हैं जैसे जर्मनी में हिटलर के अनुयायियों का शुद्ध [illegible]

रक्त होने से मनोबल का बढ़ना। प्रशासकीय संगठन में भी मनोबल विकसित करने के लिए जरूरी है कि उसके कर्मचारियों को संगठन के लक्ष्य का ज्ञान हो, साथ ही वे इस बात से भी परिचित हों कि उनका कार्य संगठन के लक्ष्य प्राप्त करने में कहाँ तक सहयोग करेगा। प्रशिक्षण द्वारा भी कर्मचारी के सम्मुख संगठन तथा कार्य का उद्देश्य स्पष्ट किया जाता है।

(2) **नीति–निर्माण में भाग लेने की भावना**–जब संगठन के कर्मचारियों को यह विश्वास हो जाता है कि उनको नीति–निर्माण के कार्य में भाग लेने का अवसर प्रदान किया जा रहा है तो अपने दायित्वों में विशेष रूचि लेने लगते हैं। उनको ऐसा अनुभव होने लगता है कि मानो उन पर ही संगठन के संचालन का उत्तरदायित्व है। उत्तरदायित्व का यह भार उनको गंभीरता प्रदान करता है। एक कर्मचारी के संगठन की प्रक्रिया एवं स्वरूप सम्बन्धी सुझाव को यदि उच्चाधिकारी ध्यान देकर सुनें, उस पर विचार करें तथा उसे उचित प्रशंसा प्रदान करें तो कर्मचारी को यह अनुभव होता है कि उसका भी कुछ महत्त्व है। फलतः उसका मनोबल ऊँचा होता है। इससे वह अधिक उत्साह और प्रेरणा से कार्य करने को प्रेरित होगा।

(3) **कार्य की वाँछनीयता**–संगठन का प्रत्येक कर्मचारी यदि यह सोचता है कि प्रस्तुत पद उसके सम्मान, गुण एवं बुद्धिमता के अनुरूप है तो उसमें संतोष की भावना उत्पन्न होती है। जब कर्मचारी यह सोचने लगता है कि वह जिस कार्य को कर रहा है, वह कोई महत्त्व ही नहीं रखता, तो यह संगठन के लिए अत्यन्त घातक सिद्ध होता है। कर्मचारी को कार्य करने से वेतन प्राप्त हो, केवल यही पर्याप्त नहीं है, यथार्थ में उसे इससे संतोष भी प्राप्त होना चाहिए। डॉ. एल. डी. हाइट ने ठीक ही लिखा है कि उच्च मनोबल मूलतः उस विश्वास के साथ जुड़ा हुआ है जिसके कारण प्रत्येक व्यक्ति अपने कार्य को महत्त्वपूर्ण एवं मूल्यवान मानता है। इस विश्वास का विकास करना प्रबन्ध का महत्त्वपूर्ण दायित्व है जिसे केवल अवसर पर नहीं छोड़ा जा सकता है।

(4) **उच्चाधिकारी में विश्वास**–संगठन के कर्मचारियों के मनोबल को ऊँचा उठाने का यह एक महत्वपूर्ण आधार समझा जाता है कि वे अपने उच्चाधिकारियों की ईमानदारी, निष्पक्षता और न्यायप्रियता में विश्वास करें और यह मानकर चलें कि वे जो कुछ भी निर्णय लेंगे, संगठन की अच्छाई के लिए ही होंगे। जब उनको यह संदेह होने लगता है कि उच्च अधिकारी या सहयोगी कर्मचारी संगठन के कल्याण के लिए नहीं, वरन् व्यक्तिगत स्वार्थ की सिद्धि के लिए प्रयास कर रहे हैं तो उनका मनोबल गिरने लगता है।

(5) **भावनाओं का विकास**–संगठन का मनोबल ऊँचा उठाने का एक अन्य महत्त्वपूर्ण साधन यह है कि कर्मचारियों का भावात्मक विकास कर उनमें स्वामिभक्ति के भाव जाग्रत किये जायें। एक कुशल और समर्पित नेतृत्व के माध्यम से ऐसा किया जा सकता है।

(6) **प्रेरणादायक नेतृत्व**–सैनिक और व्यापारिक संगठनों में प्रेरणादायक नेतृत्व का महत्त्व सर्वविदित है। महाराणा प्रताप जैसे सेनापति ने केवल थोड़े से सैनिकों के बल पर सम्राट अकबर की विशाल सेनाओं के दाँत खट्टे कर दिये थे। प्रभावशाली नेतृत्व अपने अधीनस्थों एवं सहयोगियों में मनोबल का विकास करने के लिए अनेक उपाय अपना सकता है। सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण एवं प्रभावशाली तरीका उसका स्वयं का व्यवहार है जो संगठन के सदस्यों पर अमिट छाप छोड़ सकता है।

(7) **कार्य की उचित शर्तें**–कर्मचारियों में मनोबल के विकास के लिए आवश्यक कई बातें इस बात से प्रभावित होती हैं कि उनको कार्य करने की उचित दशाएँ प्रदान की जाती हैं या नहीं। यदि ऐसा नहीं किया जाता तो उन्हें अपने कार्य से संतोष नहीं होगा, वे नेतृत्व से प्रभावित नहीं होंगे तथा अपने उच्च अधिकारी की ईमानदारी पर संदेह करेंगे। अतः उच्च मनोबल की स्थापना के लिए यह उपयोगी है कि कर्मचारियों का कार्य निरापद हो, उनको अच्छा वेतन दिया जाये, उनको छुट्टियों की सुविधा, पदोन्नति के अवसर, संतोषजनक सेवा–निवृत्ति के लाभ आदि प्रदान किये जाये।

अतः कर्मचारियों के मनोबल बढ़ाने से पूरे संगठन को लाना होता है इसलिए किसी भी संगठन की प्रगति के लिए मनोबल बहुत आवश्यक है।

महत्वपूर्ण प्रश्न

1. लोक सेवाओं में मनोबल का क्या महत्त्व है? इसका निर्माण किस प्रकार किया जाता है?
2. मनोबल से आप क्या समझते हैं? मनोबल को निर्धारित करने वाले तत्वों तथा पद्धतियों का वर्णन कीजिए।
3. मनोबल क्या है? इसके प्रकार तथा अंगों का वर्णन कीजिए।

अध्याय 19

ह्विटले परिषदें

(Whitley Councils)

प्रशासन में कार्य करने वाले क्रमिकों की बहुत सारी समस्याएँ होती हैं। वे अपनी समस्याओं को सुलझाने के लिए सरकार को भिन्न-भिन्न माध्यमों से सूचित करते हैं। यदि समस्याएँ नहीं सुलझती हैं तो वे धरना, प्रदर्शन तथा हड़ताल आदि का सहारा लेते हैं। अतः सरकार व कर्मचारियों के मध्य सम्बन्ध एक महत्त्वपूर्ण विषय है। प्राचीनकाल में सरकार, कर्मचारियों से यह उम्मीद करती थी कि वे राज्य के प्रति पूर्ण वफादारी का परिचय देंगे। सरकार, कर्मचारियों से कोई सलाह किए बिना सेवा शर्तों को एक तरफा कर मनमाने ढंग से मामलों को तय कर देती थी। आधुनिक लोकतन्त्र में ऐसा नहीं है। सरकारें आजकल प्रबन्धकीय निर्णयों में कर्मचारियों को शामिल करें उनके विचारों को महत्त्व देती है। यह प्रशासकीय कार्य–कुशलता के लिए महत्त्वपूर्ण भी है क्योंकि ये कर्मचारी ही सरकार के कार्यक्रमों तथा नीतियों को लागू करते हैं। यह अनुभव किया गया है कि यदि कर्मचारी काम छोड़कर हड़ताल करते हैं तो उन्हें समझने तथा समझाने के लिए संयुक्त परामर्श का रास्ता निकालना होगा। इसलिए इस बात की आवश्यकता महसूस की गई कि एक संयुक्त परामर्शदात्री संस्था का होना जरूरी है जिसमें सरकार व कर्मचारी दोनों के प्रतिनिधि भाग ले सकें।

इस दृष्टि से अत्यन्त आवश्यक है, कि सरकार तथा कर्मचारियों के बीच विवादों का समाधान बातचीत द्वारा ही कर लिया जाए। वार्ता के लिए उपयुक्त यन्त्र की व्यवस्था की जाए जिसमें दोनों पक्ष एक दूसरे के प्रति सद्भाव तथा सहयोग से काम लें। इस हेतु सामूहिक सौदेबाजी (Collective Bargaining), पंचनिर्णय (Arbitration) तथा ह्विटले परिषदों को अपनाया जाता है। ह्विटले परिषदों की प्रणाली में प्रबन्ध और कर्मचारियों के प्रतिनिधियों की एक परिषद् बना ली जाती है जो दोनों पक्षों के मध्य स्थित विवादों को दूर करने में सहायता देती है।

ह्विटले परिषदों का प्रारम्भ (The Origin of Whitley Councils)

1916 में ब्रिटिश सरकार ने गैर–सरकारी उद्यमों के श्रमिकों और मालिकों के बीच सम्बन्धों में स्थायी सुधार लाने के लिए सुझाव देने हेतु तत्कालीन सांसद जे. एच. ह्विटले (J.H. Whitley) की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त की। इस समिति ने ऐसी परिषदों के गठन का सुझाव दिया जिनमें विवादों का निबटारा करने के लिए कर्मचारियों तथा मालिकों, दोनों के प्रतिनिधि हों। नागरिक सेवकों के विभिन्न संगठनों ने इस सुझाव का समर्थन किया और ह्विटले द्वारा प्रस्तावित परिषदों की स्थापना की माँग की। सरकार ने यह माँग 8 अप्रैल, 1919 को स्वीकार कर ली और उसके बाद ग्रेट–ब्रिटेन के सरकारी विभागों में ह्विटले परिषदों की स्थापना की गई।

ह्विटले परिषदों का अर्थ एवं उद्देश्य (Meaning and Objectives of Whitley Councils)

डॉ. एल. डी. ह्वाइट के मतानुसार, "ह्विटले परिषदें स्वतन्त्र, सभापतिविहिन तथा अनिश्चित कार्यक्षेत्र युक्त संयुक्त चर्चा मण्डल हैं।" उन्होंने अन्य स्थान पर लिखा है कि "वर्तमान पीढ़ी में ब्रिटिश नागरिक सेवा में जो सबसे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन है वह सम्भवतः ह्विटले परिषदों की स्थापना ही है। इन निकायों में सरकारी पक्ष और कर्मचारी पक्ष के प्रतिनिधि समान संख्या में होते हैं तथा ये निकाय अनेक विवादपूर्ण समस्याओं के समाधान तथा सुलह की बातचीत के लिए कर्मचारियों के विचारों और आलोचनाओं को प्रस्तुत करने वाले मूल्यवान अभिकरण सिद्ध हुए हैं।"

ह्विटले परिषदें मुख्यतः तीन स्तरों पर होती हैं– राष्ट्रीय, विभागीय और जिला एवं कार्यालय स्तर। प्रो. स्टाल के मतानुसार इन सभी स्तरों की परिषदों की एक सामान्य विशेषता यह है कि इनमें सरकार और नागरिक सेवकों का समान प्रतिनिधित्व होता है। स्नाइडर (Schneider) की मान्यता है कि ये परिषदें ब्रिटिश लोकसेवा की सुस्थापित और मूलभूत विशेषताएँ बन गई हैं।

ये परिषदें ऐसा पत्र प्रस्तुत करती हैं जिसके द्वारा सरकारी सेवीवर्ग नीति के प्रायः सभी पहलुओं पर विचार किया जाता और विरोधी हितों के बीच संघर्ष मैत्रीपूर्ण बन जाता है।

ह्विटले परिषदों की स्थापना मुख्यतः इन उद्देश्यों के लिए की जाती है—प्रथम नियोक्ता राज्य एवं लोकसेवकों के बीच अधिकतम सहयोग स्थापित करना ताकि कार्यकुशलता लाई जा सके और कर्मचारियों के हितों की रक्षा की जा सके, दूसरे कर्मचारियों की शिकायतों को दूर करने के लिए एक यन्त्र की व्यवस्था करना तथा तीसरे विभिन्न लोकसेवाओं के अनुभव और विचारों को एक स्थान पर जुटाना।

ह्विटले परिषदें केवल दो हजार पौण्ड तक वार्षिक वेतन पाने वाले गैर—औद्योगिक कर्मचारियों की समस्याओं से सम्बन्धित हैं। अपने लक्ष्य और उद्देश्यों की पूर्ति के लिए ये ह्विटले परिषदें अनेक कार्य सम्पन्न करती हैं। इनके कुछ प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं—

(1) ये कर्मचारियों के विचारों और अनुभवों का उपयोग करने के लिए सर्वोत्तम उपायों की व्यवस्था करती हैं।

(2) परिषदों द्वारा कर्मचारी—वर्ग को उनकी सेवा की शर्तों के निर्धारण और निरीक्षण में अधिक भाग लेने का अवसर मिलता है।

(3) ये परिषदें कर्मचारियों की सेवा की शर्तों का नियमन करने वाले सामान्य सिद्धान्तों का निर्धारण करती हैं।

(4) ये लोकसेवकों को आगे शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित करती हैं तथा उन्हें उच्चतर प्रशासन और संगठन का प्रशिक्षण देती हैं।

(5) ये कार्यालय में संगठनात्मक सुधार सुझाती है और इस सम्बन्ध में कर्मचारियों के सुझावों पर विचार का अवसर देती हैं।

(6) ये लोक सेवकों सम्बन्धी विधि—निर्माण के सम्बन्ध में सुझाव प्रस्तुत करती है।

ह्विटले परिषदों का संगठन (The Organisation of Whitley Councils)

ह्विटले परिषदों का संगठन पूर्वोक्त तीन स्तरों में होता है। ये राष्ट्रीय परिषद्, विभागीय परिषद् और जिला या क्षेत्रीय समितियों के रूप में संगठित होती हैं। यद्यपि इन स्तरों के बीच पद—सोपान का सम्बन्ध नहीं है फिर भी यह व्यवस्था की जाती है कि राष्ट्रीय परिषद् विभागीय परिषदों के संविधान को स्वीकार करे। विभागीय परिषद् उन विषयों को राष्ट्रीय परिषद् के पास भेज देती है जो या तो राष्ट्रीय हितों के विरुद्ध दिखाई देते हैं अथवा जो सम्बन्धित अधिकार क्षेत्र के बाहर हैं। विभागीय परिषदों के नीचे जिला तथा प्रादेशिक समितियाँ होती हैं जो देश के सभी कर्मचारियों की स्थानीय समस्याओं से सम्बन्ध रखती हैं।

राष्ट्रीय परिषद् में 54 सदस्य होते हैं। इनमें आधे सरकारी पक्ष के होते हैं जिनकी नियुक्ति सरकार द्वारा लोकसेवकों अथवा अन्य उच्च अधिकारियों में से की जाती है। इसमें राजकोष तथा श्रम—मन्त्रालय का कम से कम एक प्रतिनिधि अवश्य होता है। परिषद् के शेष सदस्य कर्मचारी संगठनों द्वारा नियुक्त किए जाते हैं। यह राष्ट्रीय परिषद् अपनी सुविधा के लिए स्थायी समितियाँ, विशेष समितियाँ, पदक्रम समितियाँ आदि नियुक्त करती है तथा उन्हें शक्ति हस्तान्तरित करती है। राष्ट्रीय परिषद् के सदस्यों का कार्यकाल निश्चित नहीं होता। वे तब तक अपने पदों पर बने रहते हैं जब तक कि स्वयं त्यागपत्र न दे अथवा सेवानिवृत्त न हो जाएँ। इसमें एक सभापति और एक उपसभापति होता है। सभापति प्रायः सरकारी पक्ष का और उपसभापति कर्मचारी पक्ष का होता है। परिषद् इन दोनों पक्षों में से सचिव नियुक्त करती है।

विभागीय मामलों के लिए विभागीय परिषदें नियुक्त की जाती हैं जिनमें सरकारी तथा कर्मचारी पक्ष के आधे—आधे सदस्य होते हैं। सामान्यतः एक विभाग में एक ही विभागीय परिषद् स्थापित की जाती है, किन्तु बड़े विभाग में एक से अधिक परिषद भी स्थापित की जा सकती हैं। सरकारी पक्ष के सदस्यों की नियुक्ति विभागाध्यक्ष अथवा मंत्री द्वारा होती है और कर्मचारी पक्ष के प्रतिनिधि उस विभाग सम्बन्धी कर्मचारी संगठन द्वारा नियुक्त किए जाते हैं। स्थापना सम्भाग का कोई सदस्य इस परिषद् का सचिव होता है। विभागाध्यक्ष को इसका अध्यक्ष बनाया जाता है। एक से अधिक विभागों की परिधि में आने वाले मामलों की रिपोर्ट विभागीय परिषद् द्वारा राष्ट्रीय परिषद् को दी जाती है। विभागीय ह्विटले परिषदों की संख्या 80 है।

जिला अथवा क्षेत्रीय समितियाँ विशुद्ध रूप से कर्मचारियों की स्थानीय समस्याओं को सुलझाती हैं। इनका संगठन भी विभागीय परिषदों की भाँति किया जाता है।

परिषदों की कार्य-प्रणाली (Procedure and Work of the Councils)

राष्ट्रीय परिषद् की बैठकें तीन माह में एक बार होना अनिवार्य है। वैसे आवश्यकतानुसार इसकी अतिरिक्त बैठकें कभी भी बुलाई जा सकती हैं। परिषद् के महत्त्वपूर्ण कार्यों के सम्पादन हेतु समितियाँ होती हैं। इन समितियों तथा परिषदों की बैठकों की अध्यक्षता प्रायः सरकारी पक्ष के प्रतिनिधि द्वारा की जाती है। उपाध्याक्ष कर्मचारी–वर्ग का होता है। परिषद् के निर्णय मतदान के आधार पर नहीं होते वरन् सरकारी पक्ष और कर्मचारी पक्ष दोनों विभाजनहीन रूप से मत प्रकट करते हैं। दोनों ही पक्षों को स्वीकृत होने के बाद ही कोई निर्णय मान्य बनता है। परिषद् के समस्त निर्णयों पर अध्यक्ष और उपाध्यक्ष की स्वीकृति ली जाती है। इसके बाद वे कार्यरूप में परिणत किए जाते हैं। विभागीय परिषदों की कार्य–प्रणाली भी राष्ट्रीय परिषद् की कार्य–प्रणाली के समकक्ष होती है।

परिषदों की सत्ता पर सीमाएँ (Limitations on the Authority of Councils)

(1) हिटले परिषदें केवल परामर्शदाता निकाय हैं। इनके सभी निर्णय मन्त्रिमण्डल के सम्मुख रखे जाते हैं जो इन्हें स्वीकार अथवा अस्वीकार करने की अन्तिम शक्ति रखता है।

(2) ये परिषदें केवल दो हजार पौण्ड प्रतिवर्ष वेतन पाने वाले पदाधिकारियों के वेतन आदि के बारे में ही विचार कर सकती है। इनमें उच्च पदाधिकारियों के वेतन के सम्बन्ध में विचार करने की शक्ति नहीं होती।

(3) परिषदों के होते हुए भी व्यवहार में कर्मचारियों की अनेक समस्याएँ परिषदों का सहारा लिए बिना प्रत्यक्ष वार्ता द्वारा सुलझाई जाती हैं।

(4) इन परिषदों द्वारा प्रायः गम्भीर और महत्त्वपूर्ण मामलों पर विचार नहीं किया जाता वरन् ये छोटी–मोटी समस्याओं का समाधान ढूँढने में ही लगी रहती है।

(5) ये केवल सामान्य हितों पर विचार करती है। व्यक्तिगत मामलों पर विचार नहीं करतीं। किसी श्रेणी अथवा सेवा विशेष के व्यक्तिगत प्रश्न प्रायः प्रत्यक्ष वार्ता द्वारा ही निबटाए जाते हैं।

परिषदों का मूल्यांकन (Evaluation of the Councils)

हिटले परिषदों की उपयोगिता एवं उपलब्धियों के बारे में अलग–अलग मत प्रकट किए गए हैं। उग्र समाजवादी एवं श्रम संगठनवादियों ने इनकी कटु आलोचना की है क्योंकि उनकी राय से ये परिषदें श्रमिकों की वर्ग–चेतना को धूमिल बनाती हैं और उनकी सैनिक प्रवृत्ति पर कुठाराघात करती हैं। उच्चवर्गीय लोक–सेवाएँ भी हिटले परिषदों को सहानुभूति एवं समर्थन की नजर से नहीं देखतीं। कारण यह है कि इस वर्ग के कर्मचारियों का उच्चतम अधिकारियों से सीधा सम्पर्क रहता है। इसलिए अनुकूल सेवा की शर्तें निर्धारित कराने के लिए उन्हें इन परिषदों की आवश्यकता नहीं होती। इसके अतिरिक्त उन्हें ऐसा लगता है कि हिटले परिषदें अधीनस्थ कर्मचारियों की दशाओं के बारे में निर्णय लेने के उनके अधिकार को क्षति पहुँचाएँगी। फलतः टॉमलिन आयोग के सम्मुख साक्षी देते समय कुछ विभागों के अध्यक्षों द्वारा हिटले परिषदों को समाप्त करने का जोरदार समर्थन किया गया।

हिटले परिषदों की सफलता और असफलता बहुत कुछ इनके प्रति अधिकारियों और कर्मचारियों के दृष्टिोण पर निर्भर रही है। जहाँ कर्मचारियों तथा अधिकारियों ने सहकारिता की भावना से कार्य किया वहाँ इन परिषदों को सफलता प्राप्त हुई किन्तु जहाँ उच्च अधिकारियों ने उन्हें अपने निहित विशेषाधिकारों पर अतिक्रमण माना तथा कर्मचारियों ने बिना समर्पण के केवल प्राप्त करने का स्वार्थपूर्ण मार्ग ग्रहण किया वहाँ ये वाँछनीय सफलता प्राप्त नहीं कर सकीं।

परिषदों की अनेक व्यावहारिक कमजोरियाँ होते हुए भी ये अधिकारियों और कर्मचारियों के बीच मैत्री भाव विकसित करने का आधार बनी हैं। परिषदों के मंच पर इन दोनों पक्षों के बीच अनौपचारिक विचारों के आदान–प्रदान से दोनों ने एक दूसरे को समझा है और इस प्रकार समस्याओं के निराकरण का मार्ग सुगम बना है। इन परिषदों की अधिक सफलता के लिए चार बातें आवश्यक हैं– (क) राज्य कर्मचारी विभिन्न संघों और संस्थाओं में संगठित हों, (ख) दोनों पक्षों के प्रतिनिधियों का चयन सावधानीपूर्वक किया जाए, (ग) कर्मचारियों के प्रतिनिधियों को सुचारु कार्य–संचालन के लिए आवश्यक सुविधाएँ दी जाएँ और उन्हें किसी भी विरोधी कार्यवाही के भय से मुक्त किया जाए, (घ) अधिकारी एवं कर्मचारी दोनों पक्ष विवेक, नम्रता, अहंकारहीनता, स्वार्थहीनता, सहकारिता और सहयोग की भावना से ओत–प्रोत हों।

ह्विटले परिषदें

सारांश में यही कहा जा सकता है कि विविध सीमाओं के होने के बावजूद कर्मचारियों के विवादों के सम [illegible] परिषदों की अहम् भूमिका रहती है।

सेवा विवाद सुलझाने के अन्य तरीके (Other Techniques of Solving Service Disputes)

ह्विटले परिषदों के अलावा भी विवादों का समाधान करने के लिए मुख्यतः निम्नलिखित चार प्रकार के तरीकों का सह [illegible] जाता है–

(क) **मिलाजुला विनियमः** यह विवाद से सम्बन्धित दोनों पक्षों के बीच होता है और किसी बाहरी व्यक्ति [illegible] आवयकता नहीं पड़ती है। (ख) **मध्यस्थताः** इसके अन्तर्गत किसी ऐसे व्यक्ति या संस्था का सहयोग लि[illegible] पक्षों का विश्वसनीय हो। मध्यस्थ का निर्णय दोनों पक्षों को स्वीकार होता है। (ग) **समझौता एवं पंच निर्णयः** समझौता में किसी बाहरी व्यक्ति द्वारा कराया जाता है। पंच निर्णय का फैसला बहुत कुछ दोनों पक्षों पर बाध्यकारी होता है। कुछ प[illegible] वैकल्पिक भी हो सकते हैं। (घ) **विधिसम्मत न्यायः** इसका सहारा तब लिया जाता है जब अन्य तरीके कारगर सिद्ध [illegible] पंच निर्णय के प्रतिकूल होने पर प्रभावित पक्ष उच्चतर अदालत में अपील कर सकता है। न्यायालय का निर्णय बाध्यका[illegible] का होता है। ये सभी तरीके परिस्थिति और आवश्यकता के अनुसार सेवा विवादों का सुलझान के लिए अपनाए [illegible]

फ्रांस में परिवेदना निवारण प्रक्रिया (Grievances Redress Procedure in France)

फ्रांस में चतुर्थ गणराज्य के अधीन केन्द्र सरकार के स्तर पर ह्विटले व्यवस्था को अपनाया गया। यहाँ लोकसेवाओं [illegible] सर्वोच्च परिषद् है जिसमें मन्त्रिमण्डल द्वारा नियुक्त 24 सदस्य होते हैं। इनमें से 12 सदस्यों की नियुक्ति लोकसेवा [illegible] सिफारिश पर की जाती है। इस परिषद् की अध्यक्षता प्रधानमंत्री अथवा उप--प्रधानमंत्री करते हैं। इसका मुख्य का[illegible] सम्बन्धी नीति, सेवा की शर्तें तथा विभागीय परिषदों के दृष्टिकोण और कार्य में समन्वय स्थापित करना होता है। ब्रि[illegible] की भाँति फ्रांस में भी प्रायः प्रत्येक विभाग में ऐसी प्रतिनिधि परिषदें हैं जिनमें अधिकारी एवं कर्मचारी दोनों के प्रति[illegible] हैं। ये विभागीय परिषदें भर्ती की प्रक्रिया, कार्यकुशलता अभिलेख, पदोन्नति, अनुशासन एवं अन्य सर्वीवर्ग सम्बन्धी [illegible] देखरेख रखती हैं।

संयुक्तराज्य अमेरिका में परिवेदना समितियाँ (Grievance Committees in U.S.A)

अमेरिका में संघीय स्तर पर विभागीय अपील समितियाँ हैं। इन समितियों में विभागीय अध्यक्ष और लोकसेवा आयो[illegible] अथवा अधिक प्रतिनिधि होते हैं। ये वर्गीकरण, पदोन्नति, वेतन आदि विषयों पर विचार–विमर्श करते रहते हैं।

स्टाफ परिषदें (Staff Councils)

अथवा

भारत में सुलह-वार्ता और विवादों के निपटारे की व्यवस्था
(Machinery for Negotiations and Settlement of Disputes in India)

अथवा

भारतीय नागरिक-सेवा में ह्विटले परिषदें (Whitley Councils in Indian Civil Services)

भारत में ह्विटलेवाद को सैद्धान्तिक रूप में पूरा–पूरा समर्थन प्राप्त हुआ है। प्रशासकीय क्षेत्र में ह्विटले परिषदों की [illegible] को कर्मचारी--वर्ग की समितियों अथवा परिषदों के द्वारा पूरा करने का प्रयास किया गया है। यद्यपि ये परिषदें बहुत कु[illegible] ह्विटले प्रणाली पर ही आधारित हैं, तथापि, इनमें ह्विटलेवाद की आत्मा तथा मूल तत्त्व का अभाव है। भारत में ब्रिटि[illegible] ह्विटले परिषदों की भाँति कोई अखिल भारतीय संगठन नहीं है। इस सम्बन्ध में ध्यान रखने योग्य बात [illegible] है कि [illegible] के संघों को इन परिषदों में प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया है।

भारत में कर्मचारी--वर्ग की समितियों की स्थापना के लिए 1954 में गृह--मन्त्रालय द्वारा प्रयास किया गया। [illegible] विभिन्न मन्त्रालयों को इस सम्बन्ध में जो निर्देश दिए, उनके साथ ही प्रस्तावित समिति का विधान [illegible]

मंत्रालयों को यह स्वतंत्रता दी गई कि वे इसमें आवश्यकतानुसार संशोधन कर सकते थे। 1957 में गृह कर्मचारी–वर्ग समितियों का नाम बदलकर कर्मचारी–वर्ग परिषदें रख दिया गया। वर्तमान भारत में प्रत्येक मन्त्रालय के अन्तर्गत दो कर्मचारी–वर्ग परिषदें हैं। प्रथम, वरिष्ठ कर्मचारी–वर्ग परिषदें (Senior Staff Councils) और द्वितीय, कनिष्ठ कर्मचारी–वर्ग परिषदें (Junior Staff Councils)।

वरिष्ठ कर्मचारी-वर्ग परिषदें (Senior Staff Councils)—ये परिषदें द्वितीय एवं तृतीय श्रेणी के कर्मचारियों के लिए होती हैं। इनमें सरकार द्वारा मनोनीत व्यक्ति, शाखा के अधिकारियों के प्रतिनिधि सहायक, आशुलिपिक, लिपिक आदि सदस्य होते हैं। सरकारी प्रतिनिधियों को तत्सम्बन्धी मंत्रालय द्वारा उस विभाग के अधिकारियों में से ही नामजद किया जाता है। नामजद किए गए अधिकारी का स्तर अवर–सचिव (Under-Secretary) से नीचा नहीं होना चाहिए। ये सरकारी पक्ष का प्रतिनिधित्व करते हैं। कर्मचारी–वर्ग के प्रतिनिधियों को ग्रेट–ब्रिटेन की भाँति कर्मचारी–संघों द्वारा मनोनीत नहीं किया जाता है। इससे भिन्न ये प्रतिनिधि प्रत्यक्ष रूप से कर्मचारियों द्वारा चुने जाते हैं। दूसरी तथा तीसरी श्रेणी के विभिन्न कर्मचारी तीस के ऊपर एक के अनुपात से अपने प्रतिनिधियों का निर्वाचन करते हैं। 1957 से पूर्व इन प्रतिनिधियों का चुनाव एक वर्ष के लिए किया जाता था, किन्तु बाद में इसकी अवधि दो वर्ष कर दी गई। इस चुनाव–व्यवस्था में यह खतरा रहता है कि किसी शाखा अथवा सेवा–विशेष को बहुत अधिक प्रतिनिधित्व मिल जाता है, दूसरी को कम और अन्य को बिल्कुल भी नहीं। सम्बन्धित मन्त्रालय का सचिव अथवा सहायक–सचिव मन्त्री द्वारा इस परिषद् का सभापति चुना जाता है।

कनिष्ठ कर्मचारी-वर्ग परिषदें (Junior Staff Councils)—ये परिषदें चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों से सम्बन्ध रखती हैं। इनका संगठन वरिष्ठ कर्मचारियों के संगठन से भिन्न होता है। इन परिषदों में सरकार का प्रतिनिधित्व उन पदाधिकारियों द्वारा किया जाता है जो सहायक श्रेणी के नीचे के स्तर के नहीं होते हैं। इनकी नियुक्ति सरकार द्वारा की जाती है। सम्बन्धित मंत्रालय का उप–सचिव इस परिषद् का सभापति होता है। कर्मचारी–वर्ग के प्रतिनिधियों का चुनाव चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी प्रत्यक्ष रूप से करते हैं। प्रत्येक दस सदस्यों में से एक प्रतिनिधि चुना जाता है। चुनाव कर्मचारियों के दो समूहों में से किया जाता है। प्रथम समूह में दफ्तरी और अभिलेख–पृथक्कार आदि होते हैं और दूसरे समूह में चपरासी, फर्राश, जमादार, झाड़ू लगाने वाले आदि होते हैं। इन दोनों समूहों में से प्रत्येक को एक ऐसा अतिरिक्त प्रतिनिधि चुनने की अनुमति दी जाती है जो उच्च–वर्ग का सरकारी कर्मचारी होता है किन्तु यह शाखा अधिकारी (Section Officer) से ऊँचा नहीं होता। परिषद् के सचिव को सभापति द्वारा कर्मचारी–वर्ग के प्रतिनिधियों की राय से मनोनीत किया जाता है। स्टाफ के प्रतिनिधि अपने पद पर एक वर्ष तक रहते हैं किन्तु उनको पुनः चुने जाने का अधिकार भी होता है। यदि किसी कर्मचारी को दूसरे मंत्रालय में अन्य स्तर पर पदोन्नत या स्थानान्तरित कर दिया जाता है तो वह इस परिषद् का सदस्य होने से रूक जाता है और उसके स्थान पर दूसरे प्रतिनिधि का चुनाव होता है।

कर्मचारी-वर्ग परिषदों के कार्य *(The Functions of Staff Councils)*

जब इस परिषदों की स्थापना के लिए गृह–मंत्रालय द्वारा सिफारिश की गई थी तो इनकी स्थापना के लिए विधान भी तैयार किया गया था। इस विधान के अनुसार इन परिषदों के जो कार्य एवं उद्देश्य निर्धारित किए गए, वे मुख्यतः निम्नलिखित प्रकार के हैं–

(1) कार्य के स्तरों को सुधारने के लिए दिए जाने वाले सुझावों पर विचार करना।

(2) कर्मचारी–वर्ग के सदस्यों को कोई ऐसा साधन प्रदान करना जिसके द्वारा वे उन विषयों पर अपने दृष्टिकोण से सरकार को अवगत करा सकें जो उनकी सेवा की शर्तों पर प्रभाव डालते हैं।

(3) कर्मचारी–वर्ग और अधिकारियों के बीच व्यक्तिगत सम्पर्क के साधन प्रस्तुत करना ताकि उनके बीच मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों का विकास हो सके, और कर्मचारी–वर्ग अपने कार्य में अधिक रुचि लेने के लिए प्रोत्साहित हों।

ये परिषदें परामर्शदात्री निकाय (Advisory Bodies) हैं जो निम्नलिखित मामलों पर विचार कर सकती हैं:

कर्मचारियों के कार्य करने की दशाएँ एवं शर्तें, सेवा शर्तों का विनियमन करने वाले सामान्य सिद्धान्त, कर्मचारी–वर्ग का कल्याण, कार्य–कुशलता एवं कार्य–स्तर में सुधार सम्बन्धी मामले आदि।

परिषदों की कार्यप्रणाली (Working Procedure of Staff Councils)

इन परिषदों के लिए तीन महीने में कम से कम एक बार अपनी बैठक बुलाना जरूरी है। इस बीच यदि कर्मचारी–वर्ग के प्रतिनिधियों का पाँचवाँ भाग चाहे तो सभापति को विशेष अधिवेशन भी बुलाना पड़ता है। बैठकों का कार्यक्रम सचिव द्वारा तैयार

किया जाता है और सभापति द्वारा उसे स्वीकार किया जाता है। बैठक से कुछ दिन पूर्व यह कार्यक्रम प्रत्येक सदस्य को भेज दिया जाता है। यदि कोई प्रतिनिधि कार्यक्रम में कोई नई बात जोड़ना चाहे तो सचिव को तत्सम्बन्धी सूचना [illegible] गणपूर्ति के लिए कर्मचारी–वर्ग के एक–तिहाई प्रतिनिधियों का होना जरूरी है। किसी भी बात पर निर्णय तब [illegible] जबकि दोनों पक्षों का बहुमत उसका समर्थन करे। परिषद् मंत्रालय को अपनी सिफारिशें प्रस्तुत करती है और [illegible] की जाने वाली कार्यवाही पर विचार करता है।

भारत में कुछ राज्य–सरकारों ने भी इस प्रकार की परिषदों का विकास कर लिया है और वहाँ ये इसी प्रकार का [illegible] रही हैं। इस सम्बन्ध में ध्यान रखने योग्य बात यह है कि प्रथम श्रेणी के कर्मचारियों को इस प्रकार की परिषद [illegible] अधिकार नहीं दिया गया है।

परिषदों का मूल्यांकन (Evaluation of the Councils)

कर्मचारी–वर्ग की परिषदों के अधिवेशनों की संख्या, की गई सिफारिशों की संख्या तथा क्रियान्वित सिफारिशों [illegible] देखने के बाद विचारकों ने भारी असन्तोष व्यक्त किया है। कर्मचारी–वर्ग परिषदें प्रशासन पर कोई महत्त्वपूर्ण प्रभाव [illegible] में प्रायः असमर्थ रही हैं। कर्मचारी–वर्ग की इन परिषदों के अब तक के कार्यों में निम्नलिखित दोष रहे हैं

प्रथम, परिषदों ने जिन विषयों पर विचार किया, वे विभिन्न प्रकार के थे। इन विषयों पर परिषदों ने अपनी सिफारिशें प्र[illegible] की जिनमें केवल वे ही स्वीकार की गईं जिनका सम्बन्ध अपेक्षाकृत गौण विषयों से था। इस प्रकार [illegible] कार्यालय अन्दर कार्य की दशाओं को सुधारने में असफल रही हैं। संगठन के पद–वर्गीकरण, पदोन्नति, वरिष्ठता की [illegible] आदि विषयों पर ये परिषदें कोई प्रभाव नहीं डाल पाई हैं। संगठन के इन महत्त्वपूर्ण विषयों पर कर्मचारियों को [illegible] अधिकार नहीं है, वे इन पर केवल विचार मात्र कर सकते हैं। दूसरे, परिषदों में अधिकारी–वर्ग ने जो [illegible] ह्विटलेवाद की भावनाओं के अनुरूप नहीं है। उच्च अधिकारी यहाँ भी उच्चता की भावना से पीड़ित है और अधीनस्थ कर्म[illegible] हीनता की भावना से प्रभावित रहा है। ऐसी स्थिति में दोनों के बीच स्वतंत्र विचार–विमर्श का कोई प्रश्न ही नहीं [illegible] इन परिषदों की बैठक नियमित रूप से नहीं की गई है। चौथे, परिषदों द्वारा जो सिफारिशें प्रस्तुत की गई उन पर [illegible] ध्यान नहीं दिया गया। इस प्रकार कुल मिलाकर ये परिषदें उन आशाओं को पूरा करने में असमर्थ रही हैं जो इनके [illegible] ने इनसे की थीं। भारतीय लोक–प्रशासन आज भी प्रबन्ध एवं कर्मचारी–वर्ग के निकट घनिष्ठ एवं मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों [illegible] से दूषित है। दोनों पक्षों में एक–दूसरे के प्रति अविश्वास और गलतफहमी का वातावरण पाया जाता है जिससे [illegible] सार्थक लाभ प्राप्त नहीं हो पाते हैं।

महत्त्वपूर्ण प्रश्न

1. ह्वीटलेवाद क्या है? और इसके उद्देश्य क्या हैं?
2. ह्वीटलेवाद परिषदों के कार्य तथा संगठनों का वर्णन कीजिए।
3. भारत में ह्वीटले परिषदों की भूमिका का वर्णन कीजिए।

अध्याय 20

वित्तिय प्रशासन—अर्थ, महत्व, तथा अभिकरण

Financial Administration—Meaning, Importance and its Agencies

वित्त तथा प्रशासन का सम्बन्ध उसी प्रकार होता है जैसे कि मानव और उसमें पाये जाने वाले रक्त का है। दोनों को एक–दूसरे से अलग करना असम्भव होात है। कोई भी प्रशासनिक कार्य वित्त के बिना अधूरा है, यही कारण है कि इसे प्रशासकीय इंजन का ईंधन कहा जाता है क्योंकि यह प्रशासकीय यन्त्र को गति में रखता है। एल॰ डी॰ व्हाइट के अनुसार, "प्रत्येक प्रशासकीय कार्य के वित्तीय प्रभाव होते हैं। वह या तो राजकोष से धन लेता है या उसको धन देता है। धन के बिना कुछ भी नहीं किया जा सकता। पदाधिकारियों तथा कर्मचारियों को वेतन देने के लिए धन चाहिए। प्रायः धन इस बात पर सीमा लगा देता है कि क्या प्रशासकीय कार्य होंगे और क्या नहीं होंगे। अतएव वित्त का प्रबन्ध प्रशासकों का एक आवश्यक उत्तरदायित्व है।" वित्त तथा लोक प्रशासन के सम्बन्धों के उल्लेख के लिए तीन कड़ियों का प्रयोग किया जाता है। पहली, कि प्रशासन के अधिकांश कार्यों का आधार धन होता है और जो कुछ किया जाता है वह राजकोष को खटकता है। दूसरी, किसी भी लोकहित की योजना को कार्यान्वित करने या किसी भी प्रगतिशील नीति को अपनाये जाने में धन लगाना पड़ता हैं। तीसरी, यह है कि वित्तीय और प्रशासनिक मामले साथ–साथ उठते हैं, और यह विचार करना पड़ता है कि प्रशासन का संगठन कैसा हो तथा उसका वित्तीय प्रशासन से क्या सम्बन्ध हो? इसके साथ ही यह प्रश्न भी उठता है कि किसी धन के व्यय के बारे में अंतिम निर्णय किसका हो प्रशासक का या वित्ताधिकारी का। कौटिल्य के अनुसार, "सभी उद्यम वित्त पर निर्भर हैं। अतः कोषागार पर अधिक ध्यान देना चाहिए।"

अर्थ
(Meaning)

वित्त प्रशासन का अध्ययन अपेक्षाकृत कठिन और जटिल है। परन्तु वर्तमान समय में यह मानव पक्ष के निकट आने पर अध्ययन का एक महत्त्वपूर्ण विषय बन गया है। वित्तीय प्रशासन का सम्बन्ध उन साधनों से है, जिनके द्वारा प्रशासन संचालन हेतु धन की व्यवस्था करनी होती है। वित्तीय प्रशासन के अन्तर्गत हम उन सभी क्रियाओं को लेते हैं, जिनका सम्बन्ध सार्वजनिक सेवाओं पर व्यय करने के लिए आवश्यक निधि एकत्र करने, खर्च करने और उनका उचित लेखा–जोखा रखने से होता है।

नीग्रो (Nigro) के अनुसार, "वित्तीय प्रशासन साधारणतः केवल लेखा–जोखा रखने का मामला नहीं है। बजट, हिसाब–किताब तथा विस्तृत प्रतिवेदन आवश्यक है, परन्तु यह केवल सरकार के पृथक कार्यक्रमों के नियोजन करने तथा उन्हें पूर्ण करने के यन्त्रों के रूप में होते हैं ताकि उपलब्ध संसाधनों का बुद्धिमता और कुशलता के साथ प्रयोग किया जा सके। वित्तीय प्रशासन प्रबन्धकीय उत्तरदायित्व का भाग है जो मात्र इसके साथ जोड़ा हुआ नहीं है। बजट बनाने के अतिरिक्त, वित्तीय प्रशासन के लेखांकन, लेखा परिक्षण, क्रय एवं पूर्ति प्रबन्ध, कर प्रशासन तथा राजकोष प्रबन्ध, साधक हैं। विस्तृत वर्णन में वित्तीय प्रशासन में राजकोषीय नीति तथा सरकार की आर्थिक स्थिरता में भूमिका भी सम्मिलित है।"

वित्तीय प्रशासन में वित्तीय मामलों की योजना, कार्यक्रम, संगठन तथा निर्देशन आदि शामिल है ताकि सार्वजनिक नीतियों के उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सके।

वित्तीय प्रशासन में लोक–आमदनी, खर्च तथा ऋण आदि को शामिल किया जाता है और इसमें सत्तारूढ़ पार्टी की विचारधारा को महत्त्व नहीं दिया जाता अर्थात् यह मूल्य तटस्थ है।

फिफनर ने वित्तीय प्रशासन को एक गतिशील प्रक्रिया माना है जिसके उद्देश्य है–बजट तैयार करना, बजट पर व्यवस्थापिका की अनुमति लेना, बजट को क्रियान्वित करना; वित्त का राजकोष द्वारा प्रबन्ध जिसमें लेखांकन, लेखा परीक्षण और विधायी उत्तरदायित्व सम्मिलित है। इस प्रक्रिया में कुछ अभिकरण शामिल होते हैं जिनका अध्ययन आगे किया गया है।

वित्तीय प्रशासनः कार्य-क्षेत्र
(Financial Administration: Scope)

वित्तीय प्रशासन के कार्य–क्षेत्र में निम्नलिखित क्रियाएं सम्मिलित हैं–

1. लोक निधियों का संग्रहण और वितरण।
2. लोक राजस्व एवं व्यय का समन्वय।
3. राज्य की ओर से ऋण सा साख परियालनों का प्रबन्धन।
4. सरकार के वित्तीय कार्यो का सामान्य नियन्त्रण।
5. बजट तैयार करना, इसे विधानपालिका से पारित कराना और विधानपालिका द्वारा पारित किए गए बजटीकृत प्रावधानों के अनुसार व्यय को विनियमित करना तथा राजस्व को प्राप्त करना।
6. लोक निधियों की सुरक्षित अभिरक्षा और सरकार के दायित्वों को पूरा करने के लिए निधियों का उपयुक्त वितरण
7. वित्तीय खातों का रख–रखाव और इन्हें सक्षम प्राधिकार से विधिवत् रूप से लेखा–परीक्षित कराना।

वित्तीय प्रशासन में ये सब क्रियाएं सम्मिलित हैं। इन वित्तीय कार्यो के निष्पादन के लिए एक सुगठित प्रणाली या तन्त्र को संगठित, व्यवस्थित और परिचालित किया जाता है। वित्तीय प्रशासनिक तन्त्र के सामान्यतः पांच भाग या प्रभाग है-

1. विधानमण्डल जो राष्ट्रीय वित्तीय का अभिरक्षक है और उसके अनुमोदन के बिना कोई निधि न प्राप्त की जा सकती है और न ही व्यय किया जा सकता है।
2. वित्त विभाग अथवा सरकार का वित्त मंत्रालय।
3. विशेषीकृत वित्तीय विशेषज्ञ, अधिकारी एवं संस्थाएं
4. लेखा परिक्षा संगठन
5. विधानमंडल की वित्तीय समितियां

अधिकांश देशों में बजट वित्त मंत्रालय द्वारा तैयार किया जाता है। संयुक्त राज्य अमरीका में इस प्रयोजन के लिए 'ब्यूरो आफ बजट' एक विशेष अभिकरण (Agency) है। वित्तीय प्रशासन के अध्ययन में इन सभी महलुओं और क्षत्रो का अध्ययन किया जाता है।

प्रत्येक सरकार में वित्तीय प्रशासन के अधिकांश पहलू वित्त विभाग और इसके अधीनस्थ अभिकरणों द्वारा संचालित होते हैं तथा यह स्पष्टतः समझ लेना चाहिए कि यद्यपि वित्तीय विभाग प्रशासन का केन्द्रीय अभिकरण है, परन्तु इस सम्पूर्ण वित्तीय प्रशासन के बारावर नहीं माना जा सकता। यह केवल वित्तीय प्रबन्धन का संचालन करता है जो कि एक मुख्य पहलू है न कि सम्पूर्ण वित्तीय प्रशासन। वित्तीय प्रशासन का कार्यक्षेत्र वित्तीय प्रबन्धन के कार्यक्षेत्र से अधिक विरतृत है। वित्तीय प्रशासन का सम्बन्ध लोक निधियों के संग्रहण, अनुसंरक्षण और वितरण से सम्बन्धित वित्तीय प्रक्रियाओं और सस्थाओं से है। यह एक ऐसी व्यवस्था है, जिसके द्वारा लोक निधियों को प्राप्त किया, प्रबन्ध किया, व्यय किया और नियंत्रित किया जा सकता है। निम्नलिखित क्रियाएं या गतिविधियां राज्य के वित्तीय प्रशासन की प्रमुख गतिविधियां हैः–

1. वित्तीय आयोजन (Financial Planning)
2. बजट बनाना (Budgeting)
3. स्रोत संग्रहण (Resource Mobilisation)
4. निवेश निर्णय (Investment Decision)
5. व्यय नियंत्रण (Expenditure Control)
6. लेखांकन, रिपोर्टिंग और लेखा–परिक्षा (Accounting, Reporting and Auditing)

1. **वित्तीय आयोजन (Financial Planning)**– इसमें सरकार नीतियों एवं मांगों के सम्पूर्ण स्तर, इन नीतियों के अंतर–सम्बन्धित का प्रत्यक्षीकरण सम्मिलित है। यह स्रोतों पर विचार करता है, व्ययों, आवश्यकताओं वांछित निधि प्र

आदि पर विचार करता है।

2. **बजट बनाना (Budgeting)**– इसमें वित्तीय नीति समानता और सामाजिक न्याय के सभी महत्वपूर्ण पहलुओं का परीक्षण और सूत्रीकरण सम्मिलित हैं। यह बजट की तैयारी का अधिनियम और बजट के कार्यान्वयन से भी सम्पर्क करती है।

3. **स्रोत संग्रहण (Resource Mobilisation)**– इस वित्तीय कार्य में करों का लगाना, शुल्कों एवं करों को एकत्र करना शामिल है, यह एक सतत और सदा चलने वाला कार्य है। बजट घाटा सरकारी वित्त की एक नियमित विशेषता बन गया है। यदि सह सीमा के अन्दर न हो तो यह बजट घाटा मुद्रा–स्फीति का स्रोत बन जाता है। सरकार हर समय और सदैव घाटे के वित्तयन का प्रयोग नहीं कर सकती। अतः वैकल्पिक अतिरिक्त स्रोत संग्रहण करना पड़ता है। इस प्रकार सभी देशा में में विशेषकर यह विकासशील देशों में वित्तीय प्रशासन का एक मुख्य कार्य है।

4. **निवेश निर्णय (Investment Decision)**– पूंजीगत व्यय का वित्तीय और सामाजिक आर्थिक मूल्यांकन वित्तीय प्रशासन का एक प्रमुख कार्य है इसे परियोजना (Project) मूल्यांकन का भी कार्य करना पड़ता है। भारत जैसे देशों में चूंकि सार्वजनिक क्षेत्र में बहुत अधिक व्यय होता है इसलिए वित्तीय प्रशासन के लिए प्रोजेक्ट मूल्यांकन की धारणा तकनीकों और विधियों का ज्ञान सदैव अनिवार्य है।

5. **व्यय नियंत्रण (Expenditure Control)**– कोई भी आर्थिक व्यवस्था वित्तीय नियंत्रण के बिना जीवित नहीं रह सकती। प्रत्येक देश में स्रोतों के सावधानीपूर्ण उपयोग की आवश्यकता है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कार्यपालिका का नियंत्रण आवश्यक है। विधानमण्डल–नियंत्रण करदाताओं के साथ–साथ सामान्य जनता के हित की रक्षा करता है। विधानमण्डल को कार्यपालिका का उत्तर दायित्व सुनिश्चित करना पड़ता है। इसे वित्तीय प्रशासन के अच्छे एवं सतर्क नियंत्रण के अन्तर्गत रखना पडता है। वित्तीय प्रशासन पर कार्यपालिका और विधानमण्डल का नियंत्रण लोक प्रशासन का एक मुख्य क्षेत्र है।

6 **लेखांकन रिपोर्टिंग और लेखा परीक्षा (Accounting Reporting and Auditing)**– ये तीनों पहलू कार्यपालिका और विधानमण्डल नियंत्रण, दोनों की सहायता के लिए बनाये गये हैं। जैसे भारत में महालेखा–परीक्षा नियंत्रक और भारतीय लेखा परीक्षा एवं लेखा विभाग का उत्तरदायित्व सुनिश्चित करना है कि लेखांकन और लेखा–परीक्षा कार्य संविधान के प्रावधानों और इन प्रावधानों के आधार पर बनाये गये नियमों के अनुसार निष्पादित किये जाते हैं।

वित्तीय प्रशासन के ये छ: प्रमुख कार्य हैं। सभी देशों में वित्तीय प्रशासन के अन्तर्गत ये मूल और कुछ अन्य वित्तीय कार्य आते हैं।

वित्तीय प्रशासन का महत्व
(Importance of Financial Administration)

लोक प्रशासन को तर्कसंगत रूप से रीढ़ की हड्डी कहा जा सकता है। इसी तरह हम कह सकते हैं कि वित्तीय प्रशासन लोक प्रशासन की रीढ़ की हड्डी है। कोई भी प्रशासन वित्त या वित्तीय प्रशासन प्रभावी एवं सक्षम व्यवस्था के बिना कार्य नहीं कर सकता। आज के कल्याणवाद के युग में लोक प्रशासन की विकासीय भूमिका ने वित्तीय प्रशासन को कार्य का एक प्रमुख क्षेत्र बना दिया है। सरकार के विकास कार्यो में वृद्धि हुई है, हो रही है तथा और होती है, परिणामस्वरूप वित्तीय प्रशासन का महत्त्व बढ़ा है और दिन–प्रतिदिन बढ़ रहा है।

आज के प्रौद्योगिक और विकास के युग में स्रोतों को संचालित करने और जनता की बढ़ती मांगों को पूरा करने के तरीकों और साधनों की खोज के लिए वित्तीय प्रशासन ने अत्यधिक महत्व प्राप्त किया है। इस प्रयोजन के लिए स्रोत संग्रहण और योजनाबद्ध नियंत्रित व्यय अत्यधिक महत्वपूर्ण क्रियाएं बन गए हैं। ये दोनों वित्तीय प्रशासन के मुख्य आधार का निर्माण करते हैं।

कैन्ज के परिप्रेक्ष्य (Keynesion perspective) के आधार पर राज्य राष्ट्रीय आय और व्यय के विस्तार के लिए एक अधिक सक्रिय और सकारात्मक भूमिका निभाता है। सरकार की वित्तीय नीति लोगों के सामाजिक–आर्थिक जीवन पर प्रभाव डालने के लिए आधुनिक सरकार का एक उपकरण बन गई है। इसने वित्तीय प्रशासन के महत्व को बढ़ा दिया है।

निष्पादन बजट-निर्माण (Performance Budgeting) का प्रयोग और अन्य सम्बन्धित बजट की धारणा के बजट परिवर्तन वित्तीय प्रशासन की विलक्षण उपलब्धि का प्रतिनिधित्व करते हैं। 1980 से स्रोत संगठन सभी आधुनिक सरकारों के लिए एक गम्भीर समस्या पैदा करते रहे हैं। आर्थिक समस्याएं व मामले वर्तमान दैनिक जीवन की सबसे बड़ी वास्तविकताओं के रूप में उभर

रहे हैं। इसन सामाजिक जीवन के आर्थिक कारकों के महत्व को बढ़ा दिया है, आर्थिक मामलों को प्रमुख ... पर है। इस प्रकार वित्तीय प्रशासन को नया और उच्च महत्व प्राप्त हुआ है। अतः वित्तीय प्रशासन और प्रबधन का अध्ययन जो लोक प्रशासन का एक भाग है, अत्यधिक महत्वपूर्ण बन गया है। यह अकेला ही हमें अवांछित व्ययों को दूर करने की विधि एवं साधनों का पता लगाने और स्रोतों का प्रभावी एवं पूर्ण संग्रहण सुनिश्चित करने और स्रोत आधार सीमित होने पर भी अधिक उत्पादन सुनिश्चित करने के योग्य बना सकता है। शून्य बजट निर्माण (Zero Budgeting) की धारणा इस दिशा में एक प्रयास है।

निष्कर्ष (Conclusion)–निष्कर्ष में यह कह सकते हैं कि सब समाजों की अपनी सम्बन्धित लोक प्रशासन व्यवस्थाओं के ... तत्वों के रूप में अपनी वित्तीय व्यवस्थाएं हैं। वित्तीय प्रशासन को अब प्रत्येक आधुनिक समाज में बहुमुखी भूमिका (Multifaceted Role) के रूप में माना जाना प्रारम्भ हो गया है। इसका प्राथमिक उद्देश्य अधिकतम मानव कल्याण बन गया है, इसका कार्य–क्षेत्र दिन प्रतिदिन बढ़ रहा है। और वर्तमान में वित्त–पोषण, योजना और बजट–निर्माण स्रोत संग्रहण निवेश लोक व्यय एवं वित्तीय नियंत्रण का अनिवेश आदि जैसे कई गतिशील पहलुओं को भी सम्मिलित कर लिया गया है।

वित्तीय प्रशासन के अभिकरण
Agencies of Financial Administration

वित्तीय प्रशासन शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थ में किया जाता है। इसमें वे सब प्रक्रियाएँ सम्मिलित हैं जो सार्वजनिक धन को इकट्ठा करने, खर्च करने, बजट बनाने तथा विनियोजित करने; आय एवं व्यय का हिसाब रखने, प्राप्तियां एवं भुगतान की रकमों के नाम लिखने, सरकार के वित्तीय लेन–देन एवं पूंजी तथा दायित्वों का विवरण रखने; आय एवं व्यय, प्राप्तियां एवं भुगतान तथा कोष एवं विनियोजनों की स्थिति की रिपोर्ट तैयार करने से सम्बन्धित हैं। इसके तीन उद्देश्य होते हैं, वित्तीय नीति, दायित्व तथा प्रबन्ध। वित्तीय नीति वित्तीय प्रशासन का तकनीकी भाग है। इसमें करारोपण नीति, ऋण नीति तथा करारोपण के सामाजिक प्रभाव आदि का उल्लेख होता है। यह अर्थशास्त्र का विषय है, हमारे अध्ययन का विषय नहीं है। परन्तु अन्य दो पक्षों से लोक प्रशासन का विद्यार्थी काफी सम्बन्धित है। लोक प्रशासन की मांग केवल यही नहीं है कि प्रशासक ईमानदारी से कार्य करें बल्कि यह भी है कि वे इस बात को भी दिखलाएँ कि उन्होंने ईमानदारी से कार्य किया है। उनसे निर्धारित नियमों एवं विनियमों के पालन की आशा की जाती है। वित्तीय अधिकारियों को हिसाब–किताब ठीक प्रकार से रखना चाहिए और वे व्यय के नियमों का पूर्ण पालन करें। सार्वजनिक धन एक धरोहर है, अतः इसको सावधानीपूर्वक व्यय किया जाना चाहिए परन्तु हिसाब–किताब का दायित्व लेखों को ठीक प्रकार से रखने तथा वित्तीय नियमों के पालन के साथ समाप्त नहीं है बल्कि इसमें चतुराई, निष्ठा एवं बचत के नियम भी शामिल हैं। इस प्रकार वित्तीय प्रशासन का अर्थ है कि वित्त का प्रबन्ध इस प्रकार से किया जाए कि निर्धारित समय सीमा के अन्दर धन एवं शक्ति के कम से कम व्यय से लक्ष्यों की प्राप्ति हो सके।

वित्तीय प्रबन्ध एक गतिशील प्रक्रिया है जिसमें निम्नलिखित बातें सम्मिलित हैं–

(i) बजट निर्माण अर्थात् आने वाले वित्तीय वर्ष के लिए आय और व्यय का अनुमान लगाना;

(ii) इन अनुमानों को विधानमंडल से स्वीकृत कराना;

(iii) बजट को क्रियान्वित करना अर्थात् कर उगाहना और खर्च करना;

(iv) कोष प्रबंध अर्थात् निधियों की सुरक्षा और व्यय के लिए धन निकालने की व्यवस्था; तथा

(v) कार्यकारिणी द्वारा हिसाब देना तथा इसका परीक्षण करना।

उपरोक्त सभी कार्यों को निम्नलिखित संगठनों द्वारा किया जाता है–

(i) वित्तीय प्रशासन से संबंधित केन्द्रीय विभाग,

(ii) विधानमंडल;

(iii) प्रशासकीय विभागों के प्रमुख वित्तीय अधिकारी;

(iv) लेखा परीक्षण संस्था; तथा

(v) विधानमंडल की समितियाँ।

इन निकायों का संक्षिप्त वर्णन उचित होगा।

(1) **कार्यकारिणी (The Executive)**—मुख्य कार्यपालिका सरकार की वित्तीय नीति निर्माण करने तथा आने वाले वित्तीय वर्ष के लिए आय एवं व्यय के अनुमान तैयार करने के लिए उत्तरदायी है। उसकी सहायता के लिए एक विभाग होता है जिसे ब्रिटेन में 'राजकोष' (Treasury) कहते हैं तथा भारत में वित्त विभाग कहते हैं। बजट अनुमान क्रियागत निकायों से प्रारम्भ होते हैं क्योंकि वे ही आने वाले वर्ष में अपनी आय एवं व्यय का अनुमान लगा सकते हैं। भुगतान अधिकारियों द्वारा तैयार किए गए अनुमानों की विभागाध्यक्ष समीक्षा करता है। तदुपरांत इन्हें वित्त विभाग को प्रेषित कर दिया जाता है जो उन अनुमानों को अन्तिम रूप देकर बजट की शक्ल दे देता है।

(2) **विधानमंडल (The Legislature)**—प्रजातंत्रीय सिद्धांत के अनुसार, संसद की पूर्व स्वीकृति के बिना न तो कोई टैक्स लगाया जा सकता है न इसे इकट्ठा किया जा सकता है और न ही कोई व्यय किया जा सकता है। कार्यकारिणी माँगें रखती हैं जिन्हें विधानमंडल स्वीकार करता है। टैक्सों को लगाने और इकट्ठा करने तथा खर्च करने की स्वीकृति देने का अधिकार निम्न सदन अर्थात् इंग्लैण्ड के कामन सभा तथा भारत में लोक सभा के पास है। इन दोनों देशों में उच्च सदन को इस विषय में अधिक शक्ति प्राप्त नहीं है। यह भी ध्यान रखा जाए कि संसदीय देशों में विधानमंडल अपने वित्तीय कार्यों को कार्यकारिणी के नेतृत्व में रखता है। यद्यपि संवैधानिक तौर से विधानमंडल को कार्यकारिणी द्वारा रखी गई माँगों को अस्वीकृत करने की शक्ति है परन्तु इस शक्ति का दल नियंत्रण के कारण कभी प्रयोग नहीं किया जाता। अधिकांश सदस्य शासक दल के सदस्य होते हैं, वे दल अनुशासन के अधीन होते हैं अतः वे अपनी सरकार द्वारा प्रस्तुत वित्तीय प्रस्तावों के विरुद्ध वोट नहीं दे सकते। परन्तु संयुक्त राज्य अमेरिका में विधानमंडल कार्यकारिणी के ऐसे नियंत्रण के अधीन नहीं है। यह बजट प्रस्तावों को जिस प्रकार चाहे, बदल सकता है।

(3) **विभागाध्यक्ष (Head of the Department)**—जब बजट पास हो जाता है तो नियंत्रक अधिकारी (Controlling officer) जो बहुधा विभाग का अध्यक्ष होता है, भुगतान अधिकारियों (Disbursing officers) के बीच निधि को बाँट देता है जो धन के भुगतान के लिए जिम्मेदार होते हैं। नियंत्रक अधिकारी को निधियों के ऊपर सतत निगरानी रखनी पड़ती है। यह देखना उसका कर्त्तव्य है कि सर्वप्रथम तो कोई व्यय विधानमंडल द्वारा स्वीकृत राशि से अधिक न बढ़े। दूसरे, कोई अधिकारी अपनी शक्ति से बाहर व्यय न करे। इंग्लैण्ड में विभागाध्यक्ष लेखाधिकारी भी होता है परन्तु भारत में विभागों के अध्यक्ष हिसाब–किताब रखने के लिए उत्तरदारी नहीं है। यह कार्य भारत के कंट्रोलर एवं महालेखा परीक्षक द्वारा किया जाता हैं

(4) **लेखा परीक्षण (Audit)**—वित्तीय प्रशासन का एक अति महत्त्वपूर्ण निकाय लेखा परीक्षण विभाग है। भारत में लेखा परीक्षण निकाय का अध्यक्ष 'कंट्रोलर एवं आडीटर जनरल' है। इस अधिकारी का मुख्य कार्य राजकोष से निकाले हुए धन पर नियंत्रण रखना है। वह देखता है कि राशि बजट के अनुसार निकली है और उसका उचित एवं नियमित ढंग से व्यय हुआ है। वह विभागों के हिसाब–किताब देखता है और विधान पालिका को बजट के अनुसार न होने वाले व्ययों का ब्योरा देता है।

(5) **संसदीय समितियाँ (Parliamentary Committees)**—विधानमंडल की दो समितियाँ–अनुमान समिति (Estimates Committee) तथा लोक लेखा समिति (Public Accounts Committee) विधान मंडल की ओर से वित्तीय नियंत्रण करती हैं। अनुमान समिति का मुख्य कार्य व्यय में बचत दिखाने या बचत के रास्ते सुझाने का है। लोक लेखा समिति यह देखती है कि परीक्षक की रिपोर्ट क्या है और जो धन कोष में से गया है वह परीक्षक द्वारा अनुमोदित है या नहीं। यदि कहीं कोई अनियमन हुआ है, तो उसको विधानमंडल के सामने लाना तथा उसको भविष्य में रोकने के लिए सुझाव देना भी उसका कर्त्तव्य है। संयुक्त राज्य अमेरिका में ऐसी समितियाँ नहीं है।

उपर्युक्त निकायों का प्रयोग वित्तीय प्रशासन में किया जाता है। इन निकायों का कर्त्तव्य है कि वे देखें कि करदाता के धन को ठीक तरह और समुचित ढंग से व्यय किया जा रहा है। सार्वजनिक धन एक धरोहर है। वित्तीय प्रशासन यह देखे कि जहाँ एक पैसे से काम चल सकता था वहाँ एक रुपये का खर्च न किया जाए और वह पैसा भी वैयक्तिक लाभ के लिए नहीं अपितु जनहित के लिए खर्च किया जाए। एक दक्ष वित्तीय प्रशासन किसी भी देश के प्रशासकीय यंत्र का गौरव हो सकता है।

महत्त्वपूर्ण प्रश्न

1. वित्त प्रशासन का अर्थ क्या है? और इसके महत्व का वर्णन किजिए।
2. वित्तिय प्रशासन के विभिन्न अंगों व अभिकरणों की व्याख्या किजिए।

अध्याय-21

बजट के सिद्धान्त एवं बजट निर्माण प्रक्रिया

Principles and Process of Budget Making

वित्तीय प्रशासन की सबसे महत्त्वपूर्ण क्रिया बजट है। यह सभी प्रशासनिक क्रियाओं का आधार है। यह कार्यपालिका द्वारा प्रबन्ध तथा व्यवस्थापिका द्वारा नियन्त्रण स्थापित करने का एक प्रभावशाली माध्यम है। बजट प्रजातान्त्रिक सरकार का मूल मन्त्र माना जाता है। इसके निर्माण के समय सर्वाधिक मुद्दे–नीतिगत होते हैं। किसी देश का बजट उसकी सम्पन्नता या विपन्नता का परिचायक होता है। इसमें आम जनता की विशेष रूचि होती है क्योंकि बजट के द्वारा देश का प्रत्येक नागरिक प्रभावित होता है। सभी अपने कारोबार तथा जीवनयापन के संसाधनों के बारे में जानने के इच्छुक होते हैं कि हमें बजट से कोई राहत मिलने वाली है या हमारे उपर कोई ओर खर्च आने वाला है। इसलिए मुख्यतः विकासशील देशों में इसका खासतौर पर महत्व बढ़ गया है। इससे राज्य की वित्तीय स्थिति से भी जनसाधारण अच्छी तरह से अवगत हो जाता है और सरकार की आय और व्यय सम्बन्धी नीति का भी ज्ञान हो जाता है।

"बजट" शब्द का विश्लेषण करने पर पता चलता है कि इस शब्द की उत्पत्ति फ्रैंच भाषा के शब्द 'Budgette' से हुई है जिसका अर्थ है–'एक चमड़े का थैला' आधुनिक अर्थ में इस शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम सन् 1773 में इंग्लैण्ड में किया गया जब वित्त मन्त्री ने अपनी वित्तीय योजना दोनों सदनों में प्रस्तुत की तो पहली बार व्यंग के रूप में यह कहा गया कि वित्त मन्त्री ने अपना बजट खोला है। तभी से संसद में रखे जाने वाले ऐसे प्रस्तावों को बजट कहा जाने लगा।

परिभाषा

सामान्य भाषा में बजट वह विवरण है जिसमें आगामी वर्ष में शासन कितना खर्च करेगा और करो के माध्यम से कितना वसूल करेगा, इसका उल्लेख होता है। बजट में विनियोजन अधिनियम और राजस्व अधिनियमों का उल्लेख रहता है। विनियोजन से खर्चा होता है और राजस्व से आय होती है। बजट आगामी वर्ष के लिए होता है इसलिए अनुमानित ही होता है। इस प्रकार बजट एक प्रकार से अनुमानित आय–व्यय का ब्यौरा होता है। रेने स्टोर्म के अनुसार, "बजट एक लेखा–पत्र है जिसमें सरकार की आय तथा व्यय की प्रारम्भिक अनुमोदित योजना दी हुई होती है।" एक अन्य परिभाषा के अनुसार, "बजट प्रणाली का वास्तविक महत्व इस बात पर है कि वह किसी सरकार के वित्तीय मामलों के क्रमबद्ध प्रशासन की व्यवस्था करता है।" विलोबी के अनुसार "बजट आमदनियों तथा खर्चों का केवल अनुमान ही नहीं है, बल्कि इससे अधिक है। बजट एक ही साथ रिपोर्ट अनुमान तथा प्रस्ताव है अथवा उसे ऐसा होना चाहिए। यह एक ऐसा लेखपत्र है अथवा होना चाहिए जिसके द्वारा मुख्य कार्यपालिका आय प्राप्त करने वाली तथा व्यय की स्वीकृति देने वाली सत्ता के समक्ष इस बात का प्रतिवेदन करती है कि उसने और उसके अधीनस्थ कर्मचारियों ने पिछले वर्ष प्रशासन का संचालन किस प्रकार किया, लोक–कोषागार की वर्तमान स्थिति क्या है, और इन सूचनाओं के आधार पर आगामी वर्ष के लिए धन की व्यवस्था किस प्रकार की जायेगी।"

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर बजट के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातें प्रकाश में आती हैं– प्रथम, बजट अनुमानित आय एवं व्यय का एक विवरण है। द्वितीय, यह एक सीमित अवधि के लिए होता है। तृतीय, बजट को स्वीकृत करने के लिए एक सार्वजनिक निकाय की आवश्यकता होती है। चतुर्थ, बजट के दो भाग होते हैं–प्रथम भाग में समस्त खर्चों का तथा द्वितीय भाग में समस्त आय का वर्णन रहता है। पाँचवाँ, बजट नियन्त्रण से मुक्त नहीं होता है। संक्षेप में, बजट में उत्पादन, उपभोग आयात–निर्यात, राष्ट्रीयकरण, क्रय–विक्रय, वाणिज्य, उद्योग, आय–कर, कराधान आदि सभी समस्याओं के सन्दर्भ में सरकार की नीतियों का समावेश होता है।

बजट का अध्ययन करते समय उसके प्रकारों का उल्लेख करना आवश्यक है। सामान्यतः बजट तीन प्रकार के होते हैं–विधायिका प्रणाली का बजट, कार्यपालिका प्रणाली का बजट, तथा मण्डल या आयोग प्रणाली का बजट। इन प्रकारों में

अतिरिक्त डॉ. विष्णु भगवान ने अपनी पुस्तक *Theory of Public Administration* में कुछ अन्य प्रकार के बजटों की चर्चा की है, जैसे- वार्षिक या दीर्घकालीन बजट, एकल या बहुल बजट, लाभ का, घाटे का या सन्तुलित बजट, नकदी या राजस्व बजट, तथा विभागीय या कार्य–निष्पादक बजट।

बजट के प्रकार
(Types of Budget)

बजट के निम्नलिखित प्रकारों की पहचान की जा सकती है–

1. **वैधानिक प्रकार का बजट (Legislative type of Budget)**– जब बजट कार्यकारी के अनुरोध पर विधायकों की समिति द्वारा तैयार किया जाता है तब इसे वैधानिक प्रकार का बजट कहते हैं। इसे विधानपरिषद तैयार करती है और अनुमोदित करती है। कार्यपालिका इस बजट को स्वीकार करती है। इस प्रकार के बजट का प्रयोग अब विरले ही होता है।

2. **कार्यपालिका प्रकार का बजट (Executive type of Budget)**– इस प्रकार का बजट तैयार करने और प्रस्तुत करने का उत्तरदायित्व कार्यपालिका का होता है। कार्यपालिका बजट को विधानपालिका से पारित कराती है। इस प्रकार का बजट अधिकांश लोकप्रिय है। संयुक्त राज्य अमेरिका में बजट के कार्यालय द्वारा बजट बनाया जाता है और कांग्रेस द्वारा पास किया जाता है।

3. **निष्पादन बजट (Performance Budget)**– आधुनिक प्रवृत्ति निष्पादन बजट के पक्ष में है न कि कार्यक्रम या वर्गीकरण बजट के। **रॉबर्ट एच० हरमन** के शब्दों में, "निष्पादन बजट–निर्माण अन्यों की आवश्यकताओं की अपेक्षा सरकार की आवश्यकताओं पर बल देता है। इसमें बल इसे पूरा करने की आवश्यकता पर दिया जाता है। वस्तुतः निष्पादन बजट केवल नगरपालिकाओं में ही चलता है। (Performance budgeting emphasises the need of two governments rather than the need of the others. In it the emphasis shifts the need to accomplishment itself. Actually performance budgeting takes place only in the municipalities) निष्पादन बजट का सामान्य अर्थ सरकारी उत्पादन और उसकी लागत को प्राथमिक रूप से दर्शाने वाले कार्यों, कार्यक्रमों, निष्पादन इकाइयां अर्थात् गतिविधियों, परियोजनाओं आदि के संबंध में लोक व्यय के प्रस्तुतीकरण की एक व्यवस्था है। बजट के आबंटनों के माध्यम से ही कार्यक्रम कार्यान्वित और नियंत्रित किये जाते हैं। इसका पहला कार्य व उद्देश्य या लक्ष्य है, जिन्हें सरकार द्वारा प्राप्त किया जाना है।

4. **एकल बजट (Single Budget)**– सामान्यतः सरकार अपने सभी प्रशासकीय विभागों के लिए अकेला बजट रखती है। एक एकल बजट पूर्णतया संश्लेषित बजट है जो सभी सरकारी विभागों के साथ–साथ उनकी नीतियों, परियोजनाओं और कार्यक्रमों के आय और व्यय के लिए बनता है।

5. **बहु- बजट (Plural Budget)**– इस प्रकार के बजट में दो या तीन या इससे भी अधिक विभागों को सम्मिलित करता है। भारत में दो बजट तैयार और पारित किये जाते हैं–रेलवे बजट (सन् 1921 से केवल रेलवे के लिए) और सामान्य बजट सरकार के अन्य सभी विभागों को सम्मिलित करता है।

6. **संतुलित बचत अथवा घाटे का बजट (Balanced surplus or deficit budget)**–बजट संतुलित बचत का या घाटे का हो सकता है। संतुलित बजट वह है जिसमें राजस्व (आय) व्यय के बराबर होता है। एक बचत वाला बजट वह है जिसमें राजस्व वास्तविक या अनुमानित व्यय से अधिक होता है। घाटे वाला बजट वह है जिसमें व्यय अनुमानित आय से अधिक होता है। घाटे का बजट प्रायः विकासशील अर्थ व्यवस्था वाले देश में प्रस्तुत किया जाता है। एक संतुलित बजट सामान्यतः लघु–बचत वाला बजट आदर्श समझा जाता है।

7. **शून्य बजट-निर्माण अथवा शून्य-आधार पर बजट-निर्माण (Zero budgeting or Zero base budgeting)**– शून्य आधार पर बजट–निर्माण एक नयी धारणा है जो तार्किक बजट–निर्माण की वकालत भी करती है। इसमें प्रत्येक स्कीम की समीक्षा बजट में प्रावधान से पहले ही उसके पक्ष में की जाती है। इस संबंध में यह निष्पादन बजट के समान है। शून्य आधारित बजट प्रक्रिया उस स्कीम के विभिन्न पहलुओं के संबंध में बहुत अधिक आंकड़ों की अपेक्षा करती है। सिजके लिए निधियों का आबंटन करना होता है। विभाग या अभिकरण को सभी सम्बन्धित आंकड़े या अन्य निधियां प्रदान करनी पड़ती हैं, जो बजट में निधियों का आबंटन न्यायोचित कर सकें, निधियां केवल तभी उपलब्ध कराई जाती हैं, जब स्कीम का परीक्षण न्यायसंगत होता है।

बजट-निर्माण के सिद्धान्त

यह कथन पूर्णतः सत्य है कि बजट व्यवस्था वित्तीय प्रशासन का आधार–स्तम्भ है। वित्तीय प्रशासन में पूर्णता एवं स्था... का तत्त्व तब तक नहीं आ सकता है, जब तक बजट का कोई सुदृढ़ सिद्धान्त न हो। यह निर्धारित करना सरल नहीं है बजट के लिए कौन–कौन से सर्वमान्य सिद्धान्त अपनाये जायें, फिर भी बजट–निर्माण के लिए कुछ सिद्धान्तों का अपनाया ... आवश्यक हो जाता है। विभिन्न देशों में अपनाये गये बजट–निर्माण सम्बन्धी सिद्धान्त तथा प्रमुख विचारकों द्वारा बजट सम्... व्यक्त की गयी धारणाओं का अध्ययन करने के बाद बजट–निर्माण के निम्नलिखित सिद्धान्त उभरकर सामने आते हैं– ब... सन्तुलित हो, आय–व्यय का अनुमान वास्तविकता पर आधारित हो, वार्षिक बजट की व्यवस्था हो, आय तथा व्यय को ... वर्ष बजट में सम्मिलित किया जाय, बजट का निर्माण कुल (Gross) आय पर हो, बजट–निर्माण का उत्तरदायित्व कार्यपालिका पर हो, शासन के समस्त लेनदेन के लिए एक ही बजट हो, बजट नकदी आधार पर हो, वित्तीय परिणामों का आय–व्यय उल्लेख हो। इन सिद्धान्तों के अतिरिक्त हेरॉल्ड डी. स्मिथ ने बजट के जिन सिद्धान्तों का उल्लेख किया है वे इस प्रक... है–बजट का खूब प्रचार तथा प्रकाशन हो; बजट स्पष्ट, व्यापक निश्चित अवधि के लिए एवं विशुद्ध, सन्तुलित तथा सत्य... पर आधारित हो।

बजट निर्माण के प्रमुख सिद्धान्त (Principles of Budget formulation)

बजट निर्माण करते समय कुछ सिद्धान्तों को ध्यान में रखना अनिवार्य है। इसमें समस्त राष्ट्र वित्तीय व्यवस्था का ध्यान में रखना पड़ता है। सिद्धान्तों के आधार पर जो बजट बनाया जाता है वह जन–भावना को अभिव्यक्त करता है। बजट सार्वजनिक धन को सार्वजनिक हित में खर्च करने के लिये बनाया जाता है। बजट के माध्यम से व्यवस्थापिका कार्यपालिका का नियंत्रित ... में सक्षम होती है। प्रजातांत्रिक सरकारों में व्यय पर नियंत्रण रखा जाता है। जैसे–जैसे प्रजातंत्र का विकास होता जा रहा ... इकाईयों पर संघों का नियंत्रण बढ़ते जा रहे हैं। इकाईयों पर आर्थिक नियंत्रण आज संगठन का आधार है। व्यवस्थापिका की स्वीकृति के बिना जिस तरह सार्वजनिक आय नहीं किया जा सकता उसी तरह सार्वजनिक व्यय भी नहीं किया जा सकता। बजट बनाने के सम्बन्ध में कुछ मान्य सिद्धान्त हैं जिन्हें बजट निर्माण के समय ध्यान में रखना आवश्यक है।

1. **व्यापकता (Comprehensive)**–बजट में, बिना अपवाद के, सभी कार्यक्रमों को ध्यान में रखते हुए सरकार ... व्यय की पूर्णतः व्यवस्था होनी चाहिये। इसमें ऋण में मुक्ति के लिय राजस्व प्राप्ति का ब्यारा होना चाहिये ... करने के लिये नवीन विधान होने चाहिये। इसमें सम्पूर्ण वर्ष का चित्र स्पष्ट होना चाहिये। इसे विकासोन्मुख तथा ... होना चाहिये। जिन मुद्दों पर व्यय होगा उनका ब्यौरा स्पष्ट होना चाहिये। जिस बजट मे ये सभी मुद्दे अंकित हैं वह व्यापक बजट कहा जाता है।

2. **बजट सन्तुलित होना चाहिये (Budget should be balanced)**--बजट का निर्माण करते समय सन्तुलन पर ध्यान ... आवश्यक है। यह ध्यान देना नितान्त आवश्यक है कि किसी भी स्थिति में, प्रस्तावित एवं अनुमानित व्यय, अनुमानित ... से अधिक न हो। बजट में आय भाग से व्यय भाग अधिक होना दिवालियापन की ओर अग्रसर करता है। एम. पी. ... ने सन्तुलित बजट के सम्बन्ध में कहा है कि जब आय और व्यय भाग बराबर होते हैं तब यह सन्तुलित बजट कहा ... है। (When the amounnt of expenditure and revenue in a budget are equal or nearly so, it is called a balan... budget).

   जब व्यय भाग आय भाग से अधिक होता है तब वह बजट घाटे का कहा जाता है। एक बार घाटे का ... तो यह ज्यादा चिन्ता का विषय नहीं है, परन्तु प्रतिवर्ष घाटे का बजट बनाना दिवालियापन की ओर ले जाता है। ... वित्तीय विचारधारा के अर्थशास्त्री घाटे के बजट का समर्थन करते हैं परन्तु उनकी मान्यता है कि घाटा सामा ... नहीं जाना चाहिये।

3. **कर तथा व्यय का अनुमान उचित होना चाहिये (Estimate of Tax and Expenditure should be Proper)** ... तथा व्यय का उचित अनुमान बजट की सफलता है। वार्षिक आय, पंजीगत धन तथा प्रतिवर्ष बार–बार होने वाले ... का ब्यौरा अलग–अलग होना चाहिये, बजट में दो अलग–अलग भागों में वार्षिक आय–व्यय तथा पूंजी सम्बन्धी आय... का उल्लेख होना चाहिये। मुख्य कार्यपालिका पर बजट सम्बन्धी उत्तरदायित्व होने के कारण उसे बजट निर्माण ... कुछ प्रशासकीय उपकरण प्राप्त होने चाहिये जिसका प्रावधान भी बजट में अनिवार्य है। आय सम्बन्धी अनुमान को क... नहीं होना चाहिये एवं व्यय सम्बन्धी अनुमान न्यूनतम आवश्यकताओं से अधिक नहीं होना चाहिये।

4. **एकल बजट (Single Budget)**—एकल बजट का अर्थ है कि सरकार के समस्त विभागों की आय–व्यय की वास्तविक स्थिति का पता लगाने के लिये प्रयत्न किया जाय। उसमें समग्र विषयों का उल्लेख होना चाहिये, मात्र निष्कर्ष का उल्लेख करना उचित नहीं होगा इसमें केवल यह दर्शाना की अमुक आय एवं व्यय होगा अपर्याप्त है सभी विभागों का अलग–अलग बजट नहीं बनाया जा सकता यदि ऐसा होता है तो उससे बजट की पूर्ण स्थिति का सही पता नहीं लग सकता है। बजट का एकल गुण इसकी विशेषता है।

5. **वार्षिक बजट (Annual Budget)**—वार्षिक बजट का अर्थ है कि बजट का निर्माण एक वर्ष की आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखकर होना चाहिये यह सामान्य अनुभव है कि वार्षिक वास्तविक व्यय, अनुमानित व्यय से, वर्ष के अन्त में बढ़ जाता है। इसलिये अनुमान ऐसा करना चाहिये कि वर्ष के अन्तिम चरण में मूल्य वृद्धि के अनुरूप हो। वार्षिक बजट प्रस्तुत करते समय इन मुद्दों पर ध्यान रखना चाहिये। विधानमण्डल द्वारा धन की स्वीकृति केवल एक वर्ष के लिये होनी वाहिये। वित्त सम्बन्धी नीतियों को सम्पन्न करने के लिए एक वर्ष की अवधि पर्याप्त है। बजट में नियोजन सम्बन्धी नीति दीर्घकालीन हो परन्तु प्रतिवर्ष के लिये उसकी दर निश्चित करना आवश्यक है।

6. **बजट कार्यपालिका का उत्तरदायित्व होना चाहिये (Budget should be the responsibility of the Executive)**—बजट के निर्माण का उत्तरदायित्व कार्यपालिका का होता है। धन सम्बन्धी आवश्यकताओं का विवरण केवल कार्यपालिका ही दे सकती है। मुख्य कार्यपालक की देखरेख में बजट तैयार होता है। विधानमण्डल का कार्य उसके द्वारा दी गयी मांगों को स्वीकार अथवा अस्वीकार करना है। उस समय विधानमण्डल को कार्यपालिका की नीतियों का सर्वेक्षण करने का अच्छा अवसर मिल जाता है। इस कारण यह कहा जाता है कि विधानमण्डल को बजट के लिये उत्तरदायी ठहराना उचित नहीं है। वाटल ने बजट के सम्बन्ध में ठीक ही कहा है: बजट विधानमण्डल एवं कार्यपालिका के हाथों प्रत्येक वित्त नियंत्रण का प्रारम्भिक बिन्दु हैं। संगठित वित्त व्यवस्था के अभाव में स्थायी सामाजिक प्रगति सम्भव नहीं है। (The Budget is the Starting point of financial control by the executive as well as by the legislature. It is the basis of finance without which there can be no lasting social progress. – Watal)

7. **बजट को नेट पोजीशन पर न होकर ग्रॉस आय पर होना चाहिये (Budget should be based not on net position but on Gross Income)**—राजकीय धन राशि पर विधानमण्डल द्वारा नियंत्रण के लिये यह आवश्यक है कि बजट का निर्माण नेट पोजीशन (Net Position) न करके ग्रॉस आय एवं व्यय (Gross income and expenditure) के आधार पर होना चाहिये अर्थात् बजट में आय तथा व्यय का पूर्ण विवरण होना अनिवार्य है। इसमें उस धन राशि का भी विवरण होना चाहिये जिसकी मांग विधानमण्डल में की गयी है।

8. **हड़प नीति (Rule of Lapse)**—हड़प नीति का अर्थ यहा होता है कि विधानमण्डल के द्वारा एक कार्य के लिये, एक वर्ष के लिये स्वीकृत किया गया धन जब निश्चित अवधि में व्यय नहीं होगा तो वह समाप्त हो जायेगा। वह राशि अपने आप दूसरे वर्ष में खर्च नहीं की जा सकती। कोई भी विभाग अपने विभाग के लिये इस राशि को जमा नहीं कर सकता। इस सिद्धान्त का लाभ यह है कि विभाग स्वीकृत राशि को विभागीय विकास में लगाता है हालांकि इसका दोष यह है कि वर्ष के अन्त में सरकारी तंत्र जल्द से जल्द काम कराना चाहता है जिससे काम करने वाले अभिकरण को राशि हड़पने का मौका मिल जाता है। यहां सरकार पैसा नहीं हड़पती बल्कि कार्मिक पैसा हड़प जाते है।

भारत में बजट-निर्माण की प्रक्रिया

हमार दश में बजट पद्धति का आरम्भ लार्ड केनिंग (1856–62) के कार्यकाल में हुआ। 1859 में जेम्स विल्सन ने 18 फरवरी, 1860 को वायसराय की परिषद में प्रथम बार बजट प्रस्तुत किया। इसलिए जेम्स विल्सन को भारत में बजट पद्धति का जन्मदाता कहा जाता है। इसके बाद प्रतिवर्ष वित्तीय स्थिति का विवरण प्रस्तुत करने वाले बजट वायसराय की परिषद में प्रस्तुत किये जाने लगे। यह स्थिति स्वतन्त्रता प्राप्त करने से पूर्व तक बनी रही। 1947 में स्वतन्त्र होने पर भारतीय संसद एवं विधान सभाओं को बजट पर नियन्त्रण के अधिकार प्राप्त हो गए। यहां यह बात ध्यान रखने योग्य है कि भारत में सम्पूर्ण देश के लिए केवल एक ही बजट नहीं हाता है। केन्द्र सरकार पूरे देश के लिए एक बजट प्रस्तुत करती है, तथा प्रत्येक राज्य अपने–अपने राज्य के लिए अलग–अलग बजट प्रस्तुत करते हैं। संघीय स्तर पर दो बजट होते हैं—पहला सामान्य बजट जो वित्तमन्त्री द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। दूसरा रेलवे बजट, जो रेलमन्त्री द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। भारत में वित्तीय वर्ष । अप्रैल से प्रारम्भ होकर

31 मार्च को समाप्त होता है। भारत में बजट–निर्माण की प्रक्रिया आरम्भ होने से लेकर कार्यान्वयन के स्तर तक पहुँचने के बीच इसे जिन विभिन्न चरणों से होकर गुजरना पड़ता है, वे निम्नलिखित हैः

1. बजट का निर्माण
2. विधानमण्डल की स्वीकृति
3. बजट का क्रियान्वयन

1. बजट का निर्माण–बजट के निर्माण की प्रक्रिया को भी तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है

(क) बजट का विभागों द्वारा निर्माण,

(ख) बजट की महालेखापाल के कार्यालय में जॉच तथा निर्माण, और

(ग) वित्त मन्त्रालय द्वारा समकन तथा जॉच।

(क) बजट का विभागों द्वारा निर्माण–भारत में वित्तीय वर्ष प्रारम्भ होने के 7 से 8 माह पूर्व बजट–निर्माण की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। बजट के अनुमानों की तैयारी का पूर्ण उत्तरदायित्व कार्यपालिका का होता है। अनुमानों के तैयार करने के लिए सर्वप्रथम कार्यपालिका अपनी वित्तीय नीति को स्पष्ट करती है। बजट की रूपरेखा तैयार करने का उत्तरदायित्व यद्यपि वित्त–मन्त्रालय का होता है, किन्तु इस कार्य में प्रशासकीय मन्त्रालय, योजना आयोग, अधीनस्थ कार्यालय तथा महालेखा परीक्षक का भी हाथ होता है। प्रशासकीय मन्त्रालय और उसके अधीनस्थ कार्यालयों से वित्त–मन्त्रालय को प्रशासकीय आवश्यकताओं की विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है। योजना आयोग योजनाओं की प्राथमिकता के सम्बन्ध में मन्त्रणा देता है और नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक प्राक्कलन तैयार करने हेतु लेखा–कौशल उपलब्ध कराता है। बजट अनुमान तैयार करने की शुरूआत वित्त–मन्त्रालय द्वारा जुलाई अथवा अगस्त माह से ही शुरू कर दी जाती है जब वह विभिन्न प्रशासकीय मन्त्रालयों तथा विभागाध्यक्षों को व्यय के प्राक्कलन तैयार करने के लिए एक प्रपत्र भेजता है। विभागाध्यक्ष इन छपे हुए निर्धारित प्रपत्रों को स्थानीय कार्यालयों को भेज देता है। प्रपत्र में निम्नलिखित शीर्षक होते हैं–

1. विनियोगों के शीर्ष तथा उपशीर्ष,
2. गत वर्ष की वास्तविक आय तथा व्यय,
3. वर्तमान वर्ष के स्वीकृत अनुमान,
4. वर्तमान वर्ष के संशोधित अनुमान,
5. आगामी वर्ष के बजट प्राक्कलन, और
6. घटा–बढ़ी का विस्तार।

स्थानीय कार्यालयों द्वारा ये प्रपत्र तैयार करके प्रशासकीय मन्त्रालयों से सम्बन्धित विभागों को भेज दिये जाते हैं। विभागों के अध्यक्ष अनुमानों का सूक्ष्म निरीक्षण करते हैं और आवश्यकतानुसार संशोधन करके अपने–अपने विभागों के लिए उन्हें एकत्रित करते हैं। इसके बाद प्रशासकीय मन्त्रालय इन प्राक्कलनों को नवम्बर के मध्य में वित्त–मन्त्रालय को भेज देते हैं। वित्त मन्त्रालय द्वारा बजट अनुमानों का सूक्ष्म परीक्षण किया जाता है। यह परीक्षण मुख्यतः मितव्ययता से सम्बन्ध रखता है, नीति से नहीं। व्यय सम्बन्धी नीति को देखना तो प्रशासकीय मन्त्रालय का कार्य है।

प्रशासकीय मन्त्रालयों द्वारा प्रेषित बजट अनुमानों को मोटे रूप में तीन भागों में बॉटा जाता है–प्रथम, स्थायी व्यय; इसमें स्थायी संस्थानों के वेतन, भत्ते तथा अन्य व्यय सम्मिलित हैं। इनसे सम्बन्धित अनुमान सूक्ष्म पुनरावलोकन हेतु वित्त–मन्त्रालय के व्यय सम्भाग को भेजे जाते हैं। द्वितीय, प्रचलित कार्यक्रम। प्रचलित कार्यक्रमों के प्राक्कलनो की जॉच व्यय–विभाग द्वारा की जाती है। इस सूक्ष्म परीक्षण द्वारा यह देखा जाता है कि जारी योजनाओं में कहॉ तक प्रगति हुई है। तृतीय, नवीन कार्यक्रम। वित्त–मन्त्रालय द्वारा प्राक्कलनों की वास्तविक जॉच इसी क्षेत्र में की जाती है। नवीन योजनाओं के सम्बन्ध में संसाधनों पर विभिन्न मदों की प्राथमिकता के सम्बन्ध में विचार किया जाता है। इस विषय में योजना आयोग तथा वित्त–मन्त्रालय के आर्थिक मामलों के विभाग से भी सलाह ली जाती है।

(ख) **बजट की महालेखापाल के कार्यालय में जाँच तथा निर्माण**—विभागों के द्वारा जब आगामी वर्ष के आय–व्यय का प्राक्कलन हो जाता है तो वे प्रपत्रों की एक प्रति वित्त–मन्त्रालय के साथ–साथ दूसरी प्रति महालेखापाल के कार्यालय को भेज देते हैं। महालेखापाल के कार्यालय में विभाग से सम्बन्धित सारे लेखे रहते हैं। विभाग ने जो प्रपत्र भेजा है उसमें दिये गये आँकड़ों के आधार पर महालेखापाल उसकी जाँच कर लेता है। इस जाँच से आँकड़ों में शुद्धता आ जाती है। शुद्ध आँकड़ों के आधार पर प्रस्तावित व्यय भी अधिक स्पष्ट हो जाता है। महालेखापाल प्रपत्र की जाँच करने के अतिरिक्त दो कार्य और करता है। एक कार्य तो है आय–व्ययक टिप्पणी बनाना तथा दूसरा कार्य है प्राक्कलनों को माँगों का रूप देना। प्रत्येक विभाग अपने प्राक्कलनों की एक प्रतिलिपि महालेखापाल को भेजता है। इस कार्यालय में विभिन्न मदों की जाँच की जाती है। उसके पश्चात् महालेखापाल अपनी टिप्पणी सहित उसे वित्त–मन्त्रालय को भेज देता है।

(ग) **वित्त-मन्त्रालय द्वारा समेकन तथा जाँच**—प्रशासकीय मन्त्रालयों अथवा विभागों द्वारा बजट अनुमानों की जाँच सरकारी नीतियों के सन्दर्भ में की जाती है जब कि वित्त–मन्त्रालय के बजट विभाग की सूक्ष्म जाँच का उद्देश्य व्यय में मितव्ययता प्राप्त करना होता है। प्राक्कलन का कार्य 7 से 9 माह पूर्व ही प्रारम्भ हो जाता है। प्रारम्भ वित्त–मन्त्रालय ही करता है यह विभिन्न विभागों को व्ययों के प्राक्कलन तैयार करने के लिए एक परिचय–पत्र भेजता है। इन परिचय–पत्रों को विभिन्न मन्त्रालय अपने–अपने प्राक्कलन सहित वित्त–मन्त्रालय को 30 अक्टूबर तक भेज देते हैं। वित्त–मन्त्रालय उनको संचित व समन्वित करता है और बजट का रूप प्रदान करता है।

वित्त–मन्त्रालय के आय–व्ययक प्रभाग में प्राक्कलनों की पुनः जाँच होती है। भारत में आय–व्ययक प्रभाग की जाँच इस दृष्टि से नहीं होती है कि कितने धन की वास्तविक आवश्यकता है वरन् इस दृष्टि से होती है कि कुल प्राप्त आय के अनुपात में व्यय प्राक्कलन अधिक है अथवा कम। पूँजी व्यय के सम्बन्ध में आय–व्ययक प्रभाग की जाँच बहुत सूक्ष्म होती है। पूँजी व्यय जितना बचत के साथ हो सके उतना वांछनीय है। इस सामान्य सिद्धान्त के कारण वित्त विभाग यह देखता है कि पूँजी व्यय किसी ऐसी योजना पर तो नहीं हो रहा है जो पंचवर्षीय योजना में सम्मिलित न हो।

आय–व्ययक तैयार हो जाने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि आय व व्यय में कितना अन्तर है। इस बात पर विचार किया जाता है कि बजट घाटे का होगा या सन्तुलित होगा। यदि बजट घाटे का है तो उस घाटे को कैसे पूरा किया जायेगा, इस पर विचार किया जाता है। नये प्रस्तावित कर कौन से होंगे ऋण किस स्त्रोत से लिये जायेंगे, आदि बातों पर भी विचार किया जाता है। कर लगाने का तथा ऋण लेने का निर्णय अन्तिम चरण में लिया जाता है। इस निर्णय को बहुत गोपनीय रखा जाता है। अत्यन्त महत्वपूर्ण खर्चे मन्त्रिमण्डल की पूर्व–स्वीकृति से अनुमानित व्यय में सम्मिलित किये जाते हैं। इस प्रकार विभिन्न विभागों द्वारा निर्मित प्राक्कलन महालेखापाल के कार्यालय द्वारा परीक्षित तथा वित्त–मन्त्रालय द्वारा अन्तिम रूप से तैयार बजट एक निश्चित स्वरूप धारण कर लेता है जिसे बजट कहा जाता है। बजट विवरण के निम्नलिखित पाँच भाग होते हैं:

(1) केन्द्रीय राजस्व से हुए व्यय का सामान्य विवरण,

(2) केन्द्रीय राजस्व की प्राप्तियों और भुगतानों का सामान्य विवरण,

(3) केन्द्रीय शासन के राजस्व का विस्तृत विवरण,

(4) केन्द्रीय शासन के राजस्व में हुए व्यय का विवरण,

(5) केन्द्रीय शासन की प्राप्तियों और भुगतानों का विवरण।

पहले भाग में आय–व्यय की तुलना दिखलाना होता है। दूसरे भाग से यह स्पष्ट होता है कि शासन की वित्तीय स्थिति कैसी है। तीसरा, चौथा और पाँचवाँ भाग उपर्युक्त दो भागों का विस्तृत विवरण होता है।

2. **विधानमण्डल की स्वीकृति**—लोकतान्त्रिक व्यवस्था में जनता द्वारा चुनी गयी सभा के पूर्वानुमोदन के बिना न तो कोई कर लगाया जा सकता है और न ही कोई खर्च किया जा सकता है। संविधान के अनुच्छेद 112 में प्रावधान है कि राष्ट्रपति प्रतिवर्ष वित्त–विवरण संसद के दोनों सदनों के सम्मुख प्रस्तुत करायेगा। बजट को संसद का अनुमोदन प्राप्त करने के लिए वित्त–विवरण को निम्नलिखित चरणों से होकर गुजरना होता है:

(क) संसद के समक्ष प्रस्तुतीकरण,

(ख) बजट पर सामान्य चर्चा,

(ग) माँगों पर बहस तथा उन पर मतदान,

(घ) विनियोग विधेयक पर बहस और उनको पारित किया जाना,

(ङ) वित्त–विधेयक पर स्वीकृति।

संविधान में यह उल्लेखित है कि बजट दोनों सदनों के समक्ष रखा जायेगा परन्तु बजट पारित करने के सम्बन्ध में [illegible] सदनों—लोकसभा व राज्यसभा—को समान अधिकार प्राप्त नहीं हैं। वित्तीय मामलों में लोकसभा राज्यसभा से अधिक शक्तिशाली होती है। यहाँ इस बात का उल्लेख कर देना जरूरी है कि वित्तीय मामलों में राज्यसभा की वास्तविक स्थिति क्या है।

(1) धन–विधेयक राज्यसभा में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता।

(2) लोकसभा में पारित हो जाने के बाद राज्यसभा धन–विधेयक को उसी रूप में जिस रूप में लोकसभा ने उसे पारित [illegible] या पारित कर देगी या अपनी अनुशंसाओं और सुझावों के साथ लोकसभा को वापस लौटा देगी। धन–विधेयक पर [illegible] करने के लिए राज्यसभा को चौदह दिन का समय दिया जाता है। राज्यसभा ने जो सुझाव दिये हैं उनको स्वीकार [illegible] या अस्वीकृत करने का पूर्ण अधिकार लोकसभा को होता है। यदि लोकसभा राज्यसभा द्वारा प्रस्तावित सिफारिशें अस्वीकृत कर देती है तो धन–विधेयक को पुनः राज्यसभा में भेजने की आवश्यकता नहीं होती।

(3) यदि राज्यसभा धन–विधेयक को न तो पारित करती है और न अनुशंसाओं सहित वापस लौटाती है [illegible] चौदह दिन के बाद विधेयक राज्यसभा के द्वारा पारित माना जाता है।

(क) **विधानमण्डल के सम्मुख प्रस्तुतीकरण**—लोकतान्त्रिक देशों में कार्यपालिका द्वारा तैयार किये जाने के बाद [illegible] संसद में स्वीकृति के लिए प्रस्तुत किया जाता है। बजट प्रस्तुत करने का दायित्व मन्त्रिमण्डल का होता है। [illegible] पर भारतीय संसद का बजट सत्र फरवरी माह के अन्त में प्रारम्भ होता है। इसी अधिवेशन में भारत के [illegible] बजट—रेलवे बजट तथा सामान्य बजट—प्रस्तुत किये जाते हैं। रेलवे बजट रेल मन्त्री द्वारा प्रस्तुत किया [illegible] है जिसमें रेलों की आय–व्यय, उनकी अनुदान माँगें, रेलमन्त्री का भाषण आदि सम्मिलित होते हैं। सामान्य [illegible] वित्त–मन्त्री द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। वित्त–मन्त्री अपना बजट अभिभाषण पढ़ता है। बजट भाषण की [illegible] हुई प्रतियाँ पहले ही सदस्यों को दे दी जाती हैं। बजट में दोनों प्रकार के व्ययों को अलग–अलग करके रखा [illegible] है। प्रथम प्रकार के व्यय तो वे हैं जो भारत की संचित निधि में से किये जाते हैं। द्वितीय प्रकार के व्यय वे [illegible] हैं जो भारत की संचित निधि पर भारित होते हैं।

(ख) **बजट पर सामान्य चर्चा**—संसद में बजट प्रस्तुत किये जाने के बाद उस दिन उस पर कोई चर्चा नहीं होती। इसके लिए लोकसभा का अध्यक्ष सामान्य चर्चा की तारीख निर्धारित कर देता है। बजट पर चर्चा करने के [illegible] सदस्यों को 3 से 4 दिन का समय मिलता है। इस आम चर्चा में सदस्यों को शासन की नीति पर [illegible] आलोचना करने का अवसर मिलता है। सामान्य चर्चा के दौरान न तो कोई प्रस्ताव रखा जाता है और न ही [illegible] के लिए बजट संसद के समक्ष रखा जाता है। यह चर्चा राजनीतिक अधिक, वित्तीय कम होती है। सामान्य [illegible] संसद के दोनों सदनों में एक साथ चलती रहती है। जब वाद–विवाद समाप्त हो जाता है तब वित्तमन्त्री सभी [illegible] की आलोचनाओं का उत्तर देता है।

(ग) **माँगों पर बहस तथा उन पर मतदान**—सामान्य चर्चा समाप्त हो जाने तथा लेखानुदान पारित हो जाने के [illegible] लोकसभा में एक–एक माँग पर अलग–अलग मतदान होता है। इस प्रकार बजट का समस्त व्यय भाग इस [illegible] के अन्तर्गत आ जाता है। प्रत्येक विभाग से सम्बन्धित माँग के प्रस्तुत होने पर जोरदार वाद–विवाद होता है। वाद–विवाद के समय विपक्ष सम्बन्धित विभाग एवं उसकी नीतियों की जमकर आलोचना करता है। सम्बन्धित [illegible] उनकी आलोचनाओं और आरोपों का उत्तर देता है। इसके बाद उस विभाग की माँगों पर मतदान होता है। [illegible] पर बहस में एवं उस पर मतदान होने में लगभग 22 दिन का समय लग जाता है। बजट पारित करने की [illegible] में यह चरण काफी महत्व रखता है।

शासन की ओर से माँगें रखी जाती हैं और विपक्षियों की ओर से कटौती के प्रस्ताव रखे जाते हैं। कटौती के प्रस्ताव [illegible] विरोधी दल यह बताना चाहते हैं कि वे शासन को व्यय के लिए उतना धन नहीं स्वीकृत करना चाहते जितना माँगा [illegible]

है। यदि कटौती प्रस्ताव बहस के लिए स्वीकार हो जाता है तो उस पर बहस होने लगती है। कटौती के प्रस्ताव निम्नलिखित तीन प्रकार के होते हैं–

(1) कटौती के वे प्रस्ताव जो नीति का विरोध करने के लिए रखे जाते हैं।

(2) कटौती के वे प्रस्ताव जो मितव्ययता बरते जाने के लिए रखे जाते हैं।

(3) कटौती के वे प्रस्ताव जो प्रतीक रूप में रखे जाते हैं।

कटौती के प्रस्ताव रखे जाते हैं परन्तु वे कभी पारित नहीं होते। इसी प्रकार से शासन संसद से अनुदान की माँग करता है परन्तु यह मात्र एक औपचारिकता है। शासन जितने अनुदान की माँग करता है उतना अनुदान संसद से प्राप्त हो ही जाता है। ऐसा कभी नहीं होता कि शासन अनुदान की माँग करे और संसद उस माँग को अस्वीकृत कर दे। यदि संसद शासन की माँगों को अस्वीकृत कर देती है तो इसका अर्थ शासन के विरुद्ध अविश्वास व्यक्त करना होता है। जब तक संसद का सरकार में विश्वास है तब तक शासन की प्रत्येक माँग को संसद स्वीकार करती ही है।

यह बात ध्यान में रखना आवश्यक है कि अनुदान की माँगों में कटौती के ही प्रस्ताव रखे जा सकते हैं, माँगों में बढ़ोत्तरी के प्रस्ताव नहीं रखे जा सकते हैं। माँगों को बढ़ाने का अधिकार तो केवल सरकार को ही है। विरोधी तो केवल माँग में कटौती करने की माँग कर सकते हैं। बहस केवल उन मांगों पर होती है जो संचित निधि पर भारित न हों।

(घ) **विनियोजन विधेयक पर विचार-विमर्श और स्वीकृति**–जब सदन के द्वारा अनुदान स्वीकृत हो जाता है तो विनियोजन विधेयक प्रस्तुत किया जात है। विनियोजन विधेयक का उद्देश्य उस राशि को प्रशासकीय विभागों को उपलब्ध करना है जो राशि अनुदान के रूप में सदन के द्वारा स्वीकृत की गयी है। शासन केवल वही राशि व्यय कर सकता है जो विनियोजन अधिनियम द्वारा संसद ने उसको दी है। मूल रूप से दी गयी राशि से जब शासन का काम नहीं चलता है तो सरकार को पूरक अनुदान लेना पड़ता है। नियन्त्रक तथा महालेखा परीक्षक और वित्त–मन्त्रालय इस बात पर कड़ी निगाह रखते हैं कि शासन का व्यय उसी विषय पर उतना ही हुआ है जितना विनियोजन अधिनियम ने निर्धारित किया था।

विनियोजन विधेयक पर विचार करने व उसको पारित करने में तथा वित्त–विधेयक पर विचार करने व उसको पारित करने में लगभग पाँच दिन का समय लगता है। विनियोजन विधेयक वित्त–मन्त्री द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। इस विधेयक पर कोई बहस इसलिए नहीं होती क्योंकि अनुदान माँगों को स्वीकृत करने से पहले ही सदन में काफी बहस हो चुकी होती है। हाँ, अनुदान की माँग को स्वीकृत करने के बाद और विनियोजन विधेयक प्रस्तुत करने के पूर्व यदि कोई बात हो गयी हो तो बहस की आवश्यकता अनुभव की जाती है। दो–तीन दिन में विनियोजन विधेयक पारित हो जाता है। लोकसभा में पारित होने के बाद विधेयक राज्यसभा को भेजा जाता है। 14 दिन के अन्दर राज्यसभा को विनियोजन विधेयक पारित करना होता है। दोनों सदनों में पारित होने के बाद विधेयक को राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए भेजा जाता है। राष्ट्रपति की स्वीकृति एक औपचारिकता मात्र है।

(ङ) **वित्त-विधेयक पर स्वीकृति**–भारतीय संविधान के अनुच्छेद 263 में निर्धारित किया गया है कि कोई भी कर संसद की स्वीकृति के बिना न तो लगाया जा सकता है और न ही वसूल किया जा सकता है। कर दो प्रकार के होते हैं–एक वे कर जो स्थायी होते हैं तथा दूसरे वे कर जो स्थायी नहीं होते हैं। स्थायी करों का नियमन करने वाले कानून कार्यपालिका को उनकी दर निर्धारित करने का अधिकार देते हैं। जो कर स्थायी नहीं हैं, उन करों की दर का निर्धारण प्रतिवर्ष संसद करती है। ऐसे करों में सीमा–शुल्क तथा आय–कर आदि होते हैं। वर्ष में जितने भी कर लगाने होते हैं उन समस्त करों को एक विधेयक में संकलित कर लिया जाता है। यह विधेयक शासन को अनुदान देने के लिए उपायों और साधनों की व्यवस्था करने के लिए होता है।

कर बढ़ाने तथा नया कर लगाने का प्रस्ताव शासन की ओर से ही रखा जाता है। विपक्षियों या गैर–सरकारी पक्ष के द्वारा कर लगाने या कर बढ़ाने के प्रस्ताव नहीं आ सकते। इसका कारण यह है कि ऐसे प्रस्ताव राष्ट्रपति की सिफारिश के बिना प्रस्तुत नहीं किये जा सकते, और राष्ट्रपति केवल सरकार की ही बात को स्वीकार करता है। कर को समाप्त करने के तथा कर को घटाने के प्रस्ताव विरोधी या गैर–शासकीय पक्ष के द्वारा रखे जा सकते हैं। विनियोजन की राशियों में कटौती का तो कोई प्रस्ताव शासन स्वीकार करता ही नहीं है, क्योंकि उसकी स्वीकृति का अर्थ शासन के विरुद्ध अविश्वास समझा जाता

है। परन्तु करों के प्रस्तावों के सम्बन्ध में ऐसा नहीं है। शासन ऐसे प्रस्तावों को जिनक द्वारा कर को [illegible] या कम करने की बात प्रस्तावित की गयी हो, स्वीकार भी कर लेता है। इस सन्दर्भ में संसद का अपेक्षाकृत अधिक [illegible] है।

वित्त–विधेयक वित्त–मन्त्री के द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। वित्त–मन्त्री प्रस्ताव रखता है कि वित्त–विधेयक [illegible] जाना चाहिए। सदन उस पर विचारविमर्श और वाद–विवाद प्रारम्भ कर देता है। शासन की कराधान नीति [illegible] प्रारम्भ हो जाता है। उसके पश्चात् विधेयक को प्रवर समिति के पास भेज दिया जाता है। प्रवर समिति [illegible] अपना प्रतिवेदन पुनः सदन के समक्ष रख देती है। सदन पुनः विधेयक पर गहराई से विचार करता है। जब लोकसभा में [illegible] पारित हो जाता है तो उसे राज्यसभा के पास भेजा जाता है। राज्यसभा को विचार करने के लिए 14 दिन [illegible] है। जब राज्यसभा भी विधेयक को पारित कर देती है तो विधेयक राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए भेज दिया [illegible] की स्वीकृति के पश्चात् विधेयक अधिनियम बन जाता है और क्रियान्वित होता है।

यहाँ यह स्मरणीय है कि जब विधेयक राष्ट्रपति के पास भेजा जाता है तो राष्ट्रपति उस पर हस्ताक्षर [illegible] देता है या फिर अपनी सिफारिशों के साथ 5 या 10 दिन के भीतर उसे लोकसभा को लौटाना होता है। यदि सिफारिशों [illegible] साथ विधेयक वापस होता है तो लोकसभा को इस पर पुनर्विचार करना ही होता है। यह आवश्यक नहीं कि लोकसभा [illegible] के सुझावों को स्वीकार करे। लोकसभा मूलरूप में ही विधेयक को पारित करके राष्ट्रपति को पुनः हस्ताक्षर के लिए भेज [illegible] है। निर्धारित अवधि में राष्ट्रपति अपने हस्ताक्षर कर दे तो ठीक अन्यथा अवधि की समाप्ति के पश्चात् वित्त–विधेयक [illegible] बन जाता है। राष्ट्रपति का यह विशेषाधिकार सैद्धान्तिक महत्त्व का विषय है। व्यवहार में राष्ट्रपति ऐसा करता नहीं [illegible] लोकतन्त्र की मर्यादाओं को मानते हुए राष्ट्रपति वित्त–विधेयक पर हस्ताक्षर कर देता है।

3. **बजट का क्रियान्वयन**—संसद की स्वीकृति और राष्ट्रपति के हस्ताक्षर के बाद बजट को क्रियान्वित [illegible] आरम्भ होती है। बजट के क्रियान्वयन के सम्बन्ध में दो बातों पर विशेष ध्यान दिया जाता है। प्रथम, बजट का क्रियान्वयन विनियोजन अधिनियम के अनुरूप होना चाहिए, और द्वितीय, बजट के क्रियान्वयन से सम्बन्धित सरकारी तन्त्र के निष्ठा तथा कुशलता से कार्य करना। बजट के क्रियान्वयन में पाँच प्रक्रियाएँ सम्मिलित हैं जो इस प्रकार हैं

   (1) **कर-निर्णय एवं एकत्रीकरण**—वित्त–विधेयक में प्रस्तावित कर प्रस्तावों के अन्तर्गत सम्भावित [illegible] अनुमान करना होता है तथा उसके बाद कर वसूली का कार्य किया जाता है। कर–निर्णय से तात्पर्य इस का निर्णय करना है कि संसद द्वारा प्रदत्त शक्ति के अनुसार विभिन्न व्यक्तियों से कितना कर [illegible] जानी है। राजस्व एकत्रित करने के अनेक साधन हैं। कुछ व्यक्तियों द्वारा राजस्व प्रत्यक्ष रूप से [illegible] कर दिया जाता है। सरकारी कर्मचारी आमतौर से कर को अपने वेतन से ही कटवा देते हैं। इस सम्बन्ध [illegible] बात को लेकर काफी विवाद है कि करों के मूल्यांकन का दायित्व अलग–अलग संस्थानों को सौंपा जाय या [illegible] एक संस्था को। भारत में केन्द्रीय राजस्व बोर्ड (Central Board of Revenue) इस कार्य को सम्पन्न [illegible] सुविधा की दृष्टि से कुछ अन्य उपविभाग इससे जुड़े हैं, जैसे–आयकर, अतिरिक्त लाभ तथा [illegible] सीमा शुल्क, केन्द्रीय उत्पादन शुल्क, अफीम विभाग तथा स्टाम्प्स विभाग आदि।

   (2) **कोष-संरक्षण**—जो राजस्व एकत्र कर लिया गया है या एकत्र किया जाना है उसे सुरक्षित [illegible] महत्वपूर्ण है। धन के संरक्षण तथा संवितरण की व्यवस्थाएँ हर देश में अपनी ऐतिहासिक परम्परा [illegible] में विकसित की जाती हैं। ब्रिटेन तथा अमरीका में बैंकिंग संस्थाओं की भूमिका इस सन्दर्भ में महत्वपूर्ण है [illegible] भारत में राजकोषीय व्यवस्था प्रचलन में है। इस समय हमारे देश में 300 राजकोष (Treasuries) [illegible] उपराजकोष कार्य कर रहे हैं। ये राजकोष जिला तथा तहसील स्तर पर सरकार की आय से [illegible] करते हैं तथा सरकार के नाम पर भुगतान भी करते हैं। भारत में रिजर्व बैंक या जहाँ पर रिजर्व बैंक की [illegible] नहीं है वहाँ स्टेट बैंक भारत सरकार के राजस्व–संरक्षण सम्बन्धी कार्य करता है।

   (3) **निधियों का वितरण**—संसद तथा विधानमण्डलों द्वारा विभिन्न विभागों के लिए जो अनुदान [illegible] हैं तथा शासन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जिस धन की आवश्यकता होती है [illegible] या वितरण करने का प्रश्न अपने आप में महत्वपूर्ण होता है। वित्त–मन्त्रालय प्रत्येक विभाग [illegible] वित्त–व्यवस्था बनाये रखने के दृष्टिकोण से नियन्त्रण अधिकारी नियुक्त करता है। [illegible]

के सम्बन्ध में समुचित वित्त–व्यवस्था के लिए उत्तरदायी होता है। वितरण अधिकारी के ऊपर अत्यन्त महत्वपूर्ण जिम्मेदारी होती है क्योंकि उन्हें यह देखना होता है कि जिस धन की अभियाचना की जा रही है उसकी स्वीकृति उचित अधिकार द्वारा दी गयी है अथवा नहीं।

(4) **वित्तीय कोष का लेखांकन**–वित्तीय कोषों के लेखांकन से तात्पर्य वित्तीय लेन–देन का क्रमबद्ध एवं सम्पूर्ण हिसाब–किताब रखना है। बजट के नियन्त्रण के लिए लेखा काफी महत्व रखता है। इन लेखाओं के द्वारा ही पता लग सकता है कि बजट की धाराओं का ठीक से पालन हो रहा है या नही। भारत में लेखांकन को कार्यपालिका से अलग करके उसके लिए लेखा तथा अंवेक्षण विभाग की अलग स्थापना की गयी है। नियन्त्रक तथा भारत का महालेखापाल इसका प्रमुख होता है। लेखांकन के नियम भारत के लेखा–परीक्षक द्वारा प्रदान किये जाते हैं। इन नियमों के अनुसार लेखाओं की तैयारी चार स्तरों पर सम्पादित होती है–प्रारम्भिक लेखा–प्रविष्टि उपकोषागार स्तर पर होती है। जहाँ लेन–देन होता है, व्यय शीर्षो के अनुसार सभी लेन–देनों का ब्यौरेवार वर्गीकरण, लेखाधिकारियों द्वारा लेखों का मासिक संकलन, और भारत के महालेखा परीक्षक द्वारा लेखों का वार्षिक संकलन।

(5) **लेखा-परीक्षण**–यह बजट के कार्यान्वयन का अन्तिम एवं महत्वपूर्ण चरण है। इसके अन्तर्गत इस बात का पता लगाया जाता है कि विभाग ने या प्रशासन ने विनियोजित राशि को धाराओं के अनुसार व्यय किया है या नहीं। लेखा–विभाग का सर्वोच्च अधिकारी भारत का महालेखा परीक्षक होता है। इसका प्रमुख कार्य यह देखना होता है कि धन का व्यय करने में संसद द्वारा निर्धारित सीमाओं का पालन किया गया है अथवा नहीं। लेखा–परीक्षण प्रशासन पर वित्तीय नियन्त्रण स्थापित करने का एक महत्वपूर्ण साधन है।

महत्वपूर्ण प्रश्न

1. बजट से क्या तात्पर्य है? बजट के निर्माण के विभिन्न चरणों को स्पष्ट कीजिए।
2. लोस बजट निर्माण के क्या सिद्धान्त हैं? भारत में वे कहां तक उपलब्ध हैं?
3. प्रशासन में बजट का क्या महत्व है? बजट को संतुलित ढंग से बनाने के क्या सिद्धान्त हैं?
4. भारत मे बजट निर्माण प्रक्रिया का वर्णन कीजिए।

अध्याय 22

लेखा-परीक्षा व्यवस्था

Audit System

लेखा–परीक्षा किसी भी संस्था के वित्तीय नियन्त्रण में बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इसके द्वारा [illegible] कि उस संस्था के अधिकारियों तथा कर्मचारियों ने उन्हें सौंपे गए कार्यों को सम्पन्न करने के लिए [illegible] हैं वे नियमानुसार ठीक किए हैं अथवा नहीं। उन्होंने उन भुगतानों में कोई हेरा-फेरी, लापरवाही [illegible] की है। प्रो. के. एल. हाण्डा के शब्दों में, "लेखा–परीक्षा किसी लेखा-परीक्षक द्वारा लेन–देन की छानबीन [illegible] परीक्षण के परिणामों का उस उद्यम के मालिकों का प्रतिवेदन देना है।" राबर्ट एच मान्टगुमरी के अनुसार [illegible] किसी व्यवसाय या संगठन की लेखा पुस्तकों तथा प्रलेखों का एक व्यवस्थित परीक्षण है जिसके माध्यम से [illegible] तथा उनके परिणामों से सम्बन्धित तथ्यों को मालूम करके तथा उनका प्रमाणीकरण करके उसके विषय में प्रतिवेदन [illegible] जा सके।"

प्रजातांत्रिक सरकार में लेखा–परीक्षा विधानपालिका द्वारा कार्यपालिका पर नियन्त्रण के एक प्रभावशाली [illegible] करती है। विधानपालिका का यह कर्तव्य बन जाता है कि वह यह जांच रखे कि जो धन उसने कार्यपालिका [illegible] को सम्पन्न करने के लिए उपलब्ध करवाया है, कार्यपालिका उसका सही उपयोग कर रही है। जेम्स सी. [illegible] C. Charlesworth) के शब्दों में, "लेखा परीक्षा का अभिप्राय है उस प्रक्रिया से है जो यह सुनिश्चित करता [illegible] विधानपालिका प्रपत्र द्वारा विनियोजित धन को इसकी शर्तों के अनुसार खर्च किया है तथा कर रहा है। सरकारी लेखा- [illegible] एक तकनीकी तथा कठिन कार्य है। भारत में यह कार्य लेखा–परीक्षा विभाग द्वारा किया जाता है। लेखा–परीक्षा [illegible] विधान पालिका को भेजा जाता है। विधानपालिका इस प्रतिवेदन के माध्यम से कार्यपालिका पर नियन्त्रण [illegible] लेखा–परीक्षा के महत्त्व का वर्णन करते हुए प्रेमचंद ने कहा है, "लेखा- परीक्षा, न्यायपालिका, कार्यपालिका तथा विधानपालिका की तरह प्रजातंत्र की एक महत्त्वपूर्ण संघटक है। इसका मुख्य उद्देश्य यह आश्वस्त करना है कि सरकारी [illegible] की प्रक्रिया में वित्तीय औचित्य के सभी अभिनियमों का पालन किया गया है, सरकारी खर्च को नियमन करने वाले सभी [illegible] तथा विनियमों का अनुपालन कर लिया गया है, खर्च उसी प्राधिकारी द्वारा किया गया है जिसे इस खर्च करने की शक्ति [illegible] गई है तथा उसका उसी उद्देश्य के लिए इसे संसद ने विनियोजित किया है।"

लेखा-परीक्षा के प्रकार

Types of Audit

लेखा–परीखा के निम्न दो प्रकार होते हैं: (अ) आंतरिक लेखा–परीक्षा तथा (ब) बाह्य लेखा-परीक्षा।

आंतरिक लेखा–परीक्षा, प्रबंध के द्वारा अपने ही स्तर पर अपने ही अधिकारियों द्वारा क्रियान्वित की जाती है। [illegible] प्रबंध द्वारा यह सुनिश्चित करना है कि वह कहां तक अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए ठीक ढंग से खर्च कर [illegible] अधिकारी यह भी देखते हैं कि उस उद्यम अथवा संस्था के लोग कहां तक नियमों तथा विनियमों का [illegible] आंतरिक अधिकारियों द्वारा जांच के कारण तथा उद्यम अथवा संस्था के मुख्य कार्यपालिका अधिकारी [illegible] कारण प्रायः नियमों व विनियमों के उल्लंघन को बहुत अधिक गम्भीरता से नहीं लिया जाता।

बाह्य–लेखा–परीक्षा प्रबंध के बाहर किसी अन्य अभिकरण द्वारा की जाती है। साधारणतया यह लेखा–परीक्षा [illegible] अधिकारियों द्वारा की जाती है। वे उस विभाग, उद्यम, अथवा संस्था द्वारा किए गए खर्च की छान–बीन करके [illegible] करके यह सुनिश्चित करते हैं कि व्यय सरकार द्वारा बनाये गये नियमों तथा विनियमों द्वारा किया गया है, [illegible] जिस उद्देश्य के लिए इसका विनियोजन किया गया था उसी उद्देश्य के लिए व्यय किया गया है, तथा जिस अधिकारी [illegible] व्यय किया है वह उस व्यय को करने के लिए सक्षम है।

वित्तीय ईमानदारी के ऊंचे मानदण्ड बनाये रखने के लिए तथा करदाताओं के हितों की रक्षा करने के लिए यह आवश्यक है कि लेखा–परीक्षा बाह्य अभिकरण द्वारा ही करवाई जाए। जो अधिकारी लेखा–परीक्षा करें वे स्वतंत्र होने चाहिए। जिस संस्था, विभाग अथवा उद्यम की वे लेखा–परीक्षा कर रहे हों उसके वे किसी भी प्रकार के दबाव अथवा प्रभाव से मुक्त होने चाहिए। इसी कारण भारत सरकार ने नियंत्रक एवं महालेखा–परीक्षक की स्वतंत्रता बनाये रखने के लिए संवैधानिक सुरक्षाएं प्रदान की हैं। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 148 के अनुसार नियंत्रक एवं महालेखा–परीक्षक की नियुक्ति राष्ट्रपति के द्वारा की जाती है। उसे उसी प्रकार तथा उन्हीं कारणों के आधार पर पदच्युत किया जाता है जिन पर उच्चतम न्यायालय के न्यायधीश को किया जात है। इसी अनुच्छेद के अनुसार सेवानिवृति पर वह भारत सरकार अथवा राज्य सरकार के अधीन किसी भी पद को ग्रहण करने के अयोग्य हो जाता है। उसके वेतन व भत्ते भारत की संचित निधि से दिये जाते हैं।

लेखा-परीक्षा के उद्देश्य

Aims of Auditing

लेखा–परीक्षा साधारणतया अभिलेखों का कार्योंतर सत्यापन ही होता है। इसके निम्न उद्देश्य होते हैं:

1. लेखों की शुद्धता तथा सम्पूर्णता को सुनिश्चित करना,
2. व्यय की नियमितता को सुनिश्चित करने के लिए लेखों की परीक्षा करना,
3. वित्तीय लेन–देन औचित्य को देखना,
4. यह सुनिश्चित करना कि कार्यपालिका द्वारा व्यय किए गए धन से वांछित परिणाम निकले हैं।

उन उद्देश्यों का वर्णन हम निम्न प्रकार कर सकते हैं–

1. **लेखों की शुद्धता तथा सम्पूर्णता को सुनिश्चित करना**–लेखों का पूरी तरह से हिसाब–किताब रखना कार्यपालिका को सुपुर्द की गई धन राशि के प्रति उत्तरदायित्व की प्रथम आवश्यकता है। लेखा–परीक्षा संहिता (Audit Code) के अनुसार इस सम्बन्ध में लेखा–परीक्षा के निम्नलिखित कार्य हैं। (अ) लेखों की सत्यता तथा सम्पूर्णता को सुनिश्चित करना, (ब) यह सुनिश्चित करना कि सभी राजस्व तथा प्राप्तियां उचित मदों के अधीन दर्ज की गई हैं, तथा (स) यह भी जांचना कि सभी व्ययों तथा भुगतानों की ठीक रसीद रखी गई है तथा उनका सही वर्गीकरण किया गया है। इसके अतिरिक्त लेखा–परीक्षा का काम यह भी देखना है कि कार्यपालिका द्वारा प्रस्तुत किए गए लेखों में अनुदानों द्वारा दी गई ठीक राशि को दर्शाया गया है अथवा नहीं तथा व्यय की गई राशि अनुदानों द्वारा उक्त व्यय के लिए उपलब्ध थी अथवा नहीं।

   जिन संस्थाओं के लेखों की देख–रेख के लिए भारत के लेखा–परीक्षा एवं लेखा विभाग उत्तरदायी हैं उनकी यह पूरी तरह से जांच रखता है, किन्तु जिन लेखों की देख रेख उनका प्रशासनिक विभाग करता है उनकी भी वर्गीकरण की जांच के लिए लेखा–परीक्षा एवं लेखा विभाग नमूने के लिए जांच करता है। नियंत्रक एवं महालेखा–परीक्षक को संविधान के अधीन संसद द्वारा विनियोजित धन के व्यय के लेखों की जांच करने का अधिकार है।

2. **व्यय की नियमितता को सुनिश्चित करना**–पारम्परिक रूप में भारत में लेखा–परीक्षा का काम व्यय की नियमितता को ही सुनिश्चिता करना रहा है। यह यही जांच करता रहा है कि व्यय उचित प्राधिकार से किया गया है। लेखा–परीक्षा के इस दृष्टिकोण के अनुसार वैधता को ही सुनिश्चित करना लेखा परीक्षा का प्रधान कार्य रहा है। इसके अनुसार लेखा–परीक्षा का काम यही देखना रहा है कि भुगतान उचित रूप से प्राधिकृत है तथा निर्धारित फार्मों पर उचित रसीदों द्वारा सज्जित है।

   भारत के लेखा–परीक्षा संहिता में वे नियम विस्तृत रूप से लिखे गए हैं जिनके अनुसार व्यय की नियमितता को सुनिश्चित किया जाता है।

   सरकारी लेखा–परीक्षा दोहरा काम करती है। विधानपालिका की ओर से यह सुनिश्चित करती है कि कार्यपालिका संविधान के अनुबंधों के अनुसार कार्य करती है तथा विधानपालिका द्वारा बनाये गये कानूनों का अनुसरण करती है। कार्यपालिका की ओर से यह व्यय करने वाले अभिकरणों से वह सुनिश्चित करती है कि वे समर्थ प्राधिकारियों द्वारा बनाये गए नियमों, विनियमों तथा आदेशों का पालन कर रहे हैं। कार्यपालिका नियम तथा विनियम बनाती है, तथा आदेश देती है। लेखा–परीक्षा का यह कर्तव्य है कि वह यह जांच करे कि अधीनस्थ प्राधिकारी इन नियमों, विनियमों तथा आदेशों

का पालन कर रहे हैं अथवा नही। नियम व विनियियम निर्धारित करना लेखा–परीक्षा का कार्य नहीं किन्तु लेखा–परीक्षा यह अवश्य जांच करती है कि कार्यपालिका द्वारा निर्धारित नियम, विनियम तथा आदेश:

(अ) संविधान के अनुबंधों अथवा उनके अधीन बनाये गए कानूनों के अनुसार ह;

(ब) नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक द्वारा निर्धारित लेखा तथा लेखा–परीक्षा की आवश्यकताओं के अनुकूल ह

(स) किसी उच्चतर प्राधिकारी के आदेशों अथवा नियमों के विरुद्ध तो नहीं है, तथा

(द) जिस प्राधिकारी ने उन्हें बनाया है उसके पास नियम बनाने के लिए आवश्यक शक्तियां हं।

इस प्रकार से व्यय की नियमितता की जांच करने के कारण लेखा–परीक्षा अर्ध–न्यायिक प्रकार का काम करती है

3. **वित्तीय लेन-देन के औचित्य को देखना**–लेखा–परीक्षा का काम केवल नियमित्ता देखना नही है अपितु यह भी देखना है कि व्यय कहीं अनुचित, परिहार्य अथवा निष्फल तो नहीं है। लोक हित में खर्च की नियमित्ता देखना ही पर्याप्त नहीं है, यह भी देखना अनिवार्य है कि लोक सम्पति का सही प्रयोग किया गया है अथवा नहीं। किसी भवन के निमाण में खर्च विधानपालिका द्वारा विनियोजित धनराशि द्वारा ही किया गया हो, उसका लेखा उचित शीर्षो के अधीन स्पष्ट रूप से लिखा गया हो, धन का लेन–देन सही रसीदों द्वारा किया गया हो, किन्तु यदि इस प्रकार के बनाए गए भवन का बहुत समय तक प्रयोग ही न किया गया हो तो इसे हम निष्फल कह सकते हैं। लेखा परीक्षा का काम इस प्रकार के व्यय को भी बताना है। प्रो. के.एल. हाण्डा के शब्दों में, "अतः लेखा–परीक्षा का लेन–देन की बुद्धिमता, ईमानदारी तथा मित व्ययता को ध्यान में रखकर वित्तीय नैतिकता के स्तरों को सुनिश्चित करने का प्रयत्न करना चाहिए।"

लेखा–परीक्षा में औचित्य को निर्धारित करने के लिए नियम बनाना बहुत कठिन है। औचित्य तो लेखा परीक्षा करने वाले अधिकारी की साधारण बुद्धि विवेक तथा न्यायशीलता पर ही आधारित है। किन्तु फिर भी लेखा–परीक्षा संहिता ने निम्न औचित्य के मापदण्ड बनाने के लिए निम्न सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है:

(अ) व्यय प्रथम दृष्टि में अवसर की माँग से अधिक नहीं होना चाहिए। हर लोक अधिकारी को लोक वित्त से धन खर्च करते समय उसी जागरूकता का अनुसरण करना चाहिए जो साधारण बुद्धिमत्ता वाला पुरुष अपना धन खर्च करते समय करता है।

(ब) किसी भी प्राधिकारी को अपनी व्यय को स्वीकृति देने की शक्तियों के अधीन ऐसे आदेश नहीं देने चाहिए जिनसे प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से इसका अपना ही लाभ होता है।

(स) लोक वित्त का किसी विशेष व्यक्ति अथवा समुदाय के किसी भाग के लिए प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए जब तक कि व्यय की राशि बहुत ही मामूली न हो अथवा वह व्यय किसी नीति अथवा रिवाज के अनुसरण के रूप में किया गया हो।

(द) भत्तों की राशि, जैसे कि यात्रा भत्ते, जब किसी प्रकार के व्यय के लिए दी जाती हैं तो वह इस प्रकार से निश्चित होनी चाहिए कि वह प्राप्त करने वाले व्यक्ति के लिए एक लाभ का स्रोत नहीं बननी चाहिए।

संक्षेप में, यह प्रशासनिक विभाग का कर्तव्य है कि वह सार्वजनिक व्यय में मितव्ययता बर्ते। लेखा परीक्षा विभाग का कर्तव्य है कि वह अनुचित, परिहार्य एवं निष्फल व्यय के बारे में उचित प्राधिकारियों को सूचित करे।

4. **वांछित परिणामों के लिए लेखा-परीक्षा**–भारतीय लेखा–परीक्षा एवं लेखा विभाग द्वारा की गई परीक्षा लगभग सभी मामलों में कार्योत्तर (epso-facto) होती है। व्यय हो चुकने के पश्चात् की गई परीक्षा से हानि का समाप्त नहीं किया जा सकता। किन्तु इसकी प्रभावशीलता इस बात पर आधारित होती है कि वह लेखा–परीक्षा के समय पाई जाने वाली सभी अनियमितताओं तथा कमियों को उचित प्राधिकारियों को ईमानदारी से प्रतिवेदन के रूप में लिखकर बताए और बाद में लोक लेखा समितियों के माध्यम से संसद अथवा सम्बन्धित राज्य विधान सभा को इसका प्रतिवेदन दे।

लेखा–परीक्षा की यह मांग है कि लेखा–परीक्षा अधिकारी सम्बन्धित प्रशासनिक अधिकारियों का समय–समय पर इन अनियमित्ताओं के बारे में परिचित कराते रहें, यह भी देखते रहें कि प्रशासनिक अधिकारी उन अनियमितताओं को दूर कर रहे हैं या नही। यदि व्यय की गई किसी राशि को पुनः वापिस लेना हो तो शीघ्रता से वापिस ले। इस प्रकार काम करने पर ही लेखा–परीक्षा अधिकारी वांछित परिणामों के लिए लेखा–परीक्षा कर पायेंगे।

प्राप्तियों की लेखा-परीक्षा

व्यय की लेखा–परीक्षा के साथ आय की लेखा–परीक्षा करना भी लेखा परीक्षा का उद्देश्य है। भारतीय लेखा–विभाग अब केन्द्र तथा राज्यों की प्राप्तियों की भी लेखा--परीक्षा कर रहा है। भारतीय लेखा–परीक्षा लेखा विभाग ने 1950 के दशक के अन्तिम वर्षों में केन्द्रीय स्तर पर आयकर, सीमा शुल्क तथा उत्पादन शुल्क की लेखा--परीक्षा करके इस दिशा में शुरुआत की। बाद में इसने राज्य स्तर पर भी बिक्री कर तथा राज्य उत्पादन शुल्क की प्राप्तियों की भी लेखा–परीक्षा की।

अधिनियम 1971 के अनुसार लेखा--परीक्षा के कार्यक्षेत्र में कर–सम्बन्धी तथा गैर–कर सम्बन्धी दोनों प्रकार की प्राप्तियां हैं। प्राप्तियों की लेखा–परीक्षा में लेखा–परीक्षा विभाग का कार्य यह देखना है कि पर्याप्त विनियम तथा पद्धतियां बना ली गई हैं तथा राजस्व विभाग के द्वारा इनका सही पालन किया जा रहा है। इन विनियमों तथा पद्धतियों का उद्देश्य संसाधनों के उचित निर्धारण, उगाही, तथा बंटवारे पर प्रभावशाली नियन्त्रण करना है। राजस्व विभाग का काम अर्ध–न्यायिक प्रकार का होता है। निर्धारण करते समय इसे अपने विवेक का प्रयोग करना पड़ता है। लेखा--परीक्षा विभाग का यह कर्तव्य है कि वह यह देखे कि राजस्व विभाग ने अपना यह विवेक समझदारी से प्रयुक्त किया है अथवा नहीं। इस सम्बन्ध में जहां तक कानून की व्याख्या का प्रश्न है वह तो भारत के उच्चतम न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में है।

निष्पादन लेखा-परीक्षा (Performance Audit)

लेखा--परीक्षा के नियमितता तथा औचित्य सम्बन्धी दृष्टिकोण से हम केवल लेन देन की ही जांच कर सकते हैं। यह किसी योजना अथवा कार्यक्रम का सामूहिक रूप से मूल्यांकन नहीं कर सकते जिससे वह लेन–देन सम्बन्धित होता है। अतः किसी संस्था के कार्यकलापों का उसके उद्देश्यों अथवा कार्यक्रमों के अनुसार मूल्यांकन उपरिलिखित दोनों दृष्टिकोणों से नहीं हो पाता। आधुनिक युग में सरकारें अपनी बहु–मुखी योजनाओं द्वारा बहुत से सामाजिक एवं आर्थिक उद्देश्यों को प्राप्त करना चाहती है। विभिन्न देशों की सरकारों ने विभिन्न समाज कल्याण की योजनाओं को प्रारम्भ किया है। अतः यह जानना बहुत आवश्यक हो गया है कि संसाधनों पर किया गया खर्च क्या प्राप्त किए गए परिणामों के अनुकूल है अथवा नहीं।

सरकार के सामाजिक–आर्थिक कार्यक्रमों में बहुत मात्रा में भाग लेने से लेखा–परीक्षा के सम्बन्ध में अब नई धारणा जन्म ले चुकी है। लेखों की पूर्णता, नियमितता तथा औचित्य के महत्व को झुठलाया नहीं जा सकता। उनका वित्तीय उत्तरदायित्व को निर्धारित करने में अपना ही महत्व है। परन्तु अब नई विचारधारा के अनुसार लेखा--परीक्षा को विभिन्न विभागों के कार्यक्रमों, क्रियाकलापों तथा परियोजनाओं की भौतिक उपलब्धियों की छान--बीन करना लेखा–परीक्षा का एक महत्वपूर्ण अंग माना जाने लगा है। इस प्रकार की लेखा–परीक्षा को निष्पादन लेखा–परीक्षा, अथवा कार्यकुशलता लेखा–परीक्षा अथवा संक्रियात्मक लेखा परीक्षा कहा जाता है।

निष्पादन लेखा–परीक्षा का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि संसाधनों का सर्वाधिक ढंग से परिनियोजन करके उनका कुशलतम उपयोग किया गया है या नहीं। संसाधनों के प्रयोग से उत्पादन में वृद्धि हुई है अथवा नहीं। पारम्परिक बजट तो केवल वेतन, भत्तों, दफ्तर की कुछ आवश्यकताओं, भवनों तथा वाहनों आदि मदों से ही सम्बन्धित था। किन्तु निष्पादन बजट विभिन्न कार्यक्रमों, क्रियाकलापों तथा परियोजनाओं से सम्बन्धित है। अतः निष्पादन लेखा–परीक्षा को इन सबकी जाच करनी आवश्यक होती है। किसी भी कार्यकलाप का मूल्यांकन करते समय हमें उसके उद्देश्यों को जानना आवश्यक होता है। ये उद्देश्य इस प्रकार निर्धारित किए जाने चाहिए जिससे हम उन्हें माप सकें। सामाजिक तथा आर्थिक प्रगति तथा उपलब्धियों को मापने के लिए सूचक बनाए जाने चाहिए। यह सब कुछ कठिन काम है। इसके बिना किसी भी कार्यक्रम, क्रियाकलाप अथवा परियोजना का मूल्यांकन करना बहुत कठिन हो जाता है। इसी कारण सरकार ने लेखा–परीक्षा विभाग को सचेत करते हुए संसद में 1977 में अपने प्रतिवेदन में कहा, "नियंत्रक एवं महालेखाकार यदि लेखा--परीक्षा करते समय एक--एक गलती पर ध्यान देने की अपेक्षा वित्तीय प्रक्रिया पर ध्यान दे तो कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। किन्तु फिर भी ये अनुभव किया जा रहा है कि लेखा–परीक्षा की क्रिया के कार्यक्षेत्र में प्रबंधकीय उत्तरदायित्वों की वृद्धि करने से अथवा कार्यकुशलता सहित औचित्य लेखा--परीक्षा को सम्मिलित करने से दुष्प्रभाव हो सकते हैं तथा इससे सरकारी काम काज की कुशलता में रुकावट पड़ सकती है। अतः सरकार इस संस्तुति का समर्थन नहीं करती।"

लेखा-परीक्षा की भावी विकास संभावनाएँ

लेखा–परीक्षा के कार्य–क्षेत्र तथा दृष्टिकोण में धीरे–धीरे बहुत विकास एवं परिवर्तन हो रहे हैं। आरम्भ में इसका उद्देश्य [illegible] लेखा–विधि, नियमित्ता, तथा विनियोजन आदि की परीक्षा करना ही था। किन्तु बाद में धीरे–धीरे औचित्य, निष्पादन [illegible] कार्यकुशलता भी लेखा–परीक्षा की परिधि में आ गये। कुछ वित्त प्रशासन के विद्वानों के अनुसार निकट भविष्य में [illegible] लेखा–परीक्षा के क्षेत्र में होंगे। ये विकास हैं: (अ) व्यवस्था लेखा–परीक्षा तथा (ब) सामाजिक लेखा–परीक्षा

इनका संक्षिप्त वर्णन हम निम्न प्रकार से कर सकते हैं:

व्यवस्था लेखा-परीक्षा

व्यवस्था से साधारण अभिप्राय है विभिन्न स्वतन्त्र एवं अन्तः क्रियाओं तथा भागों में इस प्रकार समन्वय से काम करना कि वे उस संस्था के उद्देश्यों को प्राप्त कर सके। व्यवस्था लेखा–परीक्षा का उद्देश्य यह पता लगाना है कि अमुक संस्था द्वारा अपनाई गई व्यवस्था तथा पद्धतियां इसके उद्देश्यों को मितव्यता तथा कार्यकुशता से प्राप्त करने में सहायक है अथवा नहीं। इसके अतिरिक्त व्यवस्था लेखा–परीक्षा यह भी पता लगाती है कि अमुक संस्था द्वारा कार्य–अकुशलता, गलतियां तथा धोखाधड़ी से बचने के लिये उपयुक्त नियन्त्रण, रोकथाम तथा संतुलन विकसित कर लिए गये हैं या नहीं। यदि लेखा–परीक्षा को यह [illegible] हो जाता है कि इस प्रकार की व्यवस्था अमुक संस्था में विकसित हो गई है तो यह निश्चय ही समझ सकती है कि जिस [illegible] की परीक्षा की गई है वह प्रभावशाली है तथा वह संस्था अपने संसाधनों का कार्यकुशलता एवं मितव्यता से प्रयोग [illegible] है।

व्यवस्था लेखा–परीक्षा किसी संस्था के प्रबंध के प्रभावशाली बनने में सहायक हो सकती है। इसकी सफलता के लिये हमें [illegible] का विश्लेषण करना पड़ेगा। श्रेष्ठ लेखा पद्धति, आन्तरिक नियंत्रण व्यवस्था, निष्पादन प्रतिमान, अभिलेखा व्यवस्था, आन्तरिक लेखा–परीक्षा, कार्यकलापों के पुनरीक्षण तथा मूल्यांकन व्यवस्था आदि को विकसित करना व्यवस्था लेखा–परीक्षा का [illegible] के लिए पूर्व आवश्यकतायें हैं। यह प्रसन्नता का विषय है कि भारतीय लेखा–परीक्षा एवं लेखा विभाग ने इस दिशा में कुछ शुरुआत की है।

सामाजिक लेखा-परीक्षा

सामाजिक लेखा–परीक्षा का उद्देश्य यह जांचना है कि अमुक संस्था ने किस सीमा तक अपने ग्राहकों, कर्मचारियों, [illegible] स्थानीय समुदाय तथा समाज के प्रति अपने सामाजिक तथा नैतिक कर्तव्यों को निभाया है। सामाजिक लेखा–परीक्षा का विकास पिछले दशक में वातावरण को सुरक्षित रखने, उपभोक्ताओं की सुरक्षा तथा कार्यकर्ताओं के कल्याण के प्रति बढ़ते हुये [illegible] के कारण हुआ है। लेखा–परीक्षा के इस दृष्टिकोण में सामाजिक लाभ तथा लागत को पहचानना तथा उनका मुद्रा सम्बन्धी परिमाण करना बहुत कठिन है। सामाजिक लेखा–परीक्षा की सफलता के लिए हमें कुशल तथा प्रभावशाली सूचना व्यवस्था को विकसित करने की आवश्यकता है ताकि हम यह जान सकें कि अमुक संस्था से ग्राहक कहां तक प्रसन्न हैं, कहां तक कर्मचारियों के कल्याण के लिये छुट्टियों, भत्तों, मकानों तथा अन्य सुविधाओं को उपलब्ध करवाया गया है। कहां तक वातावरण को स्वस्थ रखने के लिये योगदान किया गया है, आदि, आदि।

लेखा-परीक्षा की सीमाएँ

भारत में लेखा- परीक्षा में काफी विकास हो जाने के बाद भी भारतीय लेखा–परीक्षा की निम्न सीमायें ध्यान देने योग्य हैं:

1. गोपनीय सेवा सम्बन्धी व्यय (गृह मंत्रलय से दिया गया प्रमाण–पत्र कि अमुक राशियां प्रयोग कर ली गई हैं) लेखा–परीक्षा में स्वीकार कर लिया गया है। इसे लेखा–परीक्षा की दृष्टि से पर्याप्त मान लिया जाता है।
2. अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं को दिए गए अनुदान।
3. एक लाख रुपये से कम आवर्ती तथा 5 लाख रुपए से कम अनावर्ती राशि प्राप्त करने के लिए गैर–सरकारी संस्थाओं को दिए गए अनुदान, तथा
4. स्थानीय प्राधिकारकों को दिए गए अनुदानों की लेखा–परीक्षा स्थानीय निधि लेखा–परीक्षा द्वारा की जाती है [illegible] अधिकारी राज्य सरकार के कर्मचारी होते हैं, लेखा–परीक्षा विभाग के नहीं।

समीक्षा/आलोचना

भारतीय लेखा–परीक्षा के दोषों का संक्षेप में हम इस प्रकार से वर्णन कर सकते हैं:

1. **रूढ़िवादी दृष्टिकोण का अत्यधिक प्रभाव:** लेखा परीक्षा के दृष्टिकोण में बहुत परिवर्तन आ जाने के बावजूद भी भारतीय लेखा–परीक्षा में अभी भी नियमितता तथा विनियोजन पर ही जोर दिया जा रहा है। निष्पादन तथा कार्यकुशलता के दृष्टिकोण को अभी तक ठीक ढंग से अपनाया नहीं जा सका है। न ही इस दृष्टिकोण के अनुसार मापदण्ड तथा सूचना व्यवस्था को विकसित किया जा रहा है।

2 **लेखा परीक्षा में अत्यधिक देरी:** निस्संदेह भारतीय लेखा–परीक्षा कार्योत्तर ही है। फिर भी इसमें अत्यधिक देरी की जाती है। बहुत बार भुगतान हो चुकने के पांच–छः वर्ष बाद लेखा–परीक्षा की जाती है। जब तक इसका प्रतिवेदन विधान पालिका तक पहुँचता है तथा लोक लेखा समिति इस पर अपने विचार प्रकट करती है तब तक सम्बंधित अधिकारी या बदल जाते हैं, या सेवानिवृत हो जाते हैं, अथवा मर ही जाते हैं। प्रशासनिक विभाग भी कई बार लेखा–परीक्षा की आपत्तियों का उत्तर टालमटोल के रूप में दे देते हैं। इस प्रकार लेखा–परीक्षा का उद्देश्य पूरा नहीं हो पाता।

3. **लेखा-परीक्षकों का व्यवहार:** लेखा–परीक्षकों का व्यवहार प्रायः गलतियां ही निकालने के बारे मे जोर देने से बहुत कठोर हो जाता है। बहुत बार आपत्तियां केवल आपत्तियां ही ढूँढ निकालने के कारण की जाती हैं। इस प्रकार लेखा–परीक्षा विभाग तथा प्रशासनिक विभाग दोनों का समय व्यर्थ के पत्राचार में नष्ट हो जाता है। अनेक बार लेखा परीक्षक लकीर के फकीर होने के कारण छोटे–छोटे मामलों को निपटाने में बहुत समय व्यर्थ में गँवाते हैं।

इन सब कमियों के बावजूद भी भारतीय लेखा परीक्षा बहुत ही सराहनीय कार्य कर रहा है। इसने मुद्रा सौदे सम्बन्धी मामले, दूध क्रय करने से सम्बन्धित मामले, बोफोर्स सम्बन्धी मामले तथा कई अन्य मामलों में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

सुझाव

धीरेन्द्र कृष्ण ने अपने लेख 'वित्तीय प्रशासन को सुधारने में लेखा–परीक्षा की भूमिका' में लेखा–परीक्षा के महत्व तथा इसमें सुधार पर निम्न सुझाव दिये हैं:

(1) निष्पादन बजट को सार रूप में लेखा–परीक्षा द्वारा कार्यान्वित करना।

(2) सूचना व्यवस्था का निर्माण करना।

(3) दीर्घकालीन तथा मध्यवर्ती योजनाओं में सम्पर्क बनाना।

(4) कार्यकुशलता सहित निष्पादन लेखा–परीक्षा के लिए विशेषज्ञता को अपनाना।

(5) विशेषज्ञ – कोष्ठों की आवश्यकता।

(6) निरीक्षण प्रतिवेदनों में समग्र उद्देश्यों का समावेश करना।

(7) लेखा–परीक्षा के दृष्टिकोण में परिवर्तन।

(8) प्रशिक्षण तथा संस्थात्मक विकास।

(9) प्रतिवेदनों को सुप्रवाही बनाना।

उपरलिखित सुझावों के अतिरिक्त निम्न सुझाव भी लेखा–परीक्षा में सुधार लाने के लिए आवश्यक है।

(10) प्रशासनिक सुधार आयोजन ने सुझाव दिया है कि लेखा–परीक्षा को सकारात्मक भूमिका निभानी चाहिये। बहुत सी अनियमितताओं का प्रशासनिक विभाग से विचार विमर्श करके ही निपटारा कर लेना चाहिये। उन्हें व्यर्थ में ही प्रतिवेदन में नहीं शामिल करना चाहिये।

(11) लेखा–परीक्षा का विकेन्द्रीकरण, लेखा–परीक्षा के विभाग के निम्न अधिकारियों को भी नगण्य धन राशियों की अनियमितताओं का निपटारा करने की शक्तियां प्रदान की जानी चाहिए। थोड़ी राशि के लिए भी उच्च अधिकारियों को ही अधिकार होने से कार्य में अकुशलता होती है।

(12) आन्तरिक लेखा–परीक्षा को विकसित करना। इससे बहुत से मामलों में अनियमितताओं का निपटारा प्रशासनिक विभाग में ही सम्भव हो सकता है। लेखा–परीक्षा विभाग अपना समय व्यवस्था लेखा–परीक्षा तथा सामाजिक लेखा–परीक्षा में लगा सकता है।

(13) जिन नियमों तथा विनियमों पर लेखा–परीक्षा विभाग द्वारा बार–बार आपत्तियां उठाई जाती हों, उनका पुनरीक्षण करना चाहिए। इस पुनरीक्षण में लेखा–परीक्षा विभाग, प्रशासनिक विभाग, तथा लोक प्रशासन के विशेषज्ञों का आपस में विचार करके, उन नियमों तथा विनियमों में सुधार करना चाहिये।

महत्त्वपूर्ण प्रश्न

1. लेखा परीक्षा क्या है? इसके कितने प्रकार हैं?
2. लेखा परीक्षा का अर्थ तथा उद्देश्यों का वर्णन कीजिए।
3. लेखा परीक्षा की सीमाओं तथा सुझावों का वर्णन कीजिए।

अध्याय 23

वित्त पर विधायी नियंत्रण

Legislative Control on Finance

वित्त, जिसे प्रशासन का जीवन रक्त कहा जाता है, का महत्त्व शुरू से ही रहा है क्योंकि वित्त के अभाव में न तो कोई प्रशासनिक कार्य संभव हो सकता है और न लोक कल्याण के कार्यक्रमों को कार्यन्वित किया जा सकता है। लेकिन वित्त जिसका संबंध जन प्राधिकारियों की आय व व्यय से है, को नियंत्रण मुक्त नहीं रखा जा सकता है। किसी भी प्रजातंत्रात्क सरकार में सरकारी व्यय पर प्रभावशाली नियंत्रण आवश्यक है। यह नियंत्रण व्यवस्थापिका एवं कार्यपालिका द्वारा स्थापित किया जाता है। संसदीय नियंत्रण के लिए यह आवश्यक है, "कि एक तो संसद स्वयं को इस बात के प्रति आश्वास्त करे कि विनियोंजनों का उपयोग अनुमोदित प्रयोजनों के लिए अनुदानों की सीमा में मितव्ययितापूर्वक किया जा रहा है और दूसरे वह (संसद) सरकार के वार्षिक बजट अनुमानों का समुचित परीक्षण करती रहे ताकि उचित नियंत्रण बना रहे और बजट अनुमानों से निहित योजनाओं तथा कार्यक्रमों के पालन में मितव्ययिता संबंधी सुझाव दिये जा सके। सभी प्रजातांत्रिक व्यवस्थाओं में संसद अथवा व्यवस्थापिका की रचना प्रायः ऐसी होती है कि उसके पास प्रभावी वित्तीय नियंत्रण संबंधी कार्यो को पूरा करने के लिए न तो समय होता है और न आवश्यक शक्ति। इसलिए इन कार्यो को संपन्न करने के लिए विभिन्न देशों में संसदीय समितियों और संस्थाओं का विकास हुआ है"। दूसरी और वित्त पर वित्त मंत्रालय तथा विभागीय अध्यक्षों द्वारा नियंत्रण रखा जाता है।

विधानपालिका द्वारा नियंत्रण

हमारे देश में संसदीय सरकार है जहां व्यय पर नियंत्रण के दो मुख्य उद्देश्य है एक तो यह कि कोई व्यय विधान मंडल द्वारा स्वीकृत अनुदानों से बढ़ कर न हो और यदि ऐसा करना भी पड़े तो इसके लिए व्यवस्थापिका से पुनः स्वीकृति ली जानी चाहिए। दूसरा यह कि व्यय किसी प्रकार से अनुचित न हो तथा व्यवस्थापिका द्वार जिन अनुदानों की स्वीकृती दी गई हो उनको खर्च करते समय आवश्यकता एवं मितव्ययिता को ध्यान में रखा जाये। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि संसद की स्वीकृति के बिना कार्यपालिका न तो किसी प्रकार कोई व्यय कर सकते है और न ही कोई कर लगा सकती है। वित्त व्यवस्था पर संसद का पूर्ण नियंत्रण रहता है। क्योंकि ससद सदस्य जब चाहे वित्तीय प्रश्न, जो आर्थिक मामलों से जुड़े होते हैं, मंत्रियों से पूछ सकते हैं। संसद जिन अवस्थाओं में नियंत्रण कर सकती है वे हैं – विनियोग विधेयक के पारित किए जाने से पहले तथा विनियोग विधेयक या बजट पास होने के बाद।

विनियोग विधेयक के प्राप्ति दोनों से पूर्व नियन्त्रणः संसद द्वारा विनियोग विधेयक के पास होने से पहले जो नियंत्रण किया जाता है वह निम्न प्रकार से होता हैः

सामान्य वाद विवाद

प्रत्येक वित्तीय वर्ष के शुरू होने अथवा अप्रैल माह के आने से पहले बजट जिसे वित्तीय वार्षिक विवरण भी कहते है, को वित्त मंत्री द्वारा लोक सभा में प्रस्तुत किया जाता है। यह प्रक्रिया उसके बजट भाषण से आरंभ हो जाती है। इस भाषण से भावी करों का अनुमान लगाया जा सकता है। इसके साथ ही सरकार की आर्थिक नीति का पता चलता है। इसमें प्रस्तावित आय–व्ययों के बारे में उल्लेख किया गया होता है। इसकी प्रतियां सांसदों में वितरित की जाती है। लगभग दो दिन के बाद सदस्य बजट में निहित नीतियों पर सामान्य रूप से विचार–विमर्श करते हैं और सरकार की नीति के गुण दोष मात्र का विवेचन करते हैं। सदस्यों द्वारा गत वर्ष जो राशियां खर्च हो चुकी होती हैं के बारे में जानकारी प्राप्त की जाती है। सदस्यों द्वारा जो आरोप लगाये जाते हैं उनका उत्तर वित्त मंत्री द्वारा दिया जाता है। इस स्तर पर न तो विवरणों को लिया जाता है और न ही कोई कटौती प्रस्ताव किया जाता है। आमतौर पर सामान्य चर्चा दो–तीन दिन तक चलती है। अवस्थी एवं महेश्वरी के

अनुसार, "बजट पर सामान्य चर्चा एक अति प्राचीन परंपरा है। यह उस समय से चली आ रही है जब भारतीय विधानमंडल में केवल अपनी शिकायतें ही रखी जा सकती थी। वर्तमान में इस प्रकार की चर्चा से कुछ लाभ तो होता ही है। सदस्यों को यह अवसर प्राप्त होता है कि वे राजस्व के अनुमानों पर सरकार के कार्यक्रमों एवं पद्धतियों तथा साधनों पर विशेषकर 'प्रभूत व्ययों पर जो कदाचित् सबसे महत्वपूर्ण होते हैं चर्चा कर सके। इस बहस से करों और व्ययों के बजट प्रस्तावों पर सदन का क्या रूख होगा, इसकी पूर्व झलक सरकार को मिल जाती है।"

अनुदान मांगों पर मतदान

व्यय के अनुमानों पर मतदान का अधिकार केवल लोकसभा को ही दिया गया है और यह अधिकार राज्यसभा को नहीं दिया गया। प्रभूत व्यय मतदान के लिए नहीं लाया जाता और व्यय से संबंधित उन अंशों पर ही मतदान करवाया जाता है जिन पर ऐसा करवाना संभव हो। मांगों पर मतदान के लिए छब्बीस दिन का समय रखा हुआ है यह समय इंग्लैंड की भांति है। सदन के नेता से परामर्श कर के लोकसभा का अध्यक्ष प्रत्येक विभाग की मांग या मांगों के समूह के लिए और बजट के समस्त व्यय पर मतदान का समय निश्चित करता है। ज़ब किसी मांग के लिए निर्धारित समय समाप्त होता हो तो उसी समय मतदान होता है, यह आवश्यक नहीं कि उस मांग पर चर्चा पूरी हो उन समस्त मांगों के लिए जो समय या अवधि निश्चित की जाती है उसके अंतिम दिन पांच बजे शाम समूह में मतदान के लिए प्रस्तुत किया जाता है। स्वीकार की गई प्रत्येक मांग को अनुदान कहा जाता है। ध्यान देने की बात यह है कि उन मांगों को लोकसभा कम तो कर सकती है पर इनमें वृद्धि नहीं कर सकती, यदि इनको कम किया जाता है तो ऐसी विधि को कटौती प्रस्तावों का नाम दिया जाता है। जो निम्न प्रकार के होते हैं:–

1. नीति संबंधी कटौती प्रस्तावः इस प्रस्ताव का उद्देश्य प्रस्तावित व्यय में अपनाई गई नीति का विरोध करना होता है।
2. मितव्ययिता संबंधी कटौती प्रस्तावः मितव्ययिता कटौती का प्रस्ताव का संबंध व्यय में मितव्ययिता से होता है। ऐसे प्रस्ताव द्वारा मांग से प्रस्तावित धन की विशेष राशि को कम करवाने की कोशिश की जाती है। सम्बन्धित वक्तव्य में मितव्ययिता के उपायों पर चर्चा तथा विचार किया जाता है।
3. प्रतीक कटौती प्रस्तावः इस प्रस्ताव द्वारा सरकार का ध्यान मांग से संबंधित किन्ही विशेष शिकायतों की ओर आकर्षित करने की कोशिश की जाती है। प्रतीक कटौती प्रस्तावों का प्रयोग भारतीय संसद द्वारा अधिकतर किया जाता रहा है क्योंकि यह प्रस्ताव दूसरों से अधिक अच्छे माने जाते हैं।

"अंत में, वित्त मंत्री को अवसर दिया जाता है कि वह शिकायतों का उत्तर दें। जबकि उसके विचार से कोई उपवाद उचित दिखाई देता है, तब वह सरकार की ओर से सदन को आश्वासन देता है कि वह कमी दूर कर दी जायेगी। इस पर कटौती प्रस्ताव वापस ले लिया जाता है। यदि प्रस्तोता उसको वापस लेने से इन्कार करता है तो मांग बहुमत से स्वीकार की जाती है। सदस्यों को यह सब विधियां मालूम होती हैं और कटौती प्रस्ताव द्वारा संकेत मात्र किया जाता है। वास्तविक कटौती का उद्देश्य नहीं होता। वित्त मंत्री जिस रूप में बजट प्रस्तुत करता है वह उसी रूप में सदन द्वारा स्वीकृत होता है।"

विनियोजक विधेयक

सरकार को लोकसभा द्वारा केवल मांगों को स्वीकार कर लेने के सरकारी कोष से धनराशि प्राप्त करने के अधिकार नहीं मिल जाते अपितु इन्हें संसद द्वारा विनियोजन विधेयक पारित होने के बाद ही मिलते हैं। इस प्रकार हम देखते है कि इसे सरकारी कोष से धन का व्यय करने के लिए लाया जाता है। विनियोजन विधेयक में मत योग्य व अमतयोग्य अनुदान होते हैं। इस विधेयक में सम्मिलित ऐसे अनुदानों पर चर्चा नहीं होती जिन्हें पहले स्वीकृत किया जा चुका हो। इसके साथ ही किसी तरह का संशोधन प्रस्ताव भी नहीं किया जाता। लोकसभा द्वारा पारित करने के पश्चात् इस विधेयक को राज्य सभा में भेज दिया जाता है वह इसे चौदह दिन के अंदर लोकसभा को लौटा देती है। इस संसद द्वारा इसे पारित किए जाने के पश्चात् राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए भेजा जाता है।

करों पर मतदान

वित्त–विधेयक में आगामी वर्ष के करों के प्रस्ताव होते हैं। इस विधेयक से प्रस्तावित करों के घटाने–बढ़ाने से संबंधित प्रस्ताव लाये जाते हैं। कई बार इन्हें स्वीकार भी कर लिया जाता है। एक महत्वपूर्ण बात यह है कि राष्ट्रपति की सिफारिश के बिना करो, को बढ़ाने या नये करो को लगाने से संबंधित प्रस्ताव नहीं लाये जा सकते। इस विधेयक पर चर्चा होने के बाद इस सदन

की प्रवर समिति के पास भेजा जाता है जहां इसकी प्रत्येक धारा पर विचार किया जाता है और फिर सदन द्वारा पारित किया जाता है तथा बाद में राज्यसभा और राष्ट्रपति द्वारा विधिवत अनुमोदित किया जाता है। इस प्रकार वित्त विधेयक एक कानून का रूप धारण कर लेता है।

विनियोग विधेयक या बजट पास होने के बाद नियन्त्रण

वित्त पर लोक लेखा समिति, अनुमान समिति तथा लोक उद्यम समिति के माध्यम से नियन्त्रण

संसद की रचना ऐसे है कि उनके पास इन कार्यों को पूरा करने के लिए न तो समय है और न आवश्यक शक्ति ही। इस कारण कार्यों को संपन्न करने के लिए संसद द्वारा अपने सदस्यों में से कुछ को लेकर तीन समितियों की रचना की जाती है।" ये समितियां हैः लोक लेखा समिति, अनुमान समिति तथा लोक उद्यमों पर समिति। इस समितियों के पास उचित अधिकार होते है जिनके अंतगर्त संबंधित रिकार्डो की जांच करती है और छानबीन हेतु गवाहों को अपने पास बुलवा सकती है। प्रायः इन समितियों की जो बैठकें होती है उन्हें गुप्त रखा जाता है।

लोक लेखा समिति

इन संसदीय समिति की स्थापना पहली बार 1923 में की गई। उस समय इसके सदस्य निर्वाचित तथा नामजद होते थे। नये संविधान के लागू होने के बाद इसमें भी परिवर्तन किए गए। शुरू में इस समिति के पंद्रह सदस्य थे वे सभी के सभी लोकसभा से लिए जाते थे। लेकिन सन् 1953 में इसकी सदस्यता को बढ़ा कर 22 कर दिया गया। अब इन 22 सदस्यों में से पंद्रह लोकसभा द्वारा तथा सात राज्य सभा द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के द्वारा प्रतिवर्ष चुने जाते है। समिति का कार्यकाल दो वर्ष का होता है। याद रहे कि मंत्री इस समिति के सदस्य नहीं बन सकते। यदि किसी सदस्य को मंत्री बनाया जाता है तो इस नियुक्ति की तिथि से इसको सदस्यता से अलग कर दिया जाता है। समिति के अध्यक्ष को लोकसभा अध्यक्ष द्वारा नामजद किया जाता है।

कार्य

लोक लेखा समिति के निम्नलिखित कार्य है जिसके बारे में इसे अपने आप को संतुष्ट करना होता है किः–

(1) लेखों में व्यय के रूप में जिन राशियों को दिखाया गया हैं वे इन सेवा प्रयोजनों के लिए विधिवत् उपलब्ध और लगाये जाने योग्य थी जिनमें उन्हें लगाया गया है या भारित किया गया हैः

(2) व्यय नियन्त्रण करने वाली सत्ता के अनुसार हुआ है, तथा

(3) प्रत्येक पूनर्विनियोजन उचित प्राधिकारी द्वारा निर्मित नियमों के अंतर्गत उपबधों के अनुसार हुआ हैं।

इस समिति के अन्य मुख्य कर्त्तव्य निम्नलिखित हैं :–

(1) लेखा नियंत्रक तथा महालेखा परीक्षक के द्वारा दिये गए प्रतिवेदन के संदर्भ में उन लेखों के विवरणों की जांच करना जिनमें राज्य निगमों, व्यापार तथा निर्माण–योजनाओं और परियोजनाओं की आय तथा व्यय को दिखाया गया हैं। इसके साथ साथ उनके ऐसे बकाया पत्रों या लाभ तथा हानि के लेखों की जांच करना जिन्हें तैयार करना राष्ट्रपति आवश्यक समझते हो अथवा जो किसी विशेष निगम व्यापारिक संस्था या परियोजना की वित्त–व्यवस्था को विनियमित करने वाले सांविधिक नियमों के अंतर्गत किए गए हों।

(2) ऐसे स्वायत्तशासी तथा अर्द्ध–स्वायत्तशासी निकायों की आय और व्यय के लेखा विवरणों की जांच करना जिनका लेखा परीक्षक, नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक द्वारा राष्ट्रपति के निर्देशों के अंतर्गत या संसद की किसी संविधि के अनुसार संभव हो; तथा

(3) ऐसे मामलों में लेखा–नियंत्रण एवं महा लेखा परीक्षक के प्रतिवेदन विचार पर करना जिनकी किन्हीं प्राप्तियों की लेखा परीक्षा करने या भंडारों तथा सकंधों के लेखाओं का परीक्षण करने को राष्ट्रपति आवश्यक समझते हों।

इस समिति द्वारा कार्य लेखा–नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के प्रतिवेदन के आधार पर सम्पन्न होते हैं। अशोक चंदा के शब्दों में "समिति की प्रभावशीलत उस पूर्णता पर आधारित होती हैं जिस पूर्णता के साथ लेखा–परीक्षण का कार्य संचालित किया गया हैं। इस प्रकार, लेखा परीक्षणकी आलोचना का मूल्य उस समर्थन पर निर्भर करता है जो समिति से प्राप्त होता हैं। इन

दोनों प्राधिकारियों के कार्य ही परस्पर संबंधित नहीं होते बल्कि उनके संबंध कुछ मात्रा में अन्योन्याश्रित भी होते है। इस कथन की पुष्टि, समिति की जांच संबंधी अनेक प्रश्नो से होती है, जिनका सबसे अधिक संबंध परीक्षक द्वारा उठाय गए प्रश्नों से होता है।"

लोक लेखा समिति नियंत्रण एवं महालेखा परीक्षक के प्रतिवेदन की जांच करती है और संसद द्वारा सरकारी व्यय के लिए प्रदत्त मदों के विनियोगों पर विचार करते समय यह देखती है कि जन व्यय संसद द्वारा स्वीकृत धन से अधिक न हो, अनुदान का उसी उद्देश्य के प्रयोग किया गया हो जिसके लिए संसद ने स्वीकृति दी थी तथा मांग के अंतर्गत किया गया व्यय केवल अधिकृत सता आयोग द्वारा ही किया गया हो।

समिति को यह अधिकार है कि आवश्यकता के समय व्यक्तियों, कागजों तथा अभिलेखों को तलब कर सके। विचाराधीन लेखा के संबंध में इसके द्वारा विभागीय अध्यक्षों से प्रश्न पूछे जाते हैं। समिति यह पता लगाने का प्रयास करती है कि सरकार ने संसद द्वारा स्वीकृत मांगों की परिधि में ही व्यय किया है अथवा नहीं। सभी साक्षियों एवं प्रमाणों का अध्ययन करने के बाद समिति अपने निष्कर्षो को एक प्रतिवेदन में संकलित कर संसद के सम्मुख प्रस्तुत करती हैं। समिति की सिफारिशों पर सदन में वाद–विवाद नहीं किया जाता । वे सरकार द्वारा यथावत स्वीकार कर ली जाती हैं। कोई मतभेद या संदेह समिति क समक्ष ही व्यक्त किया जा सकता है। समिति उस पर पुनर्विचार करने के बाद अपनी सिफारियों में संशोधन कर लेती है। यदि दोनो पक्षों में समझौता न हो तो अंतिम निर्णय संसद द्वारा लिया जाता है।

ये समिति जन–वित्त या जनता की धन राशि के सरंक्षक के रूप में कार्य करती और संसद के प्रतिनिधि के रूप में सरकारी अभिलेखों का परीक्षण करती हैं। इसने कई सराहनीय कार्य किए हैं इस लिए इसका महत्व बढ़ गया हैं। इस समिति के बार में अपने विचार प्रकट करते हुए भारत के भूतपूर्व लेखा नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक अशोक चंदा ने ठीक ही कहा है कि इस समिति ने लोक व्यय पर नियंत्रण करने वाली एक महान शक्ति का रूप धारण कर लिया हैं।

चाहे कुछ आलोचक इस समिति के बारे में यह कहते हैं कि इसके द्वारा की गई जांच लोक लेखाओं की शव परीक्षा के सामान है पर यह कहना सत्य नहीं क्योंकि इस के द्वारा जांच पड़ताल महत्वहीन नहीं होती, प्रथम लोकसभा के प्रथम अध्यक्ष मावलांकर के अनुसार यह प्रतीत होता है कि कोई व्यक्ति ऐसा भी है जो इस बात की समीक्षा करेगा कि क्या किया गया है तथा यह कार्यपालिका के शैथलय या लापरवाही पर बहुत बड़ा प्रतिबंध लगाती हैं। यह परीक्षण यदि उचित रीति से किया जाय तो प्रशासन में सामान्य क्षमता का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। समिति की जांच भावी अनुमानों तथा भावी नीतियों दोनो के लिए ही मार्गदर्शक के रूप में योग देती है। इस प्रकार यह समिति सार्वजनिक व्यय पर नियंत्रण का एक अच्छा साधन है यदि इसमे प्रतिनिधित्व करने वाले सांसद दलगत या घटिया राजनीति के ऊपर उठ कर सही दिशा में कार्य करें।

अनुमान समिति

अनुमान समिति की स्थापना 10 अप्रैल 1950 को की गई थी उस समय इसकी सदस्य संख्या 25 थी। लेकिन बाद में सन् 1956 में इसे बढ़ा कर 30 कर दिया गया। इस समिति के सभी सदस्य लोक सभा के आनुपातिक प्रतिनिधित्व एकल सक्रमणी मत पद्धति द्वारा चुने जाते हैं। समिति का कार्यकाल एक वर्ष रखा गया है। सदस्य एक से ज्यादा बार चुने जा सकते हैं। किए गए प्रावधान के अनुसार एक तिहाई सदस्य प्रतिवर्ष सेवा से निवृत हो जाते हैं और फिर नए सदस्य चुने जाते हैं। इस तरह से सदस्यों का कार्यकाल एक वर्ष का रहता है। इस समिति के अध्यक्ष आमतौर पर लोकसभा का उपाध्यक्ष होता है। वैसे तो लोकसभा का अध्यक्ष समिति के सदस्यों में से किसी एक को अध्यक्ष मनोनीत कर सकता हैं।

अनुमान समिति के मुख्य कार्य निम्नलिखित है:

(1) समिति का सर्वप्रथम कार्य अनुमानों के पीछे निहित नीति को ध्यान में रख कर मितव्ययिता सुझाव देना होता है।

(2) विकल्पित नीतियों को सुझाना जिससे प्रशासन में बचत तथा कार्य क्षमता लाई जा सके।

(3) समिति को यह देखना होता है कि अनुमानों के वांछित तथ्यों को ठीक प्रकार से रखा गया है या नहीं कहन का भाव की नीति की सीमाओं में रहते हुए धन के किए गए प्रावधान की औचित्यता का प्रशिक्षण करना होता हैं।

(4) इस के द्वारा यह निश्चित किया जाता है कि अनुमान लेखा किस रूप में संसद में पेश किए जायें।

यह समिति यथा संभव मितव्ययिता के लिए जो सुझाव देती है वे अनुमानों में निहित नीतियों के अनुकूल होते हैं। इस समिति का कार्यक्षेत्र व्यापक माना जाता है। लोकसभा के प्रथम अध्यक्ष मावलंकर के मतानुसार प्रारंभ में समिति के समक्ष दो लक्ष्य थे। देश की सर्वश्रेष्ठ सरकार तथा सामान्य जनता का लाभ। यदि सूक्ष्म परीक्षण के बाद यह ज्ञात हो जाए कि किसी विशेष नीति का अनुगमन करने से अपार धन नष्ट हो रहा है तो समिति इन दोषों की इंगित करती है तथा सदन में विचारार्थ नीति में परिवर्तन प्रस्तुत करती हैं।

जहां तक इस समिति की कार्य–प्रणाली का संबंध है, इस द्वारा कुछ मंत्रालयों को चुन लिया जाता हैं और फिर यह अपना प्रोग्राम तैयार करती है, जिसके अंतर्गत संबधित मंत्रालयों के संगठन तथा कार्यो के बारे में सूचना एकत्र की जाती है। यह समिति पहले से निर्धारित अनुमानों का परीक्षण करती है, ऐसा करते हुए यह मंत्रालयों से संबंधित कागज–पत्र मंगवाती है, संबंधित अधिकारियों से जानकारी प्राप्त करती है और जिन अनुमानों का परीक्षण किया जाता है उन पर अपना प्रतिवेदन सदन के सामने प्रस्तुत करती है। समिति अपने कार्यों को चलाने के लिए उप–समितियों को गठित कर सकती हैं जो इसके कार्यो में सहायता करती हैं। समिति द्वारा प्रस्तुत प्रतिवेदन पर चर्चा नहीं होती। अपितु इस द्वारा जो सिफारिशें की जाती है उनका उल्लेख बजट पर बहस के समय किया जाता है। समिति द्वारा जो सिफारिशें की जाती हैं वे प्रायः किसी विभाग या मंत्रालय के संगठन तथा कार्यप्रणाली में सुधार लाने से संबंधित होती हैं। इनसे मितव्ययिता को प्राप्त किया जा सकता हैं तथा अनुमानों की प्रस्तुति के साधारण पहलुओं के बारे में मार्ग दर्शन होता है। इस प्रकार यह समिति दूसरी समितियों की तरह एक महत्वपूर्ण समिति मानी जाती है। क्योंकि इस द्वारा जो सुझाव दिये जाते हैं उससे जन–वित्त के अपव्यय तथा फजूलखर्चियों से बचा जा सकता है तथा कार्यकुशलता को सुनिश्चित किया जा सकता है। इसकी बहुत सी सिफारिशें सरकार द्वारा मान ली जाती हैं। जैसा कि तीसरी लोकसभा द्वारा इसकी 97 प्रतिशत सिफारिशों को स्वीकृत किया गया था।

लोक उद्यम समिति

इस समिति की स्थापना 1 मई 1964 को की गई। इसके 15 सदस्य हैं जिनमें से 10 लोकसभा तथा 5 राज्यसभा द्वारा एकल संक्रमणीय मत से आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली द्वारा निर्वाचित किए जाते हैं। अनुमान समिति की भांति इस समिति के सदस्यों में से एक तिहाई सदस्य प्रतिवर्ष सेवा से निवृत हो जाते हैं और उनके स्थान पर नये सदस्यों को चुना जाता है। इसका अध्यक्ष, लोकसभा के सदस्यों में से, लोकसभा अध्यक्ष द्वारा मनोनीत किया जाता हैं।

कार्य

लोक उद्यम समिति को जो कार्य सौंपे गए है, वे हैः –

(1) लोक उद्यम के प्रतिवेदनों तथा लेखाओं की जांच करना, जिनकी जांच का कार्य, समिति को सौंपा गया है।

(2) लोक लेखा नियंत्रक तथा महालेखा परीक्षक के लोक उद्यमों पर प्रतिवेदनों, यदि हों, तो उनकी जांच करना;

(3) लोक उद्यमों की स्वायतता तथा कार्यकुशलता के संबंध में परीक्षण करना ताकि लोक उद्यमों के शासन संचालन एवं प्रबंध व्यवस्था व्यावसायिक सिद्धांतों तथा उपयुक्त वाणिज्यिक नियमों के अनुसार चलने का पता लगाया जा सके; तथा

(4) अन्य कार्य जो समिति को सौंपे गए हो, जिनका सम्बन्ध लोक उद्यमों से हो और वे लोक लेखा समिति तथा अनुमान समिति के कार्य क्षेत्र में आते हों।

वित्त पर नियंत्रण के लिए संसदीय समितियों का होना में अति आवश्यक है। लेकिन कुछ आलोचकों का मत है कि संसद की समितियों के सदस्य विशेषज्ञ नहीं होते इसलिए उनकी भूमिका पूर्ण रूप से अच्छी नहीं रहती है, इसके साथ–साथ यह आरोप भी लगाया जाता है कि सभी मंत्रालयों, विभागों एवं अन्य संगठनों की जांच ये समितियां नहीं कर पाती हैं, इसलिए इनकी भूमिका सीमित रहती हैं। कुछ भी समझा जाए फिर भी इन समितियों के महत्व को कम नहीं किया जा सकता है यदि कुछ कमियां है तो उन्हें दूर कर उन्हें सुधारा जा सकता है।

महत्वपूर्ण प्रश्न

1. विधान पालिका लोक वित्त पर किस प्रकार नियन्त्रण करती हैं?
2. संसदीय समितियां किस प्रकार से लोक वित्त नियन्त्रण में भूमिका निभाती हैं?

अध्याय 24

प्रदत्त विधिनिर्माण--अर्थ एवं महत्त्व

Delegated Legislation—Meaning and Significance

सामान्यतः विधि–निर्माण अथवा कानून बनाने का कार्य सरकार की व्यवस्थापिका शाखा के अधिकार क्षेत्र में आता है। किन्तु आधुनिक औधोगिक तथा कल्याणकारी युग में एक तो विधि–निर्माण पेचीदा व जटिल प्रकिया बन गई है और दूसरा व्यवस्थापिका के पास न तो इतना समय होता है और न ही आवश्यक तकनीकी ज्ञान कि वह महत्त्वपूर्ण कार्य को सफलतापूर्वक कर सके । अतः विधान मण्डल को अपनी कानून बनाने की शक्तियो का अधिकांश भाग कार्यपालिका शाखा को देने के लिए विवश होना पड़ता हैं। कार्यपलिका इस शक्ति का प्रयोग कानून बनाने के माध्यम से करती हैं । कार्यपालिका अथवा प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा बनाये गये कानून उतने ही सम्मानजनक होते हैं जितना कि विधानमण्डल का वह कानून जिसके अन्तर्गत वे बनाये जाते हैं। कयोंकि कार्यपालिका इन कानूनों का निर्माण उस शक्ति या अधिकार के अनुसार करती है जो विधान मण्डल द्वारा उसे दी गई या सोंपी गई हैं, अतः विधान मण्डल द्वारा कार्यपालिका को दी गई कानून बनाने की इस शक्ति को प्रदत्त विधान (Delegated Legislation) की संज्ञा दी जाती है।

अर्थ एवं परिभाषा

प्रदत्त विधान से हमारा अभिप्राय विधि–निर्माण की उस प्रकिया से हे, जो सरकार के विधानमण्डल अंग द्वारा सम्पन्न न होकर, कार्यपालिका शाखा द्वरा सम्पन्न होती है। प्रदत्त विधान को कार्यपालिका द्वारा विधायन (Executive legislation) अथवा अधीनस्थ विधायन (Subordinate legislation) भी कहा जाता है। दूसरे शब्दों में प्रदत्त विधि निर्माण से तात्पर्य उन परिनियत उपकरणों (Statutory Instruments), नियमों (Rules), आदेशों (Order) तथा विधि–नियमों (Regulations) से है जो व्यवस्थापिका द्वारा विधयन के पूरक के रूप मे शासन के विभिन्न विभागों (Government Departments) के द्वारा बनाये या जारी किये जाते हैं।

वास्तव में संसद द्वारा आज जितनी भी विधियां पारित की जाती हैं उनका स्वरूप अस्थिपंजर के ही समान होता है। संसदीय विधियों में नियमों की एक मोटी रूप रेखा होती है । संसद द्वारा निर्मित विधि की मोटी रूप रेखा को विभागीय आदेशों अथवा प्रशासकीय आज्ञाओं द्वारा रक्त मांस प्रदान किया जाता है। यहां यह बताना उचित होगा कि यह कार्यपालिका की मूलभूत शक्ति (Original Power) नही है। जिन सत्ताधारियों को यह शक्ति प्रदत की जाती है, वह इनको अपने अधीनस्थ अधिकारियों को नहीं सौप सकते, इसका प्रयोग इन्हें स्वंय करना होता है। यदि कार्यपालिका मूल अधिनियम का अतिक्रमण करती है या उस अधिनियम के अन्तर्गत प्रदान किये गये अधिकारो को उल्लंघन करती है तो यह अवैध होता है।

मन्त्रियों के अधिकारों से सम्बन्धित समिति (Committee on Ministers' Powers) जिसे डोनोमोर समिति (Donoughmore Committee) भी कहा जाता है द्वारा प्रदत्त–विधान की परिभाषा इस प्रकार दी गई है, "विधि–निर्माण का अर्थ किसी अधीनस्थ अधिकारी, जैसे मन्त्री द्वारा (जिसे संसद प्रदत्त विधायी शक्ति के प्रयोग का अधिकार देती है) निर्मित कानूनों से है, या उसका अर्थ उन सहायक कानूनों से होता है जो मन्त्रियों द्वारा विभागीय विनियमों के रूप में तथा अन्य सांविधिक नियमों तथा आदेशो के रूप में पारित किये जाते हैं।"

ऐतिहासिक पृष्ठभूमिः यह मानना उचित नही है कि प्रदत्त विधान केवल आधुनिक युग की देन है। प्रदत्त विधायन का इतिहास तो 16वीं शताब्दी के समय से ही चला आ रहा है। डी.एल. हेविंट (D.L.Hewitt) का कथन है, "1800 से पूर्व विधायी शक्तियो के प्रदत्तीकरण के कोई तीस उदाहरण प्राप्त हैं।" फिर भी, प्रदत्त–विधान का विकास अपेक्षाकृत नवीन है। ब्रिटेन में प्रदत्त–विधि निर्माण की प्रक्रियां का प्रारम्भ सन् 1848 में हुआ जबकि 'स्वास्थ्य के सामान्य मण्डल' की स्थापना हुई थी। संयुक्त राज्य अमेरिका में 'राज्य आयोग' की स्थापना के साथ यह प्रक्रिया सन् 1888 के लगभग शुरू हुई। नये संविधान के निर्माण से पूर्व

भारत का केन्द्रीय विधान मण्डल प्रभुसत्ता विहीन विधि निर्मात्री व्यवस्थापिका ही कहा जा सकता है। किन्तु सन् 1949 में जितेन्द्र नाथ बनाम् बिहार प्रान्त के प्रकरण में भारत के संघीय न्यायालय ने प्रदत विधान के अन्तर्गत नवगठित उच्चत्तम न्यायालय से उसका मत जानना चाहा। सर्वोच्च न्यायालय ने प्रदत्त विधान के अन्तर्गत निर्मित कानूनों को वैध करार देते हुए अपनी राय प्रकट करते हुए कहा कि संसद को व्यवस्थापन कार्य तो स्वयं करना होगा परन्तु वह गौण–विधान कार्य दूसरे को सौंप सकती है। परन्तु साथ ही इसके लिए जरूरी है कि संसद अपनी नीति को स्पष्ट कर दे और नियम–उपनियम बनाने की सीमा भी निश्चित कर दे जिससे कार्यपालिका का अधिकार क्षेत्र सुनिश्चित हो सके। ब्रिटेन में संसद प्रभुसत्ता सम्पन्न है और इसके कानून न्यायिक पुनरावलोकन (Judicial Review) के अधीन नहीं होते। अतः यह अपनी विधि–निर्माण शक्ति प्रशासनिक अभिकरणों को किसी भी ढंग से, जैसा यह उचित समझती है, प्रदान कर सकती है। यद्यपि भारत में संसद द्वारा पारित कानून न्यायिक पुनरावलोकन के अधीन हैं, किन्तु अपने विधि–निर्माण की शक्ति के दायरे में यह भी जैसा चाहे, अपनी शक्ति का हस्तान्तरण कर सकती है। इसके रास्ते में कोई संवैधानिक रूकावट नहीं है। संयुक्त राज्य अमेरिका में शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धान्त के कारण विधि–निर्माण की शक्ति का प्रयोग केवल वहां की कांग्रेस द्वारा ही किया जा सकता है और कार्यकारिणी को अपनी सत्ता प्रदान करना संवैधानिक नहीं हो सकता। जैसा कि जॉन लॉक (John Locke) ने लिखा है, "विधानमण्डल विधि–निर्माण की शक्ति किसी भी दूसरे हाथों में हस्तांतरित नहीं कर सकता, क्योंकि यह जनता के द्वारा दी गई प्रदत्त शक्ति होती है। जो स्वयं प्राप्त करते हैं, वे इसे दूसरों को हस्तांतरित नहीं कर सकते। (संयुक्त राज्य अमेरिका में यही संवैधानिक सिद्धान्त माना गया है) इसलिए वहां स्थिति की परम आवश्यकताओं के कारण इसे अर्द्ध विधि–निर्माण कह कर सम्बोधित किया गया है।

मुख्यतः प्रदत्त विधान की शक्ति इंग्लैंड में ताज के मंत्रियों को दी जाती है, भारत में केन्द्रीय सरकार अथवा राज्य सरकार को दी जाती है और संयुक्त राज्य अमेरिका में विभागों को अथवा महत्त्वपूर्ण अभिकरणों जैसे नियामक आयोग (Regulatory Commissions) को दी जाती है। यह स्थानीय सरकारों, कानूनी निगमों, विश्वविद्यालयों और कुछ व्यवसायों की प्रतिनिधि संस्थाओं, जैसे वकीलों, डॉक्टरों आदि को भी दी जाती है। स्पष्ट है कि यह शक्ति केवल, बड़े उच्च जिम्मेदार सत्ताधिकारियों को ही सौंपी जाती है। अर्थात् यह कभी भी निम्नस्तर के व्यक्तिगत अधिकारियों को नहीं दी जाती।

प्रदत्त विधान का वर्गीकरण–यद्यपि आकार के आधार पर प्रदत्त विधान का वर्गीकरण करना सम्भव नहीं, किन्तु इसके विषय और उद्देश्यों की दृष्टि से प्रदत्त विधान को तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है–यथा आपातिक, पूरक अथवा अधीनस्थ तथा व्याख्यात्मक।

आपातिक प्रकार का प्रदत्त विधान वहां होता है जहां विधानमण्डल मुख्य कानून को लागू करना किन्हीं तथ्यों अथवा शर्तों के पूरा होने पर आश्रित कर दे और प्रशासन को उन तथ्यों अथवा शर्तों के पूरा होने अथवा न होने का निर्णय करने की शक्ति प्रदान करे ताकि उन परिस्थितियों के अनुसार प्रशासन विधान मण्डल द्वारा पारित कानूनों को लागू कर सके।

पूरक अथवा अधीनस्थ प्रदत्त विधि–निर्माण उस कानून का विस्तार करता है जिसको पहले विधान मण्डल ने केवल रूपरेखा अथवा ढांचे के रूप में पास किया हो, अर्थात् जिसमें विधान मण्डल द्वारा कुछ सामान्य सिद्धान्तों अथवा मानकों को ही स्थापित किया गया हो और जिसमें विस्तार की व्याख्या करने का कार्य नियम–निर्माण द्वारा प्रशासनिक अभिकरण पर छोड़ दिया गया हो। पूरक प्रदत्त विधान का महत्व कम नहीं होता, क्योंकि ऐसे नियम कानून के अधीन दिये गये अधिकारों, शक्ति अथवा उत्तरदायित्वों की व्याख्या कर सकते हैं अथवा उनको सीमित कर सकते हैं।

व्याख्यात्मक प्रदत्त विधान जिस कानून से सम्बन्धित होता है, उस कानून की धाराओं की व्याख्या करता है, स्पष्टीकरण करता है।

प्रदत्त विधान के कारण

Reasons for the Growth of Delegated Legislation

तीव्रगामी आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीति परिवर्तनों के कारण आधुनिक युग में प्रदत्त विधिनिर्माण निर्विवाद अपरिहार्य हो गया है। इसकी मात्रा में निरन्तर वृद्धि हो रही है। इसके निम्नलिखित कारण हैं–

1. **संसद पर काम का दबाव**–आज का राज्य लोक कल्याणकारी राज्य है, जिसका कार्य क्षेत्र बहुत बढ़ गया है। राज्य के कार्यों में वृद्धि के कारण संसद द्वारा निर्मित कानूनों की संख्या भी बढ़ रही है। निःसंदेह अब संसद के अधिवेशन लम्बे समय के लिए बुलाये जाते हैं और इसके कार्यों के घन्टों में भी भारी वृद्धि हुई है तो भी निर्मित होने वाले विधेयकों की संख्या इतनी अधिक बढ़ गई है कि संसद के लिए विधि–निर्माण का कार्य करना कठिन हो गया है। सर सिसल कार (Sir Cecil Carr) ने ठीक ही कहा है, "किसी भी व्यक्ति द्वारा यदि वर्ष भर में निर्मित प्रदत्त विधि–निर्माण की संख्या पर दृष्टि डाली जाये तो वह गम्भीरता से यह प्रस्तावित नहीं कर सकता कि अब संसद को अपनी विधायी शक्ति का प्रदत्तीकरण निरस्त कर देना चाहिए और भविष्य में सभी विधायी क्रियाएं, जो इस समय परिषद्, सम्राट या विभिन्न लोक निगमों को दी गई हैं, अपनी सत्ता के प्रत्यक्ष नियन्त्रण में ले लेनी चाहिए। इसलिये यह आवश्यक हो गया है कि संसद केवल कानूनों की मोटी एवं उद्देश्यों का उल्लेख हो और कानूनों की बारीकी एवं विस्तृत रूपरेखा निर्धारित करने का कार्य कार्यपालिका को सौंप दे। उससे संसद के कीमती समय में बचत होगी और वह अपना अधिक समय नीति सम्बन्धी विषयों पर लगा सकेगी।

2. **विषय वस्तु की वैज्ञानिक व तकनीकी प्रकृति (Scientific and Technological Nature of the Subject Matter)**–वर्तमान युग वैज्ञानिक एवं तकनीकी युग है। प्रशासन के कार्य जटिल होने से कानून भी अधिक पेचीदा बन गये हैं। सामान्यतः संसद जन साधारण का एक निकाय (Body) होती है। इसके सदस्य जनसाधारण के प्रतिनिधि होते हैं। स्पष्ट है कि वे ज्ञान एवं विद्या के विभिन्न क्षेत्रों के ज्ञाता नहीं होते। अतः वैज्ञानिक एवं प्रविधिक विषयों पर विचार विमर्श करने सम्बन्धी संसद की क्षमता सीमित होती हैं। अतः संसद ऐसे विषयों को विशेषज्ञों के विचार के लिए छोड़ देती है। उदाहरण के लिए रेल–विकास की योजना रेल–विभाग में कार्यरत अभियन्त्र (Engineer) अच्छे ढंग से बना सकते हैं तथा अर्थशास्त्र का ज्ञान रेल के भाड़ों आदि को निर्धारित करने के लिए अधिक सहायक सिद्ध हो सकता है। अतः संसद को विवश होकर अपनी प्रदत्त विधान की शक्ति प्रशासनिक अधिकारियों को प्रदान करनी पडती है और सम्भवतः यही जनहित में है।

3. **लचीलेपन की आवश्यकता (Need for Flexibility)**–प्रशासन को स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल चलाने के लिए कानूनों में कुछ लचीलापन होना आवश्यक है। वैसे भी समय के परिवर्तन के साथ–साथ कानूनों में भी परिवर्तन की आवश्यकता पडती है। संसद सदैव सत्र में नहीं होती। इसलिए वह यह कार्य शीघ्रता से नहीं कर सकती। अतः कानूनों में लचीलापन होना आवश्यक है जो प्रदत्त विधान द्वारा ही सम्भव हो सकता है। डोनोमोर समिति (Donoughmore Committee) के अनुसार, "अनेक कानून मनुष्य के जीवन पर इतना व्यापक प्रभाव डालते हैं कि उनमें लचीलापन अनिवार्य हैं। यह असम्भव है कि खसरा (Measles) या पदात्य रोग (Foot and mouth disease) जैसे रोगों को रोकने के सम्बन्ध में संसद द्वारा कोई अधिनियम बनाया जाये या यह निश्चित करे कि लोक स्वास्थ्य अधिनियम (Public Health Act) देश के विभिन्न भागों में किस प्रकार लागू करें।" अतः प्रदत्त विधान में लचीलापन होता है तथा इसमें विधान मण्डल द्वारा बनाये गये कानूनों की जड़ता से, जिन्हें सरलता से अथवा शीघ्रता से संशोधित नहीं किया जा सकता, दूर रखता है।

4. **प्राकृतिक आपदाओं को दृष्टि से आवश्यक (Necessary for Natural Calamities)**–संसद कानून बनाते समय आपातकाल जैसे युद्ध, महामारी, बाढ़, भूचाल, सूखा आदि की भविष्यवाणियां नहीं कर सकती। ऐसी परिस्थितियों में सरकार को तुरन्त कार्यवाही करनी होती है क्योंकि ऐसे मामलों में देरी करना घातक होता है। इस बात की प्रतीक्षा करना न तो व्यवहारिक है और न ही बुद्धिमत्ता कि संसद आपात स्थिति का सामना करने के लिए आवश्यक कार्यवाही हेतु कानून का निर्माण करे। अतः संसद, इन विकट परिस्थितियों से निपटने के लिए, कानून बनाने की शक्तियां प्रशासकीय अधिकारियों को देने के लिए विवश हो जाती है ताकि स्थिति पर काबू पाया जा सके तथा प्रभावित लोगों को समय पर राहत पहुँचाई जा सके। सर सिसल कार ने ठीक ही कहा है, "महायुद्धों (Global wars) के दौरान सरकार नियम अधिक मात्रा में बिना अधिकार अर्थात् (बिना लोगों की राय लिये) लागू किये जाते हैं।" इन स्थितियों से बचने के लिए तथा अनदेखे खतरों से निपटने के लिये वैधानिक शक्तियों को अधिक मात्रा में अधिकृत करना चाहिए।

उपरोक्त कारणों का प्रभाव यह हुआ है कि आज प्रदत्त विधियों की संख्या निरन्तर बढ़ती ही जा रही है। इसलिए डोनेमार समिति का कहना है, "सच्चाई तो यह है कि यदि संसद विधि–निर्माण की शक्ति के प्रदत्तीकरण के लिए तैयार नहीं होती तो वह (संसद) स्वयं आधुनिक लोक मत की आवश्यकता के अनुरूप विधान पारित करने के लिए योग्य नहीं रह सकेगी।" यही

कारण है कि प्रदत्त विधान का विकास आश्चर्यजनक हुआ। कार के अनुसार ब्रिटेन में प्रदत्त विधान की मात्रा संसद द्वारा बनाये गये कानूनों से दस गुणा से कम नहीं है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि प्रदत्त विधान के मुख्य कारण हैं–संसद के पास समय का अभाव तथा विषय–वस्तु की तकनीकी प्रकृति जहां विषय–वस्तु में विशेष अत्यावश्यक या बार–बार परिवर्तन की आवश्यकता पड़ती है, वहां प्रदत्त विधान की व्यवस्था उचित होती है। परन्तु जहां इसका प्रयोग इस के अतिरिक्त होता है, वहां इसका औचित्य समाप्त हो जाता है। न्यायमूर्ति महाजन के अनुसार प्रदत्त विधि–निर्माण की शक्ति प्रदान करना, आज के औद्योगिक समाज में उतना ही आवश्यक है जितना कि राज्य समाज हित के दायित्व को स्वीकार करना।

प्रदत्त व्यवस्थापन के प्रकार

(Types of Delegated Legislation)

प्रदत्त व्यवस्थापन के निम्नलिखित तीन प्रकार होते हैं–

1. **आकस्मिक प्रदत्त व्यवस्थापन (Contingent Delegated Legislation)**–आकस्मिक प्रदत्त व्यवस्थापन की आवश्यकता विशेष परिस्थितियों में होती है। विधानपालिका प्रशासकीय इकाइयों को विशेष तथ्यों और परिस्थितियों में कानून बनाने का अधिकार दे देती है। उदाहरण के लिए, भारतीय टैरिफ अधिनियम, 1935 (Indian Tariff Act, 1935) के अनुसार सरकार संकटकालीन स्थिति में विदेश से आने वाले माल पर संरक्षण कर लगा सकती है।

2. **पूरक प्रदत्त व्यवस्थापन (Supplementary Delegated Legislation)**–पूरक प्रदत्त व्यवस्थापन उस व्यवस्थापन को कहते हैं जिसमें सरकार संसद द्वारा पास किए गए कानून को विस्तृत करके उसे पूर्ण बनाती है। व्यवस्थापिका केवल ढाँचे के सामान्य सिद्धान्तों को पास करता है। इस ढाँचे के अन्तर्गत कार्यपालिका सामान्य सिद्धान्तों को निर्धारित करती है। विधानपालिका मुख्य कानून के साथ एक दो वाक्य जोड़ देती है जो इस प्रकार होता है–"अमुक बात सरकार द्वारा बनाए गए नियमों के अनुसार होगी। विभाग के अध्यक्ष को इसका अधिकार दिया गया है।" प्रदत्त व्यवस्थापन के द्वारा बनाए गए नियम मौलिक नियमों से भी अधिक महत्वपूर्ण व प्रभावशाली होते हैं। उदाहरण के लिए स्थानीय संस्था में निर्वाचित होने के लिए उम्मीदवार की योग्यताओं व अयोग्यताओं का उल्लेख मुख्य या मौलिक कानून में होता है। परन्तु इन अयोग्यताओं के निर्णय की प्रक्रिया को पूरा करने का अधिकार प्रदत्त पूरक व्यवस्थापन के अनुसार सम्बन्धित निर्वाचन अधिकारी को दे दिया जाता है।

3. **व्याख्यात्मक प्रदत्त व्यवस्थापन (Interpretative Delegated Legislation)**–इस प्रकार की प्रदत्त व्यवस्थापन में प्रशासकीय संस्थाओं को कानून में लिखित अस्पष्ट व जटिल धाराओं की व्याख्या करने का अधिकार दिया जाता है। इस प्रकार प्रशासनिक संस्थाएं कानून का स्पष्टीकरण अपनी ओर से करती है।

प्रदत्त व्यवस्थापन के लाभ

(Merits of Delegated Legislation)

प्रदत्त व्यवस्थापन के महत्व संसदीय तथा अध्यक्षात्मक दोनों प्रकार की सरकारों में पाया जाता है। इसकी आवश्यकता प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था में महसूस की गई है। प्रदत्त व्यवस्थापन के लोकप्रिय होने के कई कारण हैं। इसके मुख्य लाभ निम्नलिखित हैं–

1. **संसद का समय बचता है (It saves the time of Parliament)**–प्रदत्त व्यवस्थापन द्वारा विधानमण्डल के अनावश्यक कार्यभार में कमी होती है, क्योंकि संसद केवल बिलों के सामान्य सिद्धान्तों को ही निर्धारित करती है। कानून को विस्तृत करने का उत्तरदायित्व प्रशासकीय निकायों पर छोड़ देती है। संसद अपना ध्यान जनहित की समस्याओं और लोकनीति की मुख्य समस्याओं पर केन्द्रित करती है, क्योंकि उसके पास इन समस्याओं के लिए समय बच जाता है।

2. **परिस्थितियों के अनुसार संशोधन सम्भव (Amendment is possible in accordance with Circumstances)**–प्रदत्त व्यवस्थापन के कारण प्रशासन में लचीलापन व कुशलता आती है। बदली हुई परिस्थितियों के अनुसार प्रशासन अपने अनुभव के आधार पर संशोधन या परिवर्तन कर लेता है। इससे प्रशासकीय कार्यकुशलता व प्रवीणता बढ़ती है।

3. **विशेषज्ञों की राय का फायदा उठाया जा सकता है (The Opinion of experts is)**–कानून की वास्तविक व व्यावहारिक कठिनाइयों को नहीं समझ सकते क्योंकि उन्हें क्षेत्र का अनुभव नहीं होता। केवल प्रशासकीय अधिकारी अपने अनुभव के आधार पर विषयों के विशेषज्ञ होते हैं। उनको कानून बनाने की शक्ति देकर उनकी विशेष योग्यता व ज्ञान का फायदा उठाया जा सकता है।

4. **प्रभावित वर्गों से विचार-विमर्श सम्भव (Consultation with affected groups is Possible)**–प्रदत्त व्यवस्थापन में प्रभावित वर्गों के लोगों से विचार–विमर्श के उपरान्त ही नियम बनाए जाते हैं। अतः सम्बन्धित हितों को सलाह से बनाए गए कानूनों का पालन लोग अपनी इच्छानुसार करते हैं। इससे सरकार तथा जनता के मध्य सम्पर्क व सम्बन्ध भी बढ़ता है।

5. **अचानक उत्पन्न हुई घटनाओं से निपटा जा सकता है (Unforeseen Contingencies can be easily met)**- व्यवस्थापिका कानून बनाते समय आकस्मिक घटनाओं का पूर्वानुमान नहीं कर सकती, क्योंकि इन घटनाओं के उत्पन्न होने का डर क्षेत्र (Field) में ही होता है और क्षेत्र में प्रशासन कार्यरत रहता है। अतः कार्यपालिका को आवश्यक घटनाओं से निपटने की शक्ति प्रदान की जाती है, ताकि प्रशासनिक अधिकारी स्थिति का सामना करने के लिए उपयुक्त नियम बना सकें।

6. **भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में नए-नए प्रयोग सम्भव है (New experiments in different fields is Possible)**–प्रदत्त व्यवस्थापन द्वारा भिन्न–भिन्न क्षेत्रों में प्रयोग सम्भव है। कल्याणकारी राज्य में सामाजिक व आर्थिक क्षेत्रों में नए–नए प्रयोगों की आवश्यकता होती है। इन प्रयोगों को सफल बनाने के लिए कार्यपालिका को शक्ति प्रदान करना अनिवार्य है। उदाहरण के लिए नगरीय विकास के लिए नगर नियोजन की एक प्रयोग के तौर पर व्यवस्था की गई है। परन्तु यह तभी सफल होगा जब इसे लागू करने की शक्ति सम्बन्धित प्रशासकीय अधिकारियों को दी जाए।

7. **आपात्काल का सामना करने में उपयोगी (Useful in Emergencies)**–संकटकाल का सामना करने के लिए प्रदत्त व्यवस्थापन अत्यन्त उपयोगी व्यवस्था है। जब तक प्रशासनिक अधिकारियों को विशेष शक्तियाँ प्रदान न की जाएं तब तक आपात्काल का सामना नहीं किया जा सकता। युद्ध, महामारी और प्राकृतिक प्रकोपों से सफलतापूर्वक निपटने के लिए कार्यपालिका को पर्याप्त शक्ति देना उचित ही नहीं, बल्कि अत्यन्त आवश्यक भी है।

8. **संसद का नियन्त्रण (Control of Parliament)**–प्रदत्त व्यवस्थापन पर संसद का अन्तिम निर्णय होता है। इसमें संसद द्वारा निर्धारित की गई सेवाओं व शर्तों का उल्लंघन नहीं किया जा सकता। वास्तव में प्रदत्त व्यवस्थापन एक अधीनस्थ व्यवस्थापन है। संसद के अतिरिक्त न्यायालयों व संवैधानिक कानूनों का भी प्रदत्त व्यवस्थापन पर नियन्त्रण होता है।

प्रदत्त व्यवस्थापन की हानियाँ

(Demerits of Delegated Legislation)

प्रदत्त व्यवस्थापन की प्रायः आलोचना की जाती है। कुछ आलोचक इसे लोकतन्त्र के लिए घातक मानते हैं। इसके मुख्य आलोचक लॉर्ड हैवार्ट (Lord Hewart), इसके विरोध में 'नवीन निरंकुशता' (New Despotism) नामक पुस्तक लिखी, का विचार है कि प्रदत्त व्यवस्थापन में प्रशासन कानूनों को क्रियान्वित करने के अतिरिक्त उनका निर्माण (Enactment) भी करता है। लॉर्ड हैवार्ट (Lord Hewart) के अनुसार, "प्रशासकीय अधिनिर्णय व प्रदत्त व्यवस्थापन की वजह से विधायी, कार्यकारी व न्यायिक शक्तियाँ प्रशासकों के हाथों में केन्द्रित होती है, अतः निरंकुशता या तानाशाही पैदा करने का भय बना रहता है।"

भिन्न–भिन्न विद्वान् इसकी आलोचना कटु शब्दों में करते हैं। ऐलन, 'नौकरशाही की जीत', डायसी, 'विधि के शासन का नया खतरा' और सर मैरियट, 'दुष्ट प्रवृत्ति' आदि शब्दों का प्रयोग करते हुए इस व्यवस्था की निन्दा करते हैं। इस पद्धति के मुख्य दोष निम्नलिखित हैं–

1. **संसद की सार्वभौमिक विधायी शक्ति का ह्रास (Deteroration of Sovereign Legislative power of Parliament)**–किसी भी देश की राजनीतिक व्यवस्था में संसद का विधानमण्डल का मुख्य कार्य विधि निर्माण होता है परन्तु प्रदत्त व्यवस्थापन में संसद कार्यपालिका को कानून निर्माण का कार्य सौंपती है। इसमें कार्यपालिका के निरंकुश बनने का डर रहता है, क्योंकि इसकी कुछ बातें न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र से बाहर रहती है और संसद भी इस पर प्रभावशाली नियन्त्रण नहीं रख सकती। प्राचीन समय में इंग्लैण्ड में राजा की स्वेच्छाचारी शक्तियाँ संसद के पास थी

गई थीं, अतः राजा की निरंकुशता की समाप्ति हुई, परन्तु इस पद्धति ने नई निरंकुशता को जन्म दिया है जिसमें कार्यपालिका की मनमानी का भय रहता है।

2. **दुरूपयोग की सम्भावनाएं (Possibilities of Misuse)**–वैसे तो प्रदत्त व्यवस्थापन में विधायिका के मुख्य कानून के अन्तर्गत ही अधिनियम व नियम बनाए जाते हैं और उसे रद्द करने या संशोधित करने की शक्ति संसद के पास होती है, परन्तु समयाभाव के कारण संसद के द्वारा सभी नियमों पर नियन्त्रण रखना असम्भव हो जाता है। अतः कार्यपालिका के द्वारा मनमानी व दुरूपयोग करने की सम्भावनाएं प्रबल हो जाती हैं।

3. **असीमित शक्तियाँ प्रदान करना (Delegation of Unlimited Powers)**–संसद कार्यपालिका को आवश्यकता से अधिक शक्तियाँ प्रदान करती है। संसद अपने–आपको केवल सामान्य सिद्धान्तों तक ही सीमित रखती है। विधानमण्डल केवल ढाँचे का ही निर्माण करती है और कार्यपालिका को इस ढाँचे के अन्दर असीमित कानून बनाने की शक्ति सौंप दी जाती है।

4. **संसद की टैक्स लगाने व नीति–निर्माण की मौलिक शक्ति का हस्तांतरण (Delegation of fundamental powers of Parliament *i.e.* taxation and policy formulation)**–नीति–निर्माण संसद का मौलिक अधिकार है। कई बार संसद इस शक्ति को भी कार्यपालिका को सौंप देती है। यह असंगत व अनुचित है। इसके अतिरिक्त कर लगाने तथा करों में संशोधन की शक्ति भी सरकार को प्रदत्त की जाती है। यह लोकतन्त्रीय सिद्धान्त "प्रतिनिधित्व के बिना कोई कर नहीं" (No taxation without representation) के विपरित है। इससे कार्यपालिका को निरंकुश बनने का बल मिलता है।

5. ***सार्वजनिक हितों की अनदेखी (Public Interest Ignored)***–प्रदत्त व्यवस्थापन में प्रशासनिक अधिकारी सम्बन्धित वर्गों से परामर्श करते हैं। ऐसा करते समय वे आम जनता या सामान्य हितों का ध्यान नहीं रखते। नियम या कानून विशेष वर्ग के लिए नहीं होते बल्कि सारी जनता के लिए होते हैं।

6. **लचीलेपन व परिवर्तनशीलता से अकुशलता को बढ़ावा मिलता है (Flexibility and changeability increases Inefficiency)**–लचीलापन व परिवर्तनशीलता प्रदत्त व्यवस्थापन का गुण माना जाता है, परन्तु इससे प्रशासनिक अकुशलता भी बढ़ सकती है, क्योंकि नियमों में बार–बार फेरबदल करने से प्रशासनिक अस्थिरता व अनिश्चितता फैलने का भय रहता है।

7. ***न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र से बाहर (Out of Judicial Purview)***–प्रायः प्रदत्त व्यवस्थापन के अन्तर्गत बनाए गए नियम न्यायालय के अधिकार क्षेत्र से बाहर रखे जाते हैं। अधिनियमों में कई बार यह प्रावधान कर दिया जाता है कि अमुक नियम या उप–नियम को किसी भी न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती। अतः यह एक अराजकतावादी व उग्रवादी व्यवस्था है जिसमे विधि के शासन (Rule of Law) का अन्त हो जाता है। उदाहरण के लिए भारतीय संविधान मे नौवी अनुसूची में सम्मिलित सभी संशोधन न्यायालय के अधिकार क्षेत्र से बाहर रखे गए हैं।

8. **अपर्याप्त व अप्रभावी संसदीय नियन्त्रण (Inadequate and Ineffective Parliamentary Control)**–संसद की एक समिति, जिसमें अध्यक्ष समेत 15 सदस्य होते हैं, प्रदत्त व्यवस्थापन पर नियन्त्रण रखने के लिए उत्तरदायी है। इस समिति का मुख्य कार्य संसद द्वारा सौंपे गए कानून निर्माण कार्य के अनुपालन को सुनिश्चित करना है। यह समिति देखती है कि क्या कार्यपालिका द्वारा बनाया गया कानून संसदीय अधिनियम के विरूद्ध तो नहीं है। परन्तु व्यवहार में इस समिति की नियमित बैठकें नहीं होती। संसद इस समिति की सिफारिशों पर विशेष ध्यान नहीं देती। जिसके परिणाम–स्वरूप संसद प्रभावी नियन्त्रण नहीं रख सकती और कार्यपालिका निरंकुश बनने की कोशिश करती है जिससे कार्यपालिका दिन–प्रतिदिन शक्तिशाली बनती जा रही है।

9. **नियमों के उचित प्रकाशन व व्याख्या का अभाव (Lack of Adequate Publication and Interpretation of Rules)**–प्रदत्त व्यवस्थापन के अधीन बनाए गए नियमों का कार्यपालिका द्वारा उचित प्रकाशन नहीं किया जाता और न ही इनके जटिल अर्थों की सरल व्याख्या की जाती है। अतः साधारण जन मानस इन्हें समझ नहीं सकता।

10. **बीते हुए समय से प्रभावी होना अनुचित (Retrospective effect Unfair)**–प्रायः प्रदत्त व्यवस्थापन के अन्तर्गत बनाए गए नियमों व उप–नियमों को भूतकाल से प्रभावी माना ज़ाता है, यह अनुचित है। ब्रिटिश कानून साधनों से सम्बन्धित प्रवर समिति के अनुसार, "नियमों को गतिकालिक प्रभाव के अन्तर्गत तब तक नहीं बनाना चाहिए जब तक कि संसद द्वारा ऐसा करने की स्पष्ट रूप में व्यवस्था न की गई हो।"

उपर्युक्त दोषों के होते हुए भी प्रदत्त व्यवस्थापन की पद्धति प्रचलित है। यह एक आवश्यक बुराई है। आवश्यक इसलिए कि न तो संसद के पास समय होता है और न ही सांसद सभी वैधानिक मामलों में निपुण व योग्य होते हैं। बुराई इसलिए कि प्रदत्त व्यवस्थापन के पर्याप्त सुरक्षा कवचों के अभाव में खुले में दुरूपयोग का डर रहता है।

संक्षेप में, प्रदत्त विधि–निर्माण प्रत्यक्ष रूप से संसद के अधिनियमों से सम्बन्धित होता है, और बालक जब कुछ बड़ा हो जाता है तो उससे यह माँग की जाती है कि वह अपने माता–पिता का कुछ कार्यभार अपने ऊपर ले। अतः छोटे–छोटे मामले व कार्यों को वह निपटा लेता है जबकि माता–पिता मुख्यकार्य की देखभाल व प्रबन्ध करते हैं। ऐसा होने पर संसद को छोटी–छोटी बारीकियों की परवाह किये बिना विधान के अधिक गम्भीर प्रश्नों पर विचार करने के लिए समय मिल जाएगा।

प्रदत्त विधान के खतरे (Dangers of Delegated Legislation)–प्रदत्त विधि–निर्माण की कड़ी आलोचना की गई है। कुछ विचारक तो यहां तक कहते हैं कि इसे अपनाने का अर्थ है–प्रजातन्त्र का परित्याग। प्रदत्त विधान के सबसे प्रमुख आलोचक इंग्लैंड के महामुख्य न्यायाधिपति लार्ड हेवार्ट (Lord Hewart, The Lord Chief Justice of England) थे। उन्होंने प्रदत्त विधि–निर्माण को नवीन निरंकुशता (The New Despotism) की संज्ञा दी है। उनके शब्दों में, "इस नवीन निरंकुशता का लक्ष्य है संसद को अधीन बनाना, न्यायालयों का टालना और कार्यपालिका की इच्छा या सनक को अनियन्त्रित या सर्वोपरि बनाना। इस प्रणाली के सम्भावित खतरों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करते हुए डोनोमोर समिति ने लिखा है, इस बात का भय है कि सेवक कहीं स्वामी न बन जाएं।" ऐसा कहा गया है कि प्रदत्त विधि निर्माण पद्धति 'संसद पर नौकरशाही की विजय है' (The triumph of Bureaucracy over Parliament)

सर जॉन मेरियट (Sir John Marriott)–ने प्रदत्त विधान की आलोचना करते हुए सन् 1923 में लिखा था, "मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि ब्रिटिश संसद की कार्यपालिका को अर्द्ध न्यायिक और अर्द्ध विधायी कार्य सौंपने की प्रचलित एवं बढ़ती हुई मनोवृत्ति पूर्णतः शरारतपूर्ण है। इसको रोका जाना चाहिए। डनिंग (Dunning) के प्रसिद्ध वाक्य में यह कहा गया है कि "क्राउन की शक्ति बढ़ गई है, बढ़ रही है, और उसे घटाना चाहिए।" यदि ऐसा प्रस्ताव आज कामन सभा पारित करे या नहीं उसे केवल पेश ही किया जाए तो हममें से बहुत चौंक पड़ेंगे। तथापि 'क्राउन' शब्द के स्थान पर यदि 'कार्यपालिका' शब्द रख दिया जाए तो कम से कम आज उस प्रस्ताव को प्रस्तुत करने के लिए उतना ही पर्याप्त कारण है जितना जार्ज तृतीय के शासन में ... शताब्दी में था।"

निम्नलिखित तर्क देकर प्रदत्त विधि निर्माण की आलोचना की जा सकती है–

1. प्रदत्त विधान के विरुद्ध सर्वप्रथम तर्क यह दिया जाता है कि यदि प्रशासनिक अधिकारियों को विधि–निर्माण की शक्ति दे दी जायें तो वे तानाशाह अर्थात् निरंकुश बन सकते हैं। दूसरे शब्दों में यदि विधि निर्माण का अधिकार कार्यपालिका को दे दिया जाए तो नागरिकों की स्वतन्त्रता खतरे में पड़ जाएगी। यह स्वाभाविक है कि प्रशासनिक अधिकारी अधिकार का प्रयोग जनता की अपेक्षा प्रशासनिक सुविधा के लिए करेंगे जिससे सार्वजनिक हित की ... सम्भावनाएं बढ़ जाएंगी।

2. प्रदत्त विधान से न्यायपालिका की शक्तियों व अधिकार क्षेत्र को चोट पहुँचेगी। कई बार प्रदत्त विधि में ऐसी व्यवस्था कर दी जाती है जो नागरिकों के अधिकारों पर प्रतिबन्ध लगा देती है और उसके विरुद्ध वे न्यायपालिका में नहीं जा सकते।

3. कई बार व्यवस्थापिका अधिक शक्तियां प्रदत्त कर देती हैं। यह भी हो सकता है कि विधान मण्डल अपने ... को कानूनों की केवल मोटी–मोटी रूप रेखा पारित करने तक ही सीमित रखे और सिद्धान्त एवं नीतियों के महत्त्वपूर्ण ... कार्यपालिका को सौंप दें। उदाहरण के लिए संसद कर लगाने की शक्ति भी कार्यपालिका को सौंप देती है ... लोकतन्त्र के सिद्धान्त के पूर्णतया विपरीत है।

4. प्रदत्त विधान के अन्तर्गत बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार कानूनों में परिवर्तन किया जा सकता है। अर्थात शासन में लचीलेपन का गुण रहता है। किन्तु इस लचीले की आड़ में यदि कानूनों में संशोधन अत्यधिक मात्रा में किया जाए या इन्हें बार–बार बदला जाये तो इससे बड़ी अनिश्चितता और अराजकता की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। बदले हुए कानूनों का ठीक से प्रचार व प्रसार भी नहीं किया जाता। अतः सामान्य जनता या तो कानूनों से अनभिज्ञ रहती है या इन्हें समझ नहीं पाती जिससे ... लाभ नहीं ... सकती। बल्कि उसे वकीलों एवं न्यायालयों का सहारा

लेना पडता है जो बहुत मंहगा व विलम्बकारी है। संयुक्त राज्य अमेरिका की कांउटी (County) सरकारों के क्षेत्र में ऐसा हुआ , इसलिए उन्हें विधिविहीन की सज्ञा दी गई है।

5. —कभी उपकानूनों को पीछे की तिथियों से (Retrospective effect) लागू किया जाता है। यह बिल्कुल भी उचित है। संविधि संलेखों की ब्रिटिश समिति (The British Select Committee on Statutory Instruments) का मत है कि नियम तथा विनियम "पूर्व तिथि से लागू होने वाले नही होने चाहिए जब तक कि संसद द्वारा तत्सम्बन्धी स्पष्ट व्यवस्था न की गई।"

प्रदत्त विधि-निर्माण के खतरों से बचने के सुझाव

Safeguards against the Dangers of Delegated Legislation

प्रदत्त विधि–निर्माण के चाहे कुछ भी खतरे हों, किन्तु यह एक आवश्यक बुराई है। अतः इस के खतरों को कुछ आवश्यक सुरक्षात्मक कदम उठा कर टाला जा सकता है। डोनोमोर समिति ने यह ठीक ही कहा है, "प्रदत्त विधि–निर्माण की प्रणाली कुछ उद्देश्यों के लिए कुछ सीमाओं तथा अभिरक्षणों के अन्तर्गत वैध तथा संवैधानिक दृष्टि से वांछनीय है।" प्रदत्त विधान के खतरों से बचने के लिए कुछ मुख्य सुझाव इस प्रकार हैं:–

1. प्रदत्त विधान की शक्ति प्रशासनिक अधिकारियों को न देकर केवल मन्त्रियों को ही दी जानी चाहिए जो संसद के प्रति उत्तरदायी होते हैं।
2. संसद प्रदत्त विधान जो शक्ति कार्यपालिका को देती है, उसे उसकी सीमाएं स्पष्ट परिभाषित कर देनी चाहिए। यदि उन सीमाओं का उल्लंघन होता है तो नागरिकों को अपने अधिकारों की रक्षा के लिए न्यायालयों में जाने की छूट होनी चाहिए।
3. न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र को भी सीमित नहीं करना चाहिए ताकि न्यायालयों द्वारा प्रदत्त विधान की समीक्षा की जा सके। डोनोमोर समिति ने यह कहा था कि विधि के शासन की मांग है कि सभी विनियमों को न्यायपालिका में चुनौती देने की व्यवस्था होनी चाहिए।
4. जब भी प्रदत्त विधान के अन्तर्गत नियम व अधिनियम बनाये जायें तो उनके साथ ही स्पष्टीकरण की टिप्पणियां लगी होनी चाहिए ताकि जनता यह जान सके कि अमुक नियम की क्या आवश्यकता है और इसे किस प्रकार लागू किया जाएगा।
5. प्रदत्त विधान के सम्बन्ध में सबसे अधिक प्रभावशाली संरक्षण संसदीय जाँच (Scrutiny) है।

जॉन ई. करसैल (John. E. Kersell) का यह कथन उचित जान पड़ता है कि "प्रदत्त विधायी शक्ति के प्रयोग के पर्यवेक्षण के लिये सबसे उपयुक्त संस्था सदन ही है।" इस सम्बन्ध में हरमेन फाइनर (Herman Finer) लिखते हैं "यदि प्रदत्त विधायी शक्ति या अन्य किसी प्रदत्त अधिकार को प्रयोग में लाते हैं, तो उत्तरदायी ठहराने के लिए इतना ही काफी नहीं है कि वे केवल अपनी अन्तरात्मा को देखें, और अपने व्यावसायिक समूह तथा संगठित जनता के प्रतिनिधियों का ही ध्यान रखें, अपितु वास्तव में प्रजातन्त्रात्मक जनता को यदि नौकरशाही की ज्यादतियों से बचाना है तो उन्हें प्रभावशाली ढंग से अपने से बाहर किसी वरिष्ठ सत्ता के प्रति उत्तरदायी बनाना चाहिए।" भारत और ब्रिटेन में प्रत्योजित विधान पर संसद का प्रभावशाली नियन्त्रण स्थापित करने के लिए निम्नलिखित व्यवस्थाएं की जाती हैं।

1. इस प्रकार के नियमों के प्रकाशित होने पर एक निश्चित अविधि के लिए इन नियमों की एक प्रति संसद के सदनों के पटलों पर रखी जाती है।
2. उपर्युक्त नियमों में से यदि कोई नियम रद्द किये जाते हैं तो प्रतियां सदनों के पटल पर रखी जाती हैं।
3. कई बार यह व्यवस्था की जाती है कि संसद द्वारा निश्चित अवधि के भीतर स्वीकृति मिलने पर ही प्रत्यायोजित विधान के नियम लागू होंगे। ऐसे नियमों की प्रतियां संसद के दोनों सदनो में रखी जाती हैं।
4. संसद की समिति प्रतिनिहित विधान–समीक्षा करती है। भारत में अधीनस्थ विधि निर्माण समिति (Committee on Subordinate Legislation) की स्थापना 1953 में की गई थी।

अन्त में हम निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि आधुनिक देश प्रदत्त विधान से पूरी तरह छुटकारा नहीं पा सकते। विकासशील देशों के लिए तो इसकी अवहेलना करना और भी कठिन है। अतः प्रदत्त विधान की मुख्य समस्या यह नहीं है कि प्रदत्त विधान आवश्यक है या नहीं, बल्कि यह है कि इस प्रक्रिया का ताल–मेल लोकतन्त्र के साथ कैसे बैठाया जाए।

महत्त्वपूर्ण प्रश्न

1. प्रत्यायोजित विधान का अर्थ समझाइए। इस प्रकार के विधान की आवश्यकता के कारण क्या हैं?
2. प्रत्यायोजित विधि–निर्माण क्या है? इसके गुण व दोषों का वर्णन कीजिए।

अध्याय 25

प्रशासकीय-न्यायाधिकरण

Administrative Tribunal

यूरोप के महाद्वीपीय देशों, जैसे फ्रांस में प्रशासनिक न्यायालयों का एक सुव्यवस्थित पदसोपान होता है जहाँ राज्य परिषद् उनकी अध्यक्ष होती है जो निम्न न्यायाधिकरणों के निर्णयों के विरूद्ध अपीलें सुनती हैं। ऐंग्लो–सैक्सन देशों में और भारत तथा ऐसे ही अन्य देशों में, जिनमें ऐंग्लो–सैक्सन देशों की परम्पराओं का प्रभाव पड़ा है, प्रशासनिक न्यायाधिकरणों का विकास व्यवस्थित ढंग से नहीं हुआ। जब कभी इनकी आवश्यकता अनुभव की गई, इनको स्थापित किया गया, परन्तु चाहे इनकी संख्या अब काफी बड़ी हो गई है, इनको एक स्थिर विचारशील व्यवस्था के रूप में संगठित नहीं किया गया। इनकी संरचना और कार्यविधि एक–दूसरे से अलग होती है और इनके निर्णयों के विरूद्ध अपीलें सुनने के लिए कोई एक उच्चतम न्यायाधिकरण नहीं है।

इंगलैंड में प्रशासनिक न्यायाधिकरणों की काफी बड़ी संख्या है। उदाहरणतया रेलवे न्यायालय, यातायात न्यायाधिकरण, सड़क–यातायात, लाइसेंस–अधिकारी, राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवा, न्यायाधिकरण, स्कूल न्यायाधिकरण, राष्ट्रीय बीमा न्यायाधिकरण आदि–आदि। इनके अतिरिक्त विभिन्न मंत्रियों को न्यायिक कार्य दिए गए हैं, जैसे यातायात, स्वास्थ्य, नगर तथा ग्राम नियोजन गृह मंत्री आदि। लगभग 15 अधिकारियों, जैसे–जिला लेखा परीक्षक, मैत्री संगठनों के रजिस्ट्रार आदि को भी न्याय–निर्णय–संबंधी शक्तियाँ दी गई हैं।

भारत में न्यायाधिकरणों का विकास ब्रिटेन की रूप रेखाओं पर ही हुआ है। चूँकि यहाँ सामाजिक और आर्थिक कानून इतने विकसित नहीं हुए हैं अतः इस देश में प्रशासनिक न्यायाधिकरणों की संख्या इतनी अधिक नहीं है जितनी कि ब्रिटेन में, किन्तु फिर भी पर्याप्त है। ब्रिटेन की भांति यहां भी न्याय निर्णय की शक्ति कभी कभी भिन्न–भिन्न न्यायाधिकरणों को दे दी जाती है। जैसे आयकर अपील न्यायाधिकरण, राजस्व बोर्ड, श्रम तथा औद्योगिक न्यायालय, श्रम अपील न्यायाधिकरण लोक सेवा न्यायाधिकरण आदि। कई स्थितियों में यह शक्ति विशेष सरकारी विभागों अथवा विशेषाधिकारियों को दी गई है।

जिस प्रकार प्रदत्त व्यवस्थापन के अन्तर्गत प्रशासन को वैधानिक शक्तियाँ प्राप्त हो जाती हैं उसी प्रकार प्रशासकीय न्याय के अन्तर्गत प्रशासन को न्यायिक या अर्द्धन्यायिक (Quasi-Judicial) शक्तियाँ मिल जाती है। जिस प्रकार साधारण न्याय का फैसला साधारण न्यायालयों द्वारा किया जाता है, उसी प्रकार प्रशासकीय संस्थाएँ जाँच तथा तथ्यों के आधार पर प्रशासकीय न्याय का फैसला करती है। प्रशासकीय न्याय करने वाले संगठन को प्रशासकीय न्यायाधिकरण (Administrative Tribunal) कहते हैं। उदाहरण के लिए, यदि किसी कारणवश किसी की हत्या कर दी जाती है तो हत्या के कारण का पता लगाने के लिए लाश का पोस्टमार्टम किया जाता है। चिकित्सकों का दल (Medical Board) इस बात की जाँच करता है कि हत्या कैसे हुई और वह इस पर रिपोर्ट तैयार करता है। अतः इस चिकित्सक दल ने न्यायिक कार्य किया और इसे प्रशासकीय न्यायाधिकरण कहा जा सकता है।

ब्लैकली तथा उटमैन (Blackali and Ultamn) के अनुसार, "प्रशासकीय न्यायालय साधारण न्यायप्रणाली के बाहर के वे अधिकारी होते हैं जो उस समय कानूनों की व्याख्या करते है तथा उन्हें लागू करते हैं।" साधारण मुकदमें में प्रशासकीय न्यायाधिकरण द्वारा लोक प्रशासन को चुनौती दी जाती है या दूसरे स्थापित तरीकों द्वारा ऐसा किया जाता है। प्रशासनिक न्यायाधिकरणों के समक्ष निम्नलिखित प्रकार के मुकदमें आते हैं–

(i) व्यक्तिगत अधिकारों और सामान्य हित पर विवाद।

(ii) निजी हित और सार्वजनिक हित के मध्य संघर्ष।

(iii) व्यक्ति और राज्य सरकार के मध्य झगड़े।

(iv) सरकारी कर्मचारियों की बर्खास्तगी, नौकरी से हटाने और पदोन्नति का गम्भीर दंड मिलन व सेवा की अन्य शर्तों पर सरकार या नियोक्ता के विरूद्ध दावे।

भारत मे प्रशासकीय अधिकरणों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है। एक अनुमान के अनुसार भारत मे प्रशासनिक न्यायालयों की संख्या 3000 के लगभग है। इनमें से प्रमुख (Income Tax Appelate Tribunal, Labour Courts, Industrial Tribunals, Central Board of Revenue and Collector of Customs and Excise आदि कुछ ऐसे सरकारी निकाय हैं जो न्यायिक कार्य करते हैं । राज्य सरकारों ने भी अपने–अपने राज्यों में प्रशासकीय न्यायाधिकरण स्थापित किए हुए हैं। ये न्यायाधिकरण भिन्न–भिन्न सेवाओं से सम्बन्धित मामलों का निपटारा करते हैं। ये नागरिकों के प्रशासन के विरूद्ध शिकायतों और कष्टों का निपटारा करते हैं। सभी प्रशासनिक न्यायाधिकरणों का विस्तृत उल्लेख करना यहाँ सम्भव नहीं है। अत हम यहाँ केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण या राज्य प्रशासनिक अधिकरणों के मुख्य पहलुओं का वर्णन करेंगे।

केन्द्रीय/राज्य प्रशासनिक न्यायाधिकरण

Central/State Administrative Tribunal

सरकारी कर्मचारियों की नौकरी के मामलों को लेकर सरकार के खिलाफ कुछ शिकायतें होती हैं जिन्हे अधिकारियों को तटस्थता व निष्पक्षता के साथ सुनना चाहिए। इस कार्य के लिए प्रशासनिक न्यायाधिकरण उपयुक्त संस्था है। इन न्यायाधिकरणों का कर्मचारियों के सेवा सम्बन्धी विवादों का फैसला करने का उत्तरदायित्व सौंपा गया है। साधारण न्यायालय अपनी ज्यादा व्यस्तता व समय सम्बन्धी कारणों से कर्मचारियों को शीघ्र व सस्ता न्याय नहीं दे सकते। अत: भारत सरकार ने अनुभव किया कि एक ऐसी संस्था की स्थापना की जाए जो परेशान कर्मचारियों को शीघ्र राहत पहुँचा सके। ऐसा करने से कर्मचारियों का आत्मबल ऊँचा होगा और उनकी कार्य करने की क्षमता भी बढ़ेगी। प्रशासनिक सुधार आयोग (1966–70) तथा जे० सी० साह समिति (1970) ने सिफारिश की कि सेवा के मामलों में कर्मचारियों के विवाद को हल करने के लिए एक स्वतन्त्र अधिकरण स्थापित किया जाना चाहिए। सन् 1980 में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि लोक सेवकों को अदालती लड़ाई में समय गँवाने के लिए बाध्य नहीं किया जाना चाहिए। लोक सेवा अधिकरणों की स्थापना की जानी चाहिए और सेवा दशाओं से सम्बन्धित विवादों का हल करने के मामले में उनका फैसला अन्तिम होना चाहिए। वर्ष 1985 में संविधान में एक अनुच्छेद 323–A जोड़ा गया जिसमें केन्द्रीय तथा राज्य प्रशासनिक न्यायाधिकरणों के गठन व अधिकार–क्षेत्र की बात कहीं गयी है।

प्रशासनिक अधिकरणों का संगठन

Organization of Administrative Tribunals

प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 में एक केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण और हर राज्य के लिए एक राज्य प्रशासनिक अधिकरण, जैसे हरियाणा प्रशासनिक अधिकरण आदि या दो या दो से अधिक राज्यों के लिए एक संयुक्त प्रशासनिक अधिकरण की व्यवस्था है। अत: ये अधिकरण तीन प्रकार के होते हैं–

(1) केन्द्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण (Central Administrative Tribunal, CAT)

(2) राज्य प्रशासनिक न्यायाधिकरण (State Administrative Tribunal, SAT)

(3) संयुक्त प्रशासनिक न्यायाधिकरण (Joint Administrative Tribunal, JAT)

ये न्यायाधिकरण उच्च न्यायालयों के समकक्ष अधिकार व शक्ति रखते हैं। इनके निर्णयों के विरूद्ध सर्वोच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है। वर्तमान काल में केन्द्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण की 18 न्यायपीठें कार्य कर रही हैं। उड़ीसा, हिमाचल प्रदेश, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश, तथा महाराष्ट्र में राज्य प्रशासनिक न्यायाधिकरण गठित किए गए हैं।

हर प्रशासनिक न्यायाधिकरण में एक अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, न्यायिक सदस्य और प्रशासनिक सदस्य होते हैं। अध्यक्ष या उपाध्यक्ष की न्यूनतम योग्यता किसी उच्च न्यायालय का न्यायाधीश (वर्तमान या विगत) या भारत सरकार अथवा राज्य सरकार में सचिव के पद पर कम–से–कम दो साल का अनुभव होना चाहिए। न्यायिक सदस्य बनने के लिए उस व्यक्ति को किसी उच्च न्यायालय का न्यायाधीश या भारतीय विधि सेवा में कम से कम तीन साल का अनुभव होना चाहिए। प्रशासनिक सदस्य की निम्नतम

योग्यता भारत सरकार में अपर सचिव के पद पर कम–से–कम दो साल का अनुभव या समकक्ष राज्य सरकार के अधीन किसी महत्वपूर्ण पद पर कार्य अपेक्षित है।

नियुक्ति (Appointment) : केन्द्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष एवं प्रत्येक न्यायिक सदस्य की भारत के मुख्य न्यायाधीश की सलाह पर राष्ट्रपति द्वारा नियुक्ति की जाती है। राज्य प्रशासनिक न्यायाधिकरण के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष व सदस्यों की नियुक्ति राज्यपाल द्वारा की जाती है।

प्रशासकीय न्यायाधिकरणों की विशेषता
Features of Administrative Tribunals

इन न्यायाधिकरणों की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं

(1) प्रशासकीय न्यायाधिकरण अदालतों की भान्ति श्रेणीबद्ध ढाँचे में गठित नही हैं। जिस प्रकार निम्न न्यायालयों के फैसले के विरूद्ध उच्च न्यायालय में और उच्च न्यायालय के फैसले के विरूद्ध सर्वोच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है, परन्तु सेवा सम्बन्धी मामलों के निपटारे के लिए केवल एक प्रशासकीय न्यायाधिकरण के पास ही जा सकते हैं।

(2) प्रशासनिक न्याय के कार्य प्रायः सरकार के विभाग द्वारा सम्पन्न किए जाते हैं।

(3) प्रशासकीय न्यायाधिकरण में नियमकारी (Regulatory), प्रशासकीय (Administrative) और न्यायिक (Judicial) सभी कार्य केन्द्रित होत हैं।

(4) न्यायाधिकरणों का संचालन अनुभवी प्रशासकों द्वारा किया जाता है जिन्हें कोई न्यायिक प्रशिक्षण नहीं दिया जाता।

(5) निर्णय सुनाते समय न्यायाधिकरण प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों (Principles of Natural Justice) से निर्देशित होते हैं।

(6) न्यायाधिकरणों के फैसलों की उल्लंघना करने पर ये सम्बन्धित व्यक्ति या संस्था को दण्डित कर सकते हैं।

(7) प्रशासनिक न्यायाधिकरणों के फैसलों के विरूद्ध सर्वोच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है। यह सर्वोच्च न्यायालय के विवेक पर निर्भर करता है कि वह अपील के लिए विशेष अनुमति दे या न दे।

(8) इनका अधिकार क्षेत्र केवल सेवा सम्बन्धी मामलों तक ही सीमित होता है।

प्रशासनिक न्यायधिकरणों के कार्य करने की विधि
Procedure of Work of Administrative Tribunals

प्रशासनिक न्यायाधिकरणों में आवेदन करने का एक निश्चित तरीका होता है। आवेदन एक निर्धारित प्रपत्र पर आवश्यक कागजातों व प्रमाण पत्रों के साथ कार्यालय में भेजा जाता है। आवेदन पत्र के साथ सरकार द्वारा निर्धारित सौ रूपये का शुल्क जमा करवाना होता है। इसके बाद प्रशासनिक न्यायाधिकरण आवेदनकर्त्ता के केस की छानबीन करके अपनी संतुष्टि प्राप्त करता है। न्यायाधिकरण यह देखता है कि आवेदनकर्त्ता सेवा नियमों के सभी उपाय आज़मा चुका है या नही। यदि आवेदनकर्त्ता ने कहीं आवेदन कर रखी है और उसे छह महीने बीत जाने के बाद भी अपील का कोई निर्णय न मिले तो न्यायाधिकरण उसकी प्रार्थना पर विचार कर सकता है। प्रशासनिक न्यायाधिकरण हर आवेदन पर फैसला करने के लिए लिखित प्रतिवेदन की जाँच करता है। यदि आवश्यक हो तो मौखिक तर्क भी सुने जाते हैं। आवेदन कर्त्ता स्वयं या अपने वकील के माध्यम से अपना पक्ष प्रस्तुत कर सकता है। दोनों पक्ष अधिकरण के फैसले को मानने के लिए बाध्य हैं। यदि आदेश में कोई अवधि निर्धारित की गई है तो उस निर्णय को उसी अवधि के अन्दर मानना पड़ेगा और यदि किसी विशेष अवधि का निर्णय नहीं किया गया तो उसके फैसले का छह महीने के अन्दर पालन करना होगा। कोई भी पक्ष संविधान के अनुच्छेद 136 के अनुसार प्रशासनिक न्यायाधिकरण के निणर्य के खिलाफ सर्वोच्च न्यायालय में अपील कर सकता है।

प्रशासनिक न्यायाधिकरणों के लाभ
Merits of Administrative Tribunals

साधारण न्यायालयों की अपेक्षा प्रशासकीय न्यायाधिकरणों के कुछ लाभ होते हैं। ये लाभ निम्नलिखित हैं

1. **सस्ता न्याय (Cheaper Justice)**–प्रशासकीय न्याय साधारण न्यायालयों की अपेक्षा सस्ता है, क्योंकि इनमें न्यायालयों की फीस होती है और न ही अनावश्यक औपचारिकताओं पर धन खर्च करना पड़ता है। प्रशासकीय अधिकारी जो प्रशासकीय न्याय करते हैं, का वेतन न्यायाधीशों से कम होता है।

2. **उपयुक्त न्याय (Appropriate Justice)**–प्रशासनिक न्यायाधिकरण प्रशासकीय न्याय का सबसे उपयुक्त माध्यम सरकारी सेवाओं में लगे कर्मचारी आश्वस्त रहते हैं कि यदि उन्हें न्याय नहीं मिला तो वे प्रशासनिक अधिकरण के सामने अपनी समस्या रख सकते हैं।

3. **लोचशीलता (Flexibility)**–प्रशासनिक अधिकारियों के कार्य करने का ढंग लोचशील व सामञ्जस्यपूर्ण होता है। न्यायाधिकरण प्रक्रिया के कठोर नियमों से बँधे नहीं रहते बल्कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अनुसार कार्य करते हैं। प्राकृतिक न्याय के सिद्धात स्थिति के अनुसार बदलते रहते हैं।

4. **न्यायालयों के कार्यभार में कमी (The Burden of Courts is Reduced)**–प्रशासनिक न्यायाधिकरणों से न्यायालयों को राहत मिलती है, क्योंकि साधारण न्यायालयों के पास दीवानी, फौज़दारी, और संवैधानिक मामलों की याचिकाओं की भरभार होती है। कर्मचारियों की सेवा सम्बन्धी शिकायतों के मामलों के बारे में साधारण न्यायालयों का कोई क्रिक नहीं होती।

5. **शीघ्र निर्णय (Speedy Justice)**–प्रशासकीय न्याय शीघ्र मिलता है, क्योंकि साधारण न्यायालयो की प्रक्रिया की भाँ इन न्यायाधिकरणों में गवाही, हल्फिया बयान और अनावश्यक औपचारिकताओं के चक्कर में नहीं पड़ना पड़ता

6. **अनुभव पर आधारित निर्णय (Experience based Decisions)**–प्रशासकीय न्याय करने वाले अधिकारी स्वयं अनुभवी होते हैं और प्रशासकीय मामलों को अच्छी प्रकार समझ सकते हैं। साधारण न्यायालयों के न्यायाधीश तो कानूनी मामलों के विशेषज्ञ होते हैं, उन्हें प्रशासनिक मामलों का पर्याप्त ज्ञान नहीं होता।

7. **विकासशील लोकतन्त्रों के लिए उपयोगी (Useful for developing Democracies)**–विकासशील देशों में प्रशासन के समक्ष सामाजिक परिवर्तन, राष्ट्र निर्माण तथा आर्थिक उन्नति आदि प्रमुख उद्देश्य होते हैं। ऐसी परिस्थितियों में प्रशासकीय न्याय–प्रणाली काफी उपयोगी सिद्ध होती है, क्योंकि प्रशासनिक अधिकारी प्रगतिशील प्रवृत्ति के होते

8. **सरल कार्य-प्रणाली (Easy Working System)**–प्रशासकीय न्यायाधिकरणों की कार्य–प्रणाली काफी सरल होती है। इनमें निर्णय व्यक्तिगत ज्ञान और मौखिक सबूतों के आधार पर लिये जाते हैं। गवाहों के बयान लिखित तथा निर्णयों को स्थगित करने की साधारण न्यायालयों की कार्य–पद्धति का अभाव प्रशासकीय न्याय में होता है। प्रशासनिक न्यायालयों में अनौपचारिक व सामान्य बोलचाल की भाषा के ढंग का प्रभुत्व होता है।

प्रशासकीय न्यायाधिकरणों की हानियाँ
Demerits of Administrative Tribunals

प्रशासकीय न्यायालयों के लाभ के साथ–साथ इनके दोष भी हैं। डायसी (Dicey) इन्हें "कानून के शासन के प्रतिकूल" हीवार्ट (Lord Hewart) 'सगठित अराजकता' (Organized lawlessness) तथा के० एम० मुन्शी (K.M. Munshi) "लोकतन्त्र के ढाँचे के लिए हानिकारक" मानते हैं। प्रशासकीय न्याय–प्रणाली के मुख्य दोष निम्नांकित हैं–

1. **कानून के शासन का उल्लंघन-(Violation of Rule of Law)**–कानून का शासन, जो कि लोकतन्त्र का मूल आधार है, का उल्लंघन प्रशासकीय न्याय में होता है। कानून के शासन की अवधारणा में प्रशासकीय न्याय सही नहीं है क्योंकि इसमें कानून के शासन के निम्नलिखित तीन अर्थों का अभाव होता है।
   (i) कानून की सर्वोच्चता।
   (ii) कानून के शासन के प्रति समानता।
   (iii) सरकार की निरंकुशता से संरक्षण।

2. **प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन (Violation of Principles of Natural Justice)**–प्रशासकीय न्यायाधिकरण प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों को तोड़ते है। ये न्यायालय नीति लागू करने से उत्पन्न विवादों को हल करने के लिए गठित किए जाते हैं। ये स्वयं भी नीति को क्रियान्वित करने में लगे रहते हैं। अतः वे अपने विवादों को ही सुलझाते हैं जबकि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत के अनुसार कोई भी व्यक्ति अपने मामले में स्वयं न्याय नहीं कर सकता। इसके विपरीत प्राकृतिक न्याय के निम्नलिखित सिद्धांतों का प्रशासकीय न्यायालयों में उल्लंघन होता है–

   (i) बिना दूसरे पक्ष की बातें सुने उसकी निन्दा नहीं की जानी चाहिए।

   (ii) सम्बन्धित पक्ष को निर्णय के कारण जानने का अधिकार है।

3. **प्रचार का अभाव (Lack of Publicity)**–प्रशासकीय न्याय की प्रक्रिया का व्यापक प्रचार नहीं होता। प्रशासकीय न्यायालयों के निर्णय और उनके कारण प्रकाशित नहीं किए जाते। इसके अतिरिक्त सामान्य जनमानस को इसकी कार्य–प्रक्रिया का ज्ञान नहीं होता। प्रशासकीय न्यायाधिकरणों की गुप्त कार्रवाई के प्रति जनता के मन में सन्देह पैदा होता है। रोबसन (Robson) के अनुसार, "प्रचार के बिना भविष्य के निर्णयों के विषय में भविष्यवाणी नहीं की जा सकती तथा गुप्तता को बनाए रखने के कारण एक तानाशाही नौकरशाही वर्ग का वातावरण बनाया जा सकता है जो साधारण जीवन के लिए आवश्यक नहीं है।"

4. **न्यायपूर्ण कार्य करने का अभाव (Lack of Judicial Acts)**–प्रशासकीय न्यायाधिकरणों में न्यायाधीशों की बजाय प्रशासनिक अधिकारी होते हैं जिन्हें कोई विशेष न्यायिक प्रशिक्षण भी नहीं दिया जाता। ये अधिकारी न्यायपूर्वक निर्णय नहीं कर पाते। प्रशासनिक अधिकारी जजों की भांति निष्पक्ष और स्वतन्त्र भी नहीं होते और उनके निर्णय कार्यकारिणी से प्रभावित होते हैं।

5. **साधारण न्यायालयों के अधिकार-क्षेत्र पर हमला (Attack on Jurisdiction of Ordinary Courts)**–कई बार प्रशासकीय न्यायाधिकरणों के फैसलों के विरूद्ध साधारण न्यायालयों में अपील करने की स्वीकृति नहीं दी जाती। यह न्यायालयों के अधिकार क्षेत्रों को कम करने का प्रयास है जो कि भयंकर व बुरा है। संविधान की धारा 32, 136, 226, व 227 के अनुसार न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र को कम नहीं किया जा सकता। फिर भी भारत में कई ऐसे अधिनियम हैं जो सरकार को न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को सीमित करने का अधिकार देते हैं।

6. **एक समान प्रक्रिया का अभाव (Lack of Uniform Procedure)**–प्रशासकीय न्यायाधिकरणों के कार्य करने की विधि एक समान नहीं होती। ये निर्णय करते समय अपनी मर्जी के अनुसार नियम बना लेते हैं। लार्ड हैवार्ट (Lord Hewart) के अनुसार, "न्याय सिर्फ मिलना ही नहीं चाहिए, अपितु मिलता हुआ प्रतीत भी होना चाहिए।"

प्रशासकीय न्याय के दोषों को कम करने के सुझाव
Suggestions for Minimising Demerits of Administrative Justice

यदि निम्नलिखित सुझाव अपना लिए जाएं तो प्रशासकीय न्याय के दोष कम हो सकते हैं–

(1) प्रशासकीय विवाद का फैसला करने के लिए ऐसे व्यक्ति को न्यायाधीश बनाना चाहिए जिसका उस विवाद से प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष किसी भी प्रकार का सम्बन्ध न हो।

(2) प्रशासकीय न्यायाधिकरण में एक व्यक्ति की अपेक्षा बोर्ड या समिति का गठन किया जाना चाहिए ।

(3) प्रशासकीय न्यायाधिकरण के सदस्यों व अध्यक्ष की नियुक्ति करने के लिए एक न्यायाधिकरण परिषद की स्थापना की जानी चाहिए।

(4) सभी गवाहों व दस्तावेजो को प्रकट करना चाहिए।

(5) सभी पक्षों को निर्णयों के आधारों का ज्ञान होना चाहिए।

(6) सम्बन्धित व्यक्ति को स्वयं या वकील के माध्यम से अपने विचार प्रकट करने का अधिकार होना चाहिए।

(7) प्रशासकीय न्यायालयों के निर्णयों के विरूद्ध अपील करने का अधिकार होना चाहिए।

(8) न्यायिक आचार संहिता को अपनाना चाहिए।

(9) निर्णयों के पर्याप्त कारण दिए जाने चाहिए ।

(10) सर्वोच्च न्यायालय व उच्च न्यायालयों के अधिकार–क्षेत्र को सीमित नहीं करना चाहिए।

(11) प्रशासकीय न्यायाधिकरणों की संख्या अंधाधुंध नहीं बढानी चाहिए।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि प्रशासकीय न्यायाधिकरणों में न्यायिक तत्त्वों (Judicial Elements) को अपनाने की आवश्यकता है

महत्वपूर्ण प्रश्न

1. प्रशासकीय न्यायाधिकरण की आवश्यकताएँ या रचना का वर्णन कीजिए।
2. प्रशासकीय न्यायाधिकरण की विशेषताओं, लाभ तथा हानियों पर प्रकाश डालिए।

अध्याय-26

प्रशासन पर नियन्त्रण: संसदीय एवं न्यायिक

(Control over Administration: Parliamentary and Judicial)

प्रत्येक देश में सरकार के तीन अंग होते हैं– विधानपालिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका। विधानपालिका का काम देश में शान्ति व्यवस्था बनाए रखना तथा प्रशासन के सुचारू रूप से संचालन के लिए कानून बनाना होता है। आज के प्रजातन्त्रात्मक युग में विधानपालिका जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों की संस्था है। संसदात्मक प्रणाली में कार्य पालिका संसद के साथ घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित रहती है। संगठन तथा कार्यों की दृष्टि से कार्य पालिका को संसद के निरन्तर निर्देशन एवं निरीक्षण के अधीन रहना होता है। अध्यक्षात्मक प्रणाली में कार्यपालिका संगठन तथा कार्यों की दृष्टि से विधानपालिका के साथ उसने घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं होते और दोनों पक्षों के बीच शक्ति–पृथक्करण (Separation of Powers) रहता है, फिर भी विरोध तथा सन्तुलन (Checks and Balances) द्वारा वहां भी इन दोनों अंगों को परस्पर सहयोगपूर्ण बनाने का प्रयत्न किया जाता है। तीसरा अंग न्यायपालिका है, जिसका कार्य विधानपालिका द्वारा निर्मित तथा कार्यपालिका द्वारा क्रियान्वित कानूनों की उपयुक्तता देखना होता है, सरकार के अन्य दोनों अंगों की, क्रियाओं को संविधान के अनुरूप बनाना होता है। देश में संविधान की रक्षा करना, नागरिकों के अधिकारों एवं स्वतन्त्रताओं को संरक्षण प्रदान करना, विधानपालिका के कानूनों तथा कार्यपालिका के निर्णयों पर न्यायिक पुनरीक्षा आदि इसके महत्वपूर्ण कार्य हैं।

आधुनिक युग में राज्यों के कार्यों में वृद्धि होने के कारण तथा प्रशासनिक अधिकारियों की शक्तियों में बढ़ोतरी के कारण इन शक्तियों के दुरूपयोग की सम्भावना रहती है और इसी दुरूपयोग से बचने के लिए लोक प्रशासन पर अनेक रूप से नियन्त्रण किया जाता है। यह ठीक ही कहा गया है कि सत्ता व्यक्ति को भ्रष्ट तथा असीमित सत्ता व्यक्ति को पूर्णतया भ्रष्ट बना देती है। इसलिए प्रशासनिक अधिकारियों को अपने कार्यों तथा क्रिया कलापों के लिए अनेक प्रकार से जवाबदेह होना पड़ता है। इसलिए प्रशासन पर संसदीय नियन्त्रण तथा कार्यपालिका के नियन्त्रण का उद्देश्य मुख्यतः प्रशासनिक नीतियों, कानूनों तथा व्यय करने पर नियन्त्रण होता है जबकि न्यायपालिका के नियन्त्रण का लक्ष्य प्रशासकीय पदाधिकारियों द्वारा किये गए कार्यों की वैधता को निश्चित करना तथा सत्ता के असंवैधानिक प्रयोग से जनता के अधिकारों की रक्षा करना होता है। लार्ड ब्राईस (Lord Bryce) ने ठीक ही कहा है कि उत्तम सरकार का मापदण्ड उनकी कुशल व स्वतन्त्र न्यायपालिका होती है।

प्रशासन पर संसदीय नियन्त्रण

(Parliamentary Control over Administration)

भारतीय संसद प्रशासन पर प्रभावशाली नियन्त्रण स्थापित करने के लिए अनेक साधन प्रयुक्त करती है। ये साधन कार्य–प्रणाली के आवश्यक अंग हैं। वह अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह करने के लिए जो कार्य सम्पन्न करती है, उन्ही के द्वारा प्रसंगवश लोक प्रशासन पर भी नियन्त्रण स्थापित कर लेती है। संसदीय नियन्त्रण के मुख्य साधन निम्नलिखित हैं–

1. **नीति का निर्धारण**–संसद लोक–प्रशासन के संगठन, कार्यों तथा प्रक्रियाओं को कानून द्वारा निश्चित करती है। वह राष्ट्रीय नीतियों को अन्तिम स्वीकृति प्रदान करती है। इसी स्वीकृति के बिना प्रशासन किसी प्रकार की नीति नहीं अपना सकता। यद्यपि संसद कार्य की अधिकता तथा तकनीकी कुशलता व समय के अभाव के कारण नीतियों को सामान्य रूप से पारित करती है तथा इसे विस्तृत रूप देने का उत्तरदायित्व कार्यपालिका को सौंप देती है। इन नीतियों का विस्तार प्रशासन के प्रत्येक स्तर पर होता है तथा प्रत्येक पदाधिकारी परिस्थितियों के अनुसार इनको लागू करता है किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि संसद या विधानपालिका, कार्यपालिका या प्रशासन को नीति सम्बन्धी कार्यों में खुली छुट दे देती है। प्रशासन किसी भी नीति को तब तक लागू नहीं कर सकता जब तक कि संसद ने उसे स्वीकृति न दी हो तथा उन नीतियों का संसदीय समितियों द्वारा निरीक्षण न किया गया हो।

2. **बजट पर चर्चा**–बजट संसद द्वारा पारित किया जाता है। उसकी अनुमति के बिना लोक प्रशासक एक नया पैसा खर्च भी नहीं कर सकते। बजट पर चर्चा करते समय संसद के सदस्य प्रशासन की सम्पूर्ण गतिविधियों का मूल्यांकन कर लेते हैं। लोक–सेवकों एवं उच्च पदाधिकारियों के कार्यों का पुनरावलोकन किया जाता है। भ्रष्ट अधिकारियों की अनियमितताओं का पर्दाफाश भी किया जाता है।

   अनुदान की माँग पर मतदान करते समय संसद सदस्य लोक–सेवकों के व्यवहार की विशद चर्चा करते हैं। कटौती प्रस्ताव के रूप में लोक–सेवकों के व्यवहार पर पूरी आलोचना की जाती है। वित्त विधेयक पर विचार के समय संसद सदस्य लोक प्रशासन की अनियमितता, भ्रष्टाचार एवं अन्य दोषों का उल्लेख करते हैं।

3. **राष्ट्रपति का अभिभाषण**–संसदीय अधिवेशन के प्रारम्भ में भारत का राष्ट्रपति जब भाषण देता है तो वह लोक सेवकों के कार्यों एवं उपलब्धियों की भी प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से चर्चा करता है। जब संसद सदस्य इस भाषण पर विचार–विमर्श करते हैं तो लोक–सेवकों के कार्यों को भी आलोचना का विषय बनाया जाता है। संसदीय प्रोसीडिंग्स समाचार–पत्र एवं संचार के दूसरे साधनों द्वारा उनकी गतिविधियाँ जन–सामान्य तक पहुँच जाती हैं। इस प्रकार संसद के वाद–विवाद से प्रशासन के प्रति जनमत निर्माण करने में सहायता मिलती है।

4. **प्रश्न-काल**–संसद की कार्यवाही का पहला घण्टा प्रश्न पूछने के लिए नियत है। इस काल में संसद सदस्य मन्त्रियों से उनकी प्रशासनिक नीतियों एवं कार्यों के सम्बन्ध में विभिन्न प्रश्न पूछते हैं। इसके फलस्वरूप प्रशासन पर संसदीय नियन्त्रण दृढ़ होता है। पूछे जाने वाले प्रश्नों के सम्बन्ध में प्रत्येक मन्त्री सजग रहता है। मन्त्री का यह अधिकार है कि वह किसी प्रश्न का जवाब न दे अथवा टाल दे किन्तु ऐसा करना उनकी लोकप्रियता को कम करता है और जनमत को उसके विरूद्ध कर देगा। प्रत्येक प्रश्न का सन्तोषजनक जवाब प्राप्त करने की दृष्टि से मन्त्री लोक- सेवकों के कार्यों पर नियन्त्रण रखता है। वह अपने विभागीय क्रिया–कलापों में व्यक्तिगत रूचि लेता है। किसी अधिकारी द्वारा की गई गलतियों के प्रति संसद में जवाबदेह होने के कारण मन्त्री स्वयं यह प्रयास करता है कि ऐसे अवसर पैदा न हों। उच्च अधिकारी भी संसदीय प्रश्नों से अपने बाजुओं को बचाकर कार्य करते हैं।

5. **बहस एवं विचार-विमर्श**–प्रश्न–काल के अतिरिक्त समय में भी संसद सदस्य लोक–सेवकों के कार्यों पर टीका-टिप्पणी करते रहते हैं। मुख्यतः तीन अवसरों पर ऐसा होता है–

   (क) नया विधेयक प्रस्तावित होने पर–जब नया विधेयक संसद में प्रस्तावित किया जाता है तो कई सदस्य प्रशासन लोक–सेवकों क कार्यों की पुनरीक्षा कर देते हैं। ऐसे वाद–विवाद के समय प्रशासनिक संगठन की सफलता उपयुक्तता एवं कार्य–कुशलता सामने आती है।

   (ख) आधे घण्टे के विचार–विमर्श के समय–ऐसा प्रावधान है कि यदि प्रश्न–काल में कोई सदस्य सरकार के उत्तर से सन्तुष्ट नहीं हो पाया है अथवा उसके सम्बन्ध में उसे कुछ सन्देह है तो उसके निवारणार्थ वह प्रश्न- काल के तुरन्त बाद ही अध्यक्ष से आधे घण्टे के विचार–विमर्श की अनुमति माँग सकता है।

   (ग) अल्पकालीन विचार–विमर्श के समय–अत्यावश्यक लोकहित के विषय पर विचार करते हुए संसद सदस्य को प्रशासनिक अधिकारियों के कार्यों को वाद–विवाद का विषय बनाया जा सकता है। यह वाद- विवाद अध्यक्ष की अनुमति से अधिक से अधिक ढाई घण्टे का हो सकता है।

   उक्त अवसरों पर संसद में आलोचना के लिए प्रशासन उत्तरदायी रहता है।

6. **स्थगन प्रस्ताव**–संसद सदस्य किसी विभाग के अधिकारियों के अत्याचार एवं अन्याय के विरूद्ध स्थगन प्रस्ताव रख सकते हैं। प्रस्ताव स्वीकृत हो जाने पर सम्बन्धित अधिकारियों की सदन में कटु आलोचना की जाती है। प्रस्ताव के नामंजूर होने पर भी जनता में इन अधिकारियों की बदनामी अवश्य होती है।

7. **अविश्वास प्रस्ताव**–इसे संसद के हाथों में ब्रह्मास्त्र माना जाता है। यदि नागरिक सेवकों के कार्यों के प्रति व्याप्त असन्तोष गहरा तथा व्यापक हो तो कार्यकारिणी को हटाने से सम्बन्धित यह प्रस्ताव आ सकता है। प्रस्ताव पर बहस के दौरान लोक–सेवकों की कटु–आलोचना की जाती है। प्रशासनिक कमजोरियों, असफलताओं एवं ज्यादतियों पर प्रकाश डाला जाता है।

8. **संसदीय समितियाँ**–संसद की समितियाँ लोक–प्रशासन पर नियन्त्रण रखने का पर्याप्त सबल साधन है। कई संसदीय समितियों का मूल उद्देश्य विस्तृत अध्ययन के बाद यह जानकारी प्राप्त करना है कि कहाँ अनियमितता बरती जा रही है, कौन अधिकारी अपनी शक्तियों का दुरूपयोग कर रहा है, किसके द्वारा जनहित विरोधी कार्य किए जा रहे हैं तथा कौन जनता के धन का अपव्यय कर रहा है। संसद की इन नियन्त्रणकारी समितियों में तीन के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। ये हैं–आश्वासन समिति, जनलेखा समिति और प्राक्कलन समिति। मि० एम० एन० कौल के मतानुसार, "आश्वासन समिति की स्थापना के बाद न केवल प्रशासनिक कार्य–कुशलता बढ़ी है वरन् इससे अनेक दोषों का भी निराकरण हुआ है। अब मन्त्रीगण आश्वासन देते समय पर्याप्त सजग रहते हैं और प्रशासन भी दिए गए आश्वासनों पर तुरन्त कार्यवाही करता है। सरकार के विभिन्न मन्त्री अब संसद के प्रति अपने दायित्वों के बारे में सजग हो गए हैं।" जनलेखा एवं प्राक्कलन समितियाँ भारतीय संसद की महत्वपूर्ण आर्थिक समितियाँ हैं। ये दोनों संसद की ओर से प्रकाशन पर आर्थिक नियन्त्रण रखती हैं। जनलेखा समिति सरकारी लेखाओं का परीक्षण करती हैं। किसी सरकारी विभाग का अध्ययन करते समय यह इस बात की जाँच करती है कि विभाग द्वारा किया गया व्यय संसद द्वारा अनुमोदित था अथवा नहीं था। यह व्यय में अनियमितता, अपव्यय, अनाधिकारपूर्ण व्यय और गबन के मामलों को सामने लाती है तथा उनकी आलोचना करती है। प्राक्कलन समिति सरकारी विभागों द्वारा प्रस्तुत अनुमानों का अध्ययन करती है तथा उनमें अन्तर्निहित नीति को ध्यान में रखते हुए मितव्ययता, कार्य–कुशलता, संगठन में सार्थकता, प्रशासनिक सबलता आदि के सम्बन्ध में सिफारिशें प्रस्तुत करती है। इन दोनों समितियों को जनता के धन का प्रहरी कहा जाता है। ये प्रशासनिक विभागों पर वास्तविक एवं प्रभावशाली नियन्त्रण रखती हैं।

9. **लेखा परीक्षण**–भारत का नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक (Comptroller and Auditor General of India) विभिन्न सरकारी विभागों के लेखों की जाँच करता है तथा अनियमितताओं का पता लगाता है। लोक–सेवक हमेशा लेखा परीक्षा के भय से आतंकित रहते हैं तथा जनता के धन का दुरूपयोग नहीं कर पाते हैं।

संसदीय नियन्त्रण की समस्याएँ एवं सीमाएँ

(Problems and Limitations of Parliamentary Control)

प्रो० एपलबी (Prof. Appleby) के अनुसार ससद का हस्तक्षेप प्रशासनिक कार्यों में इतना बढ़ जाता है कि वह नियन्त्रण की परिधियों में सीमित न रहकर हस्तक्षेप बन जाता है और इस प्रकार लोक–सेवकों के कार्य प्रतिबन्धित हो जाते हैं। भारत में सामन्तवादी परम्पराएँ, जनता और अधिकारियों के मध्य दूरी तथा शिक्षा का निम्न स्तर होने के कारण संसदीय नियन्त्रण वाँछनीय लक्ष्यों को प्राप्त नहीं कर पाता है। इसकी प्रमुख सीमाएँ निम्नलिखित हैं–

1. **गैर-विशेषज्ञता**–संसद के सदस्य गैर–विशेषज्ञ होने के कारण लोक–सेवकों की रचनात्मक आलोचना नहीं कर पाते हैं। लोक–सेवक भी स्वेच्छाचारी शक्तियों का प्रयोग इस प्रकार करते हैं जो साँसदों की पकड़ में नहीं आ पातीं। परिणामस्वरूप संसदीय नियन्त्रण का क्षेत्र संकुचित हो जाता है। अधिकांश साँसद अशिक्षित, गैर–अनुभवी और मन्दबुद्धि के होते हैं। फलतः संसदीय नियन्त्रण की उपयोगिता कम हो जाती है। संसदीय बहस के समय ये सजग नहीं रहते और बौद्धिक तर्क–वितर्क में उलझे बिना ही दलीय साथियों को देखकर हाथ खड़ा कर देते हैं। इस प्रकार संसदीय नियन्त्रण प्रभावशाली एवं सार्थक नहीं हो पाता है।

2. **आलोचना के लिए आलोचना**–साँसदों द्वारा प्रशासन की आलोचना उसमें सुधार करने या कार्य–कुशलता लाने के लक्ष्य से नहीं की जाती वरन् दर्शक दीर्घा के लोगों को प्रभावित करने, समाचार–पत्रों में फोटो सहित नाम प्रकाशित करने तथा जनता में लोकप्रियता पाने के लिए की जाती है। उनकी आलोचना के पीछे प्रायः पूर्वाग्रह और व्यक्तिगत मनमुटाव छिपे रहते हैं।

3. **उत्तरदायित्व का प्रश्न**–संसदीय नियन्त्रण के कारण मन्त्रिगण अपने कन्धे से लोक–सेवाओं के कार्यों का दायित्व उतार देते हैं। जब किसी प्रशासनिक अनियमितता का दोष मन्त्री पर डाला जाता है तो मन्त्री उसे लोक–सेवकों की गलती बताकर स्वयं बच निकलता है। साँसदों द्वारा की गई नीति की आलोचना के उत्तर में मन्त्री यह कहते हैं कि नीति तो ठीक थी किन्तु इसे सम्बन्धित अधिकारियों द्वारा सही रूप में क्रियान्वित नहीं किया गया। इस स्थिति में लोक–प्रशासन अकार्य–कुशल तथा भ्रष्ट बन जाता है।

4. **एकपक्षीय आलोचना**—संसद में लोक–सेवकों की आलोचना एकपक्षीय होती है क्योंकि वहाँ उन्हें अपना पक्ष [illegible] कहने का अवसर नहीं दिया जाता है। संसदीय आलोचना के भय से लोक–सेवक प्रभावशाली सॉसदों का [illegible] की नीति अपनाते हुए जनहित और ईमानदारी को ताक पर उठा कर रख देते हैं। उनकी राजनीतिक निष्पक्षता [illegible] हो जाती है। सॉसदों का आश्रय एवं सद्भावना प्राप्त करने के लिए वे कोई भी अवैध या अनुचित कार्य करने [illegible] हो जाते हैं।

5. **दलगत आलोचना**—मन्त्रियों के अधीन होने के कारण लोक–सेवाओं को बहुमत दल का [illegible] जिस प्रकार सत्ताधारी दल की आलोचना करना विरोधी दलों का धर्म होता है उसी प्रकार लोक–[illegible] की आलोचना करना भी उनका कर्त्तव्य मान लिया जाता है। इस प्रकार आलोचक निष्पक्ष नहीं होते [illegible] के कारण लोक–सेवकों के चरित्र और व्यवहार पर लाँछन लगाते हैं।

6. **संवैधानिक स्थिति**—भारतीय संविधान के अनुसार विभागीय कार्यों का उत्तरदायित्व मन्त्री पर होता [illegible] वाली प्रत्येक गड़बड़ी, अनियमितता, भ्रष्टाचार एवं ज्यादती के लिए मंत्री को ही जवाबदेह [illegible] लोक–सेवकों को नहीं। संसद बहस के दौरान मन्त्री के विरुद्ध ही तर्क–वितर्क प्रस्तुत करे [illegible] प्रत्यक्ष रूप से लाँछन नहीं लगाए। लोक–सेवक यह जान जाता है कि उसने यदि ईमानदारी [illegible] मिलेगा, यदि निष्पक्षता बरती तो बदनाम होना पड़ेगा, यदि सज्जनतापूर्ण व्यवहार किया तो [illegible] यदि राजनीतिक प्रभाव की अवहेलना की तो पद से हाथ धोना पड़ेगा। फलतः वह राजनीतिक [illegible] करके स्वार्थ–सिद्धि का प्रयास करता है।

7. **कार्य-कुशलता की क्षति**—संसदीय आलोचना के भय से लोक–सेवक व्यक्तिगत निर्णय नहीं लेना चाहते [illegible] एवं महत्त्वपूर्ण निर्णय के लिए संसद पर निर्भर रहते हैं। फलतः निर्णय उस समय लिए जाते हैं जबकि इनकी [illegible] उपयोगिता भी समाप्त हो जाती है। इससे प्रशासनिक कार्यकुशलता घटती है और प्रशासन कल्याणकारी नहीं है।

8. **लोकसेवाओं में भ्रष्टाचार**—निर्णयात्मक शक्ति के अभाव में लोक–सेवक की प्रशासनिक कार्यों में व्यक्तिगत रुचि [illegible] है। उनमें असन्तोष और निराशा बढ़ती है तथा वाँछनीय उत्साह और प्रेरणा लुप्त हो जाती है। अच्छे कार्य [illegible] न मिलने के कारण वह हतोत्साहित हो जाता है। गैर–विशेषज्ञों द्वारा बेकार के तर्क तथा मीनमेख [illegible] करने का निर्णय लेता है और पथभ्रष्ट होकर अपने बचाव के तरीके अपनाने लगता है। उसका चरित्र [illegible] जाता है।

अन्त में निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि संसदीय नियन्त्रण की अनेक सीमाएँ हैं जिनके परिणामस्वरूप [illegible] पर यह अनेक अवाँछनीय प्रभाव डालता है, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि संसदीय नियन्त्रण को [illegible] दोषों को दूर किया जाना चाहिए। लोक–सेवकों का मनोबल ऊँचा उठाया जाए तथा ऐसी प्रवृत्ति पैदा की जाए [illegible] कि वे संसदीय आलोचनाओं की विशेष परवाह न करें। अपने देश में ब्रिटेन की भाँति कुछ ऐसी परम्पराएँ [illegible] जिनके तहत मन्त्रीगण एक ढाल का कार्य करें तथा अपने विभाग के अधिकारियों को संसद की आलोचना [illegible] बचाएँ। मन्त्रियों को हमेशा यह प्रयास करना चाहिए कि लोक प्रशासकों के अनाम व्यवहार, निष्पक्ष [illegible] ईमानदारी पूर्ण निर्णय की रक्षा की जा सके। ओम्बुड्समैन तथा लोकपाल आदि संस्थाओं की स्थापना [illegible] महत्त्वपूर्ण है।

भारतीय प्रशासन पर न्यायिक नियन्त्रण

(Judicial Control over Indian Administration)

संयुक्त राज्य की भाँति भारत में न्यायिक पुनरीक्षा (Judicial Review) की व्यवस्था है। यहाँ न्यायपालिका स्वतन्त्र [illegible] है और संविधान की रक्षक है। यहाँ ग्रेट–ब्रिटेन की भाँति विधि का शासन अपनाया गया है। तदनुसार सरकारी अधिकारी [illegible] सामान्य नागरिक एक जैसे कानून और एक ही प्रकार के न्यायालयों के विषय हैं। लोक प्रशासन पर न्यायपालिका के [illegible] की अपनी कुछ सीमाएँ और मर्यादाएँ होती हैं। न्यायपालिका कभी स्वयं पहल करके प्रशासनिक [illegible] नहीं करती है। वह केवल तभी हस्तक्षेप करती है जब उसे प्रभावित व्यक्ति द्वारा ऐसा करने के लिए आमन्त्रित किया [illegible]

न्यायपालिका की कार्यवाही घटना घटित हो जाने के बाद प्रारम्भ होती है। इस प्रकार यह भावी अनियमितताओं को रोकने का प्रयास करती है।

न्यायिक नियन्त्रण के अवसर

(Occasion of Judicial Control)

न्यायपालिका निम्नलिखित पाँच परिस्थितियों में भारतीय प्रशासन पर अपना नियन्त्रण लागू करती है–

1. **अधिकारी द्वारा स्वविवेक का दुरूपयोग**–जब लोक–सेवक अपने पद का प्रयोग दूसरे व्यक्ति को हानि पहुँचाने के लिए करते हैं तो ऐसे मामलों को न्यायिक जाँच के लिए प्रस्तुत किया जा सकता है। न्यायालय यह पता लगाता है कि विचारणीय मामले में लोक–सेवक का इरादा क्या था और वह कितना दोषी है?
2. **अधिकार-क्षेत्र का अभाव**–जब कोई लोक–सेवक अपने अधिकार–क्षेत्र से बाहर कार्य करता है तो प्रभावित व्यक्ति उसके विरूद्ध न्यायालय में अपील कर सकता है। न्यायालय तथ्यों की सही व्याख्या करके यह पता लगाएगा कि क्या सम्बन्धित अधिकारी ने अपने अधिकार–क्षेत्र का अतिक्रमण किया है। दोषी अधिकारी के व्यवहार को वह गैर–कानूनी ठहरा सकता है।
3. **वैधानिक त्रुटि**–लोक–सेवकों को कानून क्रियान्वित करने का दायित्व सौंपा जाता है। यदि वे इस शक्ति का दुरूपयोग करते हुए नागरिकों पर अत्यधिक दायित्व थोप दें तो न्यायपालिका हस्तक्षेप कर सकती है। इस प्रकार की कानूनी त्रुटियाँ प्रायः ऐसे लोगों से होती हैं जो या तो महत्त्वाकाँक्षी हैं अथवा कार्यों में अत्यधिक रूचि लेते हैं।
4. **तथ्य-प्राप्ति में त्रुटि**–जिन प्रशासनिक आदेशों में विवादपूर्ण तथ्य होते हैं वे प्रायः न्यायालय के सामने आते हैं। न्यायपालिका उनकी समीक्षा करके उन पर निर्णय देती है।
5. **प्रक्रिया की त्रुटि**–न्यायालय लोक–सेवकों को यह निर्देश दे सकता है कि वे विधि–सम्मत प्रक्रिया का अनुगमन करें। कार्य की प्रक्रिया प्रत्येक विभाग या कार्यालय विशेष की होती है। यदि कार्यालय के अभिलेख यह प्रदर्शित करें कि प्रक्रिया में कहीं गलती की गई है या कुछ छोड़ा गया है तो न्यायपालिका उस प्रशासनिक कार्य को गैर–कानूनी घोषित कर सकती है।

   उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रशासनिक संगठन में न्यायालय के हस्तक्षेप के कई अवसर आते हैं। प्रभावित गैर–सरकारी लोगों द्वारा अधिकारियों को न्यायपालिका के सामने लाया जा सकता है अथवा स्वयं अधिकारी भी कानून के पालन को बाध्यकारी बनाने के लिए न्यायिक लेख जारी करने की माँग कर सकते हैं। डॉ० एल० डी० हवइट के कथनानुसार, "अधिकारी सदैव यह जानते हैं कि उनके कार्यों को न्यायालय में चुनौती दी जा सकती है और यदि उन्होंने गलती की है तो कुछ परिस्थितियों में उन्हें हर्जाना भी देना होगा।"

न्यायिक नियन्त्रण के रूप एवं विधियाँ

(Forms and Methods of Judicial Control)

भारतीय लोक–प्रशासन पर न्यायिक नियन्त्रण की मुख्य विधियाँ निम्नलिखित हैं–

1. **कार्यपालिका कृत व्यवस्थापन को असंवैधानिक घोषित करना**–भारतीय संविधान के अनुच्छेद 123 तथा 213 क्रमशः राष्ट्रपति तथा राज्यपाल को व्यवस्थापिका के अवसान काल में अध्यादेश जारी करने की शक्तियाँ देती हैं। इसके अतिरिक्त हस्तान्तरित व्यवस्थापन के अन्तर्गत भी कार्यपालिका कानून बनाती है तथा प्रशासन इनको क्रियान्वित करता है। न्यायपालिका ऐसे व्यवस्थापन को जो संविधान के प्रतिकूल है, असंवैधानिक घोषित कर सकती है।
2. **हस्तान्तरित व्यवस्थापन पर नियन्त्रण**–स्वतन्त्रता के बाद भारत में हस्तान्तरित व्यवस्थापन का पर्याप्त विकास हुआ है। इसके सम्बन्ध में न्यायालय को यह तय करने की शक्ति है कि कार्यपालिका को हस्तान्तरित व्यवस्था की शक्ति थी अथवा नहीं थी और इसके अन्तर्गत किया गया व्यवस्थापन संवैधानिक है अथवा नहीं है। यह हस्तान्तरण कभी अनियन्त्रित और आरक्षित नहीं होता है। कानून द्वारा इस पर प्रतिबन्ध लगाया जाता है। न्यायालय का यह कर्त्तव्य है कि वह व्यवस्थापिका को कार्यपालिका के लिए स्वेच्छाचारी शक्ति न सौंपने दे। भारतीय सर्वोच्च न्यायालय ने हस्तान्तरण के अधीन बनाए नियमों की जाँच के लिए कुछ मापदण्ड निर्धारित किए हैं। यदि कोई नियम इनके अनुरूप है तो ठीक है अन्यथा ठीक नहीं है।

3. **प्रशासनिक अधिकारियों के निर्णयों के विरूद्ध अपीलें**–प्रशासनिक अधिकारियों के निर्णयों के विरुद्ध न्यायालय में अपील की जाती है। अपील का यह अधिकार प्राय: कानूनी व्याख्या से सम्बन्धित प्रश्नों पर प्रदान किया जाता है। न्यायालय अपील पर विचार करते समय प्रशासनिक अधिकारी के निर्णय का पूर्णरूपेण विवेचन करता है। उसका निष्कर्ष इस निर्णय के विरुद्ध भी जा सकता है।

4. **करारोपण**–प्रशासनिक व्यय का निर्वाह करने के लिए कार्यपालिका द्वारा कानून सम्मत कर एकत्रित किए जाते हैं। इसलिए यह कार्य न्यायिक नियन्त्रण का विषय है। न्यायालय यह देखता है कि ये कर व्यवस्थापिका द्वारा पारित कानून के अनुसार ही लगाए जाएँ और सम्बन्धित कानून भी संवैधानिक होना चाहिए।

5. **सरकार विरोधी अभियोग**–नागरिकों के अधिकार तथा स्वतन्त्रताओं की रक्षा के लिए राज्य के विरुद्ध न्यायालय में कार्यवाही की जा सकती है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 300 में यह कहा गया है कि भारत सरकार या किसी भी राज्य सरकार द्वारा या उसके विरूद्ध मुकदमा चलाया जा सकता है। यह मुकदमा संसद अथवा राज्य की व्यवस्थापिका द्वारा निर्मित अधिनियम के किसी प्रावधान के अन्तर्गत होना चाहिए।

6. **सरकारी अधिकारियों के विरूद्ध अभियोग**–सभी सरकारी अधिकारी अपने कार्यों के लिए न्यायपालिका के प्रति उत्तरदायी होते हैं। प्रशासन से किसी प्रकार की शिकायत वाले व्यक्ति के लिए न्यायालय का द्वार खुला रहता है। भारतीय संविधान ने केवल राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, प्रधानमंत्री और राज्यपालों को न्यायिक कार्यवाही से मुक्ति प्रदान की है। यह उनके पद की गरिमा, गौरव और सम्मान की दृष्टि से है। शेष कार्यपालिका को ऐसी उन्मुक्ति प्राप्त नहीं है।

   अधिकारी के विरूद्ध की जाने वाली कार्यवाही के स्तर के आधार पर अभियोग तय होता है। इस दृष्टि से न्यायपालिका के अधिकारियों को अन्य नागरिक सेवकों से भिन्न रखा जाता है। न्याय पदाधिकारी रक्षा अधिनियम, 1950 के अन्तर्गत न्यायाधीशों को उन्मुक्तियाँ प्रदान की गई हैं। अन्य अधिकारियों के बारे में भारतीय संविधान के अनुच्छेद 299 (2) में कहा गया है कि "कोई अधिकारी ऐसे समझौते अथवा आश्वासन के लिए व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी नहीं है जो संविदा में अथवा अधिनियम के लिए निर्मित या सम्पन्न किया गया हो।" लोक–सेवक अपने अवैध तथा असामाजिक कार्यों के लिए व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी है। उसे एक साधारण नागरिक की भाँति देश के कानून के अधीन रखा गया है। जब वह अपने पद पर कार्य करते हुए कोई अपराध करता है तो उसके विरूद्ध की गई न्यायिक कार्यवाही में एक विशेष प्रक्रिया अपनाई जाती है।

7. **प्रशासनिक कार्यों और निर्णयों का न्यायिक पुनरावलोकन** (Judicial Review)–न्यायालय प्रशासनिक व्यवहार का पुनरावलोकन करने का अधिकार रखता है। न्यायालय की यह शक्ति संयुक्त राज्य अमेरिका में काफी व्यापक और प्रभावशाली है किन्तु भारत में न्यायिक पुनरावलोकन पर अनेक प्रतिबन्ध लगाए गए हैं। अनेक विषय एसे हैं जिन पर प्रशासनिक पुनरीक्षा विषय पर अधिक गहनता से विचार नहीं किया गया है। साधारणतः न्यायपालिका प्रशासनिक कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करती है। भारतीय संविधान में न्यायिक निर्णय को अन्तिम माना जाता है। न्यायिक पुनरावलोकन नागरिकों के अधिकारों और स्वतन्त्रताओं की रक्षा के लिए अत्यन्त उपयोगी है, किन्तु इसमें समस्या यह है कि न्यायाधीश तकनीकी विषयों पर विचार नहीं कर सकते हैं। एक न्यायाधीश जनोपयोगी सेवाओं की उपलब्धियों का मूल्यांकन तभी कर सकता है जब वह कानूनवेता होने के साथ–साथ एक विशेषज्ञ, लेखा अधिकारी, इन्जीनियर, वित्तीय जानकार आदि भी हो। किसी एक न्यायाधीश में इन सभी विशेषताओं का मिलना असम्भव है।

प्रमुख न्यायिक उपचार

(Important Judicial Remedies)

सरकारी संस्थाओं द्वारा प्रशासनिक शक्ति का दुरूपयोग करने पर न्यायालय द्वारा की जाने वाली कार्यवाही न्यायिक रूप कही जाती है। प्रमुख न्यायिक उपचार निम्नलिखित हैं–

1. **संविधि के उल्लंघन पर**–जब लोक–सेवक अपनी सॉविधिक (Statutory) शक्तियों का प्रयोग नहीं करते अथवा कर्तव्यों का निर्वाह नहीं करते तो न्यायालय द्वारा उन्हें ऐसा करने का आदेश दिया जा सकता है। प्रो० स्मिथ (Prof. Smith) के कथनानुसार, "यह शक्ति लोक–प्रशासन का अन्तिम हथियार है। यह एक अपराध के रूप में कार्य करती है।

2. **सार्वजनिक कार्य सम्पन्न न करने पर**–भारतीय कानून सार्वजनिक कर्त्तव्य सम्पन्न न करने पर दण्ड की व्यवस्था करता है। न्यायालय द्वारा दोषी अधिकारियों के विरूद्ध फौजदारी (Criminal) प्रतिबन्ध लगाए जा सकते हैं। अधिकारी द्वारा सार्वजनिक कार्य न करने पर होने वाली क्षति को वसूल करने की कार्यवाही की जा सकती है। प्रभावित, व्यक्ति ऐसे अधिकारी के विरूद्ध परमादेश जारी करने की प्रार्थना कर सकता है। अध्यादेश न्यायपालिका की इच्छा पर निर्भर है, इसे कोई व्यक्ति अधिकार के रूप में नहीं मान सकता है।

3 **स्वविवेक की शक्तियों का दुरूपयोग होने पर**–लोक–सेवक यदि अपनी स्वविवेक (Discretionary) की शक्तियों का प्रयोग न करें या अतिक्रमण करें अथवा दुरूपयोग करें तो उनके विरूद्ध न्यायिक कार्यवाही की जा सकती है। न्यायालय इस सम्बन्ध में कोई कदम उठाते समय निम्नलिखित सिद्धान्तों के अनुसार व्यवहार करता है–

(क) सम्बन्धित अधिकारी उसकी स्वविवेकी शक्तियों (Discretionary Powers) का प्रयोग करने के लिए दबाया जा सकता है, किन्तु किसी विशेष रूप में प्रयोग करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता है।

(ख) स्वविवेक की शक्ति का प्रयोग साधारणतः उसी अधिकारी द्वारा किया जाना चाहिए जिसे यह सौंपी गई है।

(ग) प्रशासनिक अधिकारी को स्वयं ही कार्य का निर्णय लेना चाहिए उसे अन्य निकाय की आज्ञा के अधीन नहीं रहना चाहिए।

(घ) अधिकारी को स्वविवेक की शक्तियों का प्रयोग करते समय उनकी सीमाओं का अतिक्रमण नहीं करना चाहिए।

(ङ) अधिकारी को असम्बन्धित बातों को छोड़ते हुए तथा सम्बन्धित बातों पर विचार करते हुए सद्विश्वास के साथ कार्य करना चाहिए।

4. **असाधारण उपचार** (Extra Ordinary Remedy)–प्रशासन पर नियन्त्रण रखने के लिए न्यायपालिका विभिन्न लेख जारी करती है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 32(2) के अनुसार उच्चतम न्यायालय नागरिकों के अधिकारों और स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए आवश्यक आदेश, निर्देश तथा लेख जारी कर सकता है। इन उपचारों को असाधारण इसलिए कहा जाता है क्योंकि न्यायालय इन्हें किसी के अधिकार के रूप में नहीं वरन् स्वेच्छा से प्रसारित करते हैं। ये प्रायः वहाँ प्रसारित किए जाते हैं जहाँ अन्य साधन अपर्याप्त हों। भारतीय सर्वोच्च न्यायालय पाँच लेख जारी कर सकता है–

(क) **बन्दी प्रत्यक्षीकरण** (Habeas Corpus)–इस लेख द्वारा बन्दी बनाए व्यक्ति को तुरन्त न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करने को कहा जाता है ताकि उसे बन्दी बनाने की वैधानिकता की जाँच की जा सके। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की रक्षार्थ यह लेख किले का कार्य करता है। इसके कारण कोई सरकारी विभाग या अधिकारी सामान्य नागरिक के अधिकारों को नहीं छीन सकता है।

(ख) **परमादेश** (Mandamus)–यह लेख किसी व्यक्ति, निगम अथवा अधीनस्थ न्यायालय को निर्देशित करने के लिए जारी किया जाता है। इसके माध्यम से न्यायालय लोक–सेवकों को कार्य करने के लिए बाध्य कर सकता है।

(ग) **निषेधाज्ञा** (Prohibition)–यह लेख उच्च स्तरीय न्यायालय द्वारा अधीनस्थ न्यायालय को जारी किया जाता है। इसका उद्देश्य अधीनस्थ न्यायालय को वह कार्य करने से रोकना है जिसे वह कानूनन रोकने का अधिकारी नहीं है। इस लेख का प्रभाव–क्षेत्र न्यायिक अथवा अर्द्धन्यायिक है। प्रशासन पर इस साधन द्वारा बहुत कम नियन्त्रण रखा जाता है। परमादेश में कार्य करने को कहा जाता है जबकि निषेध आज्ञा में कुछ कार्य करने पर रोक लगाई जाती है।

(घ) **उत्प्रेषण लेख** (Certiorari)–इसका शाब्दिक अर्थ है प्रमाणित होना या निश्चित होना। इस लेख द्वारा अधीनस्थ कार्यालय में विचाराधीन विषय पर सूचना प्राप्त करने की माँग की जाती है। इसका क्षेत्र भी न्याय कार्य है। इसके आधार पर छोटी अदालत का निर्णय रूक जाता है या रद्द हो जाता है।

(ङ) **अधिकार-पृच्छा** (Quo-warrants)–यह लेख लोक–सेवकों पर न्यायिक नियन्त्रण की प्रत्यक्ष प्रणाली है, इसके द्वारा न्यायालय सम्बन्धित अधिकारी से यह पूछता है कि उसने अमुक कार्य किस आधार पर किया। किसी कार्य की वैधानिकता जाँचने के लिए इस प्रकार का लेख निम्नलिखित परिस्थितियों में जारी किया जा सकता है–

(i) यह लेख केवल सरकारी अधिकारी या संस्था के सम्बन्ध में ही जारी किया जा सकता है। किसी व्यक्तिगत या गैर–सरकारी कार्यालय के विरूद्ध इसे प्रसारित नहीं किया जाता है।

(ii) यह केवल सार्वजनिक प्रकृति के कार्यों के सम्बन्ध में जारी किया जाता है।

(iii) सम्बन्धित लोक–सेवक स्थायी कर्मचारी होना चाहिए।

(iv) जिस व्यक्ति के विरूद्ध कार्यवाही की जाए वह नाममात्र का नहीं वरन् वास्तविक कार्यकर्ता होना चाहिए।

न्यायिक नियन्त्रण के उपर्युक्त साधारण और असाधारण उपचार, प्रशासन को उनकी सीमाओं में कार्य करने के लिए प्राप्त करते हैं। ये लोक–सेवकों को अधिकार–क्षेत्र का अतिक्रमण करने से रोकते हैं तथा दायित्वों के प्रति उदासीनता या उपेक्षा पर रोक लगाते हैं। आलोचकों के मतानुसार, न्यायिक नियन्त्रण, व्यक्तिगत स्वतन्त्रता एवं अधिकारों की रक्षा के लिए श्रेष्ठ उपाय है किन्तु कभी–कभी इसका अत्यधिक दबाव प्रशासन को अपाहिज बना देता है।

5. **न्यायिक आज्ञाएँ एवं घोषणाएँ**–न्यायिक नियन्त्रण का अन्य तरीका न्यायालय द्वारा दी जाने वाली आज्ञाएं (Injunctions) तथा की जाने वाली घोषणाएँ हैं। जब लोक–सेवक द्वारा कोई कार्य करने या दोहराने की धमकी दी जाती है तो उसे रोकने के लिए न्यायालय आदेश देता है। इसके द्वारा लोक–सेवकों को अधिकारों का दुरूपयोग करने तथा गलतियां करने से रोका जाता है। आदेश निषेधात्मक रूप से अवरोधात्मक है और सकारात्मक रूप में परमादेशात्मक है। इसके द्वारा व्यक्तिगत अधिकारों में होने वाले हस्तक्षेप को रोका जाता है। यह अशिष्टतापूर्ण व्यवहार के सम्बन्ध में अधिक उपयुक्त रहता है।

न्यायालय द्वारा घोषणा उस समय की जाती है जब कोई व्यक्तिगत कानून की व्याख्या द्वारा अपने अधिकारों के सम्बन्ध में स्पष्टीकरण की माँग करता है। इस प्रकार की घोषणा व्यक्ति के अधिकारों का एक प्रामाणिक आधार बन जाती है और भविष्य में आवश्यकता के समय वह इसी के आधार पर कार्यवाही कर सकता है।

न्यायिक नियन्त्रण की सीमाएं

(Limitations of Judicial Control)

नागरिकों की स्वतन्त्रता एवं अधिकारों की सुरक्षा हेतु निःसन्देह कानून के शासन के अन्तर्गत उपरोक्त वर्णित न्यायिक उपचारों के माध्यम से प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा अपनी शक्तियों व सत्ता के दुरूपयोग पर कठोर नियन्त्रण की व्यवस्था की गई है किन्तु न्यायिक नियन्त्रण की कुछ सीमाएं भी हैं अर्थात् प्रशासन पर नियन्त्रण रखने के लिए न्यायपालिका को कई कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है जिनका वर्णन निम्नलिखित हैं–

1. **सीमित न्यायिक नियन्त्रण**–सभी प्रशासनिक निर्णय व कार्य न्यायिक के दायरे में नहीं आते। प्रशासन की अनेक ऐसी कार्यवाहियाँ हैं जिनकी संविधान के अनुसार न्यायपालिका समीक्षा नहीं कर सकती। यह परम्परा बनती जा रही है कि व्यवस्थापिका कानून बनाकर कुछ प्रशासनिक कार्यों को न्यायालय के क्षेत्राधिकार से बाहर कर देती है उदाहरणार्थ भारत में निष्क्रान्त सम्पत्ति प्रबन्ध अधिनियम, 1950 (Administration of Evacuee Property Act, 1950) के अन्तर्गत अन्तिम न्यायिक शक्तियाँ अभिरक्षकों (Custodians) तथा निष्क्रान्त सम्पत्ति के महाअभिरक्षक को सौंपी गई हैं तथा न्यायालय उनके निर्णय में दखल नहीं दे सकता।

2. **न्यायपालिका द्वारा अपनी ओर से हस्तक्षेप न होना**–जो प्रशासनिक कार्यवाहियां न्यायपालिका के क्षेत्राधिकार में हैं उनमें भी वह अपनी ओर से हस्तक्षेप नहीं कर सकती। न्यायालय तभी किसी मामले में सुनवाई करता है जब कोई प्रभावित व्यक्ति या संस्था न्यायालय के समक्ष यह प्रार्थना करता है कि अमुक प्रशासक के किसी कार्य या निर्णय से उसके अधिकारों का उल्लंघन हुआ है या होने की सम्भावना है। हम जानते हैं कि आम मनुष्य आसानी से अदालतों के मामले में नहीं पड़ता अर्थात् वह मुकद्दमेबाजी (Litigation) से दूर रहना चाहता है और अन्याय को ही स्वीकार कर लेता है।

3. **जटिल व धीमी न्यायिक प्रक्रिया**–न्यायिक प्रक्रिया बड़ी जटिल व धीमी होती है क्योंकि न्यायालयों को एक निर्धारित प्रक्रिया एवं पद्धति के अनुसार कार्यवाही करनी होती है। जो सामान्य नागरिक की समझ में नहीं आता। याचिका करने वाला यह नहीं जानता कि उसे न्याय कब प्राप्त होगा। हम जानते हैं कि न्यायालयों में वर्षों से अनेकों मुकदमे लटके हुए हैं। कई बार न्यायालय से निर्णय अर्थात् न्याय मिलने तक इतनी हानि हो चुकी होती है जिसकी क्षतिपूर्ति नहीं की जा सकती। अतः यह ठीक ही कहा गया है कि न्याय में देरी का अर्थ है न्याय से इन्कारी (Justice deleyed is justice denied)। कई बार तो पीड़ित व्यक्ति न्याय की प्रतीक्षा करते–करते इतना निराश हो जाता है कि वह प्रशासनिक अत्याचार को सहने के लिए विवश हो जाता है।

4. **प्रभावहीन उपचार**--कई बार न्यायपालिका द्वारा प्रदान किये गये उपचार अपर्याप्त व प्रभावहीन होते हैं।

5. **खर्चीली प्रक्रिया**--न्यायिक प्रक्रिया बड़ी खर्चीली है जबकि अधिकांश जनता निर्धन है। अतः सामान्य जनता इससे लाभ नहीं उठा सकती। दावा दायर करने का अर्थ है न्यायालय की फीस (Court fee), वकीलों की फीस, गवाहों को पेश करने का खर्चा आदि जो बहुत कम लोग ही अदा कर सकते हैं। जो इतना भारी खर्चा सहन नहीं कर सकते, उन्हें प्रशासकीय अन्याय को ही सहन करना पड़ता है।

6. **न्यायाधीशों का केवल कानूनी विशेषज्ञ होना**--प्रशासकीय कार्य अत्यन्त तकनीकी प्रकृति के कारण न्यायिक समीक्षा के महत्व को कम कर देते हैं। न्यायाधीश केवल कानूनी विशेषज्ञ होते हैं किन्तु उन्हें प्रशासन को पेचीदा एवं जटिल समस्याओं को सुलझाना पड़ता है जो बड़ा कठिन कार्य है इसीलिए आजकल प्रशासनिक न्यायाधिकरण (Administrative Tribunals) जो अच्छा समझा जाता है जिनमें तकनीकी मामलों के विशेषज्ञों को सदस्य के रूप में शामिल किया जाता है।

अन्त में हम यह कह सकते हैं कि प्रशासन पर अनेक प्रकार से नियन्त्रण की व्यवस्था की गई ताकि वह अपनी शक्तियों व प्राधिकार का दुरूपयोग करके नागरिकों की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता व मौलिक व अन्य अधिकारों का अतिक्रमण न कर सके। किन्तु आज का युग प्रशासनिक युग है जिसके कारण प्रशासन से प्रायः सामान्य नागरिक असन्तुष्ट हैं। विकासशील देशों में सामान्य जनता अनपढ़ व निर्धन होने के कारण प्रशासन से भयभीत रहती है क्योंकि वहां के प्रशासकों की प्रवृत्ति तानाशाही है। अतः प्रशासन पर नियन्त्रण के सभी साधन अधिक प्रभावशाली सिद्ध नही हुए हैं। किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि प्रशासन पर न्यायपालिका का नियन्त्रण समाप्त कर देना चाहिए। वास्तव में प्रजातन्त्र में राज्य द्वारा अपने नागरिकों को कुछ अधिकार व स्वतन्त्रताएं दी जाती हैं और प्रशासन इन अधिकारों का अतिक्रमण नहीं कर सकता। यदि वह ऐसा करता है तो न्यायपालिका हस्तक्षेप करके प्रभावित नागरिकों को राहत पहुँचाती है तथा दोषी प्रशासकों की भर्तसना करती है यही कारण है कि न्यायिक नियन्त्रण के भय से आज सरकार विधेयक बनाने, नीति निर्मित करने तथा महत्त्वपूर्ण निर्णय लेने से पूर्व उनके सभी कानूनी पहलुओं पर विचार करती है एवं कानूनविदों से परामर्श करती है ताकि बाद में उसे नीचा न देखना पड़े।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

(Objective Type Questions)

लोक प्रशासनः अर्थ, प्रकृति, क्षेत्र एवं महत्व

1. "वर्तमान युग में लोक प्रशासन व्यावहारिक रूप से हमारे सम्पूर्ण जीवन और कार्यों पर छा चुका है, तथा हमारी सभ्यता का मूलाधार है।" यह कथन किसका है–
   (अ) गार्नर का (ब) वुडरो विल्सन का
   (स) ब्लंशली का (द) डिमॉक एवं डिमॉक का
2. "लोक प्रशासन शब्द किन शब्दों से मिलकर बना है–
   (अ) लोक और प्रशासन (ब) लोक तथा शासन
   (स) लोक तथा प्रबन्ध (द) लोक और एडमिनिस्ट्रेशन
3. "एडमिनिस्ट्रेशन' शब्द का सम्बन्ध है–
   (अ) लैटिन से (ब) अंग्रेजी से
   (स) स्पेनिश से (द) हिब्रू से
4. प्रशासन से अर्थ है–
   (अ) कार्यों का प्रबन्ध करना (ब) कार्यों का नियोजन करना
   (स) कार्यों का संचालन करना (द) कार्यों को अंजाम देना
5. लोक प्रशासन के दो प्रमुख दृष्टिकोण हैं–
   (अ) एकीकृत तथा प्रबन्धात्मक (ब) परम्परावादी और आधुनिक
   (स) व्यवहारवादी तथा उत्तर व्यवहारवादी (द) संरचनात्मक–प्रकार्यात्मक
6. जो लोक प्रशासन को एक नीति–विज्ञान मानते हैं, वे उसे समीप ले जाते हैं–
   (अ) राजनीति के (ब) अर्थशास्त्र के
   (स) इतिहास के (द) मनोविज्ञान के
7. कला में अभिव्यक्ति होती है–
   (अ) सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् की (ब) लोक कल्याण की
   (स) सुन्दरता की (द) कलात्मकता की
8. लोक प्रशासन विज्ञान के किस रूप का प्रतिनिधित्व करता है–
   (अ) प्राकृतिक विज्ञान का (ब) मनोविज्ञान का
   (स) भौतिक विज्ञान का (द) सामाजिक विज्ञान का
9. 'एडमिनिस्ट्रेटिव बीहेवीयर' (Administrative Behaviour) पुस्तक के लेखक हैं--
   (अ) हर्बर्ट साइमन (ब) बियर्ड
   (स) बकल (द) कूपलैण्ड

10. 'मॉडल ऑफ मैन' (Model of Man) के रचयिता हैं—
(अ) विलोबी (ब) मरसन
(स) उर्विक (द) हर्बर्ट साइमन

11. लोक प्रशासन में आधुनिक राज्य को संज्ञा दी जाती है—
(अ) पुलिस राज्य की (ब) सर्व–सत्तावादी राज्य की
(स) निरंकुश राज्य की (द) प्रशासकीय राज्य की।

12. लूथर गुलिक का किस विचारधारा से सम्बन्ध है--
(अ) व्यवहारवाद से (ब) उत्तर--व्यवहारवाद से
(स) निर्णय–प्रक्रिया (द) पोस्डकोर्ब से

13. 'विज्ञान शब्द' का अर्थ है—
(अ) क्रमबद्ध ज्ञान (ब) तर्कपूर्ण ज्ञान
(स) तकनीकी ज्ञान (द) नैतिक ज्ञान

14. 'समन्वय' से आशय है—
(अ) कार्य के विभिन्न भागों को परस्पर सम्बन्धित करना
(ब) संगठन स्थापित करना
(स) कार्य का उचित निरूपण करना
(द) कार्य का सुयोग्य रूप से संचालन करना।

15. 'पोस्डकार्ब' दृष्टिकोण की आलोचना की जाती है--
(अ) इसकी संकीर्णता के कारण (ब) इसकी यान्त्रिकता के कारण
(स) इसकी अपूर्णता के कारण (द) उपर्युक्त सभी कारणो से

16. फैलिक्स ए. नीग्रो ने लोक प्रशासन के क्षेत्र में कितनी बातों को गिनाया है—
(अ) एक को (ब) दो को
(स) चार को (द) छह को

17. लोक प्रशासन क्या है?
(अ) यह एक कला है (ब) यह एक विज्ञान है
(स) यह कला और विज्ञान दोनों ही है (द) यह उपर्युक्त में से कोई भी नहीं है।

उत्तर

(1) द	(2) अ	(3) ब	(4) अ	(5) अ	(6) अ
(7) अ	(8) द	(9) अ	(10) द	(11) द	(12) द
(13) अ	(14) अ	(15) द	(16) द	(17) स।	

लोक प्रशासन एवं निजी प्रशासन तथा नवीन लोक प्रशासन

1. लोक प्रशासन पर्याय बन गया है—
(अ) समाज का (ब) सरकार का
(स) समुदाय का (द) सम्प्रभुता का

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

2. लोक प्रशासन की बहुमुखी उपयोगिता है–
   (अ) सभ्यता का संरक्षक (ब) सामाजिक प्रगति का प्रेरक
   (स) व्यक्तियों के लिए (द) उपर्युक्त सभी
3. लाक प्रशासन का महत्त्व है–
   (अ) प्रशासकों के लिए (ब) छात्रों के लिए
   (स) व्यक्तियों के लिए (द) उपर्युक्त सभी के लिए
4. लोक प्रशासन एक समन्वयकारी शक्ति है–
   (अ) जनता और सरकार के बीच (ब) शासक और शक्तियों के बीच
   (स) अधिकारों तथा प्रभुसत्ता के बीच (द) कोई नहीं
5. लोक–प्रशासक प्रतीक है–
   (अ) राजनीतिक कार्यपालिका के (ब) स्थायी कार्यपालिका के
   (स) अस्थायी कार्यपालिका के (द) अध्यक्षात्मक कार्यपालिका
6. लोक प्रशासन के महत्त्व के लिए सर्वाधिक उत्तरदायी कारक रहा है–
   (अ) लोक कल्याणकारी राज्य (ब) पुलिस राज्य
   (स) प्रशासकीय राज्य (द) समाजवादी राज्य
7. सामाजिक प्रगति का आशय है–
   (अ) सामाजिक स्थिरता से (ब) सामाजिक विकास से
   (स) सामाजिक न्याय से (द) उपर्युक्त सभी से
8. लाल फीताशाही लोक प्रशासन की विशेषता है किन्तु निजी प्रशासन में इसके लिए कोई स्थान नहीं। यह कथन है–
   (अ) हर्बर्ट साइमन का (ब) वुडरो विल्सन का
   (स) डॉ॰ पी॰ डी॰ शर्मा का (द) डॉ॰ एम॰ पी॰ शर्मा का
9. सभी प्रशासन एक ही वस्तु हैं और इसके मौलिक लक्षण एक जैसे हैं। इस विचारधारा के प्रतिपादक हैं–
   (अ) हेनरी फेयल (ब) एम॰ पी॰ फालेट
   (स) उर्विक (द) उपर्युक्त सभी
10. निजी या व्यक्तिगत प्रशासन तथा लोक प्रशासन में मुख्य समानताएं हैं–
   (अ) कौशल की समानता (ब) विकास की समानता
   (स) प्रबन्धात्मक समानता (द) उपर्युक्त सभी
11. निजी प्रशासन तथा लोक प्रशासन में मुख्य अन्तर है–
   (अ) उद्देश्य का (ब) उत्तरदायित्व का
   (स) प्रकृति का (द) उपर्युक्त सभी का
12. लोक प्रशासन का लक्ष्य है–
   (अ) लोक कल्याण (ब) मुनाफा कमाना
   (स) पूंजीपतियों की जेबें भरना (द) शोषण करना

13. निजी प्रशासन लोक प्रशासन की तुलना में अधिक श्रेष्ठ है–

(अ) सेवा के मामले में (ब) जनकल्याण के मामले में

(स) लाभ के मामले में (द) प्रशासकीय प्रबन्ध के मामले में

उत्तर

(1) ब (2) द (3) द (4) स (5) ब (6) अ

(7) द (8) अ (9) द (10) द (11) द (12) अ

(13) द।

लोक प्रशासन का अन्य सामाजिक विज्ञानों से सम्बन्ध

1. लोक प्रशासन का अन्य सामाजिक विज्ञानों से अध्ययन करते हुए जिस पद्धति का सहारा लिया जाता है, वह है–

(अ) ऐतिहासिक पद्धति (ब) वैधानिक पद्धति

(स) अन्तर अनुशासनात्मक पद्धति (द) दार्शनिक पद्धति

2. 'प्रशासन राजनीति से बाहर है।' यह वाक्य है–

(अ) वुडरो विल्सन का (ब) मुनरो का

(स) विलोबी का (द) फायनर का

3. 'प्रशासन का एक बहुत बड़ा भाग ऐसा है जो राजनीति से सम्बन्धित नहीं है।'

(अ) मुनरो (ब) प्रो. गुडनाऊ

(स) लूथर गुलिक (द) उर्विक

4. परम्परावादी अथवा संकीर्णतावादी दृष्टिकोण के मुख्य प्रतिपादक हैं–

(अ) वुडरो विल्सन (ब) उर्विक

(स) लूथर गुलिक (द) विलोबी

5. राजनीति को प्रशासन से और प्रशासन को राजनीति से बाहर नहीं किया जा सकता' इस अवधारणा के प्रतिपादक है–

(अ) हर्बर्ट साइमन (ब) लूथर गुलिक

(स) गुडनॉव (द) जॉन स्मिथ

6. जिस देश में राजनीति और प्रशासन के बीच स्वस्थ विकास में परम्पराएँ सहायक बनीं, वह देश है–

(अ) फ्रान्स (ब) संयुक्त राज्य अमेरिका

(स) ग्रेट ब्रिटेन (द) भारत

7. जिस विद्वान ने राजनीतिज्ञों तथा प्रशासकीय अधिकारियों के बीच दस भेद गिनाये, उसका नाम है–

(अ) पिफनर (ब) उर्विक

(स) एल. डी. हाइट (द) विलोबी

8. 'लोक प्रशासन सार्वजनिक कानून का अधिशासी व्यापक स्वरूप बन जाता है।' यह कथन है–

(अ) लूथर गूलिक का (ब) उर्विक का

(स) वुडरो विल्सन का (द) मुनरो का

9. 'लोक प्रशासन को विधि (कानून) के दाहिनी ओर रहना होता है।'— इसके प्रतिपादक हैं—
   (अ) डॉ. एम. पी. शर्मा (ब) डॉ. बी. एम. शर्मा
   (स) डॉ. पी. डी. शर्मा (द) डॉ. एल. सी. शर्मा
10. विधि या कानून की लोक प्रशासन में मुख्य भूमिका है—
   (अ) देश में विधि के शासन की स्थापना करना
   (ब) कानून लोक प्रशासन का लक्ष्य होता है
   (स) लोक प्रशासन का कानून के अन्तर्गत कार्य करना
   (द) उपर्युक्त सभी
11. 'प्रशासन का अध्ययन सांविधानिक सत्ता के समुचित वितरण के अध्ययन के साथ घनिष्ठतः सम्बन्धित है' यह कथन है—
   (अ) विलोबी का (ब) वुडरो विल्सन का
   (स) लूथर गुलिक का (द) उर्विक का
12. वर्तमान लोक–कल्याणकारी राज्य में लोक प्रशासन का दायित्व है—
   (अ) आर्थिक क्रियाओं को सम्पन्न करना (ब) आर्थिक योजनायें पूरी करना
   (स) राष्ट्रीय उद्योगों को संरक्षण प्रदान करना (द) उपर्युक्त सभी दायित्वों का निर्वाह करना
13. लोक प्रशासन का मुख्य लक्ष्य है—
   (अ) देश की समस्याओं का समाधान करना (ब) एकाधिकारवादी प्रवृत्ति का अन्त करना
   (स) आर्थिक शोषण को पनपने नहीं देना (द) उपर्युक्त सभी
14. लोक प्रशासन और मनोविज्ञान में घनिष्ठ सम्बन्ध हैं क्योंकि—
   (अ) दोनों मानवीय व्यवहार से सम्बन्धित हैं (ब) दोनों मानवीय व्यवहार का अध्ययन करते हैं
   (स) दोनों का लक्ष्य मानव कल्याण है (द) उपर्युक्त सभी

उत्तर

(1) स (2) अ (3) ब (4) अ (5) ब (6) स
(7) अ (8) स (9) स (10) द (11) ब (12) द
(13) द (14) द।

मुख्य कार्यपालिका

1. संगठन का सफल संचालन मुख्यतः निर्भर करता है—
   (अ) मुख्य कार्यपालिका पर (ब) अधीनस्थ कर्मचारियों पर
   (स) बड़े प्रशासनिक अधिकारियों पर (द) इनमें से कोई नहीं
3. भारत में वास्तविक रूप में मुख्य कार्यपालिका है—
   (अ) राष्ट्रपति (ब) प्रधानमंत्री
   (स) राज्यपाल (द) मुख्यमंत्री
4. राज्यों में वास्तविक रूप में मुख्य कार्यपालिका का प्रतीक है—
   (अ) राज्यपाल (ब) उपराज्यपाल
   (स) मुख्यमन्त्री (द) विरोधीदल का नेता

5. मुख्य कार्यपालिका से तात्पर्य है–
   (अ) प्रशासनिक अध्यक्ष से (ब) कार्यपालिका के मुखिया से
   (स) कार्यपालिका से (द) उपर्युक्त सभी से
6. औपचारिक मुख्य कार्यपालिका है–
   (अ) इंग्लैण्ड का सम्राट (ब) भारत में राष्ट्रपति
   (स) नेपाल का सम्राट (द) उपर्युक्त सभी
7. संयुक्त राज्य अमेरिका का राष्ट्रपति है–
   (अ) औपचारिक कार्यपालिका (ब) नाममात्र की कार्यपालिका
   (स) वास्तविक कार्यपालिका (द) संवैधानिक कार्यपालिका
8. संसदीय कार्यपालिका का प्रचलन है–
   (अ) भारत में (ब) श्रीलंका में
   (स) फ्रान्स में (द) संयुक्त राज्य अमेरिका में
9. अध्यक्षात्मक व्यवस्था का प्रचलन है–
   (अ) संयुक्त राज्य अमेरिका में (ब) पाकिस्तान में
   (स) बांग्ला देश में (द) भारत में
10. बहुल कार्यपालिका का प्रचलन है–
   (अ) जर्मनी में (ब) बेलजियम में
   (स) स्वीडन में (द) स्विट्जरलैण्ड में
11. मुख्य कार्यपालिका का सबसे प्रमुख लक्ष्य होता है–
   (अ) प्रशासन में एकता स्थापित करना (ब) भ्रष्टाचार पर नियन्त्रण करना
   (स) कार्यकुशलता में वृद्धि करना (द) इनमें से कोई नही।
12. मुख्य कार्यपालिका के प्रशासकीय कर्त्तव्य हैं–
   (अ) प्रशासकीय नीति का निर्धारण (ब) संगठन के विस्तृत रूप का निर्धारण
   (स) आवश्यक आदेश देना (द) उपर्युक्त सभी
13. आर्थिक प्रशासन में शामिल हैं–
   (अ) बजट तैयार करना (ब) नए कर लगाना
   (स) करों को समाप्त करना (द) ये सभी
14. मुख्य कार्यपालिका के कार्यों को लूथर गुलिक ने उल्लिखित किया है–
   (अ) पोस्डकॉर्ब में (ब) नियन्त्रण के रूप में
   (स) समन्वय के रूप में (द) इनमें से कोई नहीं
15. पोस्डकॉर्ब में ओ (O) शब्द से आशय है–
   (अ) ऑफिस (ब) आर्गेनाइजेशन
   (स) आर्डर (द) इनमें से कोई नही

16. पोस्डकार्ब के 'पी' (P) शब्द का तात्पर्य है–

(अ) प्लानिंग (ब) प्रोमोशन

(स) पोस्टिंग (द) प्रोसेसिंग

18. एक राजनेता के रूप में मुख्य कार्यपालिका की भूमिका है–

(अ) बहुमत को बनाये रखना (ब) दल के सदस्यों पर नियन्त्रण

(स) विपक्ष से विचार–विमर्श (द) उपर्युक्त सभी

19. मुख्य कार्यपालिका की शक्तियों के मुख्य स्रोत हैं–

(अ) जनमत (ब) कुशल नेतृत्व

(स) सांविधानिक शक्तियाँ (द) उपर्युक्त सभी

उत्तर

(1) अ	(2) ब	(3) स	(4) द	(5) द	(6) स
(7) अ	(8) अ	(9) द	(10) अ	(11) द	(12) द
(13) अ	(14) ब	(15) अ	(16) द	(17) द।	

संगठन-अर्थ एवं आधार

1. 'संगठन ढाँचा और मनुष्य दोनों ही है', यह कथन है–

(अ) डिमॉक का (ब) विलोबी का

(स) वुडरो विल्सन का (द) फ्रेडरिक टेलर का

2. 'संगठन अपने आप में कुछ भी नहीं करता, जो कुछ भी करते हैं, संगठन के अनिवार्य अंग अर्थात् कर्मचारीगण ही करते हैं'–इस कथन के लेखक हैं–

(अ) मिल बर्ड (ब) बियर्ड

(स) बकल (द) इनमें से कोई नहीं

3. 'जिस संगठन में परिवर्तन रूक जाता है, वह मरणासन्न है।' यह उद्धरण है–

(अ) उर्विक का (ब) फ्रेडरिक टेलर का

(स) ग्लेडन का (द) लूथर गुलिक का

4. संगठन के सिद्धान्त के मुख्य प्रतिपादक हैं–

(अ) हेनरी फेयोल (ब) एल. उर्विक

(स) फ्रेडरिक टेलर (द) उपर्युक्त सभी

5. मूनी तथा रैले ने एक आदर्श संगठन के जिन सिद्धान्तों का उल्लेख किया, उनकी संख्या हैं–

(अ) तीन (ब) चार

(स) पाँच (द) छह

6. कार्यात्मक सिद्धान्त है–

(अ) विशेषीकरण का सिद्धान्त (ब) समन्वयात्मक सिद्धान्त

(स) पद सोपान का सिद्धान्त (द) इनमें से कोई नहीं

7 औपचारिक संगठन प्रतीक है–

(अ) यान्त्रिक दृष्टिकोण का (ब) मानवतावादी दृष्टिकोण का

(स) मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण का (द) आधुनिक दृष्टिकोण का

8. अनौपचारिक संगठन प्रतीक है–

(अ) मानवतावादी दृष्टिकोण का (ब) सामाजिक दृष्टिकोण का

(स) यान्त्रिक दृष्टिकोण का (द) परम्परावादी दृष्टिकोण का

9. संगठन का वह स्वरूप जो व्यवस्थित ढंग से नियोजित तथा रूपाँकित किया गया हो और जिसे प्राधिकारी सत्ता द्वारा मान्यता दी गई है, कहलाता है–

(अ) औपचारिक संगठन (ब) सामाजिक संगठन

(स) स्वैच्छिक संगठन (द) राजनीतिक संगठन

10. समाज–विज्ञान के क्षेत्र में औपचारिक संगठन को लोकप्रिय बनाने का श्रेय है–

(अ) मैक्स वैबर को (ब) उर्विक को

(स) लूथर गुलिक को (द) फ्रेडरिक टेलर को

11. 'ऑनवर्ड इण्डस्ट्रीज' पुस्तक के रचयिता हैं–

(अ) मूनी तथा रैले (ब) ह्वाइट

(स) फ्रेडरिक टेलर (द) हर्बर्ट साइमन

12. 'अनौपचारिक संगठन कोई बुरा नहीं है, वरन् एक आवश्यकता है', इस कथन के लेखक हैं–

(अ) मूनी (ब) रैले

(स) डेविस (द) चेस्टर बर्नार्ड

उत्तर

(1) अ (2) अ (3) स (4) द (5) ब (6) अ

(7) अ (8) अ (9) अ (10) अ (11) अ (12) अ

(13) द।

संगठन-सिद्धान्त

1. 'पद सोपान निम्न तथा उच्च व्यक्तियों का श्रेणीबद्ध रूप में एक व्यवस्थित ढाँचा है।' यह परिभाषा है–

(अ) अर्थ–लैथम की (ब) ब्राइट की

(स) साइमन की (द) वुडरो विल्सन की

2. पद–सोपान अंग्रेजी शब्द का रूपान्तरण है–

(अ) डायार्की का (ब) हायार्की का

(स) अनार्की का (द) इनमें से कोई नही

3. पद–सोपान का दूसरा नाम है–

(अ) क्रमिक प्रक्रिया (ब) क्रमिक सिद्धान्त

(स) क्रमिक सगंठन (द) क्रमिक सत्ता

4. ' पद–सोपान का सिद्धान्त पाया जाता है–

(अ) प्रत्येक विभाग में (ब) प्रत्येक संगठन में

(स) प्रत्येक मन्त्रालय में (द) उपर्युक्त सभी में

5. पद–सोपान की मुख्यतः विशेषता पाई जाती हैं–

(अ) नेतृत्व (ब) सत्ता का प्रत्यायोजन

(स) कार्यात्मक परिभाषा (द) उपर्युक्त सभी

6. 'पद–सोपान, संगठन का एक सार्वभौमिक सिद्धान्त है।' यह कथन है–

(अ) साइमन का (ब) फ्रेडरिक टेलर का

(स) मूने का (द) वुडरो विल्सन का

7. पद–सोपान सिद्धान्त का मुख्य गुण है–

(अ) कार्य–विभाजन (ब) उत्तरदायित्व का प्रत्यायोजन

(स) आदेश की एकता (द) उपर्युक्त सभी

8. पद–सोपान सिद्धान्त का मुख्य दोष है–

(अ) कार्य निपटाने में देरी (ब) लाल फीताशाही

(स) नौकरशाही के अवगुण (द) उपर्युक्त सभी

9. 'आदेश अथवा निदेशन की एकता का अभिप्राय यह है कि किसी संगठन का प्रत्येक सदस्य एक और केवल एक ही पद अधिकारी के प्रति जवाबदेय होगा।'–यह परिभाषा है–

(अ) पिफनर तथा प्रिस्थस (ब) लारवुड

(स) हेनरी फेयोल (द) फ्रेडरिक टेलर

10. 'यदि आदेश की एकता के सिद्धान्त का उल्लंघन किया जाता है तो सत्ता कमजोर हो जाएगी।' यह कथन है–

(अ) हेनरी फेयोल का (ब) विलोबी का

(स) फायनर का (द) पिफनर का

11. जिस विद्वान ने आदेश की एकता को 'सैनिक पद्धति' कहकर अस्वीकार कर दिया, वह है–

(अ) एफ. डब्ल्यू. टेलर (ब) फ्रेडरिक पोलक

(स) हेनरी मेन (द) बाल्डविन

12. जिस विद्वान ने 'आदेश की एकता' के सिद्धान्त को प्रमुखता दी, वह है–

(अ) फ्रेडरिक टेलर (ब) हर्बर्ट साइमन

(स) लूथर गुलिक (द) उर्विक

13. 'नियन्त्रण का विस्तार किसी उद्यम के मुख्य निष्पादक और उसके मुख्य साथी कार्यालय के बीच सीधे और स्वाभाविक संचार की संख्या एवं क्षेत्र है।' यह परिभाषा है–

(अ) वुडरो विल्सन की (ब) विलोबी की

(स) डिमॉक की (द) फ्रेडरिक टेलर की

14. 'एक बड़े उद्यम के शिखर स्थित प्रबन्धक के नीचे पाँच या छह से अधिक अधीनस्थ कर्मचारी नहीं होने चाहिए।' यह मत है–

(अ) हेनरी फेयोल (ब) उर्विक

(स) लूथर गुलिक (द) मुनरो

15. नियन्त्रण–विस्तार को निर्धारित करने वाले तत्त्व हैं–

(अ) कार्य (ब) समय

(स) स्थान (द) उपर्युक्त सभी

16. लूथर गुलिक ने नियन्त्रण–विस्तार के मुख्य तत्त्व बताये हैं–

(अ) तीन (ब) चार

(स) पाँच (द) छह

उत्तर

(1) अ	(2) ब	(3) ब	(4) द	(5) द	(6) स
(7) द	(8) द	(9) अ	(10) अ	(11) अ	(12) ब
(13) स	(14) अ	(15) द	(16) अ।		

केन्द्रीकरण, विकेन्द्रीकरण, प्राधिकार एवं उत्तरदायित्व

1. भारत में केन्द्रीकरण का प्रतीक है–

(अ) राज्य लोकसेवा आयोग (ब) राजभाषा आयोग

(स) योजना आयोग (द) अल्पसंख्यक आयोग

2. विकेन्द्रीकरण का पर्याय है–

(अ) पचायती राज (ब) ग्राम स्वराज

(स) रामराज्य (द) इनमें से कोई नहीं

3. 'प्रशासन के निम्न तल से उच्च तल की ओर प्रशासकीय सत्ता के हस्तान्तरण की प्रक्रिया को केन्द्रीकरण कहते हैं।' यह परिभाषा है–

(अ) हाइट की (ब) वुडरो विल्सन की

(स) वाल्डविन की (द) इनमें से किसी की नहीं

4 विकेन्द्रीकरण के मुख्य रूप या प्रकार हैं–

(अ) राजनीतिक (ब) प्रशासनिक

(स) उपर्युक्त दोनों ही (द) उपर्युक्त में से कोई नही

5 कार्यात्मक विकेन्द्रीकरण के उदाहरण हैं–

(अ) अखिल भारतीय चिकित्सा परिषद (ब) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग

(स) भारतीय चिकित्सा परिषद (द) उपर्युक्त सभी

6. फेज्लर ने केन्द्रीकरण तथा विकेन्द्रीकरण को प्रभावित करने वाले किन तत्त्वों का उल्लेख किया है–

(अ) उत्तरदायित्व के तत्त्व (ब) प्रशासकीय तत्त्व

(स) कार्यात्मक तत्त्व (द) उपर्युक्त सभी

7. 'कोई भी राष्ट्र शासन के शक्तिशाली केन्द्रीकरण के बिना नहीं जी सकता', यह कथन है–

(अ) विलोबी का (ब) डेविड डी. ट्रूमैन का

(स) डी. टाकविल का (द) इनमें से किसी का नहीं

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

8. 'ऐसा प्रतीत होता है कि व्यवहार में किसी भी प्रशासकीय संगठन में इन दोनों ही पद्धतियों के कुछ न कुछ लक्षण पाये जाते हैं।'—यह कथन है—

(अ) विलोबी का (ब) डेविड डी. ट्रूमैन का

(स) फ्रेडरिक टेलर का (द) मुनरो का

9. विकेन्द्रीकरण के मुख्य दोष हैं—

(अ) समन्वय की समस्या (ब) कार्यकुशलता में कमी

(स) आर्थिक नियोजन में कठिनाई (द) उपुर्यक्त सभी

10. विकेन्द्रीकरण के निम्नांकित गुण हैं—

(अ) स्वायत्तता की भावना (ब) स्वतन्त्रता की भावना

(स) आत्मविश्वास की भावना (द) उपर्युक्त सभी

11. केन्द्रीकरण और विकेन्द्रीकरण में से श्रेष्ठता का आधार बन सकता है—

(अ) कार्यकुशलता (ब) संगठन

(स) पद्धति (द) इनमें से कोई नहीं

12. शासन में सामान्य जनता का प्रतिनिधित्व संभव है—

(अ) केन्द्रीकरण से (ब) विकेन्द्रीकरण से

(स) उपर्युक्त दोनों से (द) उपर्युक्त दोनों में से नहीं

13. 'सत्ता की व्यवस्था की यह एक महत्त्वपूर्ण विशेषता होती है कि यह सदैव उत्तरदायित्वपूर्ण होती है।' यह विचार है—

(अ) साइमन का (ब) विलोबी का

(स) वुडरो विल्सन का (द) फ्रेडरिक टेलर का

14. 'उत्तरदायित्व और सत्ता की मान्यताएँ एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हैं' इस मत के प्रतिपादक है—

(अ) हेमैन (ब) हेनरीमेन

(स) मूनी (द) रैले

15. उत्तरदायित्व के मुख्य लक्षण हैं—

(अ) सत्ता का हस्तान्तरण (ब) पर्याप्त सत्ता

(स) कर्त्तव्य–व्यवस्था (द) उपर्युक्त सभी

16. 'प्रत्यायोजित सत्ता और उत्तरदायित्व के बीच असमानता अवाँछित परिणाम उत्पन्न करती है।' यह मत है—

(अ) हेमैन का (ब) फ्रेडरिक पोलक का

(स) विलोबी का (इ) ब्लंशली का

उत्तर

(1) ब (2) अ (3) अ (4) स (5) द (6) द

(7) स (8) ब (9) द (10) द (11) अ (12) ब

(13) अ (14) स (15) द (16) द।

समन्वय

1. 'वह क्रिया जो संगठन में कार्यों की पुनरावृत्ति रोकती है, उसका रूप है–
   (अ) प्रतीकात्मक (ब) नकारात्मक
   (स) सकारात्मक (द) इनमें से कोई नही
2. 'समन्वय का अर्थ है, एक संगठन की क्रियाओं में एकरूपता लाना'–यह कथन है–
   (अ) मूने का (ब) फ्रेडरिक टेलर का
   (स) हेनरी फेयोल का (द) इनमें से कोई नही
3. समन्वय के अभाव में जो दोष उत्पन्न होते हैं, वे हैं–
   (अ) अनभिज्ञता (ब) विभागों के बीच का अन्तर
   (स) सामान्य हित की उपेक्षा (द) उपर्युक्त सभी
4. 'समन्वय अत्यन्त रचनात्मक रूप में प्रशासन है।' यह कथन है–
   (अ) आर्डवे टीड (ब) हेमैन
   (स) एलिन (द) प्रो. न्यूमेन
5. 'उद्यम के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए कुछ भागों का एक सामंजस्यपूर्ण एकीकरण ही समन्वय है।' यह परिभाषा है–
   (अ) टेरी की (ब) चेस्टर बर्नार्ड की
   (स) चार्ल्सवर्थ की (द) हडसन की
6. 'अधिकांश परिस्थितियों में समन्वय का गुण संगठन के अस्तित्व का एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व होता है।' यह कथन हैं–
   (अ) राल्फ डेविस (ब) न्यूमैन
   (स) चेस्टर बर्नार्ड (द) हेमैन
7. समन्वय के उद्देश्य हैं–
   (अ) संघर्ष को दूर करना (ब) दोहराव को रोकना
   (स) सहयोग को बढ़ावा देना (द) उपर्युक्त सभी
8. समन्वय के अभाव के दुष्परिणाम होते हैं–
   (अ) वांछित परिणाम प्राप्त नहीं होना (ब) साधनों का दुरुपयोग
   (स) समग्र रूप की अवहेलना (द) उपर्युक्त सभी
9. समन्वय के साधनों को मुख्य रूप से बाँटा जा सकता है–
   (अ) दो भागों में (अ) तीन भागों में
   (अ) चार भागों में (अ) पाँच भागों में
10. समन्वय के औपचारिक साधनों में प्रमुख हैं–
   (अ) नियोजन (ब) संगठनात्मक तरीके
   (स) मन्त्रिमण्डल (द) उपर्युक्त सभी
11. समन्वय के औपचारिक साधन हैं–
   (अ) क्रियाओं का मूल्यांकन (ब) अन्तरविभागीय समितियाँ
   (स) वित्त मंत्रालय (द) उपर्युक्त सभी

12. 'उत्तम संचार विभिन्न क्रियाओं के समन्वय में अतुल सहायता पहुँचाते हैं।' यह कथन है–
    (अ) हेमैन का (ब) न्यूमैन का
    (स) टेरी का (द) मूनी का
13. समन्वय के अनौपचारिक साधन हैं–
    (अ) मानव (ब) परिवार
    (स) नेतृत्व (द) उपर्युक्त सभी
14. समन्वय के मुख्य सिद्धान्त हैं–
    (अ) सीधा सम्पर्क (ब) प्राथमिक स्तर पर समन्वय
    (स) लेनदेन की प्रवृत्ति (द) उपर्युक्त सभी

उत्तर

(1) अ (2) स (3) द (4) अ (5) स (6) स
(7) द (8) द (9) अ (10) द (11) द (12) अ
(13) द (14) द

पर्यवेक्षण

1. संगठन में समन्वय स्थापित करने हेतु समन्वयकर्ता द्वारा जिस विधि का सहारा लिया जाता है, उसका नाम है–
    (अ) पर्यवेक्षण (ब) सम्प्रेषण
    (स) निरीक्षण (द) उपर्युक्त सभी
2. पर्यवेक्षण आवश्यक है–
    (अ) सार्वजनिक संगठन में (ब) निजी संगठन में
    (स) लोकउद्यम में (द) उपर्युक्त सभी में
3. 'पर्यवेक्षण दूसरों के कार्य का सत्ता सहित निर्देश है।' इस कथन का सम्बन्ध है–
    (अ) नेतृत्व से (ब) संचार से
    (स) पर्यवेक्षण से (द) समन्वय से
4. 'पर्यवेक्षण के मुख्य दो उद्देश्य होते हैं।' यह मत है–
    (अ) मिलेट का (ब) फ्रेडरिक टेलर का
    (स) विलोबी का (द) साइमन का
5. पर्यवेक्षण मुख्य उद्देश्य हैं–
    (अ) समायोजन (ब) उत्तरदायित्व
    (स) उपर्युक्त दोनों (द) इनमें से कोई नहीं
6. पर्यवेक्षण शब्द मिलकर बना है–
    (अ) अधि + वीक्षण (ब) सुपर + वीजन
    (स) उपर्युक्त दोनों ही (द) इनमें से कोई नही

7. 'पर्यवेक्षण, निरीक्षण तथा खोजबीन से कहीं अधिक होता है।' यह कथन है–
   (अ) अवस्थी एवं माहेश्वरी का (ब) डॉ. एम. पी. शर्मा का
   (स) अवस्थी एवं अवस्थी का (द) इनमें से किसी का नहीं
8. पर्यवेक्षक के तीन मुख्य कार्यों का उल्लेख करने वाले विद्वान का नाम है–
   (अ) हेमैन (ब) फ्रेडरिक टेलर
   (स) उर्विक (द) लूथर गुलिक
9. जो विद्वान मौलिक पर्यवेक्षण और प्राविधिक पर्यवेक्षण में अन्तर स्पष्ट करता है, उसका नाम है–
   (अ) मिलेट (ब) वुडरो विल्सन
   (स) विलोबी (द) मिस फॉलेट
10. पर्यवेक्षक की सफलता मुख्य रूप से निर्भर करती है–
   (अ) नेतृत्व पर (ब) जनसम्पर्क पर
   (स) सशक्त निरीक्षण पर (द) इनमें से किसी पर नहीं
11. पर्यवेक्षक का भार होता है–
   (अ) उत्तरदायित्व का (ब) कार्य प्रक्रिया का
   (स) निरीक्षण करने का (द) इनमें से किसी का नही
12. पर्यवेक्षक का मुख्य प्रकार हैं–
   (अ) सूत्र पर्यवेक्षक (ब) कार्यात्मक पर्यवेक्षक
   (स) उपर्युक्त दोनों ही (द) उपर्युक्त में से कोई नही
13. जो विद्वान पर्यवेक्षण के छह रूप बताता है, वह है--
   (अ) लूथर गुलिक, (ब) उर्विक
   (स) मिलेट (द) ब्लंशली
14. अवस्थी एवं माहेश्वरी ने पर्यवेक्षक में तकनीकी गुणों से आशय लिया है–
   (अ) प्रशासकीय तकनीक (ब) प्रबन्धकीय गुण
   (स) सहनशीलता (द) बौद्धिक योग्यता
15. एक अच्छे पर्यवेक्षक के गुण होते हैं–
   (अ) नैतिक आदर्श (ब) विश्वासी प्रकृति
   (स) मानवीय संबंध (द) उपर्युक्त सभी

उत्तर

(1) द (2) द (3) स (4) अ (5) स (6) र
(7) अ (8) अ (9) अ (10) अ (11) अ (12)
(13) स (14) अ (15) द।

स्टाफ तथा सूत्र अभिकरण

1. जिस वर्ग का सम्बन्ध नीति निर्माण सम्बन्धी कार्यों से है, उसे कहते है–
   (अ) सूत्र (ब) स्टाफ
   (स) नीति निर्माता (द) इनमें से कोई नहीं

2. जो अभिकरण केवल मन्त्रणा देने का कार्य सम्पादित करता है, उसे कहते हैं–
   (अ) लाइन (ब) अधीनस्थ सूत्र
   (स) स्टाफ (द) इनमें से कोई नहीं
3. जो अभिकरण सभी विभागों में एक जैसा कार्य सम्पादित करता है, वह है–
   (अ) सहायक अभिकरण (ब) स्टाफ
   (स) सूत्र (द) लाइन
4. स्टाफ और लाइन शब्दावली को ग्रहण किया गया है–
   (अ) सैनिक प्रशासन से (ब) नागरिक प्रशासन से
   (स) सामाजिक प्रशासन से (द) धार्मिक प्रशासन से
5. सेना में इकाइयाँ होती हैं–
   (अ) सूत्र इकाई (ब) स्टाफ इकाई
   (स) उपर्युक्त दोनों ही (द) उपर्युक्त में से कोई नहीं
6. सेना में मुख्य सेनापति का स्तर किसका है–
   (अ) सूत्र का (ब) स्टॉफ का
   (स) सहायक अभिकरण का (द) इनमें से कोई नहीं
7. प्रतिरक्षा विभाग का स्वरूप है–
   (अ) सूत्र का (ब) स्टाफ का
   (स) सहायक अभिकरण का (द) इनमें से कोई नहीं
8. सूत्र अभिकरण के मुख्य कार्य है–
   (अ) नीति निर्माण करना (ब) निर्णय लेना
   (स) योजना बनाना (द) उपर्युक्त सभी
9. सूत्र अभिकरण का स्वरूप होता है–
   (अ) क्रियाशील (ब) निष्क्रिय
   (स) गतिहीन (द) निर्जीव
10. 'सूत्र–संगठन में सत्ता और उत्तरदायित्व की रेखाएँ ऊपर से नीचे फैली रहती हैं।' यह कथन है–
   (अ) लेपावस्की का (ब) उर्विक का
   (स) साइमन का (द) लूथर गुलिक का
11. सूत्र–अधिकारी सम्बद्ध होते हैं–
   (अ) पद सोपान से (ब) पोस्डकोर्ब से
   (स) समन्वय से (द) किसी से भी नहीं
12. 'स्टाफ कार्यपालिका के व्यक्तित्व का विस्तार है।' यह परिभाषा है–
   (अ) प्रो. ह्वाइट की (ब) विलोबी की
   (स) मुनरो की (द) फ्रेडरिक टेलर की
13. 'स्टाफ सेवाएँ वे खच्चर हैं जो युद्ध लड़ने वाले सेनापतियों के लिए सामग्री ढोते हैं।' यह है–
   (अ) ब्रिटिश कहावत (ब) अमेरिकी कहावत
   (स) चीनी कहावत (द) भारतीय कहावत

14. पिफनर द्वारा स्टॉफ के अभिकरण के कार्यों का उल्लेख किया गया है–
   (अ) सूत्र अभिकरण को परामर्श देना (ब) समन्वय स्थापित करना
   (स) योजनाएँ बनाना (द) उपर्युक्त सभी
15. स्टाफ अभिकरण के स्वरूप हैं–
   (अ) सामान्य स्टाफ (ब) सहायक स्टाफ
   (स) तकनीकी स्टाफ (द) उपर्युक्त सभी
16. सूत्र और स्टॉफ में संघर्ष के लिए उत्तरदायी कारण हैं–
   (अ) शक्ति–संघर्ष (ब) स्तर के लिए संघर्ष
   (स) आपसी मनमुटाव (द) उपर्युक्त सभी
17. सूत्र एवं स्टॉफ के बीच संघर्ष दूर करने के उपाय हैं–
   (अ) आपसी समन्वय (ब) शंकाओं को दूर करना
   (स) समन्वय–निकाय की स्थापना (द) उपर्युक्त सभी
18. 'सूत्र एवं स्टॉफ के बीच उचित समायोजन प्रबन्ध के कठिनतम क्षेत्रों में से एक हैं।' यह कथन हैं–
   (अ) चेस्टर बर्नार्ड का (ब) डिमॉक का
   (स) चार्ल्सवर्थ का (द) उर्विक का

उत्तर

(1) अ	(2) स	(3) अ	(4) अ	(5) स	(6) अ
(7) अ	(8) द	(9) अ	(10) अ	(11) अ	(12) अ
(13) अ	(14) द	(15) द	(16) द	(17) द	(18) ब।

लोक सम्पर्क

1. लोक–कल्याणकारी राज्य में लोक सम्पर्क का महत्त्व है–
   (अ) जनता के साथ सम्पर्क स्थापित करना (ब) जनता को राज्य के बारे में जानकारी देना
   (स) जन–समस्याओं का पता लगाना (द) उपर्युक्त सभी
2. 'लोक सम्पर्क द्वारा इस बात की जानकारी प्राप्त होती है कि लोग क्या आशा रखते हैं।.....यह परिभाषा है–
   (अ) जॉन डी. मिलेट की (ब) हर्बर्ट साइमन की
   (स) लेविस की (द) वुडरो विल्सन की।
3. 'लोक सम्पर्क का अर्थ केवल एजेन्सी से जनता को सूचना भेजना है बल्कि जनता से एजेन्सी को भी सूचना भेजना है।' उक्त परिभाषा है–
   (अ) डब्लू. बी. ग्रेविस की (ब) डब्लू. डी. पैरी की
   (स) टैरी की (द) डिमॉक व डिमॉक की
4. लोक सम्पर्क का मुख्य उद्देश्य है–
   (अ) लोगों को सूचित करना (ब) लोगों को ज़ानकारी देना
   (स) लोगों में चेतना जगाना (द) प्रशासन के प्रति सद्भावना प्राप्त करना

5. लोक सम्पर्क के प्रत्येक कार्यक्रम की प्रवृत्ति है–
   (अ) निश्चयात्मक (ब) प्रतिरक्षात्मक
   (स) आक्रमणात्मक (द) अ और ब दोनों
6. लोक सम्पर्क का लक्ष्य है–
   (अ) अनाधिकृत अलोचनाओं से रक्षा (ब) प्रतिष्ठा में वृद्धि
   (स) जीवन की रक्षा (द) उपर्युक्त सभी
7. लोक सम्पर्क में शामिल होती हैं–
   (अ) जनता की अपेक्षाएँ (ब) जनमत को समझाने की भावना
   (स) जनता और प्रशासन के बीच सद्भावना (द) उपर्युक्त सभी
8. प्रकाशन द्वारा प्रचार का कार्य सम्पन्न करता है–
   (अ) प्रकाशन विभाग (ब) गृह विभाग
   (स) कृषि विभाग (द) वित्त विभाग
9. प्रसारण विभाग का सम्बन्ध होता है–
   (अ) सूचना प्रसारण मन्त्रालय से (ब) गृह मन्त्रालय से
   (स) प्रधानमंत्री कार्यालय से (द) कार्मिक विभाग से
10. सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालय का मुख्य संभाग है–
   (अ) आकाशवाणी (ब) प्रेस सूचना ब्यूरो
   (स) प्रकाशन संभाग (द) उपर्युक्त सभी
11. जन सम्पर्क का सबसे प्रभावशाली साधन व्यक्तिगत सम्पर्क है।' यह मत है–
   (अ) डॉ. ब्रिजेन्द्र सिंह का (ब) डॉ. रमेश अरोड़ा का
   (स) डॉ. पी. डी. शर्मा का (द) डॉ. एम. पी. शर्मा का
12. व्यक्तिगत लोक सम्पर्क का साधन है–
   (अ) नेता (ब) समाज सेवक
   (स) कर्मचारी (द) धार्मिक नेता
13. लोक सम्पर्क के साधन हैं–
   (अ) प्रेस (ब) मंच
   (स) प्रदर्शन (द) उपर्युक्त सभी
14. प्रदर्शन के तरीके हैं–
   (अ) प्रदर्शन (ब) धरना
   (स) रैली (द) उपर्युक्त सभी
15. लोक सम्पर्क का निम्नलिखित साधन हैं–
   (अ) परामर्शदात्री समितियाँ (ब) लोकमत सर्वेक्षण
   (स) उपर्युक्त दोनों ही (द) उपर्युक्त में से कोई नहीं
16. लोक सम्पर्क में लोगों को परामर्श दिया जाता है–
   (अ) शिक्षा सम्बन्धी (ब) स्वास्थ्य सम्बन्धी
   (स) कृषि सम्बन्धी (द) उपर्युक्त सभी

17. 'प्रत्येक सरकारी अधिकारी अथवा कर्मचारी लोक सम्पर्क अधिकारी है।' यह मत है–
(अ) एल. डी. हाइट का (ब) विलोबी का
(स) फ्रेडरिक टेलर (द) ब्लंशली का

18. किस सरकारी गतिविधि से लोक सम्पर्क स्थापित किया जाता है–
(अ) प्रेस (ब) सरकारी प्रकाशन
(स) रेडियो (द) उपर्युक्त सभी

उत्तर

(1) द	(2) अ	(3) अ	(4) द	(5) द	(6) द
(7) द	(8) अ	(9) अ	(10) द	(11) अ	(12) स
(13) द	(14) द	(15) स	(16) द	(17) अ	(18) द।

भर्ती एवं प्रशिक्षण

1. 'भर्ती' शब्द को समानार्थक माना जाता है–
(अ) नियुक्ति का (ब) सेवा में प्रवेश का
(स) नियुक्ति के तरीकों का (द) इनमें से कोई नहीं

2. 'भर्ती का अर्थ है कि विशेष पदों के लिए उपयुक्त प्रकार के व्यक्तियों को प्राप्त करना।' यह परिभाषा है–
(अ) मार्शल डिमॉक की (ब) फ्रेडरिक टेलर की
(स) ब्लंशली की (द) वुडरो विल्सन की

3. 'भर्ती की प्रक्रिया में हम विरोधी तत्त्वों में खींचातानी पाते हैं।' यह कथन है–
(अ) हाइट का (ब) टैरी का
(स) मूनी का (द) डिमॉक का

4 भर्ती–प्रणाली का सबसे पहले प्रचलन हुआ–
(अ) संयुक्त राज्य अमेरिका में (ब) ग्रेट ब्रिटेन में
(स) फ्रान्स में (द) प्रशिया में

5. भारत में भर्ती के क्षेत्र में 'योग्यता के सिद्धान्त' का प्रचलन प्रारम्भ हुआ–
(अ) 1836 ई. में (ब) 1853 ई. में
(स) 1862 ई. में (द) 1892 ई. में

6. 'भर्ती के अतिरिक्त लोक प्रशासन का अन्य कोई भाग महत्त्वपूर्ण नहीं है।' यह कथन है–
(अ) ऑग का (ब) जिंक का
(स) मुनरो का (द) ब्रोगन का

7. भर्ती की मुख्यतः धारणाएँ हैं–
(अ) नकारात्मक (ब) सकारात्मक
(स) उपर्युक्त दोनों (द) विश्लेषणात्मक

8. भर्ती की नकारात्मक धारणा का उद्देश्य है–
(अ) सरकारी पदों से धूर्त व्यक्तियों को दूर रखना (ब) पक्षपात की स्थिति को समाप्त करना
(स) दलगत राजनीति के कुप्रभावों से मुक्ति (द) उपर्युक्त सभी

9. भर्ती की प्रमुख समस्याएँ हैं--
   (अ) भर्तीकर्त्ता की नियुक्ति (ब) भर्ती की प्रणालियाँ
   (स) निष्पक्ष भर्ती (द) ये सभी
10 पदाधिकारियों के लिए वांछनीय योग्यताओं को रखा जा सकता है--
   (अ) नागरिकता (ब) अधिवास
   (स) आयु-सीमा (द) उपर्युक्त सभी
11. लूट-प्रथा का प्रचलन है--
   (अ) भारत में (ब) संयुक्त राज्य अमेरिका में
   (स) फ्रान्स में (द) ब्रिटेन में
12. प्रत्याशियों की योग्यता तथा उपयुक्तता की जाँच के लिए जिन तरीकों को अपनाया जाता है--
   (अ) लिखित परीक्षा (ब) मौखिक परीक्षा
   (स) मेडीकल जाँच (द) ये सभी
13. प्रशिक्षण और शिक्षण अलग-अलग है, क्योंकि--
   (अ) संकुचितता की दृष्टि से (ब) व्यापकता की दृष्टि से
   (स) दोनों हीं दृष्टियों से (द) दोनों ही दृष्टियों से नहीं
14. प्रशिक्षण की प्रक्रिया है--
   (अ) सीमित समय की (ब) दीर्घकाल की
   (स) शाश्वत् (द) इनमें से कोई नहीं

उत्तर

(1) अ (2) अ (3) अ (4) द (5) ब (6) व
(7) स (8) द (9) द (10) द (11) ब (12) द
(13) अ (14) स

पदोन्नति

1. पदोन्नति के अवसरों को प्रभावित करने वाले तत्त्व होते हैं--
   (अ) संगठन की प्रगति (ब) संगठन का ह्रास
   (स) सेवा का पिरामिड स्वरूप (द) उपर्युक्त सभी
2. जिस विद्वान ने 'पदोन्नति व्यवस्था को समस्त सेवीवर्ग प्रशासन में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य माना है।' उसका नाम है--
   (अ) विलोबी (ब) वुडरो विल्सन
   (स) ब्लशली (द) फ्रेडरिक टेलर
3. प्रो. विलोबी ने पदोन्नति के लिए पात्रता कौन सा आधार निश्चित किया है--.
   (अ) सेवीवर्ग की योग्यताएँ (ब) सेवा का स्तर
   (स) उपर्युक्त दोनों ही (द) उपर्युक्त में से कोई नहीं
4. सेवीवर्ग की योग्यता से आशय है--
   (अ) ज्ञान (ब) कुशलता
   (स) अनुभव (द) उपर्युक्त सभी

9. पदोन्नति की मुख्य समस्याएँ हैं–
   (अ) पदोन्नति के सिद्धान्त (ब) वरिष्ठता
   (स) वरिष्ठता बनाम योग्यता (द) चयन की उपयुक्तता

10. पदोन्नति के लिए योग्यता का अंकन करने सम्बन्धी मुख्य विधियाँ हैं–
   (अ) परीक्षा या साक्षात्मक (ब) विभागाध्यक्ष का निर्णय
   (स) सेवा–अभिलेखन (द) उपर्युक्त सभी

7. पदोन्नति के लिए सिद्धान्तों के निर्धारण का मुख्य उद्देश्य है–
   (अ) मनमानी को रोकना (ब) उचित व्यवस्था करना
   (स) कार्य–कुशलता बढ़ाना (द) सुचारु व्यवस्था करना

8. वरिष्ठता के सिद्धान्त का मुख्य गुण है–
   (अ) वस्तुनिष्ठता (ब) व्यक्तिनिष्ठता
   (स) क्रमबद्धता (द) उपर्युक्त में से कोई नहीं

9. योग्यता के सिद्धान्त के पक्ष में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बात जाती है–
   (अ) योग्यतम व्यक्तियों का चयन (ब) अनुभवी व्यक्ति का चयन
   (स) वरिष्ठ व्यक्ति का चयन (द) कुशल व्यक्ति का चयन

10. योग्यता के अनुपालन की विधियाँ हैं–
   (अ) परीक्षा (ब) साक्षात्कार
   (स) सेवा–अभिलेखन (द) उपर्युक्त सभी

11. परीक्षा–पद्धति के मुख्य प्रकार हैं–
   (अ) खुली प्रतियोगिता परीक्षा (ब) सीमित प्रतियोगिता परीक्षा
   (स) उत्तीर्णता परीक्षा (द) ये सभी

12. सीमित प्रतियोगिता परीक्षा को नाम दिया जाता है–
   (अ) खुली पद्धति (ब) बन्द पद्धति
   (स) संकुचित पद्धति (द) इनमें से कोई नहीं

13. पदोन्नति के विभागाध्यक्ष के व्यक्तिगत निर्णय पद्धति का मुख्य दोष है–
   (अ) चापलूसी को बढ़ावा (ब) योग्य व्यक्ति की उपेक्षा
   (स) पक्षपात की भावना (द) भ्रष्टाचार की भावना

14. सेवा–अभिलेख को पुकारा जाता है–
   (अ) कार्यकुशलता का माप (ब) गोपनीय प्रतिवेदन
   (स) चरित्र विवरण (द) उपर्युक्त सभी

उत्तर

(1) द (2) अ (3) स (4) द (5) स (6) द
(7) अ (8) अ (9) अ (10) द (11) द (12) स
(13) अ (14) द।

संघ लोक सेवा आयोगः संगठन, शक्तियाँ एवं कार्य

1. भारत में लोक सेवा आयोग की स्थापना कब की गई?
   (अ) 1930 (ब) 1940
   (स) 1926 (द) 1950 में
2. अखिल भारतीय सेवाओं की रचना भारतीय संविधान की किस धारा से की जाती है?
   (अ) 319 (ब) 320
   (स) 312 (द) 318
3. अखिल भारतीय सेवाओं की कितनी संख्या है?
   (अ) 10 (ब) 5
   (स) 3 (द) 7
4. निम्न में से कौन सी अखिल भारतीय सेवा है?
   (अ) I.A.S. (ब) I.P.S.
   (स) I.F.S. (द) उपर्युक्त तीनों
5. संघ लोक सेवा आयोग के सदस्यों का कार्यकाल कितने वर्ष का है?
   (अ) 60 वर्ष की आयु होने पर या 6 वर्ष का कार्यकाल पूरा होने पर
   (ब) 62 वर्ष की आयु होने पर या 6 वर्ष का कार्यकाल पूरा होने पर
   (स) 65 वर्ष की आयु होने पर या 6 वर्ष का कार्यकाल पूरा होने पर
   (द) 70 वर्ष की आयु होने पर या 6 वर्ष का कार्यकाल पूरा होने पर
6. राज्य लोक सेवा आयोग में सदस्यों की आयु समय सीमा कितनी है?
   (अ) 60 वर्ष या 10 वर्ष (ब) 62 वर्ष या 6 वर्ष
   (स) 65 वर्ष या 7 वर्ष (द) 68 वर्ष या 6 वर्ष
7. संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष व सदस्यों को कौन नियुक्त करता है?
   (अ) प्रधानमन्त्री (ब) राष्ट्रपति
   (स) सर्वोच्च न्यायालय का न्यायाधीश (द) सर्वोच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश
8. राज्य लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष व सदस्यों को नियुक्त करता है?
   (अ) मुख्यमंत्री (ब) राज्यपाल
   (स) गृहमन्त्री (द) वित्तमन्त्री
9. संघ/राज्य लोक सेवा आयोग के कम से कम आधे सदस्यों का कितना प्रशासनिक अनुभव आवश्यक है?
   (अ) 7 वर्ष (ब) 9 वर्ष
   (स) 10 वर्ष (द) 15 वर्ष
10. संघ/राज्य लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष व सदस्यों को उनके पदों से हटाया जा सकता है यदि वे
   (अ) दिवालिया घोषित किए गये हो
   (ब) सर्वोच्च न्यायालय द्वारा
   (स) वेतन के अतिरिक्त अन्य साधन से पारिश्रमिक लेने पर
   (द) उपर्युक्त सभी

11. संघ/राज्य लोक सेवा आयोग की सिफारिश को मानना न मानना निर्भर है–
(अ) राष्ट्रपति पर (ब) सरकार पर
(स) प्रधानमन्त्री पर (द) आयोग के अध्यक्ष पर

12. हरियाणा राज्य लोक सेवा स्थित है–
(अ) दिल्ली (ब) करनाल
(स) चण्डीगढ़ (द) हिसार

उत्तर

(1) स (2) स (3) अ (4) द (5) स (6) ब
(7) ब (8) ब (9) स (10) द (11) ब (12) स।

हिटले परिषद्

1. सरकार और कर्मचारियों के मध्य झगड़े निपटाने के लिए उत्तरदायी संस्था को कहते हैं–
(अ) प्रशासन समीति (ब) झगड़ा समिति
(स) हिटले परिषद् (द) कार्य समिति

2. निम्न में से किस देश के कर्मचारियों को हड़ताल करने का अधिकार दिया गया है–
(अ) भारत (ब) चीन
(स) फ्रांस (द) अमेरिका

3. हिटले परिषद की उत्पत्ति किस देश में हुई?
(अ) फ्रांस (ब) भारत
(स) अमेरिका (द) इग्लैंड

4. हिटले परिषद् की तर्ज पर किस राज्य में हिटले परिषद् गठित की गई है?
(अ) पंजाब (ब) उत्तर प्रदेश
(स) हरियाणा (द) राजस्थान

5. भारत में हिटले परिषदों का गठन कितने स्तरों पर किया गया है?
(अ) 1 (ब) 2
(स) 3 (द) 4

6. भारत में हिटले परिषद् गठित की गई–
(अ) 1920 (ब) 1931
(स) 1947 (द) 1960 ई. में

उत्तर

(1) स (2) द (3) द (4) स (5) स (6) ब।

बजट के सिद्धान्त एवं बजट निर्माण प्रक्रिया

1. वित्तीय प्रशासन के अभिकरण हैं–
(अ) संसद (ब) वित्त मन्त्रालय
(स) नियन्त्रक महालेखा परीक्षक (द) उपर्युक्त सभी

2. बजट शब्द की उत्पत्ति किस भाषा से हुई?
   (अ) ग्राक (ब) फ्रेंच
   (स) रोमन (द) अंग्रेजी
3. बजट शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग किया गया–
   (अ) 1680 ई. में (ब) 1700 ई. में
   (स) 1733 ई. में (द) 1800 ई. में
4. बजट शब्द की उत्पत्ति किस देश में हुई–
   (अ) भारत (ब) इंग्लैण्ड
   (स) जर्मनी (द) अमेरिका
5. 'सभी उद्यम वित्त पर निर्भर हैं, इसलिए कोषागार के प्रति सबसे अधिक ध्यान देना चाहिए' यह किसने कहा है–
   (अ) अरस्तु (ब) कौटिल्य
   (स) मनु (द) प्लेटो
6. सन्तुलित बजट का सिद्धान्त किस विद्वान ने पेश किया–
   (अ) टैरी (ब) डीमॉक
   (स) पी. के. वाटल (द) रैन स्टोरम
7. बोजीटी (Bougette) शब्द किस भाषा से लिया गया है?
   (अ) लैटिन (ब) अंग्रेजी
   (स) फ्रांसिसी (द) ग्राक
8. भारत का वित्तीय वर्ष आरम्भ होता है–
   (अ) 1 जनवरी से (ब) 1 अगस्त से
   (स) 1 अप्रैल से (द) 1 सितम्बर से
9. बजट को संसद के सामने कौन पेश करता है–
   (अ) प्रधानमन्त्री (ब) राष्ट्रपति
   (स) वित्तमन्त्री (द) राज्यपाल
10. भारत में बजट लोकसभा में प्रायः कब प्रस्तुत किया जाता है?
   (अ) जनवरी मास के अन्तिम दिन (ब) अप्रैल मास के अन्तिम दिन
   (स) मार्च मास के अन्तिम दिन (द) फरवरी मास के अन्तिम दिन
11. राज्य सभा वित्त विधेयक कितने दिन अधिक से अधिक रोक सकती है?
   (अ) 10 दिन (ब) 12 दिन
   (स) 14 दिन (द) 30 दिन
12. भारत में बजट को पारित करने की जिम्मेवारी किसकी है?
   (अ) लोकसभा (ब) राज्यसभा
   (स) संसद (द) राष्ट्रपति

उत्तर

(1) द (2) ब (3) स (4) ब (5) ब (6) स
(7) स (8) स (9) स (10) द (11) स (12) स।

लेखा-परीक्षण व्यवस्था

1 नियन्त्रण एवम् महालेखा परीक्षक की नियुक्ति कौन करता है?

(अ) प्रधानमन्त्री (ब) वित्तमन्त्री

(स) राष्ट्रपति (द) कृषि मन्त्री

2. नियन्त्रक व महालेखा परीक्षक के वेतन, पेन्शन व सेवा शर्तें भारित होते हैं–

(अ) संचित निधि पर (ब) आकस्मिक निधि पर

(स) सार्वजनिक लेखा पर (द) सरकारी कोष पर

3. भारत की संचित निधि में से व्यय किए गए धन का परीक्षण कौन करता है?

(अ) सार्वजनिक लेखा समिति (ब) अनुमान समिति

(स) लोक लेखा समिति (द) नियन्त्रक व महालेखा परीक्षक

4 नियन्त्रक व महालेखा परीक्षक की नियुक्ति की जाती है–

(अ) 6 वर्ष के लिए (ब) 5 वर्ष के लिए

(स) 65 वर्ष के लिए (द) 2 वर्ष के लिए

5 सार्वजनिक वित्त का सजग प्रहरी व रखवाला है–

(अ) वित्तमन्त्रालय (ब) वित्त मन्त्री

(स) उद्योग मन्त्री (द) नियन्त्रक व महालेखा परीक्षक

6. संसद वित्त पर नियन्त्रण करती है–

(अ) बजट पास करके

(ब) लोक लेखा समिति की रिपोर्ट पर बहस करके

(स) लोक उद्यमों पर समिति की रिपोर्ट पर बहस करके

(द) उपर्युक्त सभी माध्यमों से

7 अनुमान समिति में सदस्य हैं–

(अ) 20 (ब) 25

(स) 30 (द) 35

8. लोक उद्यमों पर समिति में सदस्य होते हैं–

(अ) 10 (ब) 15

(स) 20 (द) 25

9 लोकसभा समिति के सदस्यों की संख्या है–

(अ) 15 (ब) 22

(स) 29 (द) 36

10. वित्त के मामले में सबसे अधिक शक्तिशाली समिति है–

(अ) अनुमान समिति (ब) लोक लेखा समिति

(स) लोक उद्यमों पर समिति (द) तीनों समान हैं

11. संविधान की कौन सी धारा संसद को यह अधिकार देती है कि उसकी स्वीकृति के बिना कोई कर नहीं लगाया जाएगा?

(अ) 260 (ब) 265

(स) 270 (द) 275

12. लोक लेखा समिति का अध्यक्ष होता है–

(अ) वित्त मन्त्री	(ब) लोक सभा में विपक्ष का नेता
(स) स्पीकर	(द) उपर्युक्त में से कोई नहीं

उत्तर

(1) स	(2) अ	(3) द	(4) अ	(5) द	(6) द
(7) स	(8) ब	(9) ब	(10) ब	(11) ब	(12) ब।

प्रदत्त विधिनिर्माण-अर्थ एवं महत्व

1. सत्ता वितरण एवं विभाजन का सर्वाधिक लोकप्रिय तरीका है–

(अ) प्रत्यायोजन	(ब) शक्ति पृथक्करण
(स) न्यायिक पुनरावलोकन	(द) उपर्युक्त में से कोई नहीं

3. 'प्रत्यायोजन का आशय है उच्चतर सत्ता द्वारा विशिष्ट सत्ता को सौंपा जाना।' यह कथन है–

(अ) मूने का	(ब) ब्लशली का
(स) पालक का	(द) मुनरो का

4. 'सत्ता के प्रत्यायोजन का अर्थ दूसरों को कर्त्तव्य सौंप देने से कुछ अधिक है।' यह मत है–

(अ) मिलेट का	(ब) फ्रेडरिक टेलर का
(स) मरसन का	(द) बकल का

5. 'साधारण रूप में सत्ता के हस्तान्तरण का अभिप्राय है किसी को कुछ करने की आज्ञा देना।' [illegible]

(अ) टेलर का	(ब) साइमन का
(स) प्रो. न्यूमैन का	(द) टेरी का

6. 'संगठन में सत्ता का प्रत्यायोजन नीचे से ऊपर, ऊपर से नीचे तथा बराबर वालों के बीच हो सकता है।' [illegible] है–

(अ) टेरी की	(ब) माहेश्वरी की
(स) डॉ. एम. पी. शर्मा की	(द) डॉ. अवस्थी की

7. प्रत्यायोजन की प्रक्रिया के तीन मुख्य पहलू का उल्लेख करने वाला विद्वान है–

(अ) प्रो. न्यूमैन	(ब) वुडरो विल्सन
(स) ब्लंशली	(द) टेरी

8. प्रत्यायोजन का मुख्य रूप हैं–

(अ) सरल प्रत्यायोजन	(ब) विशिष्ट प्रत्यायोजन
(स) पूर्ण प्रत्यायोजन	(द) उपर्युक्त सभी

9. जिस विद्वान ने 'पार्श्व के प्रत्यायोजन' का उल्लेख किया है, उसका नाम है–

(अ) टैरी	(ब) मिलेट
(स) हडसन	(द) साइमन

10. प्रत्यायोजन की सीमाएँ हैं–

(अ) वैधानिक सीमा	(ब) अधीनस्थों की योग्यता
(स) संगठन की प्रक्रिया	(द) उपर्युक्त सभी

11. एक अच्छे प्रत्यायोजन अधिकारी के गुण होते हैं–
(अ) उदारता (ब) स्पष्टतावादी
(स) पूर्व कल्पनाओं में कुशल (द) उपर्युक्त सभी

12. प्रदत्त व्यवस्थापन को पुकारा जाता है–
(अ) संविधि आदेश (ब) संसदीय आदेश
(स) मुख्य कार्यपालिका के आदेश (द) विभागीय आदेश

13. प्रदत्त व्यवस्थापन का दूसरा नाम है–
(अ) अधीनस्थ व्यवस्थापन (ब) सामान्य व्यवस्थापन
(स) विशिष्ट व्यवस्थापन (द) इनमें से कोई नहीं

14. प्रदत्त व्यवस्थापन में संसद सौंपती है–
(अ) कानून निर्माण की सत्ता (ब) अविश्वास लाने की सत्ता
(स) निन्दा प्रस्ताव की सत्ता (द) उपर्युक्त में से कोई नहीं

16. प्रदत्त व्यवस्थापन की उपयोगिता है–
(अ) सामान्य काल में (ब) असाधारण काल में
(स) आपात् काल में (द) उपर्युक्त सभी में

17. प्रदत्त व्यवस्थापन पर नियन्त्रण है–
(अ) कानूनी सीमा का (ब) संसद का
(स) न्यायालय का (द) उपर्युक्त सभी की

18. प्रदत्त व्यवस्थापन के लिए उत्तरदायी कारण रहे हैं–
(अ) संसद के पास समयाभाव (ब) संसद का कार्यभार
(स) व्यवस्थापन की जटिलता (द) उपर्युक्त सभी

19. प्रदत्त व्यवस्थापन की मुख्य आलोचनाओं के आधार हैं–
(अ) संसदीय सर्वोच्चता पर आघात (ब) अराजक तत्वों को प्रोत्साहन
(स) नई निरंकुशता को जन्म (द) उपर्युक्त सभी

20. 'प्रदत्त व्यवस्थापन के विरोध का कोई महत्त्व नहीं है।' यह कथन है–
(अ) ऑग का (ब) जिंक का
(स) डायसी का (द) बाल्डविन का

उत्तर

(1) अ	(2) अ	(3) अ	(4) स	(5) अ	(6) अ
(7) द	(8) अ	(9) द	(10) द	(11) अ	(12) अ
(13) अ	(14) द	(15) द	(16) द	(17) द	(18) अ।